भोजपुरी लोकगाथा



सत्यव्रत सिन्हा

एम० ए०, डी० फिल० (प्रयाग)

१९५७

हिंदुस्तानी एकेडेमी

उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

(प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० के लिए स्वीकृत प्रबन्ध)

प्रथम संस्करण १९५७ : २०००

बैनगार्ड प्रेस, इलाहाबाद में मुद्रित

—लोकगाथाओं के
अज्ञात रचयिताओं को—
सत्यव्रत

प्रकाशकीय

हिंदी साहित्य का भण्डार जनपदीय भाषाओं की उपेक्षा के कारण कुछ अपूर्ण सा था। वस्तुतः जनपदीय भाषाओं में ही किसी देश की सभ्यता और संस्कृति स्वाभाविक रूप में विद्यमान रहती है। हिंदी के इस क्षेत्र की ओर ध्यान दिलाने का श्रेय पं० रामनरेश त्रिपाठी तथा श्री राहुल सांकृत्यायन को है। इसकी उपयोगिता को देख कर विश्वविद्यालयों में भी धीरे धीरे लोक साहित्य से संबंधित विषयों पर शोध कार्य होने लगा, और पिछले आठ, दस वर्षों के अन्दर विश्वविद्यालयों की डी० फिल० उपाधि के लिए इस विषय पर कई थीसिस स्वीकृत हुए। डा० सत्यव्रत सिन्हा द्वारा प्रस्तुत यह ग्रंथ भी प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० की उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबन्ध है।

लोक साहित्य के एक विशिष्ट अंग के वैज्ञानिक अध्ययन के क्षेत्र से संबंधित यह प्रथम प्रयास है। डा० सिन्हा ने लोकगाथाओं की वैज्ञानिक समीक्षा के साथ भोजपुरी प्रदेश की लोकप्रिय लोकगाथाओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है, साथ ही विभिन्न जनपदों में प्रचलित लोकगाथाओं के साथ उनकी तुलनात्मक समीक्षा भी प्रस्तुत की है। मेरा विश्वास है कि लोक साहित्य तथा विशेष रूप से लोकगाथाओं के भावी अध्ययन में यह ग्रंथ विशेष उपादेय सिद्ध होगा।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
जनवरी, १९५८

धीरेन्द्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

शुद्धि-पत्र

					अशुद्ध		शुद्ध
पृ०	३	फुटनोट	२	—	लसीपौंड	—	लूसी पौंड
,,	५	,,	१	—	भमिका	—	भूमिका
,,	९	पंक्ति	९	—	सिद्धाल्त	—	सिद्धान्त
,,	१३	,,	२४	—	उत्यत्ति	—	उत्पत्ति
,,	१४	,,	१२	—	उद्धहरण	—	उद्धरण
,,	१५	,,	२	—	पड़ता	—	पड़ती
,,	१७	फुटनोट	१	—	ब्राह्म	—	ब्राह्मण
,,	१९	,,	१	—	उद्भव और	—	स्वरूप
,,	२१	पंक्ति	१६	—	दिया	—	दिया[1]
,,	२१	,,	२६	—	थे	—	थे[2]
,,	२३	,,	१	—	वर्णय	—	वर्णन
,,	२३	,,	२	—	साहित्त	—	साहित्य
,,	३१	,,	१६	—	पुराण कालीन	—	पुराकालीन
,,	३५	,,	१२	—	लोकगीतों	—	कविता
,,	४९	,,	१	—	शोभानायका	—	शोभानयका
,,	४९	,,	१	—	बनजार	—	बनजारा
,,	५१	,,	३	—	प्रश्नोत्तर	—	प्रश्नों
,,	५१	,,	३०	—	निवास	—	विश्वास
,,	६६	,,	१६	—	करिंधा	—	करिंघा
,,	६९	,,	७	—	के	—	का
,,	७१	,,	१४	—	अतिरिक	—	अतिरिक्त
,,	८३	,,	११	—	मुसमान	—	मुसलमान
,,	१५७	,,	२३	—	एबं	—	एवं
,,	१५८	,,	१२	—	बनते हैं	—	बनते हैं[1]
,,	१६०	,,	९	—	खौर	—	और
,,	१६५	,,	१७	—	दिल्ली	—	सुरुजपुर,
,,	१६९	,,	१८	—	रखता	—	रखती
,,	१७७	,,	१	—	अवधत	—	अवधूत
,,	१७७	,,	३	—	के	—	का
,,	१८५	,,	२३	—	विषय	—	विषयक
,,	१८७	,,	१६	—	यी	—	भी
,,	२२७	,,	१	—	सप	—	सर्प
,,	२३१	,,	९	—	बतलाले	—	बतलाते
,,	२३९	,,	१०	—	डुबने	—	डूबने

विषय-सूची

वक्तव्य

किसी देश की सांस्कृतिक चेतना का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वहाँ के लोक-साहित्य का अध्ययन करना आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है। युग-युग का जन जीवन इसमें परिलक्षित होता है। यह मेरा परम सौभाग्य है कि प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष पूज्य डा० धीरेन्द्र वर्मा एम.ए.डी. लिट्. ने यह विषय (भोजपुरी लोकगाथा का अध्ययन) मुझे सौंपा। उन्हीं से स्फूर्ति पाकर मैंने यह कार्य प्रारंभ किया। लोकगाथा संबंधी ग्रन्थों के अभाव में तथा भोजपुरी लोकगाथाओं के संग्रह में मुझे जो कठिनाइयाँ हुईं वह तो अपनी अनुभूति का विषय है। गुरुजनों की सतत् प्रेरणा से आज यह कार्य समाप्त हुआ है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में दस अध्याय हैं। प्रारंभ में भूमिका है तथा अन्त में परिशिष्ट।

प्रबन्ध की भूमिका के तीन भाग हैं। भाग 'क' में लोक साहित्य, उसकी महत्ता तथा उसके विभिन्न अंगों पर संक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। भाग 'ख' और 'ग' में भोजपुरी भाषा और साहित्य तथा भोजपुरी लोक-साहित्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

प्रथम अध्याय में लोकगाथा की सैद्धान्तिक विवेचना प्रस्तुत की गई है। साथ ही लोकगाथा की भारतीय परंपरा और लोकगाथा के परंपरागत गायकों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है।

द्वितीय अध्याय के तीन भाग हैं। पहले में, भोजपुरी लोकगाथाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। दूसरे भाग में, भोजपुरी लोकगाथाओं के एकत्रीकरण का विवरण दिया गया है तथा तीसरे भाग में, भोजपुरी लोकगाथाओं का अध्ययन की दृष्टि से वैज्ञानिक वर्गीकरण किया गया है। इसके साथ ही भोजपुरी लोकगाथाओं में निहित उद्देश्य की चर्चा भी की गई है।

तृतीय अध्याय में, भोजपुरी वीरकथात्मक लोकगाथाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस वर्ग में भोजपुरी की चार लोकगाथाएँ आती हैं। अतएव प्रत्यक लोकगाथा पर अलग से विचार किया गया है। लोकगाथाओं के अध्ययन का क्रम इस प्रकार है :—१—लोकगाथा का परिचय तथा उसमें निहित प्रमुख तत्त्व; २—लोकगाथा गाने का ढंग; ३—लोकगाथा की संक्षिप्त

कथा; ४—लोकगाथा के प्राप्त विभिन्न प्रादेशिक रूप, ५—तुलनात्मक समीक्षा, ६—लोकगाथा की ऐतिहासिकता (इसमें भौगोलिकता का भी समावेश है), ७—लोकगाथा के नायक तथा नायिका का चरित्र चित्रण।

उपर्युक्त क्रम से ही भोजपुरी प्रेमकथात्मक, रोमांचकथात्मक तथा योगकथात्मक लोकगाथाओं का अध्ययन क्रमशः चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठम अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

सप्तम अध्याय में भोजपुरी लोकगाथाओं में संस्कृति एवं सभ्यता का चित्र अंकन किया गया है। अधिकांश भोजपुरी लोकगाथाएँ मध्ययुगीन संस्कृति से संबंध रखती है; अतएव लोकगाथाओं में वर्णित भोजपुरी प्रदेश की सामाजिक अवस्था, संस्कार, चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था तथा जीवन के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डाला गया है।

अष्टम अध्याय में 'भोजपुरी लोकगाथा में भाषा और साहित्य' पर विचार किया गया है। इसमें लोकगाथाओं में वर्णित भाषा और साहित्य के विभिन्न अंगों पर विचार किया गया है।

नवम अध्याय में 'भोजपुरी लोकगाथा में धर्म का स्वरूप' पर विवेचना की गई है। वस्तुतः लोकगाथाओं में धर्म की भावना प्रधान रहती है। भोजपुरी लोकगाथाओं में विभिन्न धर्मों का अद्भुत समन्वय है—इन्हें उदाहरण प्रस्तुत कर स्पष्ट किया गया है। इसके साथ ही लोकगाथा में वर्णित अनेक देवी-देवताओं, अप्सरा, गन्धर्व, मंत्र, जादू, टोना तथा विश्वासों पर भी विचार किया गया है।

दशम अध्याय में पांच प्रकरण हैं। पहले प्रकरण में, 'भोजपुरी लोकगाथा में अवतारवाद' की समीक्षा की गई है। भोजपुरी लोकगाथाओं के अधिकांश नायक एवं नायिकाएं अवतार के रूप में वर्णित हैं। उदाहरण सहित इस विषय पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरे प्रकरण में भोजपुरी लोकगाथा में 'अमानवतत्त्व' की मीमांसा की गई है। लोकगाथाओं में अमानवतत्त्व की बहुलता रहती है। इसमें थलचर नभचर, तथा जलचर सभी क्रियावान् रहते हैं और कथानक में प्रमुख भाग लेते हैं। अतएव भोजपुरी लोकगाथाओं में अमानवतत्त्व का प्रयोग किस रूप में हुआ है, उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है।

तीसरे प्रकरण में 'भोजपुरी लोकगाथा में कुछ समानता' का विवरण दिया गया है। परंपरानुगत मौखिक साहित्य में समानताएं मिलनी स्वाभाविक है। इस प्रकरण में प्राप्त समानताओं, अभिप्रायों तथा कथानक रूढ़ियों को प्रस्तुत कर के विचार किया गया है।

चौथे प्रकरण में 'भोजपुरी लोकगाथा एक जातीय साहित्य' पर विचार प्रस्तुत किया गया है। संसार के सभी देशों के लोकसाहित्य की विशेषताएं प्रायः समान होती हैं। सांस्कृतिक एवं भौगोलिक अन्तर होने के फलस्वरूप उनमें कुछ अपनी विशेषताएं आ जाती हैं। प्रस्तुत प्रकरण में इसी पर विचार किया गया गया है।

पाँचवां प्रकरण 'उपसंहार' है। इसमें लोकगाथाओं के अध्ययन की महत्ता, लोकगाथाओं के संरक्षण का उपाय, लोकसाहित्य विषयक अनेक संस्थाओं का परिचय, तथा राज्य की सहायता से लोकसाहित्य के अध्ययन के लिए केन्द्रीय संस्था की आवश्यकता का निर्देश किया गया है।

अन्तिम परिशिष्ट है। इसके दो भाग हैं। भाग 'क' में भोजपुरी लोकगाथाओं के प्रमुख अंश प्रस्तुत किए गए हैं। भाग 'ख' में सहायक ग्रंथों एवं पत्र-पत्रिकाओं की सूची दी गई है।

अन्त में उन व्यक्तियों को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होंने इस कार्य को पूर्ण करने में सहायता दी है। लोकगाथा की भारतीय परंपरा पर विचार करने के लिए संस्कृत सामग्री की सहायता, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत और पाली के प्राध्यापक आचार्य बलदेव उपाध्याय जी ने दिया है, साथ ही अध्ययन के निमित्त मुझे कई ग्रंथ भी दिये। मैं उनका चिरऋणी हूँ। उन गायकों को मैं कैसे भूल सकता हूँ जिन्होंने दिन-दिन और रात-रात बैठ कर लोकगाथाओं को गागाकर लिखवाया है। लिखाने में कितनी कठिनाई हुई, यह तो उन्हीं को विदित है या मुझे। सचमुच वे धन्य हैं जो इन पवित्र एवं ओजस्वी लोकगाथाओं को बड़े जतन से अपने कंठ में सुरक्षित किये हुए हैं। मैं भाई रामजिन कानू, लालजी अहीर, रामनगीना हजाम तथा जोगी भाई का सादर अभिनन्दन करता हूँ।

पूज्य डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए० डी० लिट्० तथा पूज्य डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए० डी० लिट्० को मैं किस मुंह से धन्यवाद दूं?

उन्हीं के चरणों में तो बैठकर यह प्रबन्ध पूर्ण किया गया है। श्रद्धा से नतमस्तक होकर मैं केवल यही कहूँगा—

'रामा हमतऽ सुमिरीं गुरू के चरनिया रे ना।
रामा जिन्ह दिहलें हमके गयनवा रे ना ।।'

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
प्रयाग

सत्यव्रत सिन्हा

भूमिका

(क) लोकसाहित्य

लोकसाहित्य वह लोकरंजनी साहित्य है जो सर्वसाधारण समाज की मौखिक रूप में भावमय अभिव्यक्ति करता है। सृष्टि के विकास के साथ ही लोकसाहित्य का उद्भव माना गया है। इस प्रकार लोकसाहित्य मानव समाज के क्रमिक विकास की कहानी हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। लोकसाहित्य, वर्तमान उन्नत एवं कलात्मक साहित्य का जनक है। आज का संस्कृत एवं परिष्कृत साहित्य व्यक्ति की महत्ता को स्वीकार करता है, लोकसाहित्य जनता जनार्दन को ही अपना प्रभु मानता है। उसमें किसी का व्यक्तित्व नहीं झलकता अपितु उसमें समस्त समाज की आत्मा मुखरित होती है। इसी कारण लोकसाहित्य के रचयिताओं अथवा कवियों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। पं० रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं, "जिस तरह वेद अपौरूषेय माने जाते हैं, उसी तरह ग्रामगीत भी अपौरुषेय हैं।[1]

प्रारम्भ में पाश्चात्य-विचारकों ने लोकसाहित्य को नृशास्त्र (ऍन्थ्रोपालोजी) के अन्तर्गत रखा था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यान्त में लोकसाहित्य का अध्ययन इतना व्यापक हुआ कि उसे एक अलग विषय मान लिया गया। इसके पश्चात् लोकसाहित्य के छानबीन का कार्य यूरप में धूम से प्रारम्भ हो गया। अनेक विद्वान् एवं कवि इस ओर आकर्षित हुए।

लोकसाहित्य के विषय में पाश्चात्य विद्वानों का मत कुछ एकांगी-सा रहा है। प्रो० चाइल्ड, श्री किटरेज, सिजविक, गुमेर तथा लूसी पौंड प्रभृति विद्वानों ने लोकसाहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इसे मनुष्य की आदिम अवस्था की अभिव्यक्ति समझा है तथा असंस्कृत समाज का एक विषय माना है। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप पाश्चात्य देशों में 'लोकसंस्कृति', 'लोकसभ्यता' इत्यादि शब्दों का जन्म हुआ। 'लोक' (फोक) शब्द का अर्थ गावों अथवा बनों में रहने वाले गँवार तथा असंस्कृत समाज के रूप में प्रयुक्त होने लगा।

१—पं० रामनरेश त्रिपाठी—ग्रामसाहित्य (जनपद पत्रिका, अक्टूबर १९५२ पृ० ११)।

भारतवर्ष में भी लोकसाहित्य के अध्ययन के विषय में कुछ लोगों की प्रवृत्ति उपर्युक्त प्रकार की है। यह अन्धानुकरण है। वास्तव में हमारे देश की परिस्थिति सर्वथा भिन्न है। नगर और गाँव के जीवन में जो विशाल अन्तर पाश्चात्य देशों में मिलता था, वैसा अन्तर भारत में कभी नही रहा। प्रधानतया यह गाँवों का देश है, इसलिए नगर जीवन (पौरजीवन) के साथ-साथ जनपदीय जीवन (ग्राम जीवन) का महत्व बराबर से रहा है। हमारे ऋषि-मुनि एवं गुरुजन नगर से दूर किसी एकांत ग्राम अथवा किसी वन में बैठकर चिन्तन करते थे तथा जीवन का सुखमय सन्देश देते थे। उनकी विचारधारा का भावात्मक प्रभाव प्रथमतः ग्रामीण जीवन पर पड़ता था। उसके पश्चात् ही वह विचार अथवा दर्शन पौरनिवासी विद्वत्मंडली में जाकर, टीका टिप्पणी पाकर, परिष्कृत एवं प्रबल होता था। हमारे ग्राम एवं नगर जीवन में केवल यही अन्तर सदा से रहा है। अतएव भारतीय लोकसाहित्य का अध्ययन करते समय हमें उपर्युक्त भावना निकाल देनी चाहिए। वास्तव में हमारा लोकसाहित्य संस्कृति की उच्चतम भावनाओं को अपनी अपरिष्कृत भाषा में संजो कर रखता है। हमारा 'लोक' पाश्चात्य देशों का 'लोक' नहीं है अपितु देश की समूची संस्कृति एवं सभ्यता ही हमारी लोक-संस्कृति एवं लोक-सभ्यता है। अतः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन अत्यन्त युक्तिसंगत है कि "लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गावों में फैली हुई समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।"[१]

लोकसाहित्य का अध्ययन एक अत्यन्त व्यापक विषय है। इसका अध्ययन से हम देश अथवा प्रदेश-विशेष के लुप्त ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकाश में ला सकते हैं। जो विषय हमें एतिहासिक ग्रन्थों में नहीं प्राप्त होते, वे सहज रूप में लोकसाहित्य में मिल जाते हैं। लोकसाहित्य में अनेक राजाओं के जीवन की घटनाएँ, प्रादेशिक वीरों का जीवन चरित्र तथा सती स्त्रियों के जीवन की घटनाएं बड़े मार्मिक रूप में चित्रित रहती हैं। अतएव इनके सम्यक् अध्ययन से इतिहास के पृष्ठ बढ़ाए जा सकते हैं।

लोकसाहित्य में भौगोलिक चित्र भी व्यापक रूप में हमें मिलता है। लोकगीतों का परदेशी पति पूरब व्यापार करने के लिए जाता है। वह अनेक नदियां और नगर पार करता है और पुनः अपने घर लौटते हुए अपनी पत्नी के लिए

१—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—लोकसाहित्य का अध्ययन—(जनपद-पत्रिका, अक्टूबर १९५२ पृ० ६५)।

मगह का पान, बनारसी साड़ी, मिर्जापुर का लोटा, पटने की चोली और गोरखपुर का हाथी लाता है। लोकगाथाओं के वीर अनेक नगरों और गढ़ों पर आक्रमण करके विजय प्राप्त करते हैं। इस प्रकार से हम लोकसाहित्य द्वारा नगर, नदी, किला, गढ़ और प्रसिद्ध व्यापारी केन्द्रों से परिचित होते हैं।

लोकसाहित्य हमें समाज के आर्थिक-स्तर का भी विधिवत् ज्ञान कराता है। लोकसाहित्य में साधारण ग्रामीण समाज का खानपान, रहन-सहन तथा रीतिरिवाज इत्यादि का परिचय मिलता है। लोकगीतों की माता सोने के कटोरे में ही शिशुओं को दूध भात खिलाती है। नायिकाएं दक्षिण की चीर, चन्द्रहार, बाजूबन्द और मागटीका पहनती हैं। भोजन में बासमती चावल, मूँग की दाल, पूड़ी, पूआ और छत्तीस रकम की चटनी ही परोसा जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि लोकसाहित्य के द्वारा समाज की आर्थिक अवस्था से हम भली-भांति परिचित हो सकते हैं।

नृशास्त्र (अन्थ्रोपालोजी) के लिए लोकसाहित्य में अध्ययन की सामग्री भरी पड़ी है। विभिन्न जातियों और उनके नियमादि का वर्णन लोकसाहित्य में भली भांति मिलता है। भोजपुरी प्रदेश में बाबा, मेंढ़ुआ, दुसाध, चमार, कमकर, मल्लाह, गोंड़, धरकार इत्यादि अनेक जातियां बसती हैं। इन जातियों के अध्ययन के लिए लोकसाहित्य से बढ़कर कोई विषय नहीं होता।

लोकसाहित्य में धार्मिक जीवन का ब्योरेवार चित्र मिलता है। देवी-देवताओं की कहानियां, अनेक प्रकार के व्रत-उपवास, पूजापाठ, तथा मंत्र-तंत्र इत्यादि का सांगोपांग वर्णन लोकसाहित्य में प्राप्त होता है। इनसे हम किसी समाज की धार्मिक अवस्था का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

लोकसाहित्य का संबंध भाषा-शास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लोकसाहित्य में भाषा-शास्त्र के अध्ययन के लिए अक्षयभण्डार भरा पड़ा है। जटिल भावों को व्यक्त करने के लिए लोकसाहित्य में सरल एवं सहज सटीक शब्द भरे पड़े हैं। इनसे हम अपने साहित्य का भंडार भर सकते हैं। इन शब्दों की व्युत्पत्ति भी बड़ी रोचक होती है। इन शब्दों के प्रयोग से हम उक्त समाज के बौद्धिक स्तर को भी जान सकते हैं। लोकसाहित्य में मुहावरे, कहावतें तथा सूक्तियों की भरमार रहती है। इन्हें सुसंस्कृत साहित्य में सम्मिलित कर भाषा को प्रभावशाली एवं लोकोपयोगी बनाया जा सकता है।

इसी प्रकार से लोकसाहित्य के अध्ययन से हमें नैतिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक तथा भौतिक-शास्त्र सम्बन्धी तथ्य भी उपलब्ध हो सकते हैं। लोक-

साहित्य वस्तुतः एक अक्षय भंडार है। मानवता-सम्बन्धी सभी सामग्री हमें उपलब्ध होती है। इसीलिए तो स्काटलैंड का देश भक्त फ्लैचर कहता है, "किसी भी जाति के लोकगीत उसके विधान से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होता है।"

साधारण रूप से लोकसाहित्य के अध्ययन को हम चार भागों में विभाजित कर सकते हैं। इसमें प्रथमतः लोकगीत का स्थान आता है। लोकगीतों में ग्राम जीवन की सरल अभिव्यंजना रहती है। इसमें विशेष सामाजिक संस्कारों, ऋतु, पर्वों तथा देवी-देवताओं से सम्बन्धित भिन्न गीत रहते हैं।

लोकसाहित्य के दूसरे भाग में लोकगाथा का स्थान आता है। इसमें किसी एक व्यक्ति के जीवन का सांगोपांग वर्णन रहता है। वस्तुतः लोकगाथा एक कथात्मक गीत होती है। इसका विस्तार बहुत बड़ा होता है। कोई कोई लोकगाथा तो हफ्तों में जाकर समाप्त होती है।

लोकसाहित्य के तृतीय भाग में लोककथा का स्थान आता है। ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित, धार्मिक तथा पौराणिक-कथाओं से उद्भूत, तथा विगत सत्य घटनाओं पर आधारित अनेक प्रकार की लोककथाएं समाज में प्रचलित रहती हैं। इन्हीं कथाओं का समावेश लोकसाहित्य में पूर्ण रूप से रहता है।

चतुर्थ प्रकीर्ण साहित्य है, जिसमें ग्राम जीवन से सम्बन्धित मुहावरों, कहावतों, पहेलियों तथा सूक्तियों का समावेश होता है।

लोकसाहित्य के उपर्युक्त चार अंगों के अतिरिक्त ग्राम्य जीवन के अन्य अंग भी इसमें आते हैं। उदाहरण के लिए ग्रामीण प्रहसन, नाटक, रामलीला, तथा भित्ति-चित्र इत्यादि। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकसाहित्य एक अत्यन्त व्यापक विषय है। इस परंपरानुगत साहित्य का अध्ययन बड़े ही मनोयोग से होना चाहिए।

ऊपर की पंक्तियों में लोकगाथा के अध्ययन से लाभ तथा इसके प्रकारों इत्यादि की संक्षिप्त रूपरेखा देने की चेष्टा की गई है। इससे यह धारणा नहीं बना लेना चाहिए कि लोकसाहित्य का क्षेत्र अपने प्रकारों में ही सीमित है। यह सत्य है कि लोकसाहित्य उस लोक का साहित्य है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। परन्तु उन विशाल पोथियों के रचयिता-विद्वानों, पंडितों, संतों तथा भक्तों ने उसी अपढ़ लोक-विशेष का सहारा लिया है। प्राचीन संस्कृत युग से लेकर प्राकृत और अपभ्रंश युग तक, अपभ्रंशों के युग से निकल कर जनपदीय साहित्य तक, तथा जनपदीय साहित्य से लेकर वर्तमान हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत उस लोक की स्पष्ट झाँकी साहित्य के विभिन्न

अंगों में देख सकते हैं। प्रसिद्ध महाकाव्यों तथा नाटकों में लोकसाहित्य की सामग्री का विभिन्न रूपों में समावेश हुआ है। कथासरित्सागर, वैताल पचीसी इत्यादि में वर्णित कथाएं अधिकांश में लोककथाओं के शुद्ध रूप हैं। प्रसिद्ध महाकाव्यों—रामायण और महाभारत इत्यादि लोकगाथाओं से ही उद्भूत हैं। नाटकों के हल्लीश, रासक, प्रेंखण, भाण, भाणिका श्रीगदित इत्यादि प्रकार लोकनाट्य की परम्परा से ही लिए गए हैं। काव्यगत शैलियों में लोकसाहित्य ने अमूल्य योग दिया है। हिन्दी के प्रसिद्ध चारण, संत एवं भक्त कवियों ने लोकसाहित्य में प्रचलित अनेक शैलियों को अपने शिष्ट एवं विचार-प्रवण साहित्य में स्थान दिया है। इन कवियों ने रासो, चांचर, हिंडोला, कहरवा, झूमर, बरवै, सोहर, मंगल, बेली, तथा बिरहुली इत्यादि लोकगीतों की शैलियों को ग्रहण किया है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि लोकसाहित्य का क्षेत्र किसी भी प्रकार सीमित नहीं है, यहाँ तक कि आज के गीत (लिरिक) युग में भी लोकगीतों की शैलियाँ परिलक्षित होती हैं। वास्तव में यह विषय (लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य का अन्योन्य सम्बन्ध) अत्यन्त रोचक है। प्रस्तुत प्रबन्ध की सीमा को देखते हुए इस पर सविस्तार विचार करना शक्य नहीं। वस्तुतः यह एक पृथक प्रबन्ध का विषय है।

(ख) भोजपुरी भाषा और साहित्य

राष्ट्रभाषा हिन्दी की परिधि में, भोजपुरी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बिहार प्रान्त की तीन प्रधान बोलियों—मैथिली, मगही तथा भोजपुरी के अन्तर्गत भोजपुरी बिहार की पश्चिमी और उत्तर प्रदेश के पूर्वी प्रदेश की प्रमुख बोली है। इसके बोलने वालों की संख्या दो करोड़ से भी अधिक है। यद्यपि प्राचीनकाल में इसमें उन्नत-साहित्य का निर्माण नहीं हुआ, तो भी इसका विस्तार एवं बोलने वालों की संख्या अन्य प्रादेशिक भाषाओं की तुलना में सबसे अधिक है। मराठी, जो कि एक समृद्ध भाषा है, उसके भी बोलने वाले दो करोड़ से कम ही हैं। आधुनिक समय में भोजपुरी में साहित्य निर्माण का कार्य तेजी से हो रहा है। अनेक ग्रंथ एवं पत्र-पत्रिकाएं भोजपुरी भाषा में निकल रही हैं। हिन्दी की प्रादेशिक भाषाओं के अन्तर्गत भोजपुरी में खोजकार्य भी विशेष रूप से हुआ है।

भोजपुरी भाषा के नामकरण का इतिहास बड़ा रोचक है। इसका नामकरण बिहार के शाहाबाद जिले में बक्सर के समीप 'भोजपुर' नामक गाँव पर हुआ है। बक्सर सब-डिवीजन में 'नवका भोजपुर' तथा 'पुरनका भोजपुर' नामक दो गांव आज भी स्थित हैं। 'भोजपुर' गाँव का नाम उज्जैनी भोज राजाओं के नाम पर पड़ा है। मध्यकाल में उज्जैन के भोजवंशी राजाओं ने यहाँ आकर राज्य की स्थापना की थी। उज्जैनी राजपूतों का प्रताप समस्त बिहार और उत्तर प्रदेश तक था। उनकी राजधानी का नाम 'भोजपुर' था। अतएव इस गाँव के नाम पर ही यहाँ की बोली का नाम भी 'भोजपुरी' पड़ गया।[1]

बिहार की तीन बोलियों में विस्तार एवं व्यापकता की दृष्टि से भोजपुरी अग्रगण्य है। उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में मध्यप्रान्त की सरगुजा रियासत तक इस बोली का विस्तार है। बिहार प्रान्त के शाहाबाद, सारन, चंपारन, राँची, जयपुर स्टेट, पालामऊ का कुछ भाग तथा मुजफ्फरपुर के उत्तरी पश्चिमी कोने में इस बोली के बोलने वाले निवास करते हैं। इसी

१—विशेष विवरण के लिए देखिए—

दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस (भूमिका भाग)।

प्रकार उत्तर प्रदेश के बनारस, मिर्जापुर, गोरखपुर, आजमगढ़ तथा बस्ती जिले के हरया तहसील में स्थित कुवानो नदी तक भोजपुरी बोलने वालों का आधिपत्य है। इस प्रकार भोजपुरी क्षेत्रफल की दृष्टि से पचास हजार वर्गमील में व्याप्त है।[1]

भोजपुरी एक विस्तृत क्षेत्र की भाषा है, अतएव इसमें विभिन्नता रहना स्वाभाविक है। इसके प्रधानतया तीन भेद हैं। प्रथम आदर्श भोजपुरी जो भोजपुर गाँव के आस-पास तथा शाहाबाद, बलिया, गाजीपुर आदि दक्षिणी जिलों में बोली जाती है। इसके भी दो सूक्ष्म भेद हैं। प्रथम दक्षिणी भोजपुरी जिसका उल्लेख ऊपर की पंक्ति में किया गया है तथा दूसरा उत्तरी भोजपुरी जो कि गोरखपुर, बस्ती तथा सारन जिलों में बोली जाती है।[2]

भोजपुरी का दूसरा प्रकार पश्चिमी भोजपुरी है जो कि फैजाबाद, जौनपुर, आजमगढ़ तथा गाजीपुर जिले के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। पश्चिमी भोजपुरी भारतीय आर्य भाषाओं के पूर्वी समुदाय की सबसे पश्चिमी सीमान्त बोली है जो अवधी आदि से कुछ समानता रखती है।

भोजपुरी का तृतीय भेद 'नगपुरिया' है। छोटा नागपुर तथा उसके आस पास 'नगपुरिया भोजपुरी' बोली जाती है। नगपुरिया पर छत्तीसगढ़ी बोली का अत्यधिक प्रभाव है।

उपर्युक्त तीन भेदों के अतिरिक्त भोजपुरी के अन्य दो प्रकार भी मिलते हैं जिसे 'मधेसी' और 'थारू' कहते हैं। 'मधेसी' संस्कृत के 'मध्य देश' से निकला है, जिसका अर्थ है बीच का देश। यह बोली तिरहुत की मैथिली एवं गोरखपुर की भोजपुरी के बीच वाले उत्तरी प्रदेश में बोली जाती है। मधेसी, चम्पारन जिले में बोली जाती है। मधेसी पर मैथिली का अधिक प्रभाव है।

'थारू' नैपाल की तराई में निवास करने वाले थारु जाति की बोली है। ये लोग बहराइच से चम्पारन तक पाए जाते हैं। इनकी बोली वस्तुत: विकृत भोजपुरी है। हाजसन ने इनकी भाषा पर अच्छा प्रकाश डाला है।[3]

१—डा० उदयनारायण तिवारी—भोजपुरी नामकरण, पत्रिका पृ० १६३-६४

२—डा० कृष्णदेव उपाध्याय—'भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन' (अप्रकाशित) पृ० ३०

३—वही

भोजपुरी में साहित्य का अभाव—यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। भोजपुरी इतनी सजीव एवं व्यापक भाषा होते हुए भी साहित्य-सृजन में प्राय: शून्य-सी है। इसकी सगी बहन मैथिली में सुन्दर साहित्य का निर्माण हुआ परन्तु भोजपुरी में नहीं। विद्वानों ने इसके दो प्रमुख कारण निर्धारित किए हैं। प्रथम, प्राचीनकाल में जहाँ बंगाल एवं मिथिला के ब्राह्मणों ने संस्कृत के साथ साथ अपनी मातृ भाषा को भी साहित्यिक रचना के लिए अपनाया वहाँ भोजपुरी पंडितों ने केवल संस्कृत के अध्ययन और अध्यापन पर ही विशेष बल दिया। संस्कृत के अध्ययन का प्राचीन केन्द्र 'काशी' भोजपुरी प्रदेश में ही स्थित है। संस्कृत साहित्य को उत्तरोत्तर परिष्कृत करने में तथा उसके प्रचार को अक्षुण्ण बनाए रखने के कारण भोजपुरी पण्डितों द्वारा मातृ-भाषा की उपेक्षा की गई।

भोजपुरी में साहित्य के अभाव का द्वितीय कारण है राज्याश्रय का अभाव। प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय का मत है कि "भोजपुरी साहित्य की अभिवृद्धि न होने का प्रधान कारण है राज्याश्रय का अभाव। भोजपुरी प्रदेश में किसी प्रभावशाली व्यापक एवं प्रतापी नरेश का पता नहीं चलता। अधिकतर इसमें किसानों की ही बस्तियाँ हैं। किसी गुणग्राही नरेश का आश्रय न मिलने से इस भाषा का साहित्य समृद्ध न हो सका।"[1]

उपर्युक्त दोनों मतों में सत्य की मात्रा अवश्य है परन्तु यह मत स्वीकार-कर लेना कि भोजपुरी में साहित्य का सर्वथा अभाव है, नितांत असंगत होगा। यह अवश्य है कि भोजपुरी में सूर, तुलसी, मीरा तथा विद्यापति के समान कोई प्रतिभावान् व्यक्ति नहीं उत्पन्न हुआ परन्तु थोड़ी बहुत मात्रा में साहित्य की रचना सदैव से होती रही है। डा० उदयनारायण तिवारी के मत से कबीर तो भोजपुरी भाषा के ही कवि थे। तुलसी की रचनाओं में भी भोजपुरी भाषा का प्रभाव पड़ा है। इनके अतिरिक्त प्राचीनकाल में अनेक संत एवं इतर कवियों ने भोजपुरी में रचनाएँ की थीं जिनमें धरमदास, शिवनारायण, धरनीदास तथा लक्ष्मीसखी इत्यादि प्रमुख हैं। आधुनिक काल में अनेक कवियों ने भोजपुरी में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनमें बिसराम, तेजअली, बाबू रामकृष्ण वर्मा, दूधनाथ उपध्याय, बाबू अम्बिका प्रसाद, भिखारी ठाकुर, मनोरंजन प्रसाद सिनहा, राम बिचार पांडे, प्रसिद्ध नारायण सिंह, पण्डित महेन्द्र शास्त्री, श्याम

१—डा० कृष्णदेव उपाध्याय—'भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन' (अप्रकाशित) पृ० १२

बिहारी तिवारी, श्री चंचरीक, श्री रघुवीर शरण, तथा रणधीरलाल श्रीवास्तव प्रमुख हैं।[1]

इनकी रचनाओं के अतिरिक्त दूधनाथ प्रेस, हवड़ा, गुल्लू प्रकाशन तथा बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, काशी ने भोजपुरी गीतों तथा नाटकों के अनेक संग्रह प्रकाशित किए हैं।

भोजपुरी गद्य एवं नाटकों में भी कार्य हुआ है, जिनमें श्री राहुल सांकृत्यायन, श्री रविदत्त शुक्ल तथा भिखारी ठाकुर का नाम महत्वपूर्ण है।

भोजपुरी भाषा के अध्ययन के क्षेत्र में श्री ग्रियर्सन ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इनके अतिरिक्त श्री आर्चर, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० उदय नारायण तिवारी, तथा डा० विश्वनाथ प्रसाद का नाम उल्लेखनीय है।

१—वही—पृ० ६६-६६

(ग) भोजपुरी लोकसाहित्य

भोजपुरी भाषा में साहित्य का सृजन भले ही अल्प मात्रा में हुआ हो परन्तु लोक साहित्य का भंडार अक्षय है। भोजपुरी जीवन का प्रतिनिधित्व यहाँ का लोक साहित्य ही करता है। यद्यपि कबीर एवं तुलसी भोजपुरियों के हृदय-सिंहासन पर विराजमान हैं परन्तु आल्हा, लोरिकी, बिहुला तथा सोरठी की लोकगाथाएँ किसी भी प्रकार कम महत्व नहीं रखती हैं। पर्वों, त्योहारों तथा अनेकानेक उत्सवों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत एवं कथाएँ अशिक्षित ग्रामीणों का मनोरंजन करती हैं। उनके जीवन का दुख-सुख इन्हीं लोकगीतों, गाथाओं एव कथाओं में भरा पड़ा है।

भोजपुरी लोकसाहित्य को हम चार भाग में विभक्त कर सकते हं[1]:—

१—लोकगीत

२—लोकगाथा

३—लोककथा

४—प्रकीर्णसाहित्य

भोजपुरी लोकगीतों में दो प्रकार हैं। प्रथम संस्कार संबन्धी गीत तथा द्वितीय ऋतु संबन्धी गीत। इसके अतिरिक्त देवी देवताओं से संबंधित गीत भी हैं। भोजपुरी लोकगीतों के निम्नलिखित प्रकार हैं[1]—

१—**सोहर**—पुत्र जन्म के अवसर पर गाए जाने वाले गीत।

२—**खेलवना**—पुत्र जन्म के पश्चात् गाए जाने वाले गीत।

३—**जनेऊ के गीत**—यज्ञोपवीत तथा मुन्डन संस्कार के गीत।

४—**विवाह के गीत**—इसमें विवाह संबंधी सभी संस्कारों के गीत रहते हैं।

५—**वैवाहिक परिहास के गीत**—इसमें परस्पर हास-परिहास तथा गाली देने के गीत रहते हैं।

६—**गवना के गीत**—द्विरागमन के अवसर पर गाए जाने वाले गीत।

७—**छठी माता के गीत**—कार्त्तिक शुक्ल में सूर्यषष्ठी व्रत के निमित्त गाये जाने वाले गीत।

१—विशेष विवरण के लिए देखिए—डा० कृष्णदेव उपाध्याय 'भो० लो० का अ०' पृ० १६६-२०२

८—**शीतला माता के गीत**—चेचक निकलने पर शीतला माता को प्रसन्न करने के गीत।

९—**बहुरा**—भाद्र कृष्ण चतुर्थी को बहुरा व्रत के अवसर पर गाये जाने वाले गीत।

१०—**गोधन**—कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोधन व्रत मनाया जाता है। गोवर्धनपूजा से संबंधी गीत इसमें गाए जाते हैं।

११—**पिड़िया**—गोधन व्रत के दिन कुमारी कन्याएँ भाई की मंगल-कामना के लिए गीत गाती हैं।

१२—**बारह मासा**—यह विरह गीत है। सावन के गीत, चौमासे के गीत तथा झूले के गीत इसी श्रेणी में आते हैं।

१३—**चैता**—बसंत के आगमन के साथ पुरुषों द्वारा गाया जाने वाला गीत। इसे घांटों भी कहते हैं।

१४—**कजली**—वर्षा ऋतु का गीत।

१५—**फगुआ**—होलिकोत्सव पर गाए जाने वाले गीत।

१६—**नागपंचमी**—नागपूजा से संबंधित गीत। वर्षा के गीत भी इसमें सम्मिलित रहते हैं।

१७—**जंतसार**—ग्रामवधूओं द्वारा चक्की चलाते समय का गीत।

१८—**बिरहा**—अहीर लोगों का यह जातीय गीत है। वीर और शृंगार से ओतप्रोत रहता है।

१९—**झूमर**—यह एक फुटकर गीत है। नवयुवतियाँ समवेतस्वर में गाती हैं।

२०—**सोहनी के गीत**—वर्षा के प्रारम्भ में खेतों में हानिकर पौदों और कीड़ों को निकालते समय गाए जाने वाले गीत। इसे स्त्रियां ही विशेष रूप से गाती हैं।

२१—**भजन**—जीवन के रहस्यात्मक एवं क्षणभंगुरता पर प्रकाश डालने वाले गीत।

२२— **विविध गीत (क) अलचारी**—लाचारी अवस्था में गाए जाने वाले गीत। इसमें विरह प्रधान रहता है।

(ख) पूर्वी—यह भी एक विरह गीत है। पूरब देश जाने का प्रसंग वर्णित रहता है।

(ग) **निर्गुन**—रहस्यवादी गीत। कबीर के निर्गुन से ही इसका संबंध है।

(घ) **पराती**—प्रातःकाल गाए जाने वाले गीत।

(ङ) **पालने के गीत**—शिशु को बहलाते समय और सुलाते समय गाए जाने वाले गीत।

(च) **खेल के गीत**—कबड्डी, गुल्लीडंडा, आँख मिचोनी, तथा ओका-बोक्का खेलते समय गाए जाने वाले गीत।

(छ) **जानवरों के गीत**—पशुओं को संबोधित करके गाए जाने वाले गीत।

लोकगीतों के पश्चात् लोकगाथाओं (बैलेड्स) का स्थान आता है। समस्त भोजपुरी प्रदेश में लोकप्रिय नौ लोकगाथाओं का प्रचार है, जो इस प्रकार है:—आल्हा, लोरिकी, विजयमल, कुंवरसिंह, शोभानयका बनजारा, सोरठी, बिहुला, भरथरी तथा गोपीचंद। इन लोकगाथाओं का अध्ययन ही लेखक का विषय है, अतएव अगले अध्यायों में इनपर विशद् विवेचन प्राप्त होगा।

उपर्युक्त नौ लोकगाथाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक छोटी-मोटी लोकगाथाएँ भोजपुरी प्रदेश में प्राप्त होती हैं, जैसे कुसुमादेवी, भगवतीदेवी तथा लचिया रानी इत्यादि। ये गाथाएँ भोजपुरी प्रदेश में व्यापक नहीं है, अपितु किसी किसी विशेष जिलों में ही सीमित है। 'लचियारानी' की गाथा निरवाही के गीतों के अंतर्गत आती हैं। इसी कारण इनपर प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रकाश नहीं डाला गया है।

अभीतक भोजपुरी लोकगाथाओं का अध्ययन किसी ने नहीं किया था। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपनी थीसिस में भोजपुरी लोकगाथाओं के सिद्धान्तों और विशेषताओं पर संक्षेप में प्रकाश डाला है। बहुत पहले श्री ग्रियर्सन ने भी भोजपुरी भाषा के अध्ययन के हेतु कुछ भोजपुरी लोकगाथाओं को एकत्र करके अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाया था, जिनका विवरण द्वितीय अध्याय में मिलेगा। परन्तु उपर्युक्त प्रयास अति गौण था। इस दिशा में पूर्णरूपेण अध्ययन करने का प्रयास प्रस्तुत प्रबन्ध में लेखक ने किया है।

भोजपुरी लोककथा का क्षेत्र अगाध है। वस्तुतः कथा साहित्य में भारतवर्ष युगों पूर्व से संसार में अग्रणी रहा है। हितोपदेश, वृहत्कथामंजरी, कथा सरित्सागर, जातक तथा वैतालपंचविशतिका इत्यादि कथाग्रन्थों में अनगिनत कहानियां भरी पड़ी हैं। इसी प्राचीन परंपरा में पोषित भोजपुरी लोककथाएँ

आज अति लोकप्रिय हैं। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी लोककथाओं को छः श्रेणी में विभक्त किया है, जो इस प्रकार हैं[1]: –

१—उपदेशात्मक
२—मनोरंजनात्मक
३—व्रतात्मक
४—प्रेमात्मक
५—वर्णनात्मक
६—सामाजिक

प्रायः समस्त भोजपुरी कहानियाँ उपदेशात्मक है। इनमें स्त्रियों के चरित्र, सामाजिक अवस्था, कुटिल लोगों का चरित्र तथा उनसे किस प्रकार बचना चाहिए, वर्णित रहता है। मनोरंजनात्मक कहानियों में अधिकांश में जानवरों के ऊपर कहानियाँ रहती हैं। व्रतात्मक कहानियों में स्त्रियों के व्रतों का उल्लेख रहता है। इन कथाओं में व्रत के माहात्म्य को सुन्दर ढंग से बतलाया जाता है। प्रेमकथात्मक कथाओं में स्त्रियों का प्रेम, उनका सतीत्व एवं वीरता का वर्णन रहता है। वर्णनात्मक कहानियाँ अति लम्बी होती हैं उनमें किसी राजा और उसके बेटे की कहानी रहती है जो कई दिनों में जाकर समाप्त होती हैं। सामाजिक कहानियों में समाज की रूढ़ियों पर व्यंग रहता है जैसे, वृद्ध विवाह, गरीबी-अमीरी इत्यादि। इन समस्त प्रकार की लोककथाओं में रोमांच का पुट प्रत्येक स्थान पर रहता है। इनमें देवी, देवता, भूत, पिशाच, चुड़ैल, राक्षस इत्यादि का सर्वत्र उल्लेख रहता है।

प्रायः समस्त भोजपुरी लोककथाओं में बीच-बीच में गीत का रहना अनिवार्य है। भोजपुरी की दो प्रसिद्ध लोककथाओं 'सारंगा सदावृक्ष' तथा 'राजा ढोलन' में गीतों का इतना बाहुल्य है कि ये लोकगाथाओं की बराबरी करने लगती हैं। प्रायः सभी भोजपुरी कथाओं का अंत पद्य के साथ ही होता है जैसे—

'ढेला मिहलाइ गइले
पतई उड़िआई गइले
काथा ओराइ गइले।'

१—डा० कृष्णदेव उपाध्याय—'भो० लो० का अ०' पृ० ५२६-५३२

वस्तुतः भोजपुरी लोककथाओं का अध्ययन अभी तक व्यवस्थित रूप से नहीं हुआ है। भोजपुरी लोकसाहित्य में लोककथा का क्षेत्र अत्यन्त समृद्ध एवं महत्वपूर्ण है। वास्तव में ये लोककथाएँ देश की परम्परानुगत संस्कृति एवं सभ्यता को एक शृंखला में बाँधने में सहायक सिद्ध हुई हैं। अतएव इनका वैज्ञानिक अनुसंधान अत्यन्त आवश्यक है।

भोजपुरी लोकसाहित्य के अन्तिम अंग में प्रकीर्ण साहित्य का स्थान आता है। किसी भी देश के बौद्धिक स्तर को समझने के लिए प्रकीर्ण साहित्य अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। डा० उदयनारायण तिवारी का मत है कि 'वास्तव में लोकोक्तियाँ अनुभूत ज्ञान की निधि हैं। शताब्दियों से किसी जाति की विचार-धारा किस ओर प्रवाहित हुई है, यदि इसका दिग्दर्शन करना हो तो उस जाति की लोकोक्तियों का अध्ययन आवश्यक है'।[1]

भोजपुरी प्रकीर्ण साहित्य के चार प्रमुख भाग हैं। प्रथम लोकोक्तियाँ, द्वितीय मुहावरे, तृतीय पहेलियाँ, तथा चतुर्थ सूक्तियाँ।[2]

लोकोक्तियों में सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था का सुन्दर चित्र रहता है। उदाहरण स्वरूपः—

'बाभनकुकुर नाऊ, आपन जाति देखि घिराऊ,
'चारि कवर-भीतर तब देवता पित्तर'
'तीन कनौजिया तेरह चूल्हा'
'नउवा के नव बुद्धि, ठकुरवा के एक्के'

इस प्रकार ऐतिहासिक एवं राजनीतिक अवस्था की द्योतक अनेक लोकोक्तियाँ भोजपुरी में संरक्षित हैं।

मुहावरों का व्यवहार दैनिक जीवन में प्रायः सभी करते हैं। कुछ भोजपुरी मुहावरों का उदाहरण इस प्रकार है—

खटराग बढ़ावल—	अर्थात् पाखंड बढ़ाना।
खोंख खखार के बोलल—	स्पष्टवादी होना।
गोंधन कुटाइल—	खूब पीटा जाना।

१—डा० उदयनारायण तिवारी—'हिन्दुस्तानी' अप्रैल १९३९ पृ० १५९-२१६

२—डा० कृष्णदेव उपाध्याय—'भो० लो० का अध्ययन' पृ० ५४०-७०

इसी प्रकार धर्म, इतिहास, शकुनविचार, तथा खेती इत्यादि सम्बन्धी अनेक मुहावरे भोजपुरी में भरे पड़े हैं।

नगरों तथा गांवों में पहेलियों का प्रचार समान रूप से है। इन्हें 'बुझौवल' भी कहते हैं। भोजपुरी में पहेलियों का भंडार विशाल है। इनमें परिहास की प्रवृत्ति प्रधान रूप से पाई जाती है। उदाहरण के लिए कुछ पहेलियाँ इस प्रकार हैं—

'हुती मुकी गाजी मियाँ, हुतवत पोंछि,
इहे जाले गाजी मियां, धरिहे पोंछि,। उत्तर—सुई तागा

'अकाश गइले चिरई, पाताल मोर बच्चा,
हुचुबक मारे चिरई पियाव मोर बच्चा? उत्तर—ढेंकुल

भोजपुरी पहेलियों में गणित के प्रश्न, उपदेश तथा पौराणिक कथा का भी उल्लेख मिलता है।

पहेलियों के पश्चात् सूक्तियों का स्थान आता है। सूक्तियों में खेत बोने का उचित समय, वर्षा विज्ञान, जोताई बोआई, फसल के रोग तथा शरीर और स्वास्थ्य के संबंध में वर्णन रहता है। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार है:—

भोजन संबंधी— खिचड़ी के चार यार,
दही पापड़ घीव अचार।

वायु परीक्षा— जब जेठ चले पुरवाई,
तब सावन धूरि उड़ाई,

वर्षा विज्ञान— जेठ मास जो तपै निरासा,
तब जानो बरखा के आसा।

जोताई— 'तीन कियारी तेरह गोंड़, तब देखो ऊखी के पोर,

इसी प्रकार से अन्य उपर्युक्त विषयों पर भोजपुरी में सूक्तियाँ मिलती हैं। इनका विशद् अध्ययन अत्यन्त रोचक है।

भोजपुरी लोकसाहित्य के अध्ययन का अभी श्री गणेश ही हुआ है। भोजपुरी लोकगीतों तथा लोकगाथाओं में अवश्य कार्य हुआ है परन्तु अभी अन्य अंगों का अध्ययन नहीं हो पाया है। वास्तव में भोजपुरी लोकसाहित्य के प्रत्येक अंग पर अलग से व्यवस्थित अध्ययन की आवश्यकता है। भोजपुरी लोकगाथाओं का प्रस्तुत अध्ययन तथा डा. कृष्णदेव उपध्याय द्वारा 'भोजपुरी लोकसाहित्य

का अध्ययन' के अतिरिक्त भोजपुरी लोककथाओं तथा प्रकीर्ण साहित्य पर भी अध्ययन प्रारंभ होना चाहिए।

वस्तुतः भारतवर्ष में लोकसाहित्य का अध्ययन अभी प्रथम चरण में ही है। अनेक विद्वान् एवं उत्सुक विद्यार्थी इस ओर अग्रसर हो रहे हैं, यह लोकसाहित्य का सौभाग्य है। विश्वास है कि निकट भविष्य में लोक-साहित्य का अध्ययन अपनी चरम-स्थिति पर पहुँच जायगा।

अध्याय १

लोकगाथा

नामकरण—भारतीय आर्य-भाषाओं में उपलब्ध कथात्मक गीतों के लिए कोई एक निश्चित संज्ञा नहीं प्राप्त होती। यही कारण है कि विभिन्न भाषाओं में इनके भिन्न-भिन्न नाम मिलते हैं। महाराष्ट्र में इन्हें 'पंवाड़ा' कहते हैं। यहाँ 'शिवा जी' तथा 'ताना जी' के पंवाड़े अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। गुजरात में इस प्रकार के गीतों के लिए 'कथागीतों'[१] नाम प्रयुक्त होता है। राजस्थानी लोकगीत' के लेखक श्री सूर्यकरणपारीक ने इन्हें 'गीत-कथा'[२] नाम से अभिहित किया है। समस्त उत्तरीभारत में लम्बे कथानक वाले गीतों के लिये निश्चित नाम नहीं दिया गया है। यहाँ गीतों में वर्णित प्रमुख चरित्रों के नाम से ही उनका नामकरण किया जाता है। उदाहरण के लिए, बंगाल में राजा गोपीचन्द के गीत को 'गोपीचन्द्रेर गान' कहा जाता है। पंजाब में 'हीररांझा' तथा 'सोनी-महीवाल' से ही कथात्मक गीतों का बोध होता है। भोजपुरी प्रदेश में 'कुंवरसिंह', 'लोरिकी', 'विजयमल' तथा 'आल्हा' का नाम लेने से इनसे सम्बन्धित गीतों का ही भाव स्पष्ट होता है। जब कोई व्यक्ति कहता है, 'आल्हा सुनाओ', तो इसका अर्थ यही होता है कि 'आल्हा का गीत सुनाओ'। श्री जी० ए० ग्रियर्सन ने इस प्रकार के गीतों को 'पापुलर सांग'[३] कहा है, परन्तु यह नाम संतोषजनक नहीं प्रतीत होता। लोकप्रिय गीत तो अन्य भी होते हैं। इनमें प्रचलित लोकगीतों (फोक सांग्स) का भी समावेश हो जाता है। अतएव सर्व प्रथम हमारे सम्मुख नामकरण की समस्या उपस्थित होती है।

कथात्मक गीतों अथवा वर्णनात्मक गीतों के लिए भारतीय विद्वानों ने तीन नाम प्रस्तुत किए हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। ये तीन नाम हैं, पंवाड़ा, कथागीत, तथा गीतकथा। 'पंवाड़ा' शब्द का प्रयोग उत्तरीभारत

१—श्री झवेरचन्द मेघाणी—लोकसाहित्य, पृ० ५०

२—श्री सूर्यकरण पारीक—राजस्थानी लोकगीत, पृ० ७८

३—श्री जी० ए० ग्रियर्सन—इंडियन एंटीक्वेरी—वाल १५, १८८५ ई०, पृ० २०७

में बहुत कम होता है। मराठी भाषा में ही यह अधिक प्रचलित है। 'कथागीत' तथा 'गीतकथा' शब्द वस्तुतः एक ही है। इन शब्दों में अनुवाद की स्पष्ट गन्ध आती है। निश्चित रूप से ये अंग्रेजी के 'बैलेड' शब्द के भावानुवाद हैं। अंग्रेजी में कथात्मक गीतों के लिए 'बैलेड' नाम प्रयुक्त होता है। 'कथागीत' अथवा 'गीतकथा' शब्द प्रयासपूर्वक निर्मित प्रतीत होते हैं तथा इनमें लोक-भावना का भी समावेश नहीं होता है।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपने प्रबन्ध (थीसिस) 'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन' में भोजपुरी के कथात्मक गीतों पर विचार करते हुए इन गीतों को 'लोकगाथा'[१] नाम से अभिहित किया है। यह नाम वास्तव में सार्थक प्रतीत होता है। प्रथम, यह अनुवाद से परे है, द्वितीय, इसमें लोक-भावना का पूर्ण समावेश है और तृतीय 'लोकगाथा' शब्द भारतीय जीवन और परंपरा के निकट पड़ता है। 'गाथा' शब्द का प्रचार उत्तरी भारत में बहुत होता है। इसमें कथात्मकता एवं गेयता—दोनों का समावेश है, साथ ही यह प्राचीन एवं परंपरानुगत शब्द भी है। संस्कृत के 'अमर कोष' के अनुसार 'गाथा' शब्द का अर्थ है 'पितरगण, परलोक और ऐसे ही अन्यान्य विषयों से सम्बद्ध अनुश्रुतियों पर आधारित पद्य या गीत,[२]। विष्णु- पुराण[३] में भी 'गाथा' शब्द का उल्लेख है, जिससे उपर्युक्त अर्थ स्पष्ट होता है। 'गाथा सप्तशती' तथा 'गाथा नाराशंसी' से भी उपर्युक्त अर्थ की ही पुष्टि होती है।

भोजपुरी लोक जीवन में 'गाथा' शब्द समरस हो गया है। कभी-कभी व्यंग में स्त्री के रुदन को भी 'गाथा' कह दिया जाता है। उदाहरण के लिए, 'का रोरो आपन गाथा सुनावतारू'। वैसे भी स्वाभाविक रूप में 'गाथा' शब्द का प्रयोग होता है। यदि कोई व्यक्ति आप बीती घटना सुनाता है तो उसे 'गाथा गाना' कहते हैं, जैसे 'बइठि के आपन गाथा सुनावतारे।'

यहाँ पर एक तथ्य का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि भोजपुरी प्रदेश में भी मराठी के 'पंवाड़ा' शब्द के समान भोजपुरी—'पंवारा' शब्द का प्रचलन है। परन्तु यह शब्द पंवरिया नामक विशेष जाति से सम्बन्ध रखती है। पंवरिया लोग 'भांड़' अथवा 'जनखों' की जाति के अन्तर्गत आते हैं। पुत्र-जन्म

१—डा० कृष्णदेव उपाध्याय 'भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन', पृ०, ४९२

२—अमरकोष

३—विष्णु-पुराण, अंश ३, अंक ६.

तथा विवाह के अवसर पर अपने यजमान के यहां पहुँचकर पंवारा गाते हैं। ये लोग सोहर, झूमर तथा राजा पुरुषोत्तम के गीत गाते है। गीत गाते समय ये नाचते हैं तथा तुरही (एक सांरगी विशेष), ढोलक और घंटी भी बजाते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भोजपुरी 'पंवारा' शब्द एक विशेष जाति से ही सम्बन्ध रखता है। 'पंवारा' शब्द की व्युत्पत्ति अभी तक संदिग्ध है। भोजपुरी के कथात्मक एवं लोकप्रिय गीतों के लिए 'पंवारा' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। वस्तुतः यह एक विशेष जाति-सम्बन्धी शब्द है।

नामकरण की समस्या पर विचार करते हुए हमें अंग्रेजी की तत्संबंधी सामग्री पर भी विचार करना है। लोक-साहित्य के अध्ययन में भारतीय विद्वानों ने अंग्रेजी के लोक-साहित्य का विशेष आश्रय लिया है। अंग्रेजी साहित्य के विद्वानों ने गत शताब्दी में ही इस विषय पर विचार करना आरंभ कर दिया था। उन लोगों द्वारा निरूपित लोक-साहित्य संबंधी सिद्धान्तों में पर्याप्त व्यापकता है।

अंग्रेजी में कथात्मक गीतों को 'बैलेड' कहते हैं। 'बैलेड' शब्द लैटिन भाषा के 'बेलारे' शब्द से निकला है[1]। 'बेलारे' का अर्थ है नृत्य करना। स्पष्ट ही प्रारंभ में नृत्य के सहयोग से गाए जाने वाले गीत को ही 'बैलेड' कहा जाता था। परंतु कालान्तर में नर्त्तन वाला अंश गौण और न्यून होता गया और मध्ययुग में तो इसका पूर्ण वहिष्कार हो गया। अब केवल कथात्मक गीतों को ही 'बैलेड' कहा जाने लगा। आगे चलकर अंग्रेजी साहित्यकार 'बैलेडों' की ओर इतने आकृष्ट हुए कि महाकवि स्कॉट, शैले, वर्ड्सवर्थ, कोलरिज तथा स्विनबर्न इत्यादि कवियों ने प्रचलित 'बैलेडों' के आधार पर अनेक रचनाएं कीं।

अन्य पाश्चात्य देशों में भी 'बैलेड' के उपर्युक्त अर्थ को ही लेकर वहाँ की भाषा के अनुरूप नाम दिया गया है[2]। फ्रांस में 'बैलेड' नाम ही प्रयुक्त होता है। वैसे वहाँ के बैलेडों और लोकप्रिय गीतों को 'चांसास पापुलेरी' के सामान्य नाम से भी पुकारा जाता है। जर्मनी में बैलेड को 'व्होक ग्लाइडर' कहा जाता है, परन्तु वहाँ भी 'बैलेड' नाम प्रचलित है। डेनमार्क में बैलेड को 'फोकेवाइजर' तथा स्पेन में 'रोमैनकेरो कहा जाता है।

ऊपर की अन्वीक्षा से स्पष्ट है कि 'लोकगाथा' एवं 'बैलेड' शब्द समानार्थक हैं। अतः आगे 'बैलेड' के लिये 'लोकगाथा' शब्द प्रयुक्त होगा।

१—फ्रैंक सिजविक—'ओल्ड बलेड्स', पृ० १

२—इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना—वाल० ३—बैलेड—लसीपौंड—पृ० ६४

लोकगाथा की परिभाषा—वैसे तो विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से ही लोकगाथा की परिभाषा की है, किन्तु उनमें कुछ सामान्य तत्त्व भिन्न शब्दावलियों में स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। इन सामान्य तत्त्वों के निर्धारण के लिए यहाँ कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाओं का उद्धरण और विश्लेषण आवश्यक है।

श्री जी० एल० किटरेज के अनुसार लोकगाथा कथात्मक गीत अथवा गीतकथा है[१]। इस मत में लोक गाथा के दो तत्वों—गीत और कथा या दो लक्षणों—गीतात्मकता और कथात्मकता का स्पष्ट निर्देश है। श्री फैंक सिजविक ने लोकगाथा को वह सरल वर्णनात्मक गीत माना है जो लोकमात्र की संपत्ति होती है और जिसका प्रसार मौखिक रूप से होता है[२]। सिजविक के मत में लोकगाथाओं की सरल निरलंकारिता, कथात्मकता, गीतात्मकता, तथा व्यक्ति-भावना का अभाव और मौखिकता की ओर निर्देश किया गया है। वस्तुतः ये लोकगाथाओं की अनिवार्य विशेषताएं हैं, जिनपर आगे विचार किया जाएगा। प्रो० एफ० बी० गुमेर का कथन है : 'लोकगाथा गाने के लिए रची गई एक ऐसी कविता है, जो सामग्री की दृष्टि से सर्वथा व्यक्तिशून्य हो और संभवतः उद्भव की दृष्टि से सामुदायिक नृत्यों से संबद्ध हो किन्तु जिसमें मौखिक परंपरा प्रधान हो गई हो। । इसके गाने वाले साहित्यिक प्रभावों से मुक्त होते हैं[३]।' इस परिभाषा के प्रमुख तत्व सिजविक के मत में निहित हैं।

---

१ जी० एल० किटरेज—एफ० जे० चाइल्ड कृत—इंगलिश ऐंड स्काटिश पापुलर बैलेड्स की भूमिका, पृ० ११

"ए बैलेड इज् ए सांग दैट टेल्स ए स्टोरी—टुटेक दी अदर प्वाइन्ट आफ व्यू—
ए स्टोरी टोल्ड इन सांग।"

२ फैंक सिजविक—ओल्ड बैलेड्स—भूमिका भाग, पृ० ३

"सिम्पुल नैरेटिव सांग्स दैट बिलांग टु दी पीपुल ऐंड आर हैन्डेड आन बाई वर्ड आफ माउथ।"

३ एफ० बी० गुमेर—ए हैन्ड बुक आफ लिटरेचर—बैलेड—पृ० ३७

"ए पोएम मेन्ट फार सिंगिंग, क्वाइट इम्पर्सनल इन मैटीरियल, प्राबेब्ली कनेक्टेड इन इट्स ओरिजिन विथ दी कम्यूनल डान्स, बट सबमिटेड टु ए प्रोसेस आफ ओरल ट्रडिशन एमन्ग पीपुल हू आर फ्री फ्राम लिटररी इन्फ्लूएन्सेस ऐंड फेयरली मोनोगेनस इन कैरेक्टर—"

इसमें लोकगाथाओं की उत्पत्ति और उसके ऐतिहासिक विकास के विषय में भी एक तथ्य निहित है। प्रारम्भ में नृत्य की अनिवार्य महत्ता रहती है और तदनन्तर मौखिक परंपरा का जन्म होता है। डा० मरे के अनुसार लोकगाथा छोटे पदों में रचित एक ऐसी प्राणमयी सरल कविता है जिसमें कोई लोकप्रिय कथा बहुत ही विशद रीति से कही गई हो[१]।

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में लोकगाथा को ऐसी पद्यशैली बताया गया है जिसका रचयिता अज्ञात हो, जिसमें साधारण उपाख्यान का वर्णन हो और जो सरल मौखिक परंपरा के लिए उपयुक्त तथा ललित कला की सूक्ष्मताओं से रहित हो[२]। इस परिभाषा में रचयिता का अज्ञात होना व्यक्ति-भावना की शून्यता का द्योतक है। 'इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना' में लूसी पौंड के अनुसार लोकगाथा एक साधारण कथात्मक गीत है जिसकी उत्पत्ति संदिग्ध होती है[३]।

इसी प्रकार अन्य अनेक विद्वानों ने लोकगाथा की परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। सभी ने उपर्युक्त परिभाषाओं को अपनी भाषा में दुहराया है। हैज़लिट ने लोकगाथा को गीतकथा बताया है। सिज़विक ने पुनः इसे एक अमूर्त्त पदार्थ कहा है। हैन्डरसन, मार्टिनेन्गो तथा लूसी पौंड आदि विद्वानों ने उपर्युक्त मतों का ही प्रतिपादन किया है।

उपर्युक्त परिभाषाओं पर विचार करने से हमें यह ज्ञात होता है कि सभी विद्वानों ने एक ही तथ्य को अनेक ढंगों से रखा है। किसी ने एक

१ डा० मरे—राबर्ट ग्रेब्स कृत—दि इंगलिश बैलेड, की भूमिका में पृ० ८
"ए सिम्पुल स्पिरिटेड पोएम इन शार्ट स्टान्जास इन व्हिच सम पापुलर स्टोरी इज़ ग्रेफिकली टोल्ड।"

२ इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका—बैलेड—पृ० ९९३
'दि नेम गिभेन टु ए स्टाइल आफ वर्स आफ अन्नोन आथरशिप डीलिंग विथ एपिसोड आर सिम्पुल मोटिव रैदर दैन सस्टेन्ड थीम रिटेन इन ए स्टैन्ज़ाइक फार्म मोर आर लेस फिक्स्ड ऐंड सुटेबुल फार दी ओरल ट्रांसमिशन ऐंड ट्रीटमेंट शोइंग लिटिल आर नथिंग आफ फाइननेस आफ डेलिबरेट आर्ट"।

३ इंसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना—वाल३—बैलेड—९४
"ए बैलेड इज़ ए सिम्पुल नैरेटिव लिरिक, ए सांग आफ नोन आर अननोन ओरिजिन दैट टेल्स ए स्टोरी"

दूसरे के प्रति मतभेद नहीं प्रगट किया है। अतएव लोकगाथा की परिभाषाओं का यह निष्कर्ष निकलता है कि लोकगाथाओं में गेयता एवं कथानक का रहना अनिवार्य है। साथ ही इनके रचयिता अज्ञात होते हैं अथवा यों कहा जाय कि लोकगाथाएं व्यक्तित्वहीन होती हैं। ये संपूर्ण समाज की धरोहर होती हैं तथा इनका प्रचार जनसाधारण से होता है। इनमें काव्यकला के गुण और सौन्दर्य का नितान्त अभाव रहता है।

लोकगाथा की उत्पत्ति—लोकगाथा की उत्पत्ति के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने अनुमान प्रस्तुत किए हैं, परंतु किसी ने प्रामाणिक खोज नहीं उपस्थित किया है। सभी ने कल्पना और अनुमान से काम लिया है। वास्तव में लोकगाथाओं की उत्पत्ति, एक अत्यन्त जटिल विषय है। कठिनाई का सबसे प्रथम और प्रमुख कारण यह है कि लोकगाथाओं की कहीं भी हस्तलिखित प्रति नहीं मिलती। यह अनुमान है कि मानव-सभ्यता के विकास के साथ-साथ नृत्यों, गीतों एवं गाथाओं का विकास हुआ होगा। उस समय लेखनकला का विकास नहीं हुआ था, अतएव हमें मौखिक परंपरा का ही इतिहास प्राप्त होता है। मौखिक परंपरा के द्वारा ही लोकगाथाओं ने लोकमत की अभिव्यंजना की है। मौखिक परंपरा के कारण ही लोकगाथाएं एक रहस्यात्मक वस्तु बन गई हैं। महाकवि गेटे ने एक स्थान पर लिखा है, "जातीय गीतों एवं लोकगाथाओं की विशेष महत्ता यह है कि उन्हें सीधे प्रकृति से नव्यप्रेरणा प्राप्त होती है। वे उन्मेषित नहीं की जातीं वरन् स्वतः एक रहस-स्रोत से प्रवाहित होती हैं।"[१] 'इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना' में लूसी पौंड ने इसे लोकहृदय से रहस्यात्मक रीति से प्रवहमान बताया है।[२]

लोकगाथा के उद्भव के ऐतिहासिक अध्ययन में जो दूसरी कठिनाई है, उसका एक मनोवैज्ञानिक कारण है। समाज का उच्चस्तर सामान्य लोकहृदय की निश्छल और निरलंकार अभिव्यंजना को सदा से असंस्कृत, कलात्मकता से

---

१. गेटे—"दी स्पेशल वैल्यू आफ व्हाट वी काल नेशनल साङ्ग ऐंड बैलेड्स इज़ दैट देयर इन्सपिरेशन कम्स फ्रेश फ्राम नेचर, दे आर नेवर गाट अप, दे फ्लो फ्राम ए रेअर स्प्रिंग" झवेरचन्द मेघाणी—लोक साहित्यनुं समालोचन।

२. इंसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना-बैलेड—स्प्रिंगिंग मिस्टीरियसली फ्राम दी हार्ट आफ दी पीपुल्"—पृ० ९४

च्युत तथा गंवार मानता था। इस विकृत आदर्शवाद के फलस्वरूप शताब्दियों से मौखिक परंपरा में रक्षित लोकगाथाओं की ओर हमारी दृष्टि नहीं गई। भारतवर्ष में परिस्थिति कुछ दूसरी थी। हमारी धारणा है कि भारतीय साहित्यकार एवं मनीषी लोकहृदय को तो भली-भाँति समझते थे, परंतु वे देववाणी संस्कृत अथवा राजभाषा को ही उत्तरोत्तर परिष्कृत एवं परिमार्जित करने में इतने अधिक व्यस्त थे कि उन्हें दूसरी ओर दृष्टि फेरने का समय ही न मिला। पाश्चात्य देशों में अवश्य ही इसकी उपेक्षा हुई है। एक फ्रेंच विद्वान् का कथन है कि मौखिक साहित्य आधुनिक पाण्डित्य और शिक्षा का मित्र नहीं होता है। जब एक राष्ट्र में शिक्षा का प्रसार होने लगता है तो वह अपने मौखिक साहित्य का अनादर करने लगता है। अपने मौखिक साहित्य को अपनाने में लोग लज्जा का अनुभव करते हैं और इस प्रकार प्रगतिवान संस्कृति आश्चर्यजनक ढंग से मौखिक साहित्य को नष्ट कर डालती है।[1] प्रो० गुमेर ने भी लिखा है कि प्रथमतः लोकगाथाओं को 'बौद्धिकता से बहिष्कृत (इंटेलेक्चुअल आउट-कास्ट्स)' समझा जाता था।[2]

ऐसी परिस्थिति में लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में विचार करना वास्तव में जटिल समस्या है। किं बहुना, यहाँ हम प्रथमतः यूरोपीय विद्वानों के मतों की परीक्षा करेंगे।

यूरप में लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में दो प्रधान मत हैं। प्रथम, वे विद्वान जो समस्त लोक (फोक) को ही लोकगाथाओं का रचयिता मानते हैं। इस मत के अगुआ जैकब ग्रिम है। द्वितीय, वे विद्वान् जो इस मत का प्रतिपादन करते हैं कि जिस प्रकार किसी कविता का रचयिता कवि होता है, उसी प्रकार लोकगाथा का रचयिता भी एक ही व्यक्ति है, परंतु ये विद्वान् भी व्यक्ति की व्यक्तित्व हीनता एवं लोकगाथाओं पर सम्पूर्ण समाज के अधिकार को स्वीकार करते हैं। इस मत के मानने वालों में प्रमुख श्लेगल, चाइल्ड, किटरेज तथा विशपपर्सी इत्यादि विद्वान् हैं। आधुनिक समय में द्वितीय मत ही सर्वमान्य हो चला है। परन्तु विस्तृत विवेचन के लिए हमें उपर्युक्त दो प्रधान मतों को और भी सूक्ष्म-दृष्टि से देखना पड़ेगा। इस दृष्टि से हमारे सम्मुख छः प्रधान मत उपस्थित होते हैं।

---

१. एफ० जे० चाइल्ड— इं० ऐंड० स्का० पा० बै० भूमिका, भाग पृ० १२

२. एफ० बी० गुमेर—ओल्ड इंगलिश बैलेड्स, भूमिका, भाग पृ० ३९

१—जे० ग्रिम—लोक निर्मितवाद
२—एफ० बी० गुमेर—समुदायवाद
३—स्तेन्थल—जातिवाद
४—एफ० जे० चाइल्ड—व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद
५—विशप पर्सी—चारणवाद
६—ए० डब्लू० श्लेगल—व्यक्तिवाद

१—ग्रिम महोदय एक प्रसिद्ध जर्मन भाषा शास्त्री थे। लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में अपना मत प्रगट करते हुए उन्होंने कहा है कि 'किसी भी देश के समस्त निवासी (फोक) ही लोकगाथाओं की सामूहिक रचना करते हैं।[१] उनका विचार है कि लोकगाथा लोक-जीवन की अभिव्यक्ति है। आदिम अवस्था से ही प्रत्येक व्यक्ति सामूहिक रूप से नृत्य, संगीत, गीतों एवं लोकगाथाओं की रचना में लगे हुए हैं। जैसे किसी व्यक्ति-विशेष के हृदय में हर्ष-विषाद, सुख-दुःख की भावना जागृत होती है, उसी प्रकार किसी समूह के लोग भी समष्टि रूप में इसी भावना का अनुभव करते हैं। उत्सवों, मेलों तथा अन्य सामाजिक अवसरों पर एकत्र होकर लोगों ने लोकगाथाओं की रचना की होगी। ग्रिम का आशय यह है कि सामूहिक आनन्द के उच्छ्वास में किसी आनन्ददायी विगत घटना अथवा विजय इत्यादि का वर्णन प्रस्फुटित हो उठता है। धीरे-धीरे उक्त वर्णन एक वृहत् लोकगाथा के रूप में निर्मित हो जाता है। इसीलिये ग्रिम ने बारबार कहा है कि लोक (फोक) ही लोकगाथाओं का रचयिता है।[२]

ग्रिम के सिद्धान्त की आलोचना का सबसे प्रमुख तर्क यह है कि लोकगाथाओं की रचना के लिये जब समूह एकत्र हुआ तो उस समय गाथा की पंक्ति किसने प्रारम्भ की? इस प्रथम भावना का उद्भव किस प्रकार हुआ? कौन वह व्यक्ति था जो अगुआ बना? इस प्रश्न का ग्रिम के पास कोई उत्तर नहीं है। कालान्तर में ग्रिम के इस 'लोक निर्मितवाद' को अनेक विद्वानों ने हास्यास्पद कहा[३]। ग्रिम के सिद्धान्त की चाहे जितनी भी

१—एफ० जे० चाइल्ड—इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स, पृ० १८
' डांस वोक डाचटेट '

२—इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका—बैलेड—पृ० ९९४
"फोक इज् इट्स आथर"

३—श्री जी० एल० किटरेज—इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स की भूमिका, पृ० १८

कड़ी आलोचना हुई हो, परन्तु एक बात निश्चित है कि ग्रिम ही वह प्रथम व्यक्ति था जिसने लोक (फोक) के महत्व को स्वीकार किया। यहाँ तक कि उसने लोक को ही लोकगाथाओं का रचयिता मान लिया। उसका सबसे बड़ा कारण यही था कि लोकगाथायें कभी भी किसी व्यक्ति की संपत्ति नही रहीं। अतएव लोक को महत्व देना स्वाभाविक ही था।

(२) श्री एफ० बी० गुमेर का समुदायवाद (कम्यूनल) का सिद्धान्त बहुत सीमातक ग्रिम के सिद्धान्त के अन्तर्गत ही आता है। अन्तर केवल यही है कि ग्रिम ने अत्यन्त व्यापक दृष्टिकोण रखकर लोकगाथाओं की उत्पत्ति पर विचार किया था, परन्तु गुमेर ने एक संकुचित वृत्त में ग्रिम के सिद्धान्त को मान्यता दी है। गुमेर को लोक (फोक) शब्द बहुत बड़ा प्रतीत हुआ।[१] उन्होंने 'लोक' से संकुचित होकर एक विशिष्ट समुदाय को ही अपना केन्द्र माना। साथ ही गुमेर ने व्यक्ति के महत्व को भी उसी सीमा तक स्वीकार किया, जहाँ तक उसे कटु आलोचना की आँच न लग सके। वे यह स्वीकार करते है कि समुदाय में एकत्र प्रत्येक व्यक्ति ने लोकगाथा की रचना में सहयोग दिया है; परन्तु वह लोकगाथा व्यक्ति की संपत्ति नहीं रह गयी, अपितु सम्पूर्ण समुदाय की संपत्ति बन गई।

गुमेर का आशय है कि एक विशिष्ट समुदाय के लोग एक भावना से प्रेरित हो कर जब एकत्र होते हैं, उसी समय लोकगाथाओं की रचना प्रारम्भ होती है। उनके एकत्र होने के कारण अनेक हो सकते हैं।[२] सामुदायिक स्वार्थ की प्रेरणा से या किसी विजय या विशेष घटना आदि के उपलक्ष में एकत्र होकर समुदाय के सभी व्यक्ति नृत्य-गान में भाग लेते हैं और प्रासंगिक घटनाओं को गा-गाकर वर्णन करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग से लोकगाथा का निर्माण होता है।

हमारे देश में भी इसी प्रकार गीतों एवं गाथाओं का निर्माण होता है। विशेष रूप से कजली इत्यादि के गीत तो इसी प्रकार बनते हैं। वर्षा ऋतु से उन्मत्त रसिकों का दल आ जमता है। एक व्यक्ति अथवा एक दल गीत की एक कड़ी कहता है तो दूसरा उसके उत्तर में दूसरी कड़ी जोड़ देता है। इस

१—वही, पृ० ६८।

२—इं० एण्ड स्का० पा० बैलेड्स—भूमिका, पृ० १६।

एफ० बी० गुमेर तथा 'ओल्ड इंगलिश बैलेड्स" पृ० ३५।

इं० ब्रि० बैलेड्स, पृ० ६६।

प्रकार यह क्रम घंटों चलता रहता है और अन्त में एक गीत अथवा गाथा का निर्माण हो जाता है।

(३) ग्रिम तथा गुमेर से ही मिलता-जुलता स्तेन्थल का 'जातिवाद' का सिद्धान्त है। अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में स्तेन्थल ग्रिम तथा गुमर से भी आगे बढ़ गये हैं। वे दृढ़ता से कहते हैं कि किसी भी देश की समस्त जाति (रेस) ही लोकगाथाओं की रचना करती है।[१] उनके विचार से लोकगाथाएं किसी जाति की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति की द्योतक हैं। स्तेन्थल का कथन है कि लोक का निर्माण केवल समान कुल अथवा समान भाषा पर ही आधारित नहीं है, अपितु समस्त जाति के व्यक्तियों में पारस्परिक एकात्मकता की अंतःप्रवृत्ति जागृत होने पर समस्त जाति प्रथम भाषा में और फिर कला में तथा अन्त में धार्मिक रीति-रिवाजों में अपना साक्षात्कार करती हैं। उनके विचार से 'व्यक्ति' तो उन्नत संस्कृति एवं सभ्यता की एक निश्चित इकाई है, परन्तु प्रारंभ में व्यक्ति का कुछ भी मूल्य न था। समस्त जाति ही प्रधान थी। अतएव लोकगीतों एवं लोकगाथाओं की उत्पत्ति एक जाति के मिश्रित प्रयाग के परिणाम से ही होता है।[२]

स्तेन्थल के जातिवाद के सिद्धान्त में ग्रिम एवं गुमेर के सिद्धान्तों की भांति सत्य की मात्रा अवश्य है; परन्तु यह मत किसी छोटे द्वीप अथवा देश के ऊपर ही लागू हो सकता है। अनेक देशों में बहुत-सी जातियाँ हैं जिनके संपूर्ण सदस्य एकत्र होकर उत्सव आदि मनाते हैं। ऐसे अवसरों पर वे गीतों एवं गाथाओं की रचना करते हैं। किन्तु किसी विशाल देश अथवा महाद्वीप के लिए यह सिद्धान्त छोटा पड़ता है तथा सत्य से दूर चला जाता है।

व्यापक दृष्टि से देखने पर उपर्युक्त तीनों मत एक ही श्रेणी में आते हैं। वस्तुतः तीनों मत एक दूसरे के पूरक हैं। इनके अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने व्यक्ति की महत्ता को ध्यान में रखकर लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में विचार किया है।

(४) लोकगाथाओं के प्रसिद्ध आचार्य श्री एफ० जे० चाइल्ड ने अनवरत परिश्रम से इंग्लैंड तथा स्काटलैंड की लोकगाथाओं को एकत्र करके उनकी उत्पत्ति के विषय में अपना मत प्रस्तुत किया है। उस मत के प्रतिपादन में उनका कथन है कि लोकगाथाओं में उसके रचयिता के व्यक्तित्व का सर्वथा

---

१ एफ० बी० गुमेर—ओल्ड इंगलिश बैलेड्स भूमिका, भाग, पृ० ३६।
२ वही, पृ० ३७।

अभाव रहता है। उसकी रचना में उसकी वाणी अवश्य मिलती है, परन्तु उसका व्यक्ति उसमें बिल्कुल नहीं रहता। वह एक वाणी है, व्यक्ति नहीं।[१] गाथा का प्रथम गायक लोकगाथा की सृष्टि कर जनता के हाथों में इन्हें समर्पित कर स्वयं अन्तर्हित हो जाता है। मौखिक परंपरा के कारण उसकी वाणी में अन्य व्यक्तियों एवं समूहों की वाणी भी मिश्रित होती जाती है। यहाँ तक कि प्रथम रचना का रंग रूप ही बदल जाता है। उसमें नये अंश जोड़ दिये जाते हैं तथा पुराने छोड़ भी दिये जाते हैं।[२] घटनाओं में भी परिवर्तन कर दिया जाता है। इस प्रकार वह रचना व्यक्ति की न होकर सम्पूर्ण समाज की हो जाती है। परन्तु इसके साथ ही हम यह कदापि नहीं कह सकते कि लोकगाथा की रचना सम्पूर्ण समाज ने की है। इसलिये चाइल्ड के इस मत को हम 'व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद' कह सकते हैं। इस मत का अनुमोदन उनकी पुस्तक के भूमिका-लेखक श्री जी० एल० किटरेज ने भी किया है। आधुनिक समय में यह मत सर्वमान्य हो चला है।

भारतीय लोकगाथाओं पर यही मत प्रतिपादित होता है। विशेष रूप से भोजपुरी लोकगाथाओं के विषय में तो हमारी धारणा यही है कि प्रत्येक लोकगाथा का रचयिता कोई न कोई व्यक्ति अवश्य था। शताब्दियों से मौखिक परंपरा में रहने के कारण उसमें अनेक परिवर्तन आ गये हैं। परन्तु आज भी हमें यही प्रतीत होता है कि इसका रचयिता कोई न कोई अवश्य रहा होगा। आज का गायक जब इन गाथाओं को सुनाता है तो उसमें उस गायक का व्यक्तित्व बोलता है क्योंकि वह उसमें कुछ नवीनता उपस्थित करता है। इस प्रकार लोकगाथाओं की अक्षुण्ण धारा सदैव प्रवाहित रहती है। उसका कभी अन्त नहीं होता।[३]

(५) अठारहवीं शताब्दी में इंगलैंड में विशप पर्सी ने चारण साहित्य के उद्धार का युगान्तरकारी कार्य किया। उन्होंनें बड़े परिश्रम से इंगलैंड के चारण-काव्य को एकत्र कर 'फोलियो मैनुस्क्रिप्ट' नामक ग्रन्थ का संपादन किया। उनका मत है कि गीतों तथा लोकगाथाओं के रचयिता चारण लोग होते थे।[४]

---

१ एफ० जे० चाइल्ड—इ० स्का० पापु बेलेड्स—भूमिका, पृ० २४।

२ वही, पृ० १७ तथा इ० ब्रि० 'बैलेड्स' पृ० ९९४-९५।

३ चाइल्ड इं० एण्ड० स्का० पा० बै०, भूमिका, पृ० १७।

४ इं० एण्ड० स्का० पा० बै०, भूमिका, पृ० २२।

महाकवि स्काँट तथा जोसेफ रिट्सन इत्यादि विद्वानों ने भी इसी मत को मान्यता दी है। चारण लोग प्राचीन काल में ढोल अथवा हार्प (एक विशेष प्रकार की सारंगी) पर गीत गाते हुये भिक्षा की याचना करते थे। वे विगत अथवा समसामयिक घटनाओं को अपने गीत का विषय बनाते थे। ऐसे गीतों को वहाँ 'मिन्स्ट्रेल बैलेड्' कहा जाता है। भारतवर्ष में भी चारणों का काव्य मिलता है। राजा परमार्दिदेवके दरबार में जगनिक चारण ही था जिसने 'आल्हखंड' की रचना की। पृथ्वीराज के दरबार में महाकवि चन्द-बरदाई चारण ही था। परन्तु भारतवर्ष में चारण अथवा भाट, भिक्षुओं की श्रेणी में नहीं आते थे। वे किसी न किसी राजा के आश्रय में रहा करते थे। अधिकांश रूप में उनके रचनाओं की प्राचीन प्रतिलिपि भी मिलती है। अतएव इंगलैंड और भारत के चारणों में बहुत अन्तर है।

उन्नीसवीं शताब्दी में चारणों से लोकगाथाओं की उत्पत्ति के मत की तीव्र आलोचना हुई। चाइल्ड ने साधारण ग्रामीणों से अनेक लोकगाथाएँ एकत्र की और अपने व्यक्तिगत अनुभव को प्रस्तुत करते हुए इस मत का विरोध किया।[१] किटरेज तो लोकगाथा और चारण काव्य को सर्वथा भिन्न वस्तु मानते हैं। उनका कथन है कि लोकगाथाओं का इतिहास अति प्राचीन है और चारण काव्य एक मध्ययुगीन साहित्य है। यह अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि चारण लोगों ने लोकगाथाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाया। इसके अतिरिक्त चारण काव्य और लोकगाथाओं में कोई भी संबंध नहीं है।[२]

भारतवर्ष में भी चारण काव्य एवं लोकगाथाओं में कोई विशेष संबंध नहीं रहा है। लोकगाथाओं की परंपरा एक सामाजिक परंपरा है और चारणों की परंपरा एक व्यक्तिगत परंपरा है। लोकगाथा समाज की जिह्वा पर रहती है और चारण काव्य चारण के ही कंठ में। केवल जगनिक का 'आल्हखंड' इसका अपवाद है। स्वयं जगनिक एक चारण था, परन्तु 'आल्हखंड' उसकी रचना होते हुए भी आज व्यक्तित्वहीन होकर एक लोकप्रिय लोकगाथा बन गई है।

चारण-काव्य तथा लोकगाथाओं में विभिन्नता होते हुए भी सहसा यह मत हम नहीं निर्धारित कर सकते कि दोनों में लेशमात्र भी संबंध नहीं था। 'रासो' काव्यों के रचयिताओं ने लोकगाथाओं से अनेक सत्य ग्रहण किए हैं। प्राचीन कवियों ने जिस प्रकार मौखिक साहित्य से कथा सामग्री, कथानक रूढ़ि

---

१ एफ० जे० चाइल्ड—इं० ऐंड स्का० पा० बै०, भूमिका भाग, पृ० २३।
२ वही, पृ० २३ तथा एफ० बी० गुमेर—ओ० इ० बै०, पृ० ६०।

तथा छंद शैली को अपनाया है, उसी प्रकार चारणों ने भी प्रचलित लोकगाथाओं से सामग्री ली है। इसका स्पष्टीकरण हम आगे चल कर करेंगे।

(६) लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् ए० डब्ल्यू० श्लेगल का 'व्यक्तिवाद' एक अत्यन्त यथार्थ-वादी मत है। उन्होंने ग्रिम के सिद्धान्त को अतिआदर्शवादी एवं काल्पनिक बतलाया। उनका निश्चित मत है कि जिस प्रकार किसी काव्य का रचयिता कोई कवि होता है, ठीक उसी प्रकार लोकगाथाओं का रचयिता कोई न कोई व्यक्ति होता है।[१] अपने इस मत को पुष्ट करने के लिये उन्होंने एक उदाहरण भी उपस्थित किया है। किसी विशाल अट्टालिका के निर्माण में अनेक व्यक्तियों का सहयोग रहता है, परन्तु उनमें से किसी में भी भवन निर्माण की मूल कल्पना वर्तमान नहीं रहती है। वास्तव में उसके निर्माण में किसी एक कलाकार अथवा कारीगर का ही मस्तिष्क रहता है। उसी की अंत:प्रेरणा से वह भवन बन कर तैयार होता है। इसी प्रकार लोकगाथाओं की रचना के मूल में किसी एक व्यक्ति की उद्भावना रहती है। समुदाय उस निर्माण में सहयोग देता है और रचयिता प्रत्येक के सहयोग को अपनाकर लोकगाथा का गठन करता है। चतुर वास्तुकार की भांति हथौड़ी-छेनी से अनावश्यक अंग काट छाँट कर उसे एक सुन्दर रूप देता है। इस प्रकार श्लेगल लोकगाथा को लोक की संपत्ति अवश्य मानते हैं, परन्तु लोक की निर्मिति या रचना नहीं मानते।

वास्तव में श्लेगल का व्यक्तिवाद चाइल्ड के 'व्यक्तित्व हीन व्यक्तिवाद' तथा विशपर्सी के 'चारणवाद' के सिद्धान्त का पूरक है। श्लेगल इन तीनों में अत्यन्त प्रभावशाली एवं चरम सीमा के आलोचक हैं। उन्होंने व्यक्ति की महत्ता को सर्वप्रमुख माना है। लोकगाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इनका मत सर्वमान्य हो चला है।

भारतीय विद्वानों का ध्यान लोकगाथा, उसकी उत्पत्ति एवं विशेषताओं की ओर अभी तक नहीं गया है। कुछ विद्वानों ने प्राचीन भारतीय महाकाव्यों के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए यह अवश्य कहा है कि प्रचलित कथाओं और लोकगाथाओं के आधार पर महाकाव्यों का निर्माण हुआ है, परन्तु स्वयं लोकगाथाओं की सृष्टि कैसे हुई, इस विषय पर अधिक विचार नहीं हुआ। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने इस विषय पर थोड़ा विचार अवश्य

१—एफ० बी० गुमेर 'ओल्ड बैलेड्स' पृ० ५३ तथा इ० ब्रि० 'बैलेड्स' पृ० ६९४

किया, परन्तु कोई निश्चित मत प्रस्तुत नहीं किया है। उनके मत से "गीत द्रष्टा स्त्री-पुरुष दोनों है, परन्तु ये स्त्री-पुरुष ऐसे हैं जो कागज और कलम का उपयोग नहीं जानते हैं। यह संभव है कि एक गीत की रचना में बीसों वर्ष और सैकड़ों मस्तिष्क लगे हों।"[१] इस उद्धरण से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि त्रिपाठी जी का विचार ग्रिम के 'लोक निर्मितवाद' के अंतर्गत आ जाता है।

'भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन' में डा० कृष्णदेव उपाध्याय लोकगाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखते हैं, "हमारी धारणा सर्वदेशीय लोकगीतों अथवा गाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में यह है कि प्रत्येक गीत या गाथा का रचयिता मुख्यतः कोई न कोई व्यक्ति अवश्य है। साथ ही कुछ गीत या गाथा जन-समुदाय का भी प्रयास हो सकता है। लोकगाथाओं की परम्परा सदा से मौखिक रही है। अतः यह बहुत संभव है कि गाथाओं के रचयिताओं का नाम लुप्त हो गया हो।"[२] इस उद्धहरण से प्रतीत होता है कि उपाध्याय जी मुख्यतः श्लेगल के 'व्यक्तिवाद' से सहमत हैं किन्तु साथ ही गुमेर के 'समुदायवाद' को भी अस्वीकार नहीं करते।

लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में विविध विद्वानों के प्रतिपादित-सिद्धान्तों का अनुशीलन करने से हमें प्रमुख रूप से तीन तत्व मिलते हैं। प्रथम, लोकगाथायें मौखिक परंपरा की वस्तु हैं। द्वितीय, लोकगाथाएं संपूर्ण समाज की निधि हैं। तृतीय, लोकगाथायें यदि व्यक्तिगत रचनायें हैं तो उनमें व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण अभाव है। भोजपुरी लोकगाथाओं का अध्ययन करने से हमें यह ज्ञात होता है कि उपर्युक्त तीनों तत्वों का उनमें समावेश हुआ है। वास्तव में संसार के सभी देशों की लोकगाथाओं में उपर्युक्त तत्वों की अभिव्यक्ति हुई है। लोकगाथाओं पर लोक अथवा समाज के अधिकार को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता है, यद्यपि इधर अनेक व्यक्तियों ने इन लोकगाथाओं से अनुचित लाभ उठाया है। कुछ लोगों ने लोकगाथाओं को अपने नाम से प्रकाशित कराया है और उसमें स्वयं की भी रचनाएँ जोड़ दी हैं। बहुत से लोगों ने लोकगाथाओं का अनुकरण भी किया है। ऐसे व्यक्तियों को किटरेज ने 'गाइललेस कलेक्टर्स' कहा है[3]। परन्तु इतना होते हुये भी लोकगाथाओं के सहज

१—पं० रामनरेश त्रिपाठी 'ग्रामगीत' पृ० २१।

२—डा० कृष्णदेव उपाध्याय 'भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन' पृ० ४६७।

३—चाइल्ड—इं० एन्ड० स्का० पापु० बैलेड्स, भूमिका—किटरेज, पृ० २८।

स्वभाव को कोई नष्ट नहीं कर सका है। लोकगाथाओं में हमें एक बात निश्चित रूप से दिखलाई पड़ता है। लोकगाथाओं का विशेष विकास मध्ययुग अथवा अर्वाचीन युग में ही हुआ। शताब्दियों से उनकी परंपरा चलती रही और मध्य-युग में आकर उन्हें एक रूप मिला। इंगलैण्ड, स्काटलैण्ड तथा भारतवर्ष की लोकगाथाएँ उदाहरण के लिए ली जा सकती हैं। संपूर्ण समाज ने इनके विकास में सहयोग दिया और इस कारण ये सबकी संपति भी है और साथ ही किसी की भी नहीं। परन्तु इतना निश्चित है कि लोकगाथा की उत्पत्ति किसी एक व्यक्ति के प्रयास से हुई है। वह व्यक्ति चिरन्तन व्यक्ति है। उसने अपने व्यक्तित्व को समष्टि में विलीन कर दिया है। लोकगाथा एक सामाजिक संस्था है, जिसकी अन्तरात्मा में व्यक्ति बैठा हुआ है। उस व्यक्ति की अवहेलना हम कदापि नहीं कर सकते। भोजपुरी लोकगाथाओं के अध्ययन से हमें यही तथ्य प्राप्त होता है।

लोकगाथाओं की भारतीय परम्परा

भारतीय विचारकों ने लोकगाथाओं की उत्पत्ति एवं उनकी विशेषताओं पर भले ही विचार न किया हो, परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि भारतीय परंपरा में लोकगाथा का सर्वथा अभाव था। लोकगाथा किसी भी देश के लिये अनिवार्य वस्तु है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में लोकगाथाओं का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। भारतीय साहित्य में इनकी उत्पत्ति और विकास की कहानी बड़ी मनोरंजक है। यहाँ हम वेद, पुराण, ब्राह्मण ग्रन्थों, संहिताओं, बौद्ध साहित्य, महाकाव्यों एव विदेशी यात्रिकों के वर्णन के आधार पर लोकगाथाओं की परंपरा को स्पष्ट करेंगे।

वेद—वैदिक-युग में शुभ अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों को 'गाथा' ही कहा गया है।[१] 'गाथा शब्द का अर्थ है पितरगण, परलोक या ऐसे ही अन्यत्र विषयों से संबद्ध अनुश्रुतियों पर आधारित पद्य या गीत।[२] ऋग्वेद में गानेवाले के अर्थ में 'गाथिन्' शब्द का प्रयोग किया गया है।[३] 'गाथा' शब्द एक विशिष्ट

१—प्रक्रुतन्या जीविण: कण्वा इन्द्रस्यगाथया मदे सोमस्य वोचत।

२—अमरकोष।

३—इन्द्रमिदं गाथिनो बृहत्-ऋग्वेद १।७।१

मंत्र के अर्थ में भी ऋग्वेद में पाया जाता है। कालान्तर में 'गाथा' एक छन्द भी बन गया। वैदिक युग में गाथाओं का इतना अधिक महत्व था कि 'रैमी' एवं 'नाराशंसी' गाथाओं की अलग ही रचना हुई। सायण भाष्य के अनुसार विवाह के अवसर पर विभिन्न वैवाहिक विधियों के समय जो गीत गाये जाते थे वे रैमी, नाराशंसी गाथा के नाम से प्रसिद्ध थे।[1]

ब्राह्मण ग्रन्थ—ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार गाथायें ऋक्, यजु: और साम से पृथक् होती थीं। इसका आशय यह है कि गाथाओं का व्यवहार मंत्र के रूप में नहीं होता था। ऐतरेयब्राह्मण में ऋक् और गाथा में पार्थक्य दिखलाया गया है। ऋक् दैवी होती थी तथा 'गाथा' मानुषी। अर्थात् गाथाओं की उत्पत्ति मे मनुष्य का ही उद्योग प्रधान कारण होता था।[2] अतः प्राचीनकाल में किसी विशिष्ट राजा के किसी सत्कृत्य को लक्षित कर के जो गीत गाये जाते थे उन्हें 'गाथा' नाम से साहित्य का एक पृथक् अंग माना जाता था। निरुक्त में दुर्गाचार्य ने गाथा का यह अर्थ स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है।[3] इस प्रकार से वैदिक सूक्तों में ऋचाओं एवं गाथाओं द्वारा तत्कालीन इतिहास व्यक्त हुआ है।

वैदिक गाथाओं के उदाहरण शतपथ ब्राह्मण[4] तथा ऐतरेय ब्राह्मण में उपलब्ध होते हैं, जिनमें अश्वमेध-यज्ञ करने वाले राजाओं के उदात्त-चरित्र का वर्णन किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में ये गाथायें कहीं केवल श्लोक नाम

—रैम्यासीदनुनेयी, नाराशंसी न्योचनी

सूर्याया भद्रमिद्वासो, गाथयैति परिष्कृताम्—ऋग्वेद १०।९८।६

२—ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८

३—स पुनरितिहास, ऋग्बद्धो गाथा बद्धश्च

ऋक् प्रकार एव कश्चित् गाथेत्युच्यते।

गाथा: शंसति नाराशंसी: शंसति इति

उक्त गाथानां कुर्वीतिति। निरुक्त ४।६ पर दुर्गाचार्य की टीका।

४—शत्पथब्राह्मण १३।५।४, १३।४।३८

: विशेष उद्धरण—डा० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन पृ० १४२।

से निर्दिष्ट हैं और कहीं 'यज्ञ गाथायें' कही गई हैं। राजा जनमजय के विषय में एक उदाहरण इस प्रकार हैं।

आसन्दविति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्त्रवजम
अश्वं बबन्ध सारंग देवेभ्यो जनमेजयः

दुष्यन्त-पुत्र भरत के विषय में ये गाथायें कही गई हैं :—

हिरण्येन परीवृतान् शुक्लान् कृष्णदत्तो मृगान्
भष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्धानि सप्तच
अष्ट सप्तति भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु
गंगायां वृत्रघ्नेऽबध्नात पंच पंचाशतेहयान्
महाकर्म भारतस्य न पूर्वे नापरे जनाः
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पंचमानवाः

पुराण—पुराणों में अनेक गाथाओं का वर्णन मिलता है। सुवर्ण की गाथा तथा कद्रु एवं विनता की गाथा इसके उदाहरण हैं। पुराणों में गाथा का कितना महत्त्व है, इसे स्वयं व्यास ने स्पष्ट किया है—

'आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः
पुराण संहिता चक्रे पुराणार्थ विशारदः ॥
प्रख्याते व्यास शिष्योऽभूत् सूतो वैलोमहर्षणः
पुराण संहिता तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः ॥

अर्थात् पुराणों के अर्थ को भलीभांति जानने वाले सत्यवती-सुत कृष्ण द्वैपायन व्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्प शुद्धियों द्वारा पुराण संहिता की रचना की और उसे अपने सुप्रसिद्ध शिष्य सूतकुलोत्पन्न लोमहर्षण को प्रदान किया।[२]

वास्तव में यदि 'पुराण' शब्द के अर्थ की ओर जाँय तो हमें ज्ञात होगा कि प्राचीन आख्यानों, उपाख्यानों एवं गाथाओं के एकत्र संकलन का नाम 'पुराण' है। 'पुराण' शब्द का सामान्यतया प्राचीनकाल की वस्तुओं अथवा कथाओं, गाथाओं से तात्पर्य है। 'पुराभवम्' अथवा 'पुरानीयते' से इस विग्रह की निष्पत्ति होती है।

१—ऐतरेय ब्राह्म ८।४

२—विष्णु पुराण, अंश ३ अंक ६।

संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् विन्टरनीज़ ने भारतीय लोकगाथाओं की परंपरा एवं उत्पत्ति के विषय में सन्तोषजनक प्रकाश डाला है। उनके कथनानुसार वेद, पुराण, इतिहास, आख्यान तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में यत्र तत्र लोकगाथाओं का इतिहास प्राप्त होता है। प्रत्येक उत्सव एवं यज्ञ के प्रारंभ में प्रत्येक गृह में देवगाथा, वीरगाथा, तथा अन्य कथाओं का गान एवं श्रवण होता था। अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मण एवं चारण लोग वंशीध्वनि के साथ सम्राट् एवं उसके पूर्वपुरुषों का गुण-गान करते थे। भ्रूणाकर्म संस्कार एवं गर्भवती स्त्रियों के मंगल प्रसव के लिये भी भिन्न-भिन्न कथागीत गाये जाते थे जिसे 'पुंसवन' कहा जाता था।

महाकाव्य—पुराणों के अतिरिक्त महाकाव्यों में भी इस विषय से संबद्ध तथ्य उपलब्ध हैं। रामायण एवं महाभारत दो ऐसे अन्यतम महाकाव्य हैं जिनमें संपूर्ण भारतीय जीवन परिलक्षित हुआ है। हमारे आपके जीवन में भी इन महाकाव्यों का प्रभाव स्पष्ट है। कुछ विद्वानों का मत है कि रामायण की रचना महर्षि वाल्मीकि ने उस समय राम संबन्धी प्रचलित लोकगाथाओं के आधार पर की।[1] राम का चरित्र उस समय वीर गाथा के रूप में प्रचलित था। इसी प्रकार 'महाभारत' भी प्रथमतः 'जय काव्य' के रूप में मौखिक परंपरा में ही सुरक्षित था। कुछ विद्वानों की धारणा है कि श्री रामचंद्र के आदर्श चरित्र एवं कौरव-पांडव के युद्ध के अतिरिक्त भी अन्य गाथाएं समाज में प्रचलित थीं। किन्तु महाकवियों ने केवल इन्हीं दो गाथाओं को अपना प्रिय विषय बनाया और उसी के फलस्वरूप इन दो महाकाव्यों की रचना हुई। कालक्रम से बहुत-सी छोटीमोटी गाथाएं लुप्त हो गईं और अनेकों को रामायण एवं महाभारत ने आत्मसात् कर लिया। अनेक उपकथाओं के साथ 'रामायण' तो 'रामायण' ही रह गई, परन्तु 'जय काव्य' क्रमशः 'महाभारत' के विशद् रूप में परिवर्तित हो गया।[2]

महाकाव्यों के उद्भव और विकास पर डा० शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है कि "सामूहिक गीत-नृत्य से ही काव्य, संगीत, नृत्य, रूपक——सब का विकास हुआ है और अलंकृत महाकाव्य, कथा, आख्यायिका, गीति-काव्य आदि इस

---

१ विन्टरनीज़——'हिस्ट्री आफ दी इंडियन लिटरेचर' वाल १, पृ० ३११।
२ विन्टरनीज़—'हिस्ट्री आफ दी इंडियन लिटरेचर' पृ० ३१२।
तथा
बी० के० 'सरकार—फोक एलीमेंट इन हिन्दू कल्चर', पृ० ८।

विकास क्रम की सबसे अन्तिम कड़ियाँ हैं।" वास्तव में यह कथन तर्क पूर्ण है। महाकाव्य के विकास और रचना में लोकगाथाओं का विशेष योग रहा है। ऊपर कहा जा चुका है कि रामायण और महाभारत की कथा पूर्व प्रचलित लोकगाथाओं से ग्रहण की गई हैं तथा अन्य लोकगाथाएँ अपनी महत्ता को लुप्त करती गईं। इसके अतिरिक्त जो लोकगाथाएं लुप्त न हो सकीं और साथ ही उनकी ओर किसी कवि की दृष्टि नहीं गई, वे समय के प्रवाह को पार करती हुई, भिन्न रूप धारण करती हुई आज भी वर्तमान हैं। उनके नाम बदल गए, कथानक बदल गए परन्तु उद्देश्य नहीं बदला, उनका सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण वैसा ही बना रहा। भोजपुरी लोकगाथाओं के अध्ययन से हमें यही दृष्टि मिलती है।

लोकगाथाओं के विकास क्रम को महाकाव्य के विकास क्रम के समान समझा जा सकता है।[१]

१—सामूहिक गीत-नृत्य (कोरल म्यूजिक एंड डान्स) जो वस्तुतः मानव के आंतरिक अवस्था की ओर निर्देश करती हैं।

२—आख्यानक नृत्य-गीत (बैलेड डान्स) अर्थात जिसमें आख्यान अथवा कथा का समावेश हो जाता है।

३—आख्यान और गाथा (लेज एंड बैलेड्स)—विकास की अवस्था में लोकगाथाएं दो धाराओं में बंट जाती है। (क) लोकगाथा तथा (ख) चारण गाथाएं।

४—गाथा चक्र (साइकिल आफ बैलेड्स)—इससे तात्पर्य यह है कि महाकाव्य अवस्था के पूर्व लोकगाथाओं का फैलाव दूर दूर तक हो जाता है। इस प्रकार उनकी कथाओं में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होता रहता है। वह एक संतरणशील मौखिक साहित्य बन जाता है। इस क्रिया में युगों लग जाते हैं, और अन्ततोगत्वा एक ही गाथा अनेक रूप धारण कर अन्त में गाथा-चक्र के रूप में निर्मित हो जाती हैं।

विकास के इस क्रम के उपरान्त लोकगाथाओं के मूल रूप अथवा शुद्ध रूप का प्रश्न ही नहीं रह जाता। उसका कथानक और उसके पात्र में परिवर्तन हो जाता है, और वह अनेकानेक उपगाथाओं और कथाओं का संग्रह बन जाता है।

---

१ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का उद्भव और विकास अध्याय १, पृष्ठ ४

२ वही।

विकास के इस काल में जब कोई कथानक अथवा कोई वीर अधिक महत्व प्राप्त कर लेता है तो वह किसी प्रतिभावान कवि का काव्य-विषय बन जाता है। इलियड, ओडेसी, तथा महाभारत की रचना का यही रहस्य है। यहीं से महाकाव्य का युग प्रारंभ होता है। परन्तु जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि महाकाव्य की रचना के पश्चात् भी लोकगाथाओं की रचना समाप्त नहीं हो जाती है। महाकाव्य को एक कथानक देकर, वह पुनः दूसरे कथानक के साथ विकास करने लगती है।

महाकाव्य और लोकगाथाओं के इसी परिप्रेक्ष्य में दोनों की विशेषताओं के अन्तर को स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा। यह पहले ही स्पष्ट किया गया है कि प्राचीन से लेकर वर्तमान तक के महाकाव्य वस्तुतः लोकगाथाओं के ही आभारी हैं। महाकाव्य के निर्माण के पश्चात् लोकगाथाओं और महाकाव्य में निम्नलिखत अन्तर आ जाते हैं।

लोकगाथा एक मौखिक साहित्य है अत: उसकी काव्य सामग्री संतरणशील होती है। महाकाव्य लिखित साहित्य है अतः उनका रूप स्थिर होता है। लोक गाथाएं आशुकवित्व तथा परिवर्तन और परिवर्द्धन की विशेषता लिए रहती हैं तथा महाकाव्य में लोकगाथाओं के संतरणशील काव्य सामग्री का उद्देश्यपूर्ण प्रयोग रहता है। लोकगाथाओं की रचना में व्यक्तित्व का अभाव रहता है तथा महाकाव्य में व्यक्ति की प्रधानता रहती है। लोकगाथाओं में अनलंकृत एवं सहज सौन्दर्य होता है तथा महाकाव्य में अलंकृत और पांडित्य प्रदर्शन होता है। लोकगाथाओं में घटनाओं का स्वाभाविक एवं गतिशील वर्णन रहता है तथा महाकाव्य में घटनाएं शिथिल होती हैं, उनमें सूक्ष्म भावों का विशद वर्णन रहता है। लोकगाथाओं में कल्पना का स्वाभाविक प्रयोग तथा यथार्थ जीवन का चित्रण रहता है। महाकाव्य में कल्पना का बाहुल्य और जीवन की अति-रंजना रहती है।

बौद्ध साहित्य—भगवान बुद्ध से सम्बन्धित कथाओं और गाथाओं का एकत्रीकरण 'जातक' नामक पाली ग्रंथ में हुआ है। इस ग्रंथ में उस समय की प्रचलित लोककथाओं एवं लोकगाथाओं का भी समावेश किया गया है। जिस प्रकार भोजपुरी कहानियों के बीच-बीच में गीतों का भी प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार जातक की कहानियों में गाथाओं का व्यवहार हुआ है।[1]

प्राकृत काल में भी लोकगाथाओं की लोकप्रियता का समुचित उदाहरण हमें प्राप्त होता है। 'गाथा सप्तशती' इसका स्पष्ट उदाहरण है। इसमें सात

१डा० कृष्णदेव उपाध्याय 'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन' पृ० १४६।

सौ गाथाओं का संग्रह है। कहा जाता है कि उस समय राजा हाल या शालिवाहन ने प्रचलित सहस्त्रों लोकगाथाओं में से सात सौ लोकगाथाओं को एकत्र कर गाथासप्तशती का रूप दिया।

अपभ्रंशकाल—लोकगाथाओं की परंपरा का ज्ञान उस समय की एक प्रतिनिधि रचना, आचार्य हेमचन्द्र कृत 'काव्यानुशासन' के द्वारा कर सकते हैं। अपभ्रंश काल में लोकतत्वों और लोकजीवन से स्पर्श करता हुआ ग्रन्थ 'सन्देश रासक' है। यह एक छोटा सा प्रेमगीत है। 'काव्यानुशासन' में हेमचन्द्र ने 'रासक' को गेय रूप माना है। इसके तीन प्रकार होते हैं—कोमल, उद्धत और मिश्र। 'रासक' मिश्र गेयरूपक है। 'रासक' को उस समय की लोकगाथाओं के आधार पर निर्मित माना जा सकता है। हेमचन्द्र ने अपनी टीका में ग्राम्य अपभ्रंश के जिन गेयरूपों का उल्लेख किया है, वे हैं—डोम्बिका, हल्लीस, रासक, गोष्ठी, शिगक भाण, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड़ इत्यादि। इनमें 'रासक' सर्वप्रिय था। यह उद्धत प्रधान गेयरूपक था, जिसमें स्थान-स्थान पर कोमल प्रयोग भी रहता था। इसमें बहुत सी नर्तकियाँ विचित्र ताल लय के साथ योग देती थीं। यही 'रासक' आगे चल कर वीरगाथा काल में 'रासो' शैली को जन्म दिया। 'आल्हा' भी वस्तुतः एक रासक ही है जिसका विवेचन इस प्रबंध में किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपभ्रंश काल में लोकगाथाओं की परंपरा अनेक रूपों में नृत्य इत्यादि के सहयोग के साथ मिलती है।

यात्रा विवरण—इसके अतिरिक्त हमें विदेशी यात्रिकों का भी वर्णन प्राप्त होता है। इनमें चीनी यात्री फाह्यान तथा हुएनसांग प्रमुख हैं।

गुप्तकाल में फाह्यान ने भारत-भ्रमण किया था। अपने वृतान्त में वे एक स्थान पर उल्लेख करते हैं कि गुप्तकाल में नृत्य, संगीत, गीतों एवं गाथाओं का बहुत प्रचलन था। ज्येष्ठ की अष्टमी के दिन फाह्यान पाटलिपुत्र में स्वयं उपस्थित थे। उन्होंने भगवान बुद्ध की रथयात्रा का उत्सव देखा। वे लिखते हैं कि उस समय लोग फूलों की वर्षा करते थे, दुन्दुभी बजाते थे, नृत्य करते थे तथा भगवान बुद्ध की महिमा के गीत गाते थे।[१]

इसी प्रकार सम्राट् हर्षवर्धन के समय में हुयेनसांग का आगमन हुआ था।

१—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदि काल—पृष्ठ ५९—६०।

२—बी० के० सरकार—फोक एलीमेंट इन हिन्दू कल्चर, पृ० १२।

उसने राज्य के उत्सवों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। भारतीयों के नृत्य एवं गान उन्हें बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुए।[1] इससे स्पष्ट है कि उस समय लोकगीतों तथा लोकगाथाओं का प्रभाव बहुत ही व्यापक था।

गायकों की परंपरा—लोकगाथाओं की परंपरा के साथ साथ गायकों की परंपरा के विषय में अनुशीलन कर लेना असंगत न होगा। प्राचीन भारत में तथा अर्वाचीन भारत में गायकों की परंपरा का उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है। यद्यपि लोकगाथायें सम्पूर्ण-समाज के मुख में निवास करती हैं तो भी ये गायक लोकप्रिय गाथाओं का प्रतिनिधित्व करते थे। ये गाथाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते थे। इस प्रकार से समस्त देश में इन्हीं के कारण गाथाओं का प्रचार होता था। हमें प्राचीन भारत में छः प्रकार के गायकों की परंपरा प्राप्त होती है, जो कि निम्नाङ्कित हैं—

(१) सूत —'क्षत्रियात्ब्राह्मणीजेऽपि सूतः सारथिवन्दिनो।'[2] अर्थात् क्षत्रिय से ब्राह्मणी स्त्री द्वारा उत्पन्न हुआ व्यक्ति जिसका व्यवसाय रथ-संचालन अथवा बन्दना करना होता है। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि वैश्य से क्षत्रिय में उत्पन्न व्यक्ति वन्दना करने वाला सूत होता है। हमें यह भली भाँति विदित है कि धृतराष्ट्र को आँखो देखा युद्ध का हाल सुनाने वाला संजय सूत ही था। कृष्णद्वैपायन व्यास ने ज्ञानी एवं सूत कुलोत्पन्न लोमहर्षण को पुराण का श्रवण कराया। सूत लोग बहुधा युद्ध का ही वर्णन करते थे अथवा अपने योद्धा की वीरता का गान करते थे।

(२) मागध—'माग धाः सूतवंशजा'—ये लोग सूत वंश में ही उत्पन्न होते थे, परन्तु इनका कार्य कुछ भिन्न था। ये राजा के आगे उसके वंश की स्तुति करते थे। मागध लोगों को 'मधुकः' भी कहा गया है, क्योंकि ये लोग बड़ी सुमधुर भाषा में सभा का यशोगान करते थे। इन मागधों के द्वारा अनेक राजाओं के कार्य कलापों एवं उनके वंशक्रमों का पता चलता है।

(३) बन्दी—'बन्दिनस्त्वमलप्रज्ञा प्रस्तावसहशोक्तयः।'[3]

निर्मल बुद्धि वाले, प्रकरण के अनुकूल अनेक उक्तियाँ रचने वाले तथा

१—वही

२—अमरकोषः तथा विश्वकोषः

३—अमरकोषः

राजाओं की स्तुति करने वाले बन्दी कहे जाते हैं। 'बन्दी' लोगों का वर्णन मध्ययुगीन साहित्य में भी मिलता है। 'राम चरित मानस' तथा रीति-साहित्य के ग्रन्थों में भी इनका उल्लेख उपलब्ध है। ये बन्दी लोग सुमधुर गीत गाने में बड़े पटु होते थे।

(४) कुशीलव—भगवान राम के दोनों पुत्र लव एवं कुश से इनकी उत्पत्ति मानी जाती है। इसका अर्थ है नाचने तथा गाथा गाने वाले। महर्षि वाल्मीकि ने राम सम्बन्धी गाथाओं को एकत्र कर रामायण की रचना की। सौभाग्य से या दुर्भाग्य से परित्यक्ता सीता वाल्मीकि के आश्रम में ही थी। वहीं लव और कुश उत्पन्न हुये। वाल्मीकि ने इन्हीं पुत्रों को रामायण कंठस्थ करवाया। ये दोनों बालक वीणा पर रामायण का गान करते हुए ऋषिजनों को प्रसन्न करते थे। लव और कुश तो समय आने पर अपने पिता के पास चले गये परंतु गाथा गाने की परंपरा छोड़ गये। रामगाथा की परंपरा को अन्य लोगों ने अपना लिया। यही उनकी जीविका का साधन भी बन गया। ये लोग ही 'कुशीलव' कहलाये।

(५) वैतालिक—'वैतालिक बोधकरा'[१]—राजाओं को स्तुति पाठ से प्रातःकाल जगाने वालों को वैतालिक कहा जाता था। ये लोग भैरव-राग में राजा के ऐश्वर्य और उसके पूर्व पुरुषों का गान करते थे। इनकी परंपरा मध्ययुग में भी मिलती है। मुगल रजाओं के यहाँ भी इसी प्रकार प्रातःकाल जगाने वाले रखे जाते थे।

(६) चारण—'चारणास्तु कुशीलवाः'[२]—यह एक कथक नाम के नट विशेष होते हैं। इनका चरित्र संदिग्ध होता है। संभवतः ये लोग 'कुशीलवों' की परंपरा में ही आते हैं। इनका कार्य नृत्य तथा राजा के ऐश्वर्य का गुणगान करना ही होता है। इनके वंशज आज भी मिलते हैं। मध्ययुग में तो इनका बाहुल्य था। हिन्दी साहित्य का आदि युग इन्हीं चारणों की रचनाओं का युग है और इन्हीं के आधार पर उसका नामकरण भी हुआ है। वस्तुतः मध्य युग में चारण लोग राजाओं के दाहिने हाथ के समान होते थे। इनका मंत्री से भी अधिक आदर होता था। पृथ्वीराज के दरबार का महाकवि और राजा का

१—वही

२—अमरकोषः

परममित्र चन्द बरदाई चारण ही था। राजा परमर्दिदेव के दरबार का जगनिक भी चारण ही था। इनके अतिरिक्त अन्य चारणों का भी उल्लेख मिलता है। ये चारण युद्ध में भी भाग लेते थे और राजा अथवा सेनापति को प्रोत्साहित करते थे।

(७) भांट—प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों मे तो भांटों का उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु मध्ययुगीन साहित्य में इनका यत्र-तत्र विवरण अवश्य मिलता है। भांटों का कार्य चारणों के समान ही है। संभवतः चारणों की परंपरा में ही भांट लोग आते हैं। भांट लोग हिन्दू तथा मुसलमान दोनों जाति के होते हैं। मैंने कई मुसलमान भांटो से ब्रजभाषा के सुन्दर कवित्त और सवैयें सुनें हैं। भांटलोग प्रचलित लोकगाथाओं को भी कंठस्थ करके सुनाते हैं। इस प्रकार ये लोकगाथाओं के प्रचार के माध्यम हैं। 'आल्हा' की गाथा तो प्रायः सभी भांटों को याद रहती है। आजकल भांट लोग प्रत्येक त्योहारों एवं सामाजिक संस्कारों पर अपने यजमानों के यहाँ आकर स्तुतिगान करते हैं तथा नेग-न्यौछावर पाते हैं। भोजपुरी प्रदेश में ये संभ्रांत कुटुम्बों के आवश्यक अंग होते हैं। जिस प्रकार नाई, बारी, धोबी का प्रत्येक कुटुम्ब पर अधिकार रहता है, उसी प्रकार भांट लोग भी अपना अधिकार रखते हैं। खेतों की जब कटाई होती है तो उसमें उनका भी भाग होता है।

(८) जोगी—यें नाथ संप्रदाय के परम्परा के अनुगामी होते हैं। इन लोगों की अब एक विशिष्ट जाति बन गई है। ये लोग सर्वत्र भारत में फैले हुये हैं। ये जोगियावस्त्र धारणकर, हाथ में सारंगी लेकर 'गोपीचंद' एवं 'भरथरी' की गाथा गाकर भिक्षा मांगते हैं। इनका विशेष विवरण योगकथात्मक गाथाओं के अध्ययन में मिलेगा।

गायकों की परंपरा में उपर्युक्त दो नाम (सात तथा आठ) बढ़ा दिये गये हैं। इन दोनों का उल्लेख प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता है। मध्ययुग से ही इनका इतिहास प्राप्त होता है। बहुत से स्फुट गायक ऐसे भी मिलते हैं जो ऊपर के प्रकारों में सम्मिलित नहीं किए जा सकते। इनकी कोई निश्चित जाति नहीं। इतना निश्चित है कि समाज के निम्नश्रेणी के लोग ही लोक-गाथाओं को गाते हैं। भोजपुरी लोकगाथाओं को अधिकांश रूप में, अहीर, नेटुआ, तेली, तथा बनिया लोग गाते हैं। निम्नश्रेणी के लोग ही क्यों गाते हैं, इसके विषय में जी० एफ० किटरेज लिखते हैं कि जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया वैसे-वैसे लोकगाथायें संभ्रांत समाज से हटकर निम्न लोग के

अन्तर्गत आती गईं, जिनमें कातने-बुनने वाले, हल चलाने वाले तथा चरवाहे प्रमुख हैं।[१]

लोकगाथाओं की भारतीय-परंपरा पर विचार करने से स्पष्ट है कि ये हमारे देश में प्रत्येक युग में वर्तमान थीं तथा बड़े चाव से सुनी जाती थीं। प्राचीन काल में उनका आज से अधिक आदर था। राजा, सेनापति, मंत्री, कवि एवं ऋषि-मुनि, सभी लोकगाथाओं का श्रवण करते थे। उस समय की लोकगाथा सामाजिक चेतना एवं आदर्श को प्रस्तुत करती थीं, अतएव सर्वप्रिय क्यों न होतीं।

लोकगाथा की विशेषताएँ

यहाँ हम लोकगाथाओं की प्रमुख विशेषताओं पर विचार करेंगे। संसार के सभी देशों की लोकगाथाओं की विशेषताएँ प्रायः एक समान ही हैं। इसी कारण लोकगाथाओं के सभी विद्वान इस विषय पर एकमत हैं। भोजपुरी लोकगाथाओं में भी निम्नलिखित विशेषताएँ पूर्णरूप से पाई जाती हैं:—

१—अज्ञात रचयिता

२—प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव

३—संगीत का सहयोग

४—स्थानीयता

५—मौखिक परंपरा

६—अलंकृत शैली का अभाव

७—उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव

८—रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव

९—टेक-पदों की पुनरावृत्ति

१०—लम्बा कथानक

११—संदिग्ध ऐतिहासिकता

राबर्ट ग्रेव्स ने अपनी पुस्तक में उपर्युक्त विशेषताओं की परिगणना की है।[२] डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने भी अपने ग्रन्थ में इन्हीं विशेषताओं का उल्लेख किया है।[३] प्रो० किटरेज तथा गुमेर भी इन विशेषताओं से सहमत हैं।

१—चाइल्ड—इं० एण्ड स्का० पा० बैले० भूमिका, पृ० १२

२—राबर्ट ग्रेव्स—दी इंगलिश बैलेड, पृ० ७ से ३६

३—डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ० ४९२ से ५१५

१—अज्ञात रचयिता

लोकगाथाओं का रचयिता व्यक्ति है अथवा समूह, इस विषय पर हम विचार कर चुके हैं। परन्तु इतना निश्चित है कि लोकगाथाओं का रचयिता पूर्णतया अज्ञात होता है। आज तक किसी भी लोकगाथा के रचयिता के विषय में कहीं भी उल्लेख नहीं मिला है। 'आल्हखंड' के रचयिता जगनिक माने जाते हैं, परन्तु इनके अस्तित्व के विषय में आजतक कोई सप्रमाण खोज उपस्थित नहीं किया जा सका है। कुछ लोगों का मत है कि 'आल्हखंड' की रचना चन्द-बरदाई ने ही की थी। कुछ भी हो, आजके 'आल्हखण्ड' में रचयिता का सर्वथा लोप है। 'आल्हा' के अतिरिक्त शेष भोजपुरी लोकगाथाओं के विषय में रचयिता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। सोरठी, लोरिकी, विजयमल, बिहुला तथा भर-थरी इत्यादि लोकगाथाओं के प्रणेताओं का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। वस्तुतः लोकगाथाओं के रचयिता का अज्ञात होना एक स्वाभाविक तथ्य है। पं० राम-नरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि लोकगीतों के रचयिता अज्ञात स्त्री-पुरुष हैं।[१] लोकगाथाओं के विषय में भी यही बात लागू होती है। राबर्ट ग्रेव्स का कथन है कि आज के युग में किसी रचयिता का अज्ञात रहना इस बात का द्योतक है कि वह स्वयं की कृति को लज्जास्पद समझता है, अतः वह समाज के सम्मुख प्रकट नहीं होना चाहता। परन्तु आदिम समाज में लोकगाथाओं का रचयिता केवल अपनी लापरवाही से ही अज्ञात हो गया।[२] वस्तुतः यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है, सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ समष्टि की भावना गौण होने लगती है तथा व्यक्ति क्रमशः प्रधान होने लगता है। लोकगाथाएँ समस्त समाज के क्रमिक विकास को व्यक्त करती हैं। अतः इनमें हम तत्कालीन सामा-जिक अवस्था का अनुमान कर सकते हैं, किन्तु किसी व्यक्ति के विषय में कुछ भी नहीं कह सकते। नृशास्त्री और पुरातत्ववेत्ता, सभी इस विषय पर चुप हैं। इसका प्रधान कारण है कि उस समय व्यक्ति की महत्ता की प्रतिष्ठा नहीं हुई थी। लोकगाथाओं के अज्ञात प्रणेताओं ने एक गंगा बहा दी जिसमें समाज की

१—पं० रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम गीत, पृ० २१

२—राबर्ट ग्रेव्स—दी इंगलिश बैलेड, पृ० १२

ऐनानिमिटी इन दी प्रेजेन्ट स्ट्रक्चर आफ सोसाइटी युजुअली इम्प्लाइज दैट दी आथर इज अशेम्ड आफ हिज आथरशिप आँर अफेड आफ कान्सीक्वेन्सेस इफ ही रिवील्स हिमसेल्फ, बट इन प्रिमिटिव सोसाइटी इज ड्यू जस्ट केयरलेस-नेस आफ दी आथर्स नेम।"

आकांक्षाएं, गुण, अवगुण उपधाराओं के समान अन्तर्निहित होते गये और क्रमशः लोकगाथा की व्यापकता में समाज की आत्मा मुखरित होती गई।

२—प्रामाणिक मूलपाठ का अभाव

रचयिता जब अज्ञात हो गया तो उसकी रचना के मूलपाठ का अज्ञात हो जाना एक स्वाभाविक तथ्य है। आज तक किसी भी लोकगाथा का प्रामाणिक मूल-पाठ नहीं प्राप्त हो सका है। 'आल्हखण्ड' तक की भी कोई हस्तलिखित प्रति नहीं प्राप्त हुई है। वस्तुतः लोकगाथाओं का प्रामाणिक मूलपाठ होता ही नहीं है। इसे भी हम लोकगाथा का एक आवश्यक गुण कह सकते हैं। कैसा विचित्र विरोधाभास है! आज के युग में जिस अभाव को महादोष माना जाता है, वही लोकगाथाओं के गुण हैं। यहाँ हमें एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि गुण-दोष के मापदण्ड युग-युग में बदला करते हैं। लोकगाथाएँ ऐसे युग की रचनाएँ हैं जब कि व्यक्ति की सत्ता समाज की सत्ता में विलीन थी। लोकगाथाओं के रचयिता एक बार उसका सूत्रपात करके और उसे समाज के हाथों में सौंप कर स्वयं अन्तर्हित हो जाते हैं और उसके पश्चात् उन लोकगाथाओं के निरन्तर विकास की एक ऐसी शृंखला चल पड़ती है जिसका कि कभी भी अन्त नहीं होता। प्रो० किटरेज का कथन है कि लोकगाथाओं के निर्माण के साथ-साथ उनकी समाप्ति नहीं हो जाती, वरन् वहाँ से ही उनके निर्माण का प्रारम्भ होता है।[1]

इस प्रकार लोकगाथाओं की निर्माण-क्रिया निरन्तर चलती रहती है। लोक-गाथाएं एक कंठ से दूसरे कंठ में जाती हुई समस्त समाज में व्याप्त हो जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार उसे गाता है जिसके परिणामस्वरूप उसमें अनिवार्यतः परिवर्तन होता जाता है। पुराने पद छोड़ दिए जाते हैं, नए पद जोड़ दिए जाते हैं। टेकपद बदल जाते हैं तथा गाने की धुन भी बदल जाती है तथा चरित्रों में भी परिवर्तन हो जाते हैं। स्थानान्तरण के साथ-साथ लोकगाथाओं की भाषा भी बदल जाती है। प्रो० किटरेज लिखते हैं कि जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता है वैसे-वैसे लोकगाथाओं की भाषा भी परिवर्तित होती जाती है।

१—एफ० जे० चाइल्ड—इं० ऐंड स्का० पा० बै० भूमिका भाग, पृ० १८

"दी मीयर ऐक्ट आफ कम्पोजीशन इज क्वाइट ऐज लाइक्ली टु बी ओरल ऐज रिटेन, इज नाट दी कन्क्लूजन आफ़ दी मैटर, इट इज रैदर दी बिगनिंग"

लोकगाथा का आदि प्रणेता उसके वर्तमान स्वरूप एवं स्वर का श्रवण करे तो निश्चय ही वह स्वयं की रचना को नहीं पहचानेगा ।[1]

लोकगाथाओं का विकास शब्दों के विकास के समान होता है। किसी वैय्याकरण की उस प्रवृत्ति का कोई महत्व नहीं रह जाता जिससे प्रेरित होकर उसने उस शब्द का निर्माण किया था। अर्थ और रूप कालक्रम से बिल्कुल बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए, 'बिहुला' की लोकगाथा के भोजपुरी रूप विषहरी (चरित्र विशेष) एक ब्राह्मण पुरुष हैं, परन्तु उसके मैथिली एवं बंगला रूपों में विषहरी रूप स्त्री तथा देवी है। आकार एवं कथानक का भी परिवर्तन होता रहता है। 'आल्हा' की लोकगाथा निश्चित रूप से प्रारंभ में वर्तमान आकार से छोटी थी, परंतु कालांतर में अनेक कथानकों का समावेश होते-होते उसमें आज बावन युद्धों का वर्णन है। इसके अनेकानेक रूप जनपदी बोलियों में भी हैं। राजा गोपीचंद की लोकगाथा का यही हाल है। उसका बंगला रूप कुछ और है तो भोजपुरी रूप कुछ और।

इस अनवरत परिवर्तनशीलता के कारण लोकगाथाओं के प्रामाणिक मूलपाठ का मिलना नितान्त असम्भव है। लोकगाथाओं में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन स्वभावतः होते ही रहते हैं, क्योंकि वे जनता की मौलिक सम्पत्ति हैं। प्रो० किटरेज का कथन है कि किसी वास्तविक लोकप्रिय लोकगाथा का कोई रूप नहीं हो सकता है, कोई प्रमाणिक पाठ नहीं हो सकता ।[2]

३—संगीत एवं नृत्य का सहयोग

लोकगाथाओं में संगीत अनिवार्य रूप से रहता है। बिना संगीत के माध्यम

१—एफ० जे० चाइल्ड इं० स्का० पा० बै० भूमिका, पृ० १७

"दी होल लिंग्विस्टिक काम्प्लेक्शन आफ् दी पीस में बी सो माडिफाईड विथ दी डेवलप्मेन्ट आफ दी लैंगुएज इन ह्विच इट इज़ कम्पोज्ड दैट दी ओरिजिनल आथर वुड नाट रिकग्नाइज़ हिज़ वर्क इफ हर्ड इट रिसाइटेड"

२—एफ० जे० चाइल्ड—इं० ऐंड० स्का० पा० बै० भूमिका, पृ० १८

'इट फालोज़ दैट ए जेनुइन पापुलर बैलेड कैन हैव नो फिक्स्ड फार्म, नो सोशल ऑथेन्टिक वर्सन, दे आर टेक्स्ट्स बट देयर इज़ नो टेक्स्ट'.

से लोकगाथाओं के महत्व को हम नहीं समझ सकते हैं। लोकगाथाओं में साहित्य का अभाव रहता है, उनमें सूक्ष्म भावों की व्यंजना नहीं पाई जाती। अतएव संगीत ही लोकगाथाओं को भावपूर्ण एवं सुमधुर बनाती है। इनकी लोकप्रियता का भी सबसे बड़ा कारण संगीत ही है। इनकी संगीत-लिपि बनाना अत्यन्त जटिल होता है। अधिकांश लोकगाथाएं द्रुतगति में गाई जाती हैं। इनकी अपनी ही एक अलग संगीत-पद्धति होती है जिसे 'लोक-संगीत' (फोक म्यूजिक) कहते हैं।

भोजपुरी की गोपीचंद तथा भरथरी की लोकगाथाओं में करुणापूर्ण संगीत की प्रधानता है। कथोपकथन में ही गायक गाता है, परन्तु उसके स्वर में जो आनुषंगिक करुणा व्याप्त रहती है उसका प्रभाव श्रोता पर बिना पड़े नहीं रहता। अन्य भोजपुरी लोकगाथाएँ अधिकांश रूप में 'द्रुतगतिलय' (रन-आन-वर्सेस, अथवा ब्रेकनेक स्पीड) में गाई जाती हैं। गायक के मुख से पंक्ति के पश्चात् पंक्ति निकलती चलती है। कथानक के अनुकूल गायक का स्वर भी बदलता जाता है। लोकगाथाओं को यदि हम सुनने के स्थान पर पढ़ें तो हमें तनिक भी आनन्द नहीं आएगा। वास्तव में लोकगाथाओं को श्रवण करने से ही उनकी महत्ता जानी जा सकती है। गायक उसमें जीवन फूंकता है। इसीलिए प्रो० किटरेज कहते हैं कि गायक एक वाणी है, व्यक्ति नहीं।१ 'आल्हा' का गवैया जब अपना स्वर चढ़ाता है तभी 'आल्हा' के महत्व को हम समझ पाते हैं।

स्वर-संगीत के पश्चात् वाद्य-संगीत का भी लोकगाथाओं में प्रधान स्थान है। भारतीय लोकगाथाओं की परंपरा पर विचार करते हुए यह उल्लेख किया गया है कि प्राचीन समय में गायक वंशी-ध्वनि के साथ वीरों का अथवा राजाओं का गुणगान करते थे। वाद्ययन्त्रों का आज भी भारतीय लोकगाथाओं में अनिवार्य स्थान है। भोजपुरी लोकगाथाओं में ढोल, मजीरा, टुनटुनी (घंटी विशेष) तथा सारंगी इत्यादि का अभिन्न सहयोग है। इनके बिना लोकगाथा गाने में गायक का मन ही नहीं लगेगा।

गोपीचंद और भरथरी की लोकगाथाएँ जोगी लोग सारंगी पर गाते हैं। इस सारंगी को 'गोपीचन्दी' भी कहा जाता है। सारंगी जोगियों की वेशभूषा का अनिवार्य अंग है। वे बड़े मधुर एवं करुण स्वर में सारंगी-वादन के साथ लोकगाथाएँ सुनाते हैं। 'आल्हा' की लोकगाथा ढोल पर गाई जाती है। गले में ढोल बांधकर

१—एफ० जे० चाइल्ड—इं० ऐंड० स्का० पा० बै० भूमिका, पृ० २४

'ही इज़ ए वायस रैदर दैन ए पर्सन।'

गायक उस पर चोट कर-करके अपने स्वर को चढ़ाता है। सोरठी की लोकगाथा में गायक खंजड़ी और टुनटुनी लेकर बैठ जाता है और बड़े द्रुतगति से गाथा गाना प्रारंभ कर देता है। इसी प्रकार से अन्य लोकगाथाओं में इन्हीं वाद्यों का प्रयोग होता है। यूरोपीय देशों में भी चारण (मिन्स्ट्रेल) लोग हार्प (सारंगी विशेष) पर गाथाओं को गाते थे। परन्तु चाइल्ड ने इनकी गाथाओं को प्रचलित लोकगाथाओं से भिन्न 'मिन्स्ट्रेल बैलेड' के नाम से अभिहित किया है।[१]

प्रारंभ में लोकगाथाओं में नृत्य एक अनिवार्य अंग था। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश काल की लोकगाथाओं में नृत्य का उल्लेख मिलता है। "लोकगाथाओं की भारतीय परंपरा" (पृष्ठ १७) में यह स्पष्ट किया गया है कि लोकगाथा की परिपाटी प्राचीन है। उस समय संगीत और वाद्य-यन्त्रों के साथ-साथ गीत गाने की प्रथा थी। विशेष रूप से विदेशी यात्रियों के वर्णन में नृत्य का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त अपभ्रंश काल के आचार्य हेमचंद्र ने 'काव्यानुशासन' में ग्राम्य अपभ्रंश के गेयरूपों में नृत्य का उल्लेख किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन भारतीय लोकगाथाओं में नृत्य का समावेश था। कालांतर में नृत्य क्रिया गौण होती गई और आज हम देखते हैं कि लोकगाथाओं में नृत्य का अंश प्रायः लुप्त-सा हो गया है। लोकगीतों तथा लोकनाट्यों में नृत्य-क्रिया अभी भी वर्तमान है। विशेष रूप से लोकनाट्यों—स्वांग, यात्रा नाटक तथा लीलाओं में नृत्य की परंपरा अक्षुण्ण रूप से सुरक्षित है। आधुनिक समय में इन्हीं नृत्यों को लोकनृत्य कहते हैं, जिसकी परिछाया आधुनिक नाट्यगृहों तथा चलचित्रों में देखने को मिलती है।

४—स्थानीयता

लोकगाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। लोकगाथाएं चाहे कितने भी सुदूर प्रदेश की क्यों न हों, शताब्दियों के भ्रमण के पश्चात् किसी विशेष प्रान्त में पहुँचने पर वे धीरे-धीरे वहाँ की विशेषताएँ अपना लेती हैं। प्रो० किटरेज ने लिखा है कि लोकगाथा का निर्माण किसी घटना के कारण होता है और निर्माण के साथ ही साथ उसमें तद्देशीय वातावरण एवं स्थानीयता का भी समावेश हो जाता है।[२] स्थानीयता कहीं-कहीं ऐतिहासिकता के अंकन में

१—चाइल्ड—इं० ऐंड स्का० पा० बै० भूमिका, पृ० २३

२—वही पृ० १६—दी बैलेड इज ला इक्ली टु हैव स्प्रंग अप शार्ट्ली आफ्टर दी इवेन्ट ऐंड टु रिप्रेजेन्ट दी काम र्‍यूमर आफ दी टाइम।"

सहायक होती है तो कहीं-कहीं ऐतिहासिक तथ्यों के विषय में भ्रम उत्पन्न करके निर्धारण असम्भव तक कर देती है। लोकगाथा की इस विशेषता का परिहार नहीं हो सकता। लोकगाथाएं अपने साथ अपने समय और स्थान का गंध लिए रहती हैं। भोजपुरी लोकगाथाओं में भी यही विशेषता पाई जाती है। 'लोरिकी' की लोकगाथा कहाँ से उद्‌भूत हुई, इसका पता नहीं, परन्तु आज उसमें बिहार प्रांत के कई नगरों तथा गाँवों का उल्लेख है। यह लोकगाथा इसी प्रान्त में विशेष रूप से गाई जाती है इसलिए इसमें यहाँ के स्थानों का भी समावेश हो गया है।

नगरों तथा ग्रामों के उल्लेख के साथ-साथ इन लोकगाथाओं में समाज में प्रचलित संस्कारों, पूजा-पाठों, तथा विश्वासों का भी मिश्रण हो जाता है। सामाजिक शास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से लोकगाथाएँ बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। इनमें प्रचलित धार्मिक कृत्यों, प्रथाओं या संस्थाओं का भी समावेश हो जाया करता है। सीधे नाथपंथ से सम्बद्ध गोपीचंद और भरथरी की लोकगाथाओं को हम छोड़ भी दें तो हमें 'सोरठी' की लोकगाथा के अन्तर्गत नाथधर्म का उल्लेख मलता है।

५—मौखिक परंपरा

मौखिक परंपरा से हम अपरिचित नहीं हैं। भारतीय साहित्य का एक बृहद् अंश लिपिबद्ध होने के पूर्व मौखिक परंपरा में सुरक्षित था। पुराणकालीन शिक्षापद्धति में मौखिक शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण थी। गुरुजनों से शिष्यों में होता हुआ प्राचीन-साहित्य एक अक्षुण्ण मौखिक परंपरा में सुरक्षित रहा। लोक-साहित्य तो सदा से मौखिक परंपरा का ही साहित्य रहा है। समाज का हृदय और समाज की वाणी ही इसका आवास है। इसलिए लिपिबद्ध करने का कभी प्रयास नहीं हुआ और मौखिक परंपरा इसकी एक विशेषता बन गई। समाज के हृदय और वाणी में वास करने वाली लोकगाथाएं सहज ही व्यापक और लोकप्रिय भी हुईं। यदि उन्हें लिपिबद्ध कर दिया गया होता तो वे समाज की ग्राह्यता से च्युत होकर, एक निर्धारित रूप में, एक विशिष्ट पाठक-वर्ग की संपत्ति होकर रह जातीं। वे एक शब्द बन जातीं जिसमें समाज की आत्मा की प्रतिध्वनि नहीं, वे एक तथ्य बन जातीं जिसमें सामाजिक विकास का प्रतिबिंब नहीं। आज तक किसी भी लोकगाथा की हस्तलिखित प्रति नहीं मिली है। वैसे तो कुछ भोजपुरी लोकगाथाएं प्रकाशित भी हो गई हैं किन्तु वे उतनी लोकप्रिय नहीं जितनी मौखिक लोकगाथाएं। इसे लोकगाथाओं का सौभाग्य

ही मानना चाहिए। लोकगाथाएं अपनी मौखिक परंपरा के बल से समाज में परिव्याप्त हैं, इसीलिए निसर्गत: उनमें समाज की प्रगति एवं चेतना का दिग्दर्शन होता है। फ्रेंच विद्वानों का मत है कि लोकगाथाओं में जीवन का प्रवाह तभी तक रहता है जब तक लेखक के बाँध से उनकी चेतना आबद्ध नहीं कर दी जाती। किटरेज का स्पष्ट मत है कि लिपिबद्ध लोकगाथा लोक-संपत्ति न होकर साहित्य की संपत्ति हो जाती है।[१]

लोकगाथाओं की मौखिक परंपरा के विषय में फ्रैंक सिजविक ने भी कहा है कि लोकगाथा तभी तक जीवित रह सकती है जब तक मौखिक साहित्य के रूप में सुरक्षित रहती है। उसे लिपिबद्ध करने का अर्थ है उसे मार डालना।[२] भाषा के अध्ययन की दृष्टि से भी लोकगाथाओं के रूप की विविधता बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुई है। लोकगाथाओं से देश के विभिन्न भू-भागों पर अक्षुण्ण एकात्मता और एकजातीयता की एक ऐसी भावना फैली है, जिसमें देश को एक सूत्र में बाँध देने की क्षमता है। इसी कारण भोजपुरी बोलने वालों में आल्हा-ऊदल के प्रति उतनी ही आत्मीयता है जितनी बुन्देलों में।

६—उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव

लोकगाथाओं के अन्तर्गत उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव रहता है। लोक-जीवन का सांगोपांग वर्णन-मात्र ही लोकगाथाओं का प्रधान विषय है। इस-लिए स्वाभाविक रूप से लोक-जीवन के गुण-दोष एवं आकांक्षाएं उसमें वर्तमान रहती हैं। लोकगाथाएं एक कथा का आधार लेकर समस्त लोक का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें ऐसी प्रवृत्ति कहीं भी नहीं मिलती जिसमें गुणों का तो ब्योरेवार वर्णन हो किन्तु दोषों को छिपा दिया गया हो। यह प्रवृत्ति तो कथात्मक-काव्य

---

१ वही—"व्हाट वाज़ वन्स दी पोजेशन आफ दी फोक ऐज ए होल बिकम्स दी हेरिटेज आफ दी लिटरेचर ओनली ..." पृ० १२

२ फ्रैंक सिजविक—दी बैलेड, पृ० ३९

"इन दी ऐक्ट आफ़ राइटिंग डाउन यू मस्ट रिमेम्बर दैट यू आर होल्डिंग टु किल दैट बैलेड 'वीरुम वालिटेयर पार ओरा' इज दी लाइफ आफ ए बैलेड। इट लिव्स ओनली व्हाइल इट रिमेन्स व्हाट दी फ्रेंच 'विथ ए चार्मिंग कन्फ्यूज़न आफ आइडियाज़' काल ओरल लिटरेचर।"

में ही पाई जाती है। वस्तुतः लोकगाथाओं में रचयिता का कुछ भी भाग नहीं रहता। लोकगाथा अपनी कथा स्वयं कहती है। उसमें रचयिता के वैयक्तिक प्रवृत्ति की तनिक भी छाया नहीं रहती। न तो वह अपने दृष्टिकोण से उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही करता है और न उसके विपरीत ही कुछ कहता है। लोकगाथा के चरित्रों का भी वह पक्ष नहीं लेता।[1] लोकगाथा का वर्णन-मात्र करना ही गायक का कार्य है। इस प्रकार लोकगाथाएं शिक्षा अथवा उपदेश नहीं देतीं। शिक्षा अथवा उपदेश ग्रहण करने का उत्तरदायित्व तो श्रोता पर रहता है।

भोजपुरी लोकगाथाओं में भी उपर्युक्त विशेषता पाई जाती है। परन्तु हम यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि लोकगाथाओं में उपदेशात्मक प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव ही रहता है। भोजपुरी लोकगाथाएं भारतीय जीवन और परंपरा को लेकर निर्मित हुई हैं। यह सच है कि लोकगाथाओं के रचयिताओं ने अपनी ओर से उसमें कुछ भी नहीं जोड़ा है, परन्तु भारतीय आदर्श कहीं भी नहीं छूट पाया है। उनमें पग-पग पर आदर्श की भावना मिलती है तथा असत्य पर सत्य की विजय दिखाई गई है। यहाँ यह भी सोचना नितान्त असंगत है कि गायक लोकगाथाओं को गाते समय उन्हें आदर्शवादी बना देते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि गायक स्वयं लोकगाथाओं की कथा में निहित आदर्शवाद से प्रभावित रहता है। यह हमारा प्रत्यक्ष अनुभव है। गायक गाथाओं को अत्यन्त पवित्र भाव से देखते हैं और उसे विधिपूर्वक गाते हैं। इस प्रकार भोजपुरी लोका गाथाओं के नायकों के लोकरंजनकारी कार्यों से, चरित्रों के त्याग एवं तपस्य-से, सती स्त्रियों के जीवन से अनेक शिक्षा मिलती है। भोजपुरी लोकगाथाओं में जहाँ जीवन का अति यथार्थवादी चित्रण हुआ है, वहाँ भी आदर्श नहीं छूट सका है। भोजपुरी लोकगाथाओं के प्रथम रचयिता के सम्मुख यह आदर्श अवश्य ही उपस्थित रहा होगा। इसलिए भोजपुरी समाज जब इन लोकगाथाओं का श्रवण करता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि सभी रामायण अथवा सत्य-नारायण व्रत की कथा सुन रहे हैं। आदर्श चरित्रों के कार्यकलापों के साथ हृदय प्रवाहित होता रहता है। गायक जब गाथा के अन्त में कहता है कि हे

---

१ चाइल्ड—इं० ऐंड स्का० पा० बैं०, पृ० ११, भूमिका भाग।

"फाइनली देयर आरनो कमेन्ट्स आर रिफलेक्शन्स बाई दी नैरेटर-ही इज़ नाट डाइसेक्ट आर साइकोलइज, ही इज़ नाट टेक साइड्स फ़ार आर अगेन्स्ट एनी आफ दी ड्रैमेटिस परसोनी"

भगवान ! जिस प्रकार अमुक आदर्श-चरित्र का विजय हुआ है और उसके सुख के दिन लौटे हैं, उसी प्रकार सभी श्रोताओं के दिन भी लौटें; और गायक की मंगल-भावना के साथ श्रद्धा-भाव से श्रोता विसर्जित होते हैं।

राबर्ट ग्रेव्स का कथन है कि गायक यदि लोकगाथा को नैतिक और उपदेशात्मक बनाता है तो इसका अर्थ यह है कि वह समुदाय (ग्रुप) से विच्छेद करके सुसंस्कृत रचनाओं का पक्षपाती हो गया है। उसमें एक ऐसा पक्षपात उत्पन्न हो गया है जिसके कारण उस में और समुदाय में एक प्रकार का असामंजस्य उपस्थित हो जाता है।[१] यहाँ एक बात विचारणीय है। ग्रेव्स के मत के विरुद्ध भोजपुरी लोकगाथाओं के गायक में समाज से अविच्छिन्न होते हुए भी जो उपदेशात्मकता या आदर्श-भावना वर्तमान है, उसका क्या समाधान है ? इस समस्या के मूल में सांस्कृतिक विभिन्नताएं निहित हैं और ग्रेव्स ने जो मत सूचित किया है, वह मूलतः आदर्शवादी भारतीय समाज के लिए लागू नहीं हो सकता। उनका मत पाश्चात्य जीवन और लोकगाथा के विश्लेषण पर ही आधारित है।

७—अलंकृत शैली का अभाव

ग्रामगीतों पर विचार करते हुए पं० रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं, "ग्रामगीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्रामगीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्रामगीत में रस है, महाकाव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है और अलंकार मनुष्य-निर्मित. . . .ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं, इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छन्द नही केवल लय है, लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।"[२] यह कथन लोकगाथाओं पर पूर्णतया प्रतिफलित होता है। उनमें अलंकृत शैली का नितान्त अभाव रहता है। इसका पहला कारण यह है कि लोकगाथाओं के निर्माण में संपूर्ण समाज का सहयोग होता है। लोकगाथा किसी एक व्यक्ति की

---

१ राबर्ट ग्रेव्स—दी इंगलिश बैलेड, पृ० ९ तथा २०

"मारलाइजिंग आर प्रीचिंग इन ए बैलेड इज़ ए साइन दैट दी बार्ड इज डिफिनिटली आउटसाइड दी ग्रुप ऐंड इज इन टच विथ कल्चर, ए पार्टिज़न बायस इज़ इन्काम्पिटेबुल विथ ग्रुप ऐक्शन।"

२ पं० रामनरेश त्रिपाठी—ग्रामगीत, पृ—९

पूंजी नहीं होती। दूसरा कारण यह है कि लोक गाथाएँ प्रारंभिक सभ्यता के चित्र सम्मुख रखती हैं। संस्कृत-कलाओं का विकास उस समय नहीं हुआ था। समाज ने यथाविधि अपनी अनुभूतियों को इन लोकगाथाओं में अभिव्यक्त कर दिया। अतएव लोकगाथाओं में अलंकृत शैली का अभाव होना उसकी स्वाभाविकता है।

अलंकृत कविता किसी न किसी व्यक्ति की रचना होती है। कवि बड़े यत्न से उसे सजाने का प्रयत्न करता है और अपनी आंतरिक भावनाओं को अभिव्यंजना देकर अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ देता है। लोकगाथाओं में इस प्रवृति का पूर्ण अभाव रहता है। लोकगाथा एक स्वाभाविक प्रवाह है जो कभी समतल भूमि पर, कभी उबड़-खाबड़ रास्तों पर, कभी वन में तो कभी पहाड़ों में हो कर बहता है। उसमें हमें सभी कुछ मिलेगा जोकि स्वाभाविक और यथार्थ है। अलंकृत कविता और लोकगाथा में वही अन्तर है जो बाल-सौन्दर्य और युवा-सौन्दर्य में है। लोकगाथाओं में एक सहज मर्मस्पर्शिता होती है जो लोकगीतों में नहीं मिलती। श्री स्टीनस्ट्रूप का कथन है कि लोक गाथाओं का वर्णन-पद्धति में एक ऐसी नैसर्गिकता रहती है जैसी मां और शिशु के सलाप में मिलती है।[१]

लोकगाथाओं में पिंगल-शास्त्र के नियम अत्यन्त शिथिल हैं। यह अवश्य है कि यत्र-तत्र अलंकार बिखरे पड़े हैं, परन्तु वे सहज ही आ गये हैं। राबर्ट ग्रेव्स का कथन सत्य है कि लोकगाथाएँ कला की दृष्टि से बहुत विकसित नहीं होती हैं। अविकसित कला से उनका अभिप्राय है छन्द एवं अलंकार विधान इत्यादि का अभाव। लोकगाथाओं की भावधारा काव्यात्मक बनाने के पहले ही काव्यात्मक रहती है, कल्पना द्वारा कलात्मक बनाने के पहले ही वह कलात्मक रहती है, गाने के पहले ही उसमें संगीतात्मकता रहती है।[२] इस प्रकार लोक-गाथाओं का प्रधान गुण उनकी स्वाभाविकता है। अपने स्वाभाविक प्रवाह में लोकगाथा काव्यशास्त्र के मौलिक आदर्शों को भी हमारे सम्मुख रखती है।

१—गुमेट—ओ० इं० बै० पृ० ३१—"टाक लाइक ए मदर टु हर चाइल्ड"

२—राबर्ट ग्रेव्स—दी इंगलिश बैलेड, पृ० १६

"इट हैज बीन नोटेड दैट दी बैलेड प्रापर इज नाट हाईली ऐडवान्स्ड इन टेकनीक, बाई 'ऐडवान्स्ड टेकनीक' इज मेन्ट कम्पलीट वर्स फार्म्स, दी इंजीनियस यूज आफ मेटाफर ऐंड अलेगरी, ऐंड ए प्रेजेन्टेशन आफ आईडियाज ह्विच इज पोयेटिकल बिफोर इट इज पोयेटिक, आर्टिस्टिक बिफोर इट इज इमैजिनेटिव, म्युजिकल बिफोर इट इज इन्टेन्डेड फार सिंगिग।"

केवल हमारे देखने का दृष्टिकोण उचित होना चाहिए। हमें पिंगल-शास्त्र के नियम-उपनियम से लोकगाथाओं की परीक्षा नहीं करनी चाहिए।

८—टेकपदों की पुनरावृत्ति

टेकपदों की पुनरावृत्ति लोकगाथाओं की एक प्रधान विशेषता है। लोकगाथाओं के गाने की राग समस्वर होता है तथा द्रुतगति लय में गाया जाता है। टेकपदों से गाथा का महत्व इसलिए बढ़ जाता है कि प्रथम, समस्वर के कारण एकरसता निर्माण होने की जो सम्भावना रहती है, वह नहीं होने पाती। द्वितीय उपयोगिता यह है कि टेकपदों के कारण गायक को साँस लेने का अवकाश मिल जाता है। पाश्चात्य लोकगाथाओं में दो प्रकार के टेक-पद होते हैं। एक को 'रिफ्रेन' तथा दूसरे को 'इन्क्रीमेन्टल रिपीटीशन' कहा जाता है। 'रिफ्रेन' का इतिहास नहीं प्राप्त होता है पर ऐसी संभावना है कि लोकगाथाओं के साथ ही साथ इसका भी उद्भव हुआ हो। लोकगाथाओं के गायन के लिये जब समूह एकत्र होता है तो बीच-बीच में कुछ विशेष प्रकार के शब्द उच्चरित होते हैं। इससे वातावरण ओजस्वी हो जाता है तथा पूरे समूह को ऊब नहीं होती। रिफ्रेन दो प्रकार का होता है। एक में तो निरर्थक या सार्थक शब्दों का उच्चारण होता है तथा दूसरे में प्रारम्भ में कही गई पंक्तियों को बार-बार दुहराया जाता है। भोजपुरी लोकगाथाओं में प्रथम प्रकार का रिफ्रेन मिलता है। प्रत्येक पंक्ति के अन्त में तथा प्रारम्भ में 'रेनुकी', हो, रामा तथा एकिया हो रामा' का उच्चारण होता है।

'इन्क्रीमेन्टल रिपीटीशन' रिफ्रेन से एक पग आगे की वस्तु है। इसमें प्रथम पंक्ति, दूसरे पंक्ति के पश्चात् पुनः आती है। परन्तु उसकी पुनरावृत्ति में किसी एक नवीन शब्द द्वारा कथा का विकास सूचित हो जाता है। भोजपुरी लोकगाथाओं में 'इन्क्रीमेन्टल रिपीटीशन' (बुद्धिपरक आवृत्ति)[२] नहीं पाई जाती पर लोकगीतों में अवश्य मिलती है। एक उदाहरण इस प्रकार है—

बिरना झीनी-झीनी पतिया आमिली कई
बिरना को भई बरियवा के पूत्ते

१—वही—"फर्स्ट दी रिफ्रेन हि्वच दो इट्स हिस्ट्री इज़ वन आफ दी आब्सक्योरेस्ट चैप्टर्स इन लिटरेचर ऐंड आर्ट, इज़ मेनीफेस्टली ए्ग्वाइन्ट आफ कनेक्शन बिटवीन दी बैलेड ऐंड दी थ्रांग।"

भोजपुरी लोकगाथाओं में यह क्रिया नहीं पाई जाती है। वहाँ प्रत्येक पंक्ति कथा को निरन्तर आगे बढ़ाती रहती है। गायक को पीछे मुड़ने का अवकाश ही नहीं रहता। वह केवल रिफ्रेन का ही प्रयोग करता है जिससे श्रोता का उसे साहचर्य मिलता है और वह एकरसता से मुक्ति पा जाता है।[१]

९—रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव

लोकगाथाओं के अज्ञात रचयिता के विषय में पहले ही विचार किया जा चुका है, और यह निश्चित हो गया है कि उसका प्रत्येक अन्वेषण सर्वथा असंभव है। अन्वेषण की इस अक्षमता के होते हुये भी यह निश्चित है कि लोकगाथाओं का आदि रचयिता अवश्य रहा होगा। यह होते हुये भी उसकी रचना में उसके व्यक्तित्व की छाप नहीं दिखाई पड़ती। प्राचीन काव्यों में यह प्रवृत्ति नहीं थी। अज्ञात लेखकों के भी उपलब्ध रचनाओं में भी उनका व्यक्तित्व स्पष्ट परिलक्षित होता है, परन्तु लोकगाथाओं में ऐसी व्यक्तिपरकता नहीं मिलती। प्रो० स्टीनस्ट्रप का कथन है कि लोकगाथाओं में "मैं" का नितान्त अभाव रहता है।[२]

आदि-गायक केवल कथामात्र कहता है। अपनी ओर से किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी नहीं करता। प्रो० किटरेज ने इसी तथ्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है, "यदि यह संभव हो जाय कि कोई कथा एक सजग वक्ता के माध्यम के बिना स्वतः अपनी कथा कह सके तो लोकगाथा ऐसी ही कथा होगी।"[३] फ्रैंक सिजविक ने भी लिखा है कि "लोकगाथा की विशेषता उसके रचयिता के व्यक्तित्व की सत्ता में नहीं, उसके व्यक्तित्व के नितान्त अभाव में है"।[४]

१०—लम्बा कथानक

लोकगाथाओं की एक प्रमुख विशेषता है, उसका लम्बा कथानक। प्रायः

१—फ्रैंक सिजविक—दी बैलेड—पृ० २७
"दी सिन्गर्स मोनोटोनी इज़ रेगुलर्ली रिलव्डि बाई दी आडियन्स"

२—एफ़० बी० गुमेर—इं० बै० पृ० ६३

३—चाइल्ड—इं० ऐंड स्का० पा० बै० भूमिका, पृ० ११

"इफ इट वुड बी पासिबुल टु कन्सीव ए टेल ऐज़ टेलिंग इटसेल्फ विदाउट दि इन्स्ट्रूमेन्टलिटी आफ ए कान्शस स्पीकर दि बैलेड वुड बी सच ए टेल"

४—फ्रैंक सिजविक—दि बैलेड, पृ० ११

सभी लोकगाथाओं का स्वरूप विशाल होता है। यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि कथात्मक गीतों को ही लोकगाथा कहते हैं। लोकगाथा के अन्तर्गत एक कथा का होना अत्यन्त आवश्यक है। यह कथा चरित्रों के जीवन का सांगोपांग वर्णन करती है, जिसके परिणामस्वरूप लोकगाथा वृहद् हो जाती है। लोकगाथाओं के लम्बा होने का दूसरा कारण है संपूर्ण समाज का सामूहिक सहयोग। प्रत्येक व्यक्ति उसमें कुछ न कुछ जोड़ता ही है। जिस प्रकार प्रारम्भ में 'महाभारत' एक छोटे आकार का 'जयकाव्य'-मात्र था उसी प्रकार लोकगाथाओं का भी प्रारम्भ रहा होगा और कालान्तर में उनका स्वरूप विशाल हो गया होगा।

अँग्रेजी लोकसाहित्य में छोटी तथा बड़ी, दोनों प्रकार की लोकगाथाएँ मिलती हैं, परन्तु भारतीय लोकगाथायें अधिकांश रूप में लम्बे कथानक वाली ही हैं। इनका आकार महाकाव्य की भाँति होता है। भोजपुरी का आल्हा, लोरिकी, विजयमल तथा सोरठी आकार में किसी महाकाव्य से कम नहीं है।

लोकगाथाओं का कथानक किसी विशेष नियम से नहीं प्रारम्भ होता। वह किसी भी स्थान से प्रारम्भ हो जाता है। राबर्ट ग्रेव्स का कथन है कि लोकगाथाएं नाटक के अन्तिम भाग से प्रारम्भ होती हैं तथा बिना किसी निर्देश के चरम सीमा पर पहुँचती हैं।[१] ग्रेव्स के कथन का आशय यह है कि लोकगाथाओं में कथा का आरम्भ अकस्मात् हो जाता है। उसमें किसी परिचय या भूमिका का विधान नहीं रहता। भोजपुरी लोकगाथाओं में भी यही बात देखने को मिलती है। कथानक के प्रमुख अंश से गाथा प्रारम्भ हो जाती है और इस प्रकार त्वरित् गति से वर्णन प्रवाहित रहता है।

लम्बा कथानक लोकगाथाओं की ऐसी विशेषता है जो उसे लोकगीतों से पृथक् कर देती है। लोकगीतों में भावना प्रधान होती है। उनमें जीवन के किसी अंश की ही भावपूर्ण व्यंजना रहती है। इसी कारण वे छोटी होती हैं। लोकगाथाओं का कर्त्तव्य होता है कथा कहना, अतएव वे लम्बी होती हैं।

११—संदिग्ध ऐतिहासिकता

लोकगाथाओं के सभी विद्वान इस विषय पर एकमत हैं कि लोकगाथाओं में या तो ऐतिहासिकता होती ही नहीं और यदि होती भी है, तो उसका

१—राबर्ट ग्रेव्स—दी इंगलिश बैलेड, पृ० ६

"दी बैलेड प्रापर बिगिन्स इन दी लास्ट ऐक्ट आफ दी ड्रामा ऐंड मूव्स टु दी फाइनल क्लाइमेक्स विदाउट स्टेज डाइरेक्शन्स".

इतिहास अत्यन्त संदिग्ध होता है। लोकगाथाओं के रचयिता को इतिहास-निर्माण की चिन्ता नहीं रहती। ऐतिहासिक अथवा अनैतिहासिक घटनाओं पर आधारित लोकगाथाओं की रचना उन घटनाओं के साथ ही प्रारम्भ हो जाती हो, यह अनिवार्य नहीं। यह भी संभव है कि उसके रचनाकाल और वर्णित घटना से कुछ भी सम्बन्ध न हो।[1]

भोजपुरी लोकगाथाओं की ऐतिहासिकता बहुत संदिग्ध है। बाबू कुँवर सिंह, आल्हा, गोपीचन्द तथा भरथरी का तो इतिहास में वर्णन मिलता है, परन्तु अन्य गाथाएँ जैसे लोरिकी, विजयमल, शोभानयका बनजारा, सोरठी तथा बिहुला इत्यादि की ऐतिहासिकता अत्यन्त संदिग्ध है। लोकगाथाओं के भौगोलिक वर्णनों से उनके ऐतिहासिक सत्य का केवल आभास होता है। वस्तुतः उनकी प्रमाणिकता संदिग्ध है और इतिहास में उनका महत्व नहीं है।

इन उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त भोजपुरी लोकगाथाओं में कुछ अन्य विशेषताएँ भी मिलती है, जिनका यहीं उल्लेख कर देना समयोचित होगा। भोजपुरी लोकगाथाओं में दो प्रधान विशेषताएँ मिलती है जो निम्नलिखित हैं—

१—सुमिरन

२—पुनरुक्ति

१—सुमिरन

अधिकांश भोजपुरी लोकगाथाओं में सुमिरन प्राप्त होता है। गायक जब लोकगाथा गाना प्रारंभ करता है तो कथानक के प्रारंभ में वह सभी देवी-देवताओं का सुमिरन करता है। हमारे यहाँ प्राचीन काव्यों में अथवा नाटकों में भी यही परंपरा मिलती है। प्रत्येक महाकाव्य के प्रारंभ में देवी-देवताओं की वंदना की जाती है। उसी प्रकार लोकगाथाओं के गायक, गाथा को निर्विघ्न

१—इंसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना—बैलेड पृ० ९५

"बैलेड्स हिस्टारिकल और अदरवाइज मे आर मे नाट एराइज इम्मीजिएटली आउट आफ दी इवेन्ट्स दे नैरेट्, दी डेट आफ कंपोजीशन में बियर नो रिलेशन टु दी थीम्स" तथा देखिए—जार्ज लारेन्स गोमे 'फोकलोर ऐज एन हिस्टरिकल साइंस' पृ० ८

पूर्ण करने के लिए सभी देवी-देवता, पीर-फकीर, राजा इत्यादि की वन्दना करते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

'रामा रामा रामा रामा राम जी के नइयाँ हो ना
'राम जी के नइयाँ करऽ सुमिरनवाँ हो ना
'राम जी दुल्हा जी होइह दयालवा हो ना
'रामा माता जी के करीं सुमिरनवा हो ना
'रामा जिन्ह दिहलीं जनमिया हो ना
'रामा सुमिरी गुरू के चरनिया हो ना
'रामा जिन्ह दिहले गयानवा हो ना
'रामा तबे त सुमिरों बीर हनुमनवा हो ना
'रामा सुमिरी पाँचों पांडवा हो ना
'रामा तबे त सुमिरी गंगा माई हो ना
'रामा ठैंया सुमिरों माता भुइयाँ तबे सुमिरों डिहवरवारे ना
'रामा तबे त सुमिरों गाँव के बम्हनवारे ना
'रामा तब त सुमिरों पीर सुबहानवारे ना

इस प्रकार लोकगाथा का गायक, पृथ्वी, ग्रामदेवता, देवी दुर्गा, माता, गुरु, ब्राह्मण, पीर सुबहान, पाँचों पाण्डव, हनुमान तथा गंगा जी का सुमिरन करके लोकगाथा को प्रारम्भ करता है। कभी-कभी यह सुमिरन बड़ा लम्बा होता है। इसमें कलकत्ते की काली देवी, अंग्रेज शासक, दिल्ली का दरबार इत्यादि सबका सुमिरन रहता है।

इस सुमिरन से यह स्पष्ट होता है कि लोकगाथा के गायक किसी धर्म या राजा से विरोध नहीं करते। वे सबमें सामंजस्य रखने की चेष्टा करते हैं। वे सबको बड़ा और पूज्य मान कर उनकी वंदना करते हैं। उनकी केवल यही इच्छा रहती है कि लोकगाथा का गायन निर्विघ्न पूरा हो।

२—पुनरुक्ति

भोजपुरी लोकगाथाओं में पुनरुक्ति की भरमार रहती है। यह विशेषता भोजपुरी में नहीं अपितु अन्य प्रान्तों के लोकगाथाओं मे भी पाई जाती है। आल्हा के लोकगाथा के प्रत्येक खंड में पुनरुक्ति पाई जाती है। युद्ध-वर्णन की शैली तो सर्वत्र समान ही है। वास्तव में पुनरुक्ति से एक लाभ भी होता है।

लोकगाथाओं का कथानक अत्यन्त विशाल होता है। इसलिए यह संभव हो सकता है कि प्रारम्भ में कही गई बात को श्रोता भूल जाएँ। अतएव इस कठिनाई से बचने के लिए गायक लोकगाथा के प्रमुख घटना को बारंबार दोहराया करते हैं।

लोकगाथाओं के प्रकार

भारतवर्ष में लोकगाथाओं के प्रकार पर अभी तक किसी ने विचार नहीं किया है, परन्तु पाश्चात्य देशों में, विशेष रूप से इंगलैंड में चार प्रकार की लोकगाथाएं पाई जाती हैं।

१—परंपरानुगत लोकगाथाएं (ट्रेडिशनल बैलेड्स)

२—चारण लोकगाथाएं (मिन्स्ट्रेल बैलेड्स)

३—प्रकाशित लोकगाथाएं (ब्राडसाइड बैलेड्स)

४—साहित्यिक लोकगाथाएं (लिटरेरी बैलेड्स)

परंपरानुगत लोकगाथाएं वे हैं जो कि शताब्दियों से मौखिक परंपरा द्वारा प्रचारित हैं और जिनके रचयिता अज्ञात हैं। साथ ही लोकगाथाएं का काल भी संदिग्ध है।[1] इस प्रकार की लोकगाथाओं को 'लोकप्रिय' (पापुलर) लोकगाथा भी कहा जाता है।

चारण लोकगाथाएं वे हैं जो चारणों द्वारा गाई जाती हैं। मध्ययुग में इंगलैंड में चारण हार्प पर समाज में प्रचलित अथवा निर्मित्त लोकगाथाएं गाते थे। विशपपर्सी ने चारण-गाथाओं को ही प्रतिनिधि लोकगाथा माना है, परंतु फ्रांसिस चाइल्ड और प्रो० किटरेज के मत में चारण-लोकगाथा परंपरानुगत गाथाओं से सर्वथा भिन्न हैं।[2]

प्रकाशित लोकगाथाएं वे हैं जो मुद्रण-यंत्र आविष्कार के पश्चात् पेशेवर लोकगाथा गाने वालों द्वारा एक कागज के बड़े पृष्ठ (ब्रॉड शीट) पर प्रकाशित करके बड़े नगरों में बेची जाती थीं। इनमें विशेष रूप से ऐतिहासिक विषय ही रहा करते थे। इनके रचयिताओं का नाम भी उन पृष्ठों पर रहता था। सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में इसका अत्यधिक प्रचार था। शेक्स-

---

१—इन्साईक्लोपीडिया अमेरिकाना 'बैलेड्स', पृ० ९६

२—चाईल्ड—इं० एंड स्का० पा० बैलेड्स भूमिका, प० २३

पियर ने इस प्रकार की लोकगाथाओं का उल्लेख किया है।[1] प्रकाशित लोकगाथाओं का एक अन्य नाम भी मिलता है। इसे 'स्टाल बैलेड्स' भी कहते हैं।

साहित्यिक लोकगाथाएं वे हैं जिनकी रचना कवियों ने की है।[2] परम्परानुगत लोकगाथाओं से प्रभावित होकर इंगलैंड में अनेक प्रसिद्ध कवियों ने साहित्यिक लोकगाथाओं की रचना की। प्रसिद्ध कवियों में शेक्सपियर, वाल्टर स्काट, ब्राउनिंग तथा टेनसिन का नाम मुख्य है। इन कवियों ने लोकगाथाओं की रचना कर अंग्रेजी साहित्य का भंडार भरा। इसके पश्चात् तो अंग्रेजी साहित्य में लोकगाथाओं की धूम से रचना हुई। वर्ड्सवर्थ तथा स्विनबर्न इत्यादि कवियों ने भी लोकगाथाओं की रचना की। इन सभी कवियों ने परम्परानुगत लोकगाथाओं से ही स्फूर्ति प्राप्त की। साहित्यिक लोकगाथाओं को कलात्मक लोकगाथाएं[3] तथा सुसंस्कृत लोकगाथाएं[4] भी कहा जाता है।

समस्त भारतीय लोकगाथायें परंपरानुगत लोकगाथाओं के अन्तर्गत ही आती हैं। भारतवर्ष में अनेक चारण लोकगाथाओं की रचना हुई है। 'पृथ्वीराज रासो', 'बीसलदेव रासो', 'खुमाण रासो' तथा 'आल्हखंड' इत्यादि सभी चारण-गाथा हैं। ये गाथाएं कला की दृष्टि से चारण-गाथाओं से एक पग आगे ही बढ़ी हुई हैं। इनमें काव्यशास्त्र के नियम भी मिलते हैं और इनकी रचना कागज कलम के साथ हुई है। आज जगनिक के 'आल्हखंड' को छोड़कर सभी साहित्यिक कृतियाँ मानी जाती हैं। हम इन्हें इंगलैंड की साहित्यिक लोकगाथाओं के अन्तर्गत भी रख सकते हैं। इनके अतिरिक्त भारतवर्ष में अन्य साहित्यिक लोकगाथायें नहीं पाई जातीं। वास्तव में किसी भी महाकवि ने परंपरानुगत लोकगाथाओं से स्फूर्ति या प्रेरणा लेकर कोई साहित्यिक रचना नहींकी।

प्रकाशित लोकगाथाएं भी भारतवर्ष में नहीं उपलब्ध होतीं। परंपरानुगत लोकगाथाएं ही प्रकाशित रूप में आने लगीं हैं परन्तु उनका रंग-रूप अधिकांश में मौखिक के समान ही है।

लोकगाथा और लोकगीत में अंतर

प्रस्तुत अध्याय के अंतिम भाग में लोकगाथा एवं लोकगीत के अन्तर पर

---

१ ई० अमे० 'बैलेड्स', प० ९६

२ इ० अमे० बैलेड्स वाल ३ पृ० ९६

३ आर्ट बैलेड्स

४ कल्चरल बैलेड्स

विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा। लोकगाथा के नामकरण, परिभाषा, उत्पत्ति एवं विशेषताओं पर पीछे हम भली-भाँति विचार कर चुके हैं। लोकगीत वस्तुतः लोकगाथा से सर्वथा भिन्न विषय है। लोकगीत के विषय में हम यह कथन उद्धृत कर सकते हैं कि "यह संभवतः वह जातीय आशुकवित्व है जो कर्म या क्रीड़ा के ताल पर रचा गया है।"१ लोकगीतों में प्रधान रूप से भावों की व्यंजना रहती है। इसीलिए कुछ विद्वान इसे 'भावगीत' भी कहते हैं। इनमें मानवता अपने जीवन की साधारण अनुभूतियों को सरल भाव से व्यक्त करती हैं।

लोकगीत का विषय नैमित्तिक जीवन से संबन्ध रखता है। इनमें नित्य का लोकाचार, जीवन के सुख-दुख, जीवन का अन्तर्द्वन्द्व, प्रार्थनाएं और याचनाएँ रहती हैं। लोकगाथाओं में लोकगीतों के उपर्युक्त विषय गौण रहते हैं। उनमें जीवन का सांगोपांग वर्णन रहता है। किसी व्यक्ति विशेष से लोक-गाथा का संबंध रहता है। कथा के स्वरूप में उस व्यक्ति का संपूर्ण जीवन उसमें चित्रित रहता है।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगाथा और लोकगीत के अन्तर को दो प्रधान भागों में विभाजित किया है।२ ये दो भेद इस प्रकार हैं—प्रथम स्वरूपगत तथा द्वितीय विषयगत। स्वरूपगत भेद के विषय में इतना जानना आवश्यक है कि लोकगीतों का स्वरूप अथवा आकार छोटा होता है, परन्तु लोकगाथा का आकार महाकाव्य के समान होता है। विषयगत भेद यह है कि लोकगीतों में विभिन्न संस्कारों—जैसे जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह इत्यादि, विभिन्न प्रथाओं एवं त्योहारों तथा ऋतुओं से संबंधित गीत सम्मिलित रहते हैं। लोकगाथाओं का विषय प्रधान रूप से कोई कथा रहती है। इस कथात्मकता का लोकगीतों में पूर्णतया अभाव रहता है।

लोकगाथाएं अपने विशाल आकार में लोकगीतों के प्रायः सभी विषयों का समावेश कर लेती हैं। लोकगाथाओं में जन्म एवं विवाह का विधिवत् वर्णन रहता है तथा उनसे संबन्धित गीत भी रहते हैं। उनमें ऋतु एवं देवी-देवताओं से संबन्धित गीत रहते हैं। परन्तु इतना अवश्य है कि लोकगाथाओं में लोक-गीतों के विषय कथानक के साथ ही चिपटे रहते हैं। उनका अपना स्वतंत्र

---

१ लक्ष्मीनारायण सुधांशु—जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त—अध्याय ८, पृ० १७४।

२ डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन (अप्रकाशित) पृ० ४९३।

अस्तित्व नहीं रहता है, यद्यपि प्रकाशित लोकगाथाओं में हमें यत्र-तत्र अलग से लोकगीत भी मिल जाते हैं। लोकगाथाओं में लोकगीत के विषय एक संघर्ष के साथ चित्रित किए गए हैं। लोकगाथाओं के चरित्रों के साथ ही साथ लोकगीतों की भावधारा यदा-कदा चित्रित हो गई है। लोकगाथाओं के चरित्रों पर अनेकानेक प्रकार के दुख एवं सुख का प्रभाव पड़ता है। उसी के फलस्वरूप कहीं नायिका विरह वर्णन करती है तो कहीं संयोग शृंगार का सुख भोगती है। नायक कहीं विजय में हर्षोन्मत्त है तो कहीं अपनी लाचारी पर दुःखित है। लोकगाथाओं में रहस्य एवं रोमांच का गहरा पुट रहता है, जिसका कि लोकगीतों में नितान्त अभाव रहता है।

उपर्युक्त अन्तर के अतिरिक्त लोकगाथा और लोकगीत में कुछ गौण भेद भी रहता है। लोकगीतों में संगीतात्मकता की मात्रा अत्यधिक होती है। विभिन्न भावों के अनुसार संगीत की शैली बदलती जाती है। इसके विपरीत लोकगाथाओं में संगीतात्मकता एकसमान रहती है। अधिकांश भोजपुरी लोकगाथाएं द्रुतिगति लय में गाई जाती हैं। एकसमान लय में ही प्रेम, विरह तथा युद्ध इत्यादि सभी का वर्णन रहता है।

लोकगीतों में वाद्ययन्त्र का अभिन्न सहयोग रहता है। लोकगीत इसके बिना अधूरे लगते हैं। परन्तु लोकगाथाओं के गायन में कभी-कभी बिना वाद्ययन्त्र के भी काम चल जाता है। लोकगीतों के गायन में हम नृत्य का भी यदा-कदा सहयोग पाते हैं, परन्तु लोकगाथाओं में नृत्य अत्यल्प है।

अध्याय २

भोजपुरी लोकगाथायें

समस्त भोजपुरी जनपद में प्रधान रूप से नौ लोकगाथाओं का प्रचलन है। क्रम से ये इस प्रकार हैं:—

१—आल्हा
२—लोरिकी (अथवा लोरिकायन)
३—विजयमल (अथवा कुँवर विजई)
४—बाबू कुँवर सिंह
५—शोभानयका बनजारा
६—सोरठी
७—बिहुला
८—राजा भरथरी
९—राजा गोपीचन्द

वास्तव में यदि हम इन्हें उत्तरी भारत की लोकगाथायें कहें तो अनुपयुक्त न होगा। क्योंकि उत्तर-प्रदेश से लेकर बंगाल तक ये गाथायें किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं। इनके गाने के ढंग तथा कथानक में अन्तर अवश्य दिखाई पड़ता है, किन्तु अन्ततोगत्वा कथा वही हैं, भाव वही है। उदाहरणस्वरूप—'आल्हा' मूलतया भोजपुरी लोकगाथा नहीं हैं क्योंकि इसके पात्र महोबा (बुन्देलखंड) के हैं किन्तु इसकी लोकप्रियता बुन्देली तथा भोजपुरी प्रदेशों में समान रूप से है। इसी प्रकार 'बिहुला' की गाथा है। यह उत्तर-प्रदेश से लेकर बंगाल तक गाई जाती है। पश्चिमी भोजपुर-प्रदेश में इसका नाम 'बाला' या 'बारहलखन्दर' है। गोपीचन्द तथा भरथरी की गाथा भी उत्तर-प्रदेश से बंगाल तक प्रचलित है।

उपर्युक्त गाथाएँ किसी न किसी रूप में संपूर्ण उत्तरी-भारत म प्रचलित अवश्य हैं, परन्तु ये भोजपुरी प्रदेश में जितनी लोकप्रिय हैं उतनी अन्यत्र नहीं। भोजपुरी जीवन में तदाकार होकर ये लोकगाथाएं जीवन से अभिन्न बन गई हैं। इसलिये इन्हें भोजपुरी लोकगाथाएं कहना अधिक समीचीन होगा। भोजपुरी की अन्य बहिनों—मगही और मैथिली—में भी ये गाथाएं वर्तमान हैं, परन्तु वहाँ विद्यापति और हर्षनाथ अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय हैं। भोजपुरी में वस्तुतः

लिखित साहित्य का अभाव है। लोकगाथाओं एवं लोकगीतों द्वारा ही यहाँ के जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। भोजपुरी क्षेत्र में तुलसी और व्यास तो वे वरदान हैं जिनके सहारे लोग भवसागर पार उतरते हैं। परन्तु भोजपुरी जीवन के दुख-सुख, आकांक्षाएँ और नाना प्रवृत्तियाँ जिस सुन्दर ढंग से इन लोकगाथाओं में परिलक्षित हुई हैं, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि ये ही भोजपुरी जीवन की वास्तविक प्रतिनिधि हैं।

अगले अध्यायों में प्रत्येक गाथा के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार किया जायेगा। यहाँ पर केवल इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

(१) **आल्हा**—मूलतया और प्रधानतया यह बुन्देली लोकगाथा है। हिन्दी साहित्य के विद्वान् इस गाथा का सम्बन्ध चारण-काल से बतलाते हैं। इसके रचयिता जगनिक हैं परन्तु इनके नाम का उल्लेख कहीं नहीं मिलता और न मूल लिपि ही मिलती है। लोगों का विश्वास है कि पहले इस लोकगाथा में केवल अठारह युद्धों का ही वर्णन था, परन्तु कालान्तर में इनकी संख्या बावन हो गई। 'आल्हा खंड' के नायक आल्हा तथा ऊदल का सम्बन्ध महोबे के राजा परमर्दिदेव से है। महोबा का पक्ष लेकर इन दो वीरों ने अनेक युद्ध किये तथा उस युग के अन्यतम वीर पृथ्वीराज चौहान को भी परास्त किया। 'आल्हा' के नाम से ही यह लोकगाथा प्रसिद्ध है। जनश्रुति है कि 'आल्हा' गाने से पानी बरसता है। भोजपुरी प्रदेश में भी यह गाथा बड़े चाव से गाई जाती है। बुन्देली पर भोजपुरी का अत्यधिक प्रभाव है जिसके आधार पर आल्ह खंड को भोजपुरी लोकगाथा कहना अनुचित न होगा। यह ढोल और नगाड़े पर गाई जाती है।

(२) **लोरिकी**—'रामायण' के ढंग से इस लोकगाथा का नाम 'लोरिकायन' भी पड़ गया है। गायक इसे रामायणसे भी वृहद् मानता है। वह कहेगा 'बारहखंड रमायन त चउदह खंड लोरिकायन।' अहीर जाति का यह 'जातीय काव्य' है। चौदह खंड तो एक व्यंजना है। वस्तुतः चार खंड में यह लोकगाथा गाई जाती है। यह गाथा एक प्रकार से वीर काव्य है, जिसका नायक 'लोरिक' है। दुष्टों को मार कर शान्ति-स्थापन करना ही लोरिक का मुख्य उद्देश्य है। उसकी वीरता, उसका प्रेम, अहीरों के लिये गर्व की वस्तु है।

(३) **विजयमल**—यह भी एक वीर-गाथा है जिसमें मल्ल क्षत्रियों के एक युद्ध का वर्णन है। इसकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है। 'आल्हा' की गाथा में जिस प्रकार प्रत्येक विवाह में युद्ध अनिवार्य है उसी प्रकार इसमें विवाह के कारण ही युद्ध हुआ है। यह गाथा मध्ययुगीन प्रतीत होती है। विजयमल इस लोकगाथा का नायक है।

(४) **बाबू कुंवरसिंह**—यह भोजपुरी वीरता का प्रतिनिधित्व करने वाली अमर गाथा है। बाबू कुँवरसिंह बिहार के शाहाबाद जिले के भोजपुरी गाँव के निवासी थे। आप एक छोटे से राज्य के अधिपति थे। १८५७ के भारतीय विद्रोह में आपने पूर्वी भारत में प्रमुख रूप से भाग लिया। हम जानते ही हैं कि इस संगठनहीन विद्रोह का परिणाम भयानक हुआ। कुंवर सिंह वीरगति को प्राप्त हुए किन्तु अपना नाम अमर कर गये। भोजपुरी प्रदेश मे उनकी गाथा अत्यन्त आत्मीयता से गाई जाती है और श्रोता सुनते-सुनते आठ-आठ आँसू रोने लगते हैं। भोजपुरी लोकगीतों में भी इनका चरित्र वर्णित है। अंग्रेजो के प्रति बाबू कुंवर सिंह ने जो घृणा दिखलाई, वह बिहार के भोजपुरी प्रदेश में आज भी वर्तमान है।

(५) **शोभानयका बनजारा**—यह लोकगाथा व्यापारी जाति से संबन्ध रखती है। प्राचीन समय में व्यापारी बैलों तथा नावों पर सामान लाद कर अनेक वर्षों के लिये व्यापार करने बाहर चले जाते थे। इसका नायक शोभानायक है जो व्यापार के लिये मोरंग देश चला जाता है नायिका 'जसुमति' है। इस गाथा में विरह और पातिव्रत-धर्म का अति रोचक वर्णन मिलता है। समाज की कुरीतियों, अंध-विश्वासों तथा ननद-भौजाई के कलह-संबन्धों का सुन्दर चित्र खींचा गया है। वास्तव में यह एक प्रेमकाव्य है।

(६) **सोरठी**—यह एक अत्यन्त रोचक गाथा है। भोजपुरी समाज इस लोकगाथा को बड़ी पवित्र दृष्टि से देखता है। 'सोरठी' नायिका है तथा 'वृजाभार' नायक। प्रेमियों का मिलन कितना कष्ट-साध्य होता है, इसमें यही चित्रित है। साथ-साथ खल-पात्रों के अनेक प्रकारों का और अलौकिक तत्वों का भी विशद चित्रण हुआ है। इस पर नाथ-संप्रदाय की स्पष्ट छाप पड़ी है। वृजाभार नायक इसी मत का मानने वाला दिखलाया गया है, परन्तु समन्वय सभी मतों का है। इसमें कोई भी देवी-देवता छूट नहीं पाया है। 'सोरठी' एक साध्य है जिसे प्राप्त करने के लिये वृजाभार अनेक साधनायें करता है। सोरठी पैदा होते ही पिता-माता से दुर्भाग्यवश बिछुड़ जाती है और एक कुम्हार के यहाँ पलती है। दैवी कृपा से किस प्रकार उसकी प्राण-रक्षा होती है यह सुनने योग्य है। गाने का ढंग भी रोचक है। एक साथ दो व्यक्ति गाते हैं। राग भी कर्णप्रिय होता है।

(७) **बिहुला**—इस लोकगाथा का दूसरा नाम 'बालालखन्दर' भी है। पश्चिमी भोजपुरी प्रदेश में यह इसी नाम से प्रसिद्ध है किन्तु पूर्वी भोजपुरी प्रदेश से लेकर बंगाल तक इसका 'बिहुला नाम ही प्रचलित है। यह पाति-

व्रत धर्म की एक अमर गाथा है। 'सावित्री सत्यवान' से किसी भी प्रकार इसका महत्व कम नहीं। मृत पति को जीवित करने के लिये बिहुला को सदेह स्वर्ग जाना पड़ा। इस गाथा का सम्बन्ध बंगाल के मनसा-संप्रदाय से है। लोगों का यह भी विश्वास है कि भागलपुर जिले के चम्पानगर नामक गाँव से इस गाथा का सम्बन्ध है। यह विषय विवादास्पद है, और इसका समाधान बिहुला के प्रकरण में मिलेगा। पूर्वी विहार तथा बंगाल में नागपंचमी के दिन बिहुला सती की भी पूजा होती है। बिहुला आज पुराणों की देवी बन चुकी है, इस कारण इसका कालनिर्णय अत्यन्त दुरूह है। गायक इस गाथा को बड़े पूज्य भाव से गाते हैं। प्रचलित विश्वास है कि जब बिहुला की गाथा गाई जाती है तो समीप ही सर्प भी आकर सुनते हैं। यदि उस समय साँप दिखाई पड़ जाय तो उसे मारा नहीं जाता।

(८) **राजा भरथरी**—ये भी नाथ परंपरा के अनुगामी थे। नवनाथों में इनका भी नाम आता है। राजा भरथरी एवं रानी सामदेई की प्रसिद्ध कथा ही इस लोकगाथा का विषय है। इस गाथा को जोगी लोग ही गाते हैं। उज्जैन के राजबंश से इनका सम्बन्ध था। ये राजा विक्रमादित्य के बड़े भाई समझे जाते हैं तथा राजा गोपीचन्द के मामा भी बतलाये जाते हैं।

(९) **राजा गोपीचन्द**—नाथ संप्रदाय के अन्तर्गत 'गोपीचन्द' का नाम प्रमुख रूप से आता है। नवनाथों में एक नाथ ये भी थे। जोगियों में गोपीचन्द की गाथा बहुत प्रचलित है। गोपीचन्द राज्य और भोग-विलास, सब कुछ छोड़कर माता मैनावती के आदेशानुसार तपस्या करने वन में चले गये। उनके इस त्याग की कथा ही लोकगाथा रूप में प्रचलित है। गोपीचन्द की गाथा समस्त भारत में प्रचलित है। गोपीचन्द का सम्बन्ध बङ्गाल के पालवंश से था।

भोजपुरी लोकगाथाओं का एकत्रीकरण

भोजपुरी लोकगाथाओं का एकत्रीकरण एक प्रकार से नहीं के बराबर ही हुआ है। आज से सत्तर वर्ष पूर्व बृहदाकार लोकगाथाओं को एकत्र करने का सराहनीय प्रयत्न श्री जी० ए० ग्रियर्सन ने किया था। आपने 'इंडियन ऐंटीक्वेरी'१ में आल्हा के विवाह के गीत का भोजपुरी रूप अँग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित करवाया है। इसी प्रकार जेड० डी० एम० जी० में

१—जी० ए० ग्रियर्सन—सांग आफ आल्हाज़ मैरेज—इंडियन ऐन्टीक्वेरी वाल० १४—१८८५, पृ० २०९-२२७।

'सेलेक्टेड स्पेसिमेंन आफ बिहारी लैंग्गुएज'[१] के अन्तर्गत शोभानायका बनजार की गाथा उद्धृत की है। गोपीचन्द की गाथा के मगही एवं भोजपुरी रूप को जे० ए० एस० बी०[२] के एक प्रति में तथा विजयमल की गाथा को जे० ए० एस० बी०[३] की दूसरी प्रति में पूर्ण रूपेण प्रकाशित करवाया है। एक विदेशी द्वारा वास्तव में यह एक सराहनीय कार्य है। ग्रियर्सन के पश्चात् भोजपुरी लोकगाथाओं का एकत्रीकरण नहीं हुआ। लोकगीतों को अवश्य एकत्रित किया गया। श्री रामनरेश त्रिपाठी, श्री चंचरीक, श्री दुर्गाशंकर सिंह तथा डाक्टर कृष्ण देव उपाध्याय का नाम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। भोजपुरी लोकगाथाओं पर लोगों की दृष्टि गई अवश्य किन्तु उनका वैज्ञानिक रूप से एकत्रीकरण नहीं किया गया। वैसे प्रायः सभी भोजपुरी लोकगाथाओं के प्रकाशित रूप कलकत्ते[४] और बनारस से[५] प्राप्त होते हैं, किन्तु ये प्रकाशन प्रामाणिक नहीं हैं। इनमें कथानक भी यत्र-तत्र परिवर्तित कर दिये गये हैं। इन पुस्तकों से हम लोकगाथाओं के महत्त्व को नहीं समझ सकते। प्रत्येक प्रकाशित लोकगाथाओं पर तथाकथित रचयिता के व्यक्तित्व की छाप है। इन प्रकाशित पुस्तकों से कुछ लाभ अवश्य हुआ है। प्रथमतः, प्रकाशित होने के कारण ये उत्तरी भारत के प्रायः सभी मेलों में बिकते हैं, जिससे अन्य लोगों को भोजपुरी का परिचय मिलता है। द्वितीय, इस प्रकार से इन लोकगाथाओं का अन्य प्रदेशों में भी प्रचार हो जाता है। किन्तु इतना होते हुये भी जब तक स्वयं इन लोकगाथाओं को सुना तथा एकत्र न किया जाय तब तक इनका वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया जा सकता।

लोकगाथाओं का एकत्रीकरण—लोकगाथाओं के लिये उनके मूल मौखिक रूप को प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिये गांवों में जाने की अवश्यकता पड़ती है। कभी-कभी नगरों में भी 'आल्हा', 'गोपीचन्द' तथा 'भरथरी' के गाने वाले मिल जाते हैं, परन्तु समान्यतया गाथाओं के गायक गांवों में ही

१— वही —सेलेक्टेड स्पेसिमेन आफ बिहारी लैन्गुएज-जेड० डी० एम० जी० १८८७, पृ० ४६८-५०९

२— ,, —अथ गीत गोपीचन्द—जे० ए० एस० बी० वाल० LVI १८८५, पृ० ३५

३— ,, —विजैमल—जे० ए० एस० बी० १८८४ (i) पृ० ९४

४—दूधनाथ प्रेस, हवड़ा

५—बैजनाथ प्रसाद बुक्सेलर, बनारस

निवास करते हैं । लोकगाथाओं को एकत्र करने के लिये गांवों में तो भटकना पड़ता है साथ-साथ एकत्रीकरण में भी अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं ।

खेती के दिनों में गाने वाले बड़ी कठिनाई से उपलब्ध होते हैं । ये लोकगाथाएं उनके जीविकोपार्जन के साधन नहीं हैं । प्रधान रूप से गायक किसान अथवा मजदूर होते हैं । केवल जोगियों की जाति ही 'गोपीचन्द' तथा 'भरथरी' की गाथा सुना कर जीविकोपार्जन करती है । 'आल्हा' के गायक भी वर्षा के प्रारम्भ से अंत तक आल्हा गाकर थोड़ा बहुत जीविकोपार्जन कर लेते हैं । शेष सभी लोकगाथाओं के गायक पेशे पर गाने वाले नहीं होते । इसलिये जोताई-बोआई के दिनों में इनका मिलना बड़ा कठिन होता है । यदि उनके खेतों में फसल आ गई है अथवा कट चुकी है तो वे अवश्य उपलब्ध हो जाते है ।

लोकगाथाओं के गायक अधिकांश रूप में रात को अवकाश पाने पर गाते हैं । उनमें यह प्रवृत्ति रहती है कि लोकगाथाओं को रात को भरी सभा में गाना चाहिये । वास्तव में यह परंपरा इसी कारण बनी है कि दिन में उन्हें कार्य से अवकाश नहीं मिलता अतःरात में थकान मिटाने के लिये गायकों का दल आ जमता है । इस दल में बूढ़े, बालक, जवान सभी पूर्ण उत्साह से भाग लेते हैं । आस-पास की स्त्रियां भी सुनने के लिये चली आती हैं ।

'मुझे ये गाथाएं लिखनी है'—यह प्रस्ताव सुन कर वे अचम्भित हो जाते हैं । इसके कई कारण हैं । पहला यही कि आखिर पढ़े-लिखे बाबुओं के लिये इन ग्राम्य-गाथाओं में धरा ही क्या है ? दूसरा यह कि ग्रामीण नहीं समझ पाते कि इतनी लम्बी लोकगाथाएं किस प्रकार से लिखी जायँगी । वस्तुतः लोकगाथायें कंठ-परंपरा से ही एक दूसरे के पास चली आती हैं और गायकों को लिखने अथवा पढ़ने की आवश्यकता पड़ती नहीं । इसी कारण उन्हें लिखने-लिखाने की बात भी नहीं रुचती अतः लिखाने के लिये उनकी मनौती करनी पड़ती है ।

जब वे लिखाने के लिये तैयार हो जाते हैं तो उससे भी बड़ी कठिनाई सामने आती है । कंठ परंपरा से प्राप्त लोकगाथाएं जब द्रुत गति से गाई जाती हैं तो उनकी पंक्तियाँ गायक को स्मरण होती जाती हैं और गायक अबाध गति से गाते रहते हैं । परन्तु लिखाने के लिये जब उनसे धीरे धीरे गाने को कहा जाता है तो वे गाथाओं की पंक्तियाँ भूल जाते हैं, उनकी कड़ी टूट जाती है, प्रवाह रुक जाता है । इस प्रकार लेखक और गायक, दोनों असमंजस में पड़ जाते हैं ।

यदि गाथाओं का लिखने वाला शीघ्र गति का हुआ तब तो बहुत काम

बन जाता है । गायकों को लिखाने में विशेष कष्ट नहीं होता । साथ ही उस व्यक्ति का आदर भी बढ़ जाता है, कि 'बाबू बहुत विद्वान हैं' ।

गाथा आप क्यों लिख रहे हैं ? लिख कर क्या करियेगा ? इत्यादि प्रश्नोत्तर का उत्तर देना एक जटिल समस्या होती है । कभी कभी तो लोग यह समझ लेते हैं कि पुस्तक छपवा कर पैसा कमायेगा । खोजकार्य क्या है, यह समझाने की मैंने अनेक चेष्टा की परन्तु मुझे स्वयं विश्वास नहीं कि मैं संतोषजनक उत्तर दे सका हूँ । कुछ लोगों का व्यंग भी सुनना पड़ा 'ढेर पढ़लको काल हवे' इत्यादि । इस समय पंडित रामनरेश त्रिपाठी जी की कठिनाई स्मरण हो उठती हैं ।

आल्हा, लोरिकी, गोपीचन्द तथा भरथरी की गाथा में सहगान नहीं होता वरन् एक ही व्यक्ति गाता है । परन्तु अन्य लोकगाथाएं दो व्यक्ति एक साथ गाते हैं तथा समूह भी टेकपदों में साथ देता है ।

लोकगाथाओं के श्रोता की भी संख्या पर्याप्त चाहिये अन्यथा गायकों का रंग नहीं जमता । कम संख्या में उनका उत्साह ठंडा पड़ जाता है । उनके उत्साह को बनाये रखने के लिये, ताड़ी, बीड़ी, पान-सुरती का भी प्रबन्ध करना पड़ता है । गाने के पश्चात् गायकों को पारिश्रमिक भी देना पड़ता है ।

गायक, लोकगाथाओं के विषय में बहुत अधिकारिक ढंग से अपना ज्ञान प्रकट करते हैं । यदि आप उनके ज्ञान को महत्व नहीं दें तो उन्हें बहुत बुरा लगता है । वे प्रकाशित गाथाओं को नकली तथा स्वयं की गाई हुई लोकगाथा को असली बतलाते हैं। इस प्रकार उनका मौखिक परंपरा में अटूट विश्वास प्रकट होता है ।

लोकगाथाओं को लिखते समय कभी-कभी अंध-विश्वासों का भी सामना करना पड़ता है । 'बिहुला' की गाथा लिखते समय एक विशेष कठिनाई उपस्थित हुई । गायक गाने के लिये तैयार नहीं होता था। मैंने कारण पूछा । उसने उत्तर दिया कि, 'आज से चार वर्ष पूर्व जब वह बिहुला सुना रहा था तो वहाँ पर साँपों का जोड़ा आ पहुँचा । एक श्रोता ने बहुत मना करने पर भी उन साँपों को मार डाला । उसी समय से उसके मन के दुख एवं भय समा या और बिहुला गाना बन्द कर दिया ।' वास्तव में बिहुला की गाथा में साँपों का स्थान महत्वपूर्ण है । मेरे बहुत कहने-सुनने पर उसने गाथा को गाकर लिखवाया । इस प्रकार हम लोकगाथा से सम्बन्धित एक निवास को पाते हैं ।

लोकगाथाओं तथा गायकों की कुछ समान विशेषतायें

यह हम पहले ही विचार कर चुके हैं कि भोजपुरी जीवन में लोकगाथाओं का महत्व अत्यधिक है। भोजपुरी समाज इन लोकगाथाओं को रामायण, महाभारत भागवत तथा सत्यनारायण-कथा से कम महत्व नहीं देता। साथ ही उसी पवित्र भाव से देहाती समाज इन गाथाओं को सुनता तथा गाता भी है। गायक इन्हें बड़े विधि से गाते हैं। गाते समय कोई विघ्न न पड़े, इसलिये गायक स्थान, समय, देवी-देवता इत्यादि सभी की विनती करते हैं, जिसे सुमिरण कहा जाता है।

कुछ भोजपुरी लोकगाथायें जातियों में विभाजित हैं। 'गोपीचन्द' तथा 'भरथरी' की गाथा केवल जोगी लोग गाते हैं। 'लोरिकी' की गाथा अहीर लोग गाते हैं। 'शोभानयका बनजारा' तथा 'विजयमल' की गाथा तेली और नेटुआ लोग गाते हैं। सोरठी, बिहुला, इत्यादि शेष गाथाओं के गाने वालों की कोई निश्चित जाति नहीं होती। इन्हें किसी भी जाति के लोग गा सकते हैं। गोपीचन्द, भरथरी तथा लोरिकी को छोड़कर अन्य गाथाओं के लिये कोई विशेष नियम नहीं है और कोई भी उन्हें गा सकता है। लोकगाथाओं के लोकप्रिय होने का यह एक प्रधान कारण है।

लोकगाथा जोगियों को छोड़ कर अन्य गायकों के जीविकोपार्जन का साधन नहीं है। ये लोग केवल अपनी रुचि एवं परंपरा से सीखते हैं। कभी कभी तो ये गवैये मेलों में जाकर बैठ जाते हैं और गाथाओं का गान करते हैं। लोगों की भीड़ एकत्र हो जाती है। वहाँ यदि कोई पैसा भी देना चाहे तो वे गायक उसे नहीं लेते। इसके उनसे स्वाभिमान को चोट पहुँचता है।

एक ही गाँव में यदि एक लोकगाथा-विशेषके गाने वाले दो व्यक्ति हुये तो उनकी शब्दावली भिन्न होगी, यद्यपि कथा समान ही रहती है। इसका प्रधान कारण है कंठ-परंपरा। केवल जोगियों को एक ही ढंग से गाते हुये सुना जाता है।

प्रायः सभी गायकों का राग एक ही ढंग का होता है। वैसे इच्छानुसार वे बदल भी लेते हैं। तात्पर्य यह कि प्रत्येक लोकगाथाओं का अपना-अपना एक राग होता है, परन्तु गवैयों को राग बदलने की स्वतन्त्रता रहती है। 'सोरठी' लोकगाथा को मैंने दो-तीन रागों में सुना था। इन रागों का शास्त्रीय राग-पद्धति से कोई सम्बन्ध नहीं।

लोकगाथाओं में वाद्ययन्त्रों का होना अनिवार्य है। जोगियों की सारंगी उनके वेष-भूषा का एक अङ्ग है। 'गोपीचन्द' और 'भरथरी' वे सारङ्गी पर ही

गाते हैं। सोरठी, बिहुला, शोभानयका, बनजारा, कुंवरसिंह, विजयमल आदि गाथाएँ खँजड़ी पर गायी जाती हैं। साथ में टुनटुनी भी रहती है। 'आल्हा' की गाथा ढोल पर गाई जाती है। वस्तुतः वाद्यों के ताल-स्वर पर गाते हुए गायक संपूर्ण वातावरण को इतना भावमय बना देते हैं कि तदनुकूल श्रोता-जन कभी रोमांचित हो जाते हैं और कभी करुणा-विगलित हो जाते हैं।

प्रायः सभी भोजपुरी लोकगाथाएं एक बार में गाकर समाप्त नहीं की जातीं क्योंकि ये अत्यधिक लम्बी होती हैं। इसलिये इन्हें टप्पे में गाया जाता है। 'टप्पा' एक प्रकार का सर्ग-विभाजन है। एक टप्पे में एक छोटा कथानक रहता है। लोकगाथाएं सुमरण से प्रारंभ की जाती हैं। साथ-साथ प्रत्येक टप्पे के प्रारम्भ में भी एक छोटा सुमिरण रहता है। वस्तुतः टप्पों से गायक को विश्राम मिलता है।

गायक वृन्द लोकगाथाओं की प्राचीनता सतयुग-त्रेता से कम नहीं बतलाते लोकगाथाओं की ऐतिहासिकता पर इनका अटूट विश्वास है। यह उनका एक ऐसा विश्वास है जिसके लिए उनके पास कोई प्रमाण नहीं। गायक भी गाथाओं के अतिवर्णनों, काल तथा स्थान दोषों को स्वीकार करते हैं।

लोकगाथा के आदि-रचयिता के विषय में सभी गायक मौन रहते हैं।

भोजपुरी लोकगाथाओं का वर्गीकरण

अध्ययन की दृष्टि से भोजपुरी लोकगाथाओं का वर्गीकरण अत्यन्त आवश्यक है। किस गाथा में किस भावना की विशेष प्रधानता है, इसी एकमात्र तथ्य के आधार पर इनका वर्गीकरण किया जा सकता है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी लोकगाथाओं को तीन भागों में बाँटा है जो इस प्रकार हैं—१

१—वीरकथात्मक लोकगाथायें

२—प्रेमकथात्मक लोकगाथायें

३—रोमांचकथात्मक लोकगाथायें

ऊपर के विभाजन से स्पष्ट है कि भोजपुरी लोकगाथाओं में हमें तीन तत्व प्राप्त होते हैं: प्रथम वीर-तत्व, द्वितीय प्रेम-तत्व, तृतीय रोमांच-तत्व। भोजपुरी लोकगाथाएं प्रमुख रूप से इन्हीं तीन तत्वों में विभाजित हैं। इनके अतिरिक्त एक

---

१ डा० कृष्णदेव उपाध्याय 'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन', पृ० ४९९

और तत्व भी इन लोकगाथाओं में मिलता है, जिसकी ओर उपाध्याय जी का ध्यान नहीं गया है, वह है योग-तत्व। भोजपुरी लोकगाथाओं के अन्तर्गत 'राजा गोपीचन्द' एवं 'भरथरी' की गाथा इसी वर्ग में आती है। इन दोनों गाथाओं में वीरता, लौकिक प्रेम तथा रोमांच का पुट प्रायः नहीं के बराबर है। यह दोनों त्याग एवं तप की गाथाएं हैं। सांसारिक मोह-माया को छोड़ कर गोपीचन्द और भरथरी नाथ-धर्म की शरण लेते हैं। अतएव इन दोनों लोकगाथाओं को एक अलग वर्ग में ही रखना उचित है।

इस वर्गीकरण का यह अर्थ नहीं है कि तत्व विशेष की दृष्टि से विभाजित लोकगाथाओं में अन्य तत्व नहीं मिलते हैं। वास्तव में प्रत्येक लोकगाथा में प्रत्येक तत्व मिलता है। उदाहरण के लिये आल्हा को हम वीर कथात्मक गाथा मानते हैं, परन्तु उसमें प्रेम-तत्व एवं रोमांच तत्व का भी अभाव नहीं है। इसी प्रकार प्रत्येक लोकगाथा में किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक तत्व वर्तमान है किन्तु प्रत्येक में कोई न कोई तत्व विशेष प्रधान है। इस दृष्टि से भोजपुरी लोकगाथाओं को हम चार भागों में बाँट सकते हैं:—

१—वीरकथात्मक लोकगाथाएं
२—प्रेमकथात्मक लोकगाथाएं
३—रोमांचकथात्मक लोकगाथाएं
४—योगकथात्मक लोकगाथाएं

वीरकथात्मक लोकगाथाओं के अन्तर्गत भोजपुरी की चार लोकगाथाएं आती हैं। वे हैं, आल्हा, लोरिकी, विजयमल तथा बाबू कुंवरसिंह इन चारों लोकगाथाओं के अन्तर्गत वीरतत्व की प्रधानता है। वास्तव में भोजपुरी जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली लोकगाथाएं, वीरकथात्मक गाथाएं ही हैं। बाबू कुंवरसिंह की गाथा को तो हम अर्वाचीन लोकगाथा कह सकते हैं क्योंकि इस का संबंध १८५७ के भारतीय विद्रोह से है। परन्तु अन्य तीनों लोकगाथाओं पर भारतवर्ष की मध्ययुगीन संस्कृति एवं सभ्यता का स्पष्ट प्रभाव है। रजीपूती वीरता, युद्ध की कठिनता, प्रेम एवं लोकरंजन का अत्यन्त सुन्दर चित्र इन गाथाओं में चित्रित किया गया है। ये चारो वीर भारतीय आदर्श एवं वीरता की मूर्तिमंत प्रतीक हैं। दुष्टों का दमन करने के हेतु ही इनके नायकों का जन्म हुआ है। इन्हें पग-पग पर कष्ट झेलना पड़ता है। विवाह भी बिना युद्ध के नहीं संपन्न होता परन्तु ये वीर, पथ की बाधाओं से नहीं विचलित होते। इनका पक्ष सत्य ह, इसलिये देवी-देवता भी इन्हीं की सहायता करते हैं।

भोजपुरी प्रेमकथात्मक लोकगाथा के अन्तर्गत केवल एक ही गाथा आती

है, वह है 'शोभानयका बनजारा' की गाथा। वस्तुतः यह एक प्रेम-काव्य है। इसमें न युद्ध है न कोई विशेष रोमांच ही। त्याग और संन्यास का तो कोई प्रश्न ही नहीं। यह पति-पत्नी के प्रेम एवं विरह का सुन्दर चित्र है। यह लोकगाथा व्यापारी जाति से सम्बन्ध रखती है। इसमें भारतीय स्त्री के महान् पातिव्रत धर्म की अन्यतम झाँकी मिलती है।

भोजपुरी रोमांचकथात्मक लोकगाथाओं के अन्तर्गत दो लोकगाथायें आती हैं, 'सोरठी' तथा 'बिहुला'। इन दोनों लोकगाथाओं में सोरठी और बिहुला का पातिव्रत-धर्म लौकिक धरातल से उठकर अलौकिक स्तर पर पहुँच गया है। वे साधारण स्त्रियाँ नहीं रह गई हैं वरन् देवियाँ बन गई हैं। इनकी तुलना हम पौराणिक सती देवियों से कर सकते हैं। इनका जन्म एक विशेष प्रयोजन के लिये हुआ है। अपनी इहलीला समाप्त करके ये स्वर्ग को चली जाती हैं, परन्तु अपनी परंपरा छोड़ जाती हैं। सीता, सावित्री, दमयन्ती के समान इनका चरित्र है। भोजपुरी समाज इन्हें अत्यन्त पूज्य भाव से देखता है। इनका इहलौकिक जीवन रोमांचकारी घटनाओं से भरा पड़ा है। इनके इंगित पर स्वर्ग की अप्सरायें, दुर्गा, भगवती एवं स्वयं इन्द्र भी कार्य करते हैं। इन दोनों लोक-गाथाओं में जादू, टोना, तथा अद्भुत युद्धों का अत्यधिक वर्णन है। थलचर, वनचर, नभचर सभी इसमें प्रमुख भाग लेते हैं। इन दोनों देवियों की कर्तृत्व शक्ति अत्यन्त प्रबल है, परन्तु कहीं भी स्वाभाविक स्त्रीत्व एवं भारतीय आदर्श से च्युत नहीं होतीं। ये पातिव्रत-धर्म के अनुकूल पति को भगवान के रूप में देखती हैं और पति के सुख के लिये अनेकों यातनायें सहती हैं। स्वर्ग के सभी देवी-देवता इनकी सहायता करते हैं। इन दोनों गाथाओं में यह दिखलाने की चेष्टा की गई है, कि असत्य के अनुगामी चाहे कितने भी प्रबल क्यों न हों, उनका अंत में पराभव ही होता है।

भोजपुरी योगकथात्मक लोकगाथाओं के अन्तर्गत 'राजा गोपीचन्द' एवं 'भरथरी' की गाथा आती है। यह दोनों गाथाएं मध्ययुग के नाथ-संप्रदाय से संबन्ध रखती हैं इन गाथाओं में नाथधर्म के जटिल सिद्धान्तों का अत्यन्त सरल एवं लोक-प्रिय ढंग से प्रतिपादन किया गया है। इन गाथाओं में संसार मिथ्या है, शरीर नश्वर है, सारा वैभव-विलास सारहीन है, ऐसे तत्त्वों का सुन्दर रीति से प्रति-पादन हुआ है। दो प्रतापी राजाओं के त्याग एवं तप की कहानी है। संसारिक मोहमाया को त्याग कर ये राजा योगी भेष धारणकर तप के लिए चले जाते हैं।

भोजपुरी लोकगाथाओं का उद्देश्य—समस्त भोजपुरी लोकगाथाओं में सत्यं, सुन्दर, और शिवं का सिद्धान्त निहित है। लोकगाथाओं के नायक एवं

नायिकाएँ अपने कर्तृत्व से समाज में सदाचार और कर्मशीलता उत्पन्न करने की चेष्टा करते हैं। वास्तव में इन लोकगाथाओं में हमारे देश की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक प्रतिभा का सुन्दर विकास हुआ है। खल प्रवृत्तियाँ चाहे कितनी भी प्रबल क्यों न हों; वे कितनी भी दलबल के साथ क्यों न आक्रमण करती हों परन्तु चिरन्तन सत्य और तपश्चर्या के सम्मुख उनका पराभव लोकगाथाओं में चित्रित किया गया है। सत्य की विजय और असत्य का पराभव ही इन लोकगाथाओं का उद्देश्य है। 'आल्हा' तथा 'बाबू कुँवरसिंह', की गाथा का अन्त यद्यपि करुणाजनक है, परन्तु उनमें हम नायकों की कर्मशीलता एवं सच्चरित्रता से सत्य की विजय निहित देखते हैं। लोकगाथाओं में सत्य का पक्ष देवी-देवतागण भी लेते हैं, वे नायकों एवं नयिकाओं को अनेक सहायता देते हैं और उनको विजय दिलाते हैं। भोजपुरी लोकगाथाओं में निहित इस उद्देश्य का पूर्ण विचार हमें अगले अध्यायों में मिलेगा।

अध्याय ३

भोजपुरी वीरकथात्मक लोकगाथा का अध्ययन

(१) आल्हा—भोजपुरी वीरकथात्मक लोकगाथाओं में 'आल्हा' का स्थान प्रमुख है। भोजपुरी लोकगाथा न होते हुये भी भोजपुरी प्रदेश में इसका अत्यधिक प्रचार है। यहाँ के जीवन से यह लोकगाथा अभिन्न हो गई है। अब यह जगनिककृत आल्हखंड सर्वथा भोजपुरिया 'आल्हा' हो गई है। इसके भोजपुरी रूप को देख कर यह कोई नहीं कह सकता कि यह बैसवारी का रूपान्तर है।

हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल के अन्तर्गत 'आल्हा' का उल्लेख होता है। वीरगाथाकाल में प्रबंधकाव्यों एवं महाकाव्यों के साथ साथ वीरगीतों की रचना प्रचुर मात्रा में होती थी। वह अराजकता का काल था। नित्य युद्ध दुन्दुभी बजा करती थी। मुसलमान आक्रमणकारियों से तो युद्ध होता ही था, साथ-साथ फूट के कारण छोटे मोटे राजा आपस में निरन्तर युद्ध किया करते थे। इस कारण उस काल के कवियों एवं गीतकारों ने वीरगाथा अथवा वीर गीतों की रचना की है। डा० श्यामसुन्दरदास का कथन है कि प्रबंधमूलक वीरगाथाओं के अतिरिक्त उस काल में वीरगीतों की भी रचनायें हुई थीं। अनुमान से तो ऐसा जान पड़ता है कि उस काल के रचनाओं में प्रबंधकाव्यों की न्यूनता तथा वीररसात्मक फुटकर पद्यों की ही अधिकता रही होगी। अशान्ति तथा कोलाहल के उस युग में लम्बे-लम्बे चरित्-काव्यों का लिखा जाना न तो संभव ही था और न स्वाभाविक ही। अधिक संख्या में वीरगीतों का ही निर्माण हुआ होगा। युद्ध के लिए वीरों को प्रोत्साहित करने में और वीरगति पाने पर उनकी प्रशस्तियाँ निर्माण करने में वीरगीतों की ही उपयोगिता अधिक होती है।[1]

आल्हा की रचना भी इन्ही वीरगीतों के अन्तर्गत आती है। यह निश्चित है कि 'आल्हा' के समान और भी वीरगीतों की रचना हुई होगी, परन्तु वे काल कवलित हो गये। जैसे जैसे भाटों चारणों की संख्या कम होती गई वैसे वैसे उन गीतों का भी अन्त हो गया। परन्तु जगनिक कृत 'आल्हखंड' अपनी ओजस्विता एवं लोकप्रियता के कारण बचा रहा। हम प्रथम अध्याय में ही इस पर विचार

१—डा० श्यामसुन्दर दास 'हिन्दी भाषा और साहित्य' पृ० २७७

कर चुके हैं। जिस प्रकार प्राचीनकाल में अनेक लोकगाथायें प्रचलित थीं परन्तु आदर्शवादी 'राम' की ही लोकगाथा सर्व प्रिय हुई। महाकवियों ने इसी रामगाथा को ही अपना विषय, चुना। शेष, समय के साथ समाप्त हो गईं। यही बात 'आल्हा' पर लागू होती है।

'आल्हा' की लोकगाथा के अध्ययन के साथ एक नए तथ्य का उद्घाटन होता है। 'भारतीय लोकगाथाओं की परम्परा' शीर्षक अध्याय में हमने विचार किया है कि जब कोई गाथा, गाथाचक्र का रूप धारण कर लेती है, तो निकट भविष्य में महाकाव्य के जन्म होने की संभावना हो जाती है। परन्तु आल्हा की लोकगाथा इसके विपरीत है। कुछ विद्वानों के मत के अनुसार प्रथमतः आल्हा महाकाव्य की रचना 'आल्हखंड' अथवा परमालरासो के रूप में हुई थी। हस्तलिखित प्रति के न मिलने के कारण अथवा अपनी ओजस्वी वृत्ति के कारण यह काव्य पुनः लोक की ओर मुड़ चला और लोकगाथा के रूप में अमरता प्राप्त की। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि कभी-कभी लिखित काव्य भी अपने मूल कलेवर को छोड़कर जनता जनार्दन के कंठ में आ विराजता है।[1] वर्तमान समय में 'आल्हा' एक विशुद्ध लोकगाथा होते हुए भी उसे 'लोकगाथात्मक महाकाव्य' सिद्ध करने की चेष्टा हो रही है।

एकत्रीकरण—'आल्हा' की मूललिपि का पता नहीं चलता। सन् १८६५ में फर्रूखाबाद के भूतपूर्व सेटिलमेंट आफिसर श्री चार्ल्स इलियट ने इसे प्रथमतः लिपिबद्ध करवाया था। इसके पश्चात् सर जार्ज ग्रियर्सन ने बिहार में गाई जाने वाली 'आल्हा' के कुछ अंश का अंग्रेजी अनुवाद भी किया[2]। इस प्रकार का कार्य श्री विन्सेन्ट स्मिथ ने भी आल्हा के बुंदेली रूप के संबंध में किया। इसके पश्चात् सर जार्ज ग्रियसन के संपादकत्व में १८२३ में श्री डब्ल्यू० वाटरफील्ड ने आल्हा के एक भाग का अंग्रेजी रूपान्तर 'दी नाइन लाख चेन्स' के नाम से 'कलकत्ता रिव्यू' में प्रकाशित करवाया था। श्री वाटरफ़ील्ड ने 'आल्हा' के कुछ अन्य प्रमुख भागों का अंग्रेजी अनुवाद करके प्रकाशित करवाया था।[3] इसके पश्चात् एकत्रीकरण का और कार्य नहीं हुआ।

'आल्हखंड' का प्रकाशित रूप बाजारों एवं मेलों में बिकता है।[4] इसमें बावन युद्धों का वर्णन है। निस्सन्देह इसमें मिश्रण हुआ है। डा० श्यामसुन्दर

१—डा० शंभूनाथ सिंह-हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—पृष्ठ ३३१

२—इन्डियन एन्टीक्वेरी वाल १४-१८८५-दी सांग आफ़ आल्हाज़ मैरेज

३—डब्ल्यू-वाटरफील्ड-दी ले आफ़ आल्हा

४—आल्हखंड-दूधनाथप्रेस हवड़ा

दास का कथन है कि 'वीरगाथाकाल की रचनाओं में तो विभिन्न कालों की घटनाओं के ऐसे असंबद्ध वर्णन घुस गये हैं कि वे अनेक कालों में अनेक कवियों की हुई रचनाएं जान पड़ती हैं।" इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि गायकों ने अपनी ओर से भी 'आल्हखंड' में मिश्रण किया है, तथा युद्धों की संख्या अनावश्यक रूप से बढ़ा दी है। प्रकाशित पुस्तक में युद्ध की तालिका इस प्रकार है।

(१) संयोगिता स्वयंबर की लड़ाई (पृथ्वी राज तथा जयचन्द का युद्ध) (२) रतीभान की लड़ाई (३) महोबे की लड़ाई (४) माड़ो की लड़ाई (५) अनूपीठोडरमल से लड़ाई (६) सूरजमल से लड़ाई (७) करिया की लड़ाई (८) जम्बै राजा की लड़ाई (९) सिरसा की पहली लड़ाई (पारथ मलखान समर) (१०) आल्हा का ब्याह (नैनागढ़ की लड़ाई) (११) पथरीगढ़ की लड़ाई (मलखान का ब्याह) (१२) बौरीगढ़ की लड़ाई (१३) राजकुमारों की लड़ाई (१४) वीरशाह राजा की लड़ाई (१५) दिल्ली की लड़ाई (१६) दरवाजे की लड़ाई (१७) मड़वेतर की लड़ाई (१८) नरवर गढ़ की लड़ाई (१९) इन्दल हरण (२०) बलख बुखारे की लड़ाई (२१) अभिनन्दन की लड़ाई (२२) आल्हा निकासी (आल्हा का कन्नौज में जाना) (२३) लाखन का ब्याह (शहर बूँदी की लड़ाई) (२४) मोती जवाहिर की लड़ाई (२५) राजा गंगाधर की लड़ाई (२६) गांजर की लड़ाई (२७) हरीसिंह वीरसिंह की लड़ाई (२८) सातभि राजा की लड़ाई (२९) राजा कमलापति की लड़ाई (३०) भूप गोरखा बंगाले की लड़ाई (३१) वाड़इसा आदि की लड़ाई (३२) लाखन के गौना की लड़ाई (३३) सिरसा की दूसरी लड़ाई (३४) चौरा नायब और मलखान की लड़ाई (३५) धीरसिंह तथा मलखान की लड़ाई (३६) गुजरियों की लड़ाई (३७) अभई रंजित की लड़ाई (३८) ब्रह्मानंद की लड़ाई (३९) योगियों (आल्हा ऊदल) आदि की लड़ाई (४०) आल्हा मनौआ (४१) सिहा ठाकुर परहुल वाले से लाखन की लड़ाई (४२) गंगासिंह कोड़हरी वाले से आल्हा की लड़ाई (४३) नदी बेतवा की लड़ाई (४४) लाखन और पृथ्वी राज की लड़ाई (४५) ऊदल का नदी बेतवा पर पहुँचना (४६) बेला के गवने की पहली लड़ाई (४७) बेला के गवने की दूसरी लड़ाई (४८) ब्रह्मानंद का घायल होना (४९) बेला ताहर की लड़ाई (५०) चन्दन बगिया की लड़ाई (५१) चंदन खंभा की लड़ाई (५२) बेला सती।

चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा ने अपनी 'आल्हा' नामक पुस्तक में केवल बत्तीस युद्धों का वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता कि आपने 'आल्हखंड' के

प्रकाशित रूप से प्रमुख युद्धों को ही अपने पुस्तक में चुना है। इन्होंने प्रत्येक युद्ध की सविस्तार कथा गद्य में लिखी है। अपनी ओर से कुछ भी घटाया बढ़ाया नहीं है। युद्धों की अतिरंजना इत्यादि सब उसी प्रकार से वर्णित है।[1]

वस्तुतः आल्हा में लड़ाइयों की संख्या बावन, अनावश्यक रूप से कर दी गई हैं। उसमें बहुत से युद्धों के दो-दो या तीन-तीन भाग करके अलग अलग रख दिए गए हैं। इसी कारण युद्धो की संख्या बढ़ गई है। कुछ विद्वानों का मत है कि 'आल्हखंड' में प्रथमतः केवल तेइस युद्धों का ही वर्णन था। अतएव यह निश्चित है कि 'आल्हा' की लोकगाथा में गायकों द्वारा अत्यधिक मिश्रण हुआ है।

'आल्हा' का प्रकाशित भोजपुरी रूप नहीं प्राप्त होता है। भोजपुरी प्रदेश में गायक लोग आल्हा ऊदल के भिन्न-भिन्न युद्धों का फुटकल रूप में गायन करते हैं। बावनों युद्ध किसी को भी याद नहीं रहता। अब तो प्रकाशित बैसवारी रूप का भी प्रचार हो गया है। भोजपुरी के जिस क्षेत्र से (छपरा जिला) आल्हा का मौखिक रूप प्राप्त हुआ है, वहाँ भी अधिकांश में आल्हखंड (प्रकाशित बैस-वारी रूप) से ही लोकगाथाएँ गाई जाती हैं। उनकी मातृभाषा भोजपुरी होने के कारण उसमें भोजपुरी का प्रभाव पड़ गया है।

लोकगाथा का रचयिता—साधारणतया 'आल्ह खंड' का रचयिता जगनिक माना जाता है। कुछ लोगों की ऐसी भी धारणा है कि जगनिक राजा परमर्दिदेव के बहिन का पुत्र था। समस्त गाथा में जगनिक के नाम का कहीं उल्लेख नहीं होता है और न मूललिपि ही प्राप्त होती है।

श्री वाटरफील्ड का कथन है कि 'आल्ह-खंड' का रचयिता 'पृथ्वीराज-रासो' का चारण चंदबरदाई था।[2] महाकवि चन्द ने 'पृथ्वीराज-रासो' के उन-हत्तरवें समयो में 'महोबा-खंड' के नाम से प्रस्तुत लोकगाथा का वर्णन किया है। इस खंड में पृथ्वीराज द्वारा आल्हा, ऊदल तथा परमाल के पराजय का वर्णन है। 'महोबा खंड' में दिल्ली तथा पृथ्वीराज को अधिक महत्व मिला है।

डा० ग्रियर्सन उपर्युक्त मत महीं मानते। उनका मत है कि 'आल्हखंड' तथा चन्द रचित 'महोबा खंड' वस्तुतः दो भिन्न रचनायें हैं।[3] आल्हाखंड में

१—चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा-'आल्हा'-इंडियन प्रेस, प्रयाग

२—वाटरफील्ड-दीले आफ़ आल्हा-भूमिका जार्ज ग्रियर्सन—पृ० ११

३—वही—पृ० १३

पृथ्वीराज के साथ युद्ध का वर्णन भिन्न प्रकार का है। इसमें आल्हा ऊदल की वीरता का गुणगान है। इसमें महोबा का पतन नहीं होता है।

इस विषय में ग्रियर्सन का मत ही उपयुक्त प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों की धारणा है, जो उचित भी प्रतीत होती है, कि 'पृथ्वीराज-रासो' में प्रथमतः अड़सठ समयो ही था, परन्तु बाद में चलकर उनहत्तर समयो भी जोड़ दिया गया। वस्तुतः दोनों रूपों में बहुत अन्तर ह। प्रथमतः स्वतंत्र 'आल्ह खंड' और 'रासो' की भाषा में भिन्नता है। रासो की भाषा डिंगल है और स्वतंत्र आल्हखंड की भाषा बुन्देलखंडी (बैसवारी) है। द्वितीय अन्तर यह है कि पृथ्वीराज चौहान दिल्ली के अधिपति थे, अतः चन्द ने 'महोबा खंड' में उनकी वीरता का ही गुणगान किया है। परन्तु स्वतंत्र आल्ह खंड में न पृथ्वीराज के चरित्र को प्रधानता दी गई है और न उनके कृत्यों की प्रशंसा ही की गई है। इसके विपरीत आल्हा एवं ऊदल की ही वीरता का वर्णन है।

उपर्युक्त विचार से यह निश्चित हो जाता है कि 'आल्हखंड' एक स्वतंत्र रचना है, जगनिक जिसके रचयिता माने जाते हैं। जगनिक का नाम लोकगाथा में कहीं नहीं आता और न कोई मूल लिपि ही मिलती है। केवल जनश्रुति ही इस बात की सूचना देती है कि लोकगाथा जगनिक कृत है। विद्वानों ने जगनिक का जन्म संवत सं० ११४४ ठहराया है तथा रचना काल सं० १२३० माना है, और जगनिक राजा परमाल के दरबार में था। बस, इन तथ्यों के अतिरिक्त जगनिक के विषय कुछ नहीं प्राप्त होता। उपर्युक्त तिथियों के विषय में भी मतभेद हो सकता है परन्तु इतना निश्चित है कि 'आल्ह खंड' की रचना बारहवीं शताब्दी में ही हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत लोकगाथा भी वास्तविक अर्थ में 'लोकगाथा' है जिसका रचयिता अज्ञात होता है। इसमें लोकगाथा की दूसरी विशेषता भी वर्तमान है और वह है हस्तलिखित प्रति का अभाव, जिससे मौखिक परंपरा ही रक्षा का साधन हो सकी।

आल्हा की लोकगाथा के गाने का ढंग—वैसे आल्हा गाने वाले प्रत्येक ऋतु में मिल जाते हैं, परन्तु वर्षाऋतु में गायक लोग विशेष चाव से 'आल्हा' गाते हैं। लोगों का यह विश्वास है कि 'आल्हा' गाने से वर्षा होती है। अतः जब आषाढ़ के बादल आकाश पर चढ़ने लगते हैं तो 'आल्हा' का गायक बड़े उत्साह से ढोल कंधे पर चढ़ा कर एकत्र जनसमूह के बीच खड़ा हो जाता है और ऊँचा स्वर चढ़ा कर आल्हा गाना प्रारम्भ कर देता है। कभी वह गद्य

की तरह गाथा की पंक्तियों को द्रुतगति से बोलता चला जाता है और कभी पंक्तियों के अंत में बड़े जोर का अलाप ले लेता है।

यह लोकगाथा 'द्रुतगतिलय' में गाई जाती है। ढोल के ताल पर इसकी पंक्तियां त्वरित गति से बोली जाती हैं। कथानक के अनुसार गायक का स्वर बदलता चलता है। युद्ध का वर्णन मानो ऐसा होता है जैसे प्रत्यक्ष युद्ध ही हो रहा है। प्रेम, करुणा भय इत्यादि भावों के साथ गायक स्वर के आरोहावरोह की संगति दिखा कर वातावरण ऊर्जस्वित कर देता है। नेटुआ नामक बनजारे 'आल्हा' विशेष रूप से गाते है।

'आल्ह-खण्ड' का संक्षिप्त परिचय---प्रस्तुत लोकगाथा प्रधान रूप से महोबे राज्य पर ही केन्द्रित हैं। महोबा उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले के अन्तर्गत है। बारहवीं शताब्दी में महोबे का राज्य अन्य छोटे राज्यों के बीच बहुत शक्तिशाली बन गया था। उसका शासक चंदेलवंशी राजा परमाल अथवा परमर्दिदेव था। परमाल पृथ्वीराज का समकालीन और कन्नौज के अधिपति जयचन्द का मित्र एवं सामंत था। इस लोकगाथा में प्रधानतया आल्हा, उदल तथा परमाल के अनेक कुटुम्बियों की वीरकथायें हैं। आल्हा और ऊदल बनाफर शाखा के क्षत्रिय थे तथा परमाल के सामंत और सेनापति थे। राजा परमाल तो भीरु शासक था, परन्तु उसकी स्त्री मल्हना अत्यन्त बुद्धिमती एवं वीर थी। उसी की आज्ञानुसार आल्हा और ऊदल ने अनेकों युद्ध किये। दिल्ली के शासक पृथ्वीराज चौहान को भी नाकों चना चबवाया। साथ ही कन्नौज के अधिपति जयचंद को भी कुछ काल के लिये अधीन किया।

आल्हखंड में विशेष रूप से विवाहों के वर्णन हैं। इनमें सगे सम्बन्धियों के विवाह के निमित्त युद्ध करना पड़ा है। उस समय विवाह में युद्ध होना एक शोभा की बात थी, क्योंकि तभी कन्याहरण का भाव पूर्ण होता था। इन वीरों ने अनेक राजकन्याओं का भी अपहरण किया है। लोकगाथा के अन्त में अत्यन्त करुणाजनक दृश्य उपस्थित होता हैं। वीर बनाफरों का युद्ध में सर्वनाश होता है। उनकी स्त्रियां सती होती हैं तथा कुल के बचे व्यक्ति, आल्हा तथा उसका पुत्र इन्दल गृहपरित्याग करके सदा के लिये कजरी बन में चले जाते हैं। इस विषय में किवंदती है कि आल्हा महोबा का दुख दूर करने के लिये पुनः लौटेंगे।

आल्हा के भोजपुरी तथा बैसवारी रूप में कथा का विशेष अन्तर नहीं मिलता अपितु घटनाओं एवं पात्रों के वर्णन में अन्तर है। तुलनात्मक परीक्षण के लिए आल्हखंड के एक भाग के भोजपुरी तथा बैसवारी रूप को सम्मुख रखेंगे।

आल्हा के ब्याह के भोजपुरी रूप की संक्षिप्त कथा—आल्हा की कचहरी लगी हुई थी, उसमें ऊदल उदास मुख लेकर पहुंचा। बड़े प्रेम से आल्हा ने ऊदल से उदासी का कारण पूछा। ऊदल ने आल्हा और सोनवा के ब्याह की बात कही। इस पर आल्हा ने नैनागढ़ के राजा के प्रताप का वर्णन किया और विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस पर ऊदल ने आल्हा के जीवन को खूब धिक्कारा। अन्त में आल्हा नैनागढ़ चलने के लिये तैयार हो गया। ऊदल सेना सहित बेंदुला घोड़े पर सवार होकर नैनागढ़ की ओर चल दिया। इसी बीच देवी ने ऊदल को स्वप्न दिया और नैनागढ़ के राजा के ऐश्वर्य एवं शक्ति का वर्णन किया। ऊदल ने देवी से जीतने का उपाय पूछा तो देवी ने अस्वीकार कर दिया। ऊदल क्रोधित हो गया और उसने देवी को दो चार चांटा मारा। देवी ने डरकर सब हाल बतला दिया। ऊदल नैनागढ़ में पहुँच गया और फुलवारी में टहलने चला गया। देवी ने पहले ही आकर सोनवा से सब हाल कह सुनाया था। सोनवा फुलवारी में ऊदल से मिलने आई। सोनवा के भाई इन्दरमन ने यह देख लिया। वह ऊदल से युद्ध करने आ पहुँचा। ऊदल ने उसको हरा दिया। सोनवा ने ऊदल की बड़ी आवभगत की। सोनवा आल्हा से मन ही मन प्रेम करती थी।

राजदरबार के लोग इन्दरमन की यह दशा देख कर क्रोधित हो गये। जब सोनवा के विवाह का प्रश्न आया तो लोगों की क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी। सभी ने युद्ध का मार्ग स्वीकार किया। देश विदेश के राजा युद्ध में आये। घमासान युद्ध हुआ। लाखों मर गये, लाखों कराहने लगे, हाथी घोड़ों का तो कोई निशान ही नहीं, खून की नदी बह निकली। राजा की पूर्णतया हार हो गई। इन्दरमन ने विवाह स्वीकार कर लिया। पर उसने धोखे से आल्हा को मारना चाहा। ऊदल समझ गया और आल्हा को गंगा में डूबने से बचा लिया। इन्दरमन निराश होकर सोनवा को ही मार डालना चाहा, पर ऊदल ने उसे भी बचा लिया। लग्न मंडप में भी समदेवा से युद्ध हुआ। ऊदल ने सबको कैद कर लिया और विवाह का डोला लेकर महोबा की ओर चल पड़ा।

बैसवारी रूप—नैनागढ के महाराज की कन्या सुलक्षणा (सोनवा) जब बारह वर्ष की हुई तो उसने माता से जाकर पूछा कि मेरी सब सहेलियों का विवाह हो गया है पर मेरा क्यों नहीं हुआ? माता यह सुन कर चुप हो गई और जाकर महाराज को इसकी सूचना दी। महाराज ने राजपुरोहित को बुलवाकर नेगियों को टीका दिया और आज्ञा दिया कि महोबा छोड़कर सब जगह बर खोजने के लिये जाओ। महोबा इसलिये नहीं भेजा कि वहां परमाल

ने बनाफरों को अपने यहाँ रखा है जो कि अच्छे कुल के नहीं समझे जाते थे। परंतु किसी भी नृपति ने नैनागढ़ के भय से विवाह का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

वास्तव में इसका कारण यह था कि उन दिनों विवाहों में अनिवार्य रूप से युद्ध हुआ करता था। कभी कभी नवबधू तक उसमें विधवा हो जाया करती थी। नैनागढ़ से विशेष रूप से लोग इसलिये घबड़ाते थे कि राणा के यहाँ अमरढोल था जिसे बजाते ही मृत सिपाही जीवित हो जाते थे।

सोनवा का ब्याह कहीं तय नहीं हुआ। सोनवा आल्हा के गुणों पर पहले ही से मोहित हो चुकी थी। उसने हीरामन तोते के गले में एक पत्र बाँधकर अल्हा के पास भेजा। ऊदल ने यह पत्र खोल कर पढ़ा और राजा परमाल को दिखलाया। परमाल भीरू था, उसने यह विवाह स्वीकार नहीं किया। मलखान गरज पड़ा और उसने विवाह की तैयारी की आज्ञा दे दी। रानी मल्हना का आशीर्वाद लेकर बारात चल पड़ी। नैनागढ़ की सीमा पर बारात जब पहुँची तो रूपना बारी ऐपनवारी लेकर राजदरबार में गया और नेग में युद्ध माँग कर युद्ध किया। अब तो युद्ध की घोषणा हो गई। बहुत घमासान युद्ध हुआ। नैनागढ़ की सेना हार गई, परन्तु अमरढोल के कारण सेना पुनः जीवित हो उठी। ऊदल, सोनवा की सहायता से अमरढोल का पता लगा कर उसे उठा लाया। दूसरे दिन युद्ध हुआ तो नैनागढ़ की सेना बुरी तरह मारी गई। नैनागढ़ के राजा ने देवी की आराधना की, देवी ने ढोल आल्हा के यहाँ से उठा कर इन्द्र के यहाँ पहुँचा दिया तथा उसे फोड़वा दिया। लग्न मंडप में पुनः युद्ध हुआ, परन्तु ऊदल ने सब को परास्त किया और आल्हा को कैद से मुक्त किया। राजा के पुत्रों को उसने कैदकर लिया और डोला उठा कर महोबा की ओर चल दिया।

प्रस्तुत दोनों रूपों की समानता एवं अन्तर––लोकगाथा के दोनों रूपों की कथा प्रायः एक समान है। केवल कथानक में अन्तर मिलता है।

लोक गाथा के बैसवारी रूप में कथा सोनवा के चरित्र से प्रारम्भ होती है तथा भोजपुरी रूप में आल्हा और ऊदल से। बैसवारी रूप में अमरढोल तथा हीरामन तोते का उल्लेख किया गया है। भोजपुरी रूप म इसका उल्लेख नहीं है। बैसवारी रूप में नैनागढ़ का राजा नैपाली है जिसके तीन पुत्र हैं जोगा, भोगा, तथा विजया। भोजपुरी रूप में नैनागढ़ के राजा मदनसिंह तथा उसके लड़के इदनरमन, समदेवा और छोटक का उल्लेख है। आल्हखंड के प्रायः प्रत्येक भाग में रुपनाबारी के ऐपनवारी की घटना का वर्णन है।

भोजपुरी रूपों में रुपना का उल्लेख कम होता है तथा प्रस्तुत रूप में रुपना का उल्लेख हीं नहीं है। भोजपुरी रूप में स्वयं आल्हा का दरबार लगा हुआ है, इसमें राजा परमाल का कहीं उल्लेख नहीं है। बैसवारी रूप में आल्हा और ऊदल, सब राजा परमाल की अधीनता में कार्य करते हैं।

लोकगाथा का भोजपुरी रूप, बैसवारी से छोटा है। बैसवारी रूप की कथा अत्यन्त वृहद् है तथा उसमें छोटी-मोटी उपकथाएं वर्णित हैं। क्षण-क्षण में कथानक बदलता रहता है परन्तु अन्त दोनों ही रूपों का एक समान है। सामान्यतया भोजपुरी आल्हा प्रकाशित बैसवारी से थोड़ी भिन्नता रखता है, परन्तु कथा के प्रधान चरित्रों एवं कथा के अन्त में समानता है।

उपर्युक्त समानता एवं अन्तर की परिपाटी आल्हाखंड के सम्पूर्ण गीतों में व्याप्त है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि भोजुरी आल्हा, बैसवारी आल्हा से बहुत दूर नहीं हैं। आज तो भोजपुरी प्रदेश में शिक्षा के प्रभाव के कारण आल्हा के प्रकाशित बैसवारी रूप का ही प्रभाव बढ़ रहा है।

'आल्हा, की ऐतिहासिकता—आल्हा की कथा बारहवीं शताब्दी के तीन प्रधान राजाओं से संबंध रखती है: दिल्ली के पृथ्वी राजचौहान, कन्नौज के जयचंद गहरवार तथा महोबा के राजा परमर्दिदेव। लोकगाथा में जयचन्द को राठौर वंश का बतलाया गया है जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से गलत है। जयचन्द वास्तव में गहरवार वंश से संबंध रखते थे। इतिहासकारों का मत है कि इन तीन राज्यों में कन्नौज के राजा जयचन्द सबसे प्रबल थे। मुसलमान इतिहासकारों ने उनके राज्य की सीमा पूरब में बनारस तक बतलाई है। लोकगाथा में उनके राज्य का विस्तार बिहार, बंगाल, उड़ीसा और आसाम तक बतलाया गया है।

यह तो सत्य है कि बारहवीं शताब्दी में जयचंद और पृथ्वीराज उत्तरी भारत के प्रमुख शासक थे। पृथ्वीराज द्वारा जयचंद की कन्या संयोगिता के हरण की कथा तो सभी जानते हैं। उसी समय से जयचचंद और पृथ्वीराज का वैमनस्य प्रारम्भ होता है जिसका अंत मुहम्मद ग़ोरी के आक्रमणों के साथ होता है। जयचंद के राज्य के अंतर्गत महोबा भी एक छोटा सा राज्य था, जिसका अधिपति राजा परिमर्दिदेव था। राजा परमर्दिदेव का इतिहास अधिक नहीं मिलता, क्योंकि राजा के समान उसने इतिहास में लिखने योग्य कोई भी महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया। उसके नाम का उल्लेख पृथ्वीराज रासो तथा लोकगाथा में ही होता है। आठवीं शताब्दी में चंदेलवंशी क्षत्रियों ने महोबे पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था। उसी समय से महोबा

एक महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया। चंदेल वंश के अन्तिम वंशधर राजा पर्मर्दिदेव ११८५ के निकट महोबा की गद्दी पर बैठे और ओरई (बेतवा नदी के पार एक बस्ती) के सरदार माहिल परिहार की बहिन मल्हना से विवाह किया।[१] सिंहासनारुढ़ होने के साथ साथ ही वे जयचन्द की अधीनता में आ गये। लोकगाथा में परमाल एक अत्यन्त भीरु राजा के रूप में वर्णित हुआ है। उसकी स्त्री मल्हना बहुत ही कुशल स्त्री थी।

महोबा राज्य तथा राजा परमर्दिदेव को जनसमाज में जो महत्व मिला है, उसका श्रेय है आल्हा और ऊदल को। आल्हा और ऊदल महोबा के प्रधान सामंतों में से थे। आल्हा और ऊदल बनाफर-शाखा के क्षत्रिय थे। बनाफर क्षत्रियों को कुलीन क्षत्रिय नहीं समझा जाता था। इसी कारण आल्हा और ऊदल को अनेक युद्ध करने पड़े थे।

बनाफर क्षत्रियों के विषय में दो प्रधान मत हैं। प्रथम मत लोकगाथा के अनुसार है। बिहार के बक्सर नामक स्थान से दसराज, बछराज, रहमल तथा टोंडर नाम के चार क्षत्रिय सरदार महोबा में उस समय उपस्थित थे जब कि माड़ो के राजा करिंघा ने महोबा पर आक्रमण किया था। इन चारों सरदारों ने किले के द्वार पर खड़े होकर युद्ध किया तथा करिंधा को पराजित किया। राजा परमाल ने प्रसन्न होकर अपनी सेना में उन्हें उच्च पद दिया। दसराज और बछराज ने विवाह किया। दसराज के दो पुत्र हुए जिनका नाम आल्हा और ऊदल था। बछराज के भी दो पुत्र हुये जिनका नाम मलखान तथा सुलखे अथवा सुलखान था। आल्हा और ऊदल की माता का नाम 'देवी' अथवा 'दीवलदे' था तथा मलखान, सुलखान की माता का नाम 'बिरम्हा'। 'दीवलदे' तथा 'बिरम्हा' आपस में सगी बहनें थी। इनके पिता का नाम राजा दलपतसिंह था जो ग्वालियर के राजा थे।

बनाफरों की उत्पत्ति के विषय में द्वितीय मत जनश्रुति के अनुसार है। यह कहा जाता है कि एक दिन दसराज तथा बछराज शिकार खेलने के लिये बन में गये। वहाँ उन्होंने दो सांड़ों को आपस में लड़ते देखा। दो अहीर कन्यायें भी वहाँ उपस्थित थी। उन कन्याओं ने सांड़ों के लड़ने के कारण दोनों सरदारों के मार्ग को अवरुद्ध देखकर एक-एक सांड़ की सींगें पकड़ लीं और उन्हें पीछे कर दिया। दसराज तथा बछराज यह वीरता देखकर चकित रह गये। उन्होंने

१—वाटरफ़ील्ड-दी ले आफ़ आल्हा, भूमिका ग्रियर्सन पृ० १५–१६

विचार किया कि इन कन्याओं से उत्पन्न पुत्र निश्चय ही महाबली होंगे। अतएव दोनों ने वहीं उन कन्याओं से विवाह कर लिया, जिसके फलस्वरूप चारों वीर बालक उत्पन्न हुए।[१]

यह जनश्रुति सच हो अथवा झूठ परन्तु इतना निश्चित है कि 'बनाफर' क्षत्रियों को अब भी कुलीन क्षत्रिय नहीं समझा जाता। वैसे आल्हा और ऊदल ने अपनी वीरता और उदारता से तो क्षत्रियत्व का ही परिचय दिया है।

उत्तर भारत में बनाफर लोग बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। मिर्जापुर, बनारस से लेकर कानपुर, बांदा तक बनाफर क्षत्रिय ही अधिक मिलते हैं। ये लोग स्वयं को काश्यप गोत्रीय यदुवंशी क्षत्रिय तथा अपना उद्भव स्थान महोबा बतलाते हैं।[२]

लोकगाथा में अनेक राजाओं के नाम आये हैं। उनकी ऐतिहासिकता के विषय में अभी तक प्रकाश नहीं डाला जा सका है। विद्वानों का मत है कि अधिकांश नाम काल्पनिक हैं। केवल, तीन नाम, पृथ्वीराज, जयचन्द, तथा परमाल इतिहास में प्राप्त होते हैं।

स्थानों के नाम भी अधिकांश रूप में काल्पनिक ही जान पड़ते हैं। यदि वे रहे भी होंगे तो अब उनकी भौगोलिक सत्ता मिट चुकी है। कुछ स्थान आज भी वर्तमान हैं जिन्हें नीचे दिया जाता है।[३]

१—**महोबा**—हमीरपुर जिले (उत्तर प्रदेश) के अन्तर्गत आधुनिक पन्ना और चरखारी राज्य के बीच में स्थित है।

२—**कन्नौज**—कानपुर से उत्तर गंगा के किनारे आज भी यह नगर प्रसिद्धि रखता है।

३—**सिरसा**—लोकगाथा में 'सिरसा की लड़ाई' का वर्णन है। यह स्थान ग्वालियर के दक्षिण यमुना की एक सहायक नदी के समीप स्थित है।

४—**नरवर**—लोकगाथा में 'नरवरगढ़' का वर्णन मिलता है। 'नरवर' सिरसा से दक्षिण पश्चिम के कोने पर चम्बल नदी की एक शाखा के समीप स्थित है।

१—वही

२—रेवरेन्ड एम० ए० शेरिंग-हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स एेज़ रिप्रेज़ेन्टेड इन बनारस पृ० २२३-२२४

३—'दि ले आफ आल्हा' पुस्तक में दिये हुये मानचित्र के अनुसार

५—बूंदी—लोकगाथा में 'बूँदी की लड़ाई' वर्णित है। बूँदी, राजपूताना में प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है जो कि चित्तौड़ से उत्तर दिशा में है।

६—मांडोगढ़—लोकगाथा में 'मांडोगढ़ की लड़ाई वर्णित है। मांडोगढ़ नर्वदा नदी के उत्तरी किनारे पर धार रियासत में स्थित है।

७—बेतवा नदी—लोकगाथा में 'बेतवा नदी की लड़ाई वर्णित' है। बेतवा यमुना की सहायक नदी है जो कि कालपी से आगे पूरब की ओर मुड़ कर यमुना से मिलती है। यह नदी महोबा से पश्चिम में पड़ती है।

८—उरई—यहाँ माहिल परिहार रहता था जो चुगलखोरी के लिए प्रसिद्ध था। ओरई आजकल एक छोटा सा कस्बा है जो कानपुर जिले में है।

लोकगाथा में दिल्ली, जयपुर, चित्तौड़ इत्यादि अनेक नगरों के वर्णन हैं जिनकी भौगोलिकता से हम पूर्णतया परिचित हैं। नदियों में गंगा, चंबल, बेतवा, यमुना इत्यादि का वर्णन आता है जो कि भौगोलिक दृष्टि से उस प्रदेश के लिये उपयुक्त है।

९—नरवरगढ़—यह स्थान ग्वालियर राज्य में आज भी है। यहाँ के राजा नरपति की कन्या फुलवा से ऊदल का ब्याह हुआ था।

१०—नैनागढ़—यह स्थान भोजपुरी प्रदेश में ही है। मिर्जापुर जिले में चुनार के नाम से यह स्थान विख्यात है। आल्हा का ब्याह यहीं हुआ था।

११—बिठूर—कानपुर जिले में एक ऐतिहासिक स्थान है। ऊदल की मां का चन्द्रहार करिंगाराय ने यहीं के मेले में छीन लिया था।

१२—खजुआगढ़—यह बुँदेलखंड के छतरपुर राज्य में आजकल खजुराहो के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ चन्देलवशीय राजाओं की पुरानी राजधानी थी।

१३—बौरीगढ़—यह स्थान बुँदेलखंड में है। यहाँ के राजकुमार से परमाल की कन्या चन्द्रावली का विवाह हुआ था।

आल्हा-ऊदल का चरित्र—'आल्हा' में वीर चरित्रों का बाहुल्य है। आल्हा, ऊदल, मलखान, सुलखान, रुपनाबारी, रानी मल्हना तथा बेला का चरित्र उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त इन्दल, ब्रम्हा, ढेबा का भी चरित्र प्रशंसनीय है। ये चरित्र राजपूती वीरता के सुन्दर एवं भव्य उदारहण उपस्थित करते हैं। ग्रियर्सन का कथन है कि 'आल्हा' की लोकगाथा एक महान् कथा है, जिसमें अनेक प्रकार के चरित्रों का वर्णन किया गया है।[1] दुष्ट तथा ईर्ष्यालु

---

१ वाटर फील्ड—दी ले आ आल्हा—ग्रियर्सन की भूमिका पृ० २०

चरित्रों में 'माहिल' का चरित्र उल्लेखनीय है। माहिल, रानी मल्हना का भाई था। मल्हना ने उसके दुष्कृत्यों को अनेक बार क्षमा किया था। ग्रियर्सन ने 'बेला' के चरित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। बेला का चरित्र सबके हृदयों में जौहर का अनुपम चित्र एवं करुणा का भाव जागृत कर देता है।

उपर्युक्त सभी चरित्रों में आल्हा, ऊदल का चरित्र अत्यन्त महान् एवं सर्व-व्यापक है। स्वामिभक्ति, रणकुशलता एवं उदारता उनके जीवन के प्रधान अंग हैं। ग्रियर्सन के कथनानुसार वे भारतीय वीरता के आदर्श प्रस्तुत करते हैं जिसे 'धीरवीर' कहा जाता है। बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देश की अराजक परिस्थित में इन दो वीरों ने अपने कर्त्तव्य से भारतीय वीरता की परम्परा को अक्षुण्ण रखा। खड्ग ही उनका जीवन-साथी था। जीवन की प्रत्येक समस्या का हल खड्ग ही करती थी। उनके जीवन का मूलमंत्र था—

बारह बरिस लैं कूकर जीयें,
औ तेरह ले जीयें सियार।
बीस अठारह छत्री जीयें,
आगे जीवन को धिक्कार॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन वीरों में वीरत्व की भावना प्रचंड रूप से वर्त्तमान थी। वीरगाथा काल के प्रबन्ध काव्यों एवं महाकव्यों में भी इस वीरता का चित्रण नहीं मिलता है।

आल्हा और ऊदल का चरित्र स्वामिभक्ति से परिपूर्ण है। उन्हें महोबा प्रिय है, राजा परमाल और रानी मल्हना प्रिय हैं। इनकी आज्ञा पर वे मर-मिटने के लिये सदा तत्पर रहते हैं। महोबा की यशोध्वजा को कभी भी नीची होते नहीं देख सकते। जन्म से ही वे रानी मल्हना के संरक्षकत्व में पले थे। उनकी नस-नस में श्रद्धा और भक्ति व्याप्त थी। इन्हीं की आज्ञा लेकर उन्होंने अनेकों युद्ध किया और उस समय के प्रबल प्रतापी राजा पृथ्वीराज को भी नीचा दिखलाया। एक बार आल्हा और ऊदल ने जयचन्द के यहाँ जाकर शरण लिया। उसी समय महोबे पर पृथ्वीराज का आक्रमण हुआ। इन वीरों से महोबे का संकट देखा न गया रानी मल्हना का संकेत पाते ही वे महोबे की ओर चल पड़े और उसकी रक्षा की। इसी प्रकार इन्होंने समय-समय पर राज्यकुल के प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा की। इनके हृदय में अपनी वीरता का तनिक भी अभिमान न था। वे तो अपने राजा के नीचे रह कर सच्चे सिपाही की भाँति लड़ते थे। युद्ध में सभी दिवंगत हुये, परन्तु आल्हा कजली वन में चला गया। उसे विश्वास है कि वह एक दिन अवश्य ही महोबा के वैभव को पुनः लौटावेगा।

आल्हा और ऊदल की वीरता की कोई उपमा नहीं है। खड्ग लेकर शत्रु के दल में पिल पड़ना, निरन्तर लड़ते रहना, तथा शत्रु को मौत के घाट उतार देना उनके लिये बाँयें हाथ का खेल था। वे वास्तविक रूप में धीरवीर थे। उन्होंने स्त्रियों और निहत्थों पर कभी शस्त्र नहीं चलाया। बड़े बड़े प्रतापी राजाओं को जीतने के लिये उन्होंने अनेक उपाय एवं षड्यन्त्र किये परन्तु राजपूती वीरता एवं आदर्श को नहीं छोड़ा। वे शत्रु के वचन पर विश्वास करते थे। निर्भय होकर लग्न मंडप में विवाह विधि संपन्न कराने के लिये चले जाते थे। विश्वासघात का प्रचंड बदला लेते थे। युद्धभूमि ही उनके खेल का मैदान था। बालक जिस प्रकार खिलौना पाकर प्रसन्न हो उठता है, उसी प्रकार ये वीर युद्धभूमि में जाने के लिये सदा लालयित रहते थे।

आल्हा और ऊदल का प्रेम भी उनके वीरता के ही उपयुक्त था। प्रस्तुत लोकगाथा में इनके प्रेमी चरित्र को कम दर्शाया गया है। केवल ऊदल के चरित्र में रसिकता प्रदर्शित है। नरवरगढ़ की लड़ाई में ऊदल और फुलवा का मिलन, ऊदल का स्त्री रूप धारण करना; फुलवा के प्रेम में व्याकुल होना उसके चरित्र के प्रेमपूर्ण अंग हैं। नरवरगढ़ के राजा को परास्त करके उसकी कन्या से उसने विवाह किया। फुलवा उसके साथ भाग चलने को कहती थी, परन्तु वीर ऊदल सबके सम्मुख विवाह करके उसे डोले में बिठाकर ले गया। उसने इसी प्रकार आल्हा का विवाह नैनागढ़ में सोनवा से करवाया। उनके लिये प्रेम और विवाह, युद्ध के सम्मुख गौण हो जाता था।। खड्ग के सहारे ही वे विवाह करते थे। इसी प्रकार उन्होंने अपने अन्य भाइयों एवं भतीजों का विवाह करवाया। इनके चरित्र को श्री ग्रियर्सन ने बड़े समुचित ढंग से रखा है। वे लिखते हैं—'भारतीय आदर्श को प्रस्तुत करने वाला आल्हा एक धीर-वीर था जो शीघ्र क्रोध में नहीं आता था। वह एक रणकुशल सेना-पति था। जब वह क्रोधित होता था तो उसे दबाया भी नहीं जा सकता था। ऊदल एक तेजस्वी रणबाँकुड़ा था, एक प्रेमी था, परन्तु कठोर भी था। वह एक बहुत ही कट्टर शत्रु था परन्तु साथ ही उदार भी था। वह रसिक एवं प्रेमी भी था परन्तु पवित्रता को लिये हुये। उसके इस स्वभाव के कारण उसके प्रति सबकी आत्मीयता जागृत हो जाती है।[1]

आल्हा-ऊदल के प्रचंड परन्तु पवित्र वीरता ने ही भोजपुरी जीवन को आकर्षित किया है। ये दोनों वीर आज भोजपुरिया वीर हो गये हैं।

१—'दि ले आफ आल्हा' भूमिका ग्रियर्सन, पृ० २०

(२) लोरिकी

समस्त भोजपुरी प्रदेश में 'लोरिकी की लोक गाथा व्यापक रूप से प्रचलित है। 'लोरिकी' को 'लोरिकायन' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। वस्तुतः यह अहीरों का जातीयकाव्य है। अहीर लोग अपने यहाँ उत्सवों एवं शुभ संस्कारों के अवसर पर 'लोरिकी' बड़े उत्साह से गाते हैं। इसमें अहीर जाति के जीवन का गौरवपूर्ण चित्र मिलता है। अहीर कौन हैं—इस विषय पर आगे विचार किया जायगा। 'लोरिक' इस लोक गाथा का नायक है। यह लोकगाथा, चार भागों में गाई जाती है। प्रत्येक खंड किसी महाकाव्य से कम नहीं है। इसके चार भाग इस प्रकार हैं :—

१—संवरू का विवाह,

२—लोरिक का विवाह-मंजरी से,

३—लोरिक का विवाह चनवा से (जिसे 'चनवा का उद्धार' भी कहते हैं)

४—लोरिक का विवाह जमुनी से,

साधारणतया 'लोरिक मंजरी का विवाह' तथा 'लोरिक चनवा का विवाह' अधिक प्रचलित हैं। साथ ही यह दोनों खंड भोजपुरी के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में भी गाये जाते हैं। प्रथम तथा चतुर्थ खंड का प्रचलन भोजपुरी प्रदेश में ही है। संवरू, लोरिक का बड़ा भाई था। उसके विवाह के निमित्त जो युद्ध हुआ, वही प्रथम खंड में वर्णित है। लोरिक और चनवा के विवाह के अन्तर्गत ही लोरिक और जमुनी के विवाह का भी वर्णन आता है। यह खंड अन्य खंडों की अपेक्षा छोटा है।

लोरिकी के गाने का ढंग—इस गाथा को एक ही व्यक्ति गाता है। कभी-कभी गायक साथ में ढोल भी रख लेता है। वैसे गाथा गाने के साथ ढोल का सहयोग नहीं होता है। गायक जब एक पंक्ति पूरी कर देता है तो ढोल पर बड़े जोर से हाथ मारता है और फिर दूसरी पंक्ति प्रारंभ कर देता है। वस्तुतः ढोल का उपयोग केवल श्वांस के अवकाश के लिए ही होता है। साथ-साथ वीरकथात्मक होने के कारण इस गाथा के गायन के साथ ढोल बजा देने पर वातावरण में ओजस्विता आ जाती है।

यह लोकगाथा अतुकान्त है। अन्य भोजपुरी लोकगाथाओं की भांति इसमें 'रामा' अथवा 'हो रामा' इत्यादि का टेक नहीं रहता। तुक का तो साम्य नहीं

रहता, परन्तु स्वर साम्य अवश्य रहता है। प्रत्येक तीसरी अथवा चौथी पंक्ति के पश्चात् अलाप रहता है। इसी अलाप से लोकगाथा के गायन में साम्य आ जाता है। इसका अलाप बड़ा लम्बा होता है। 'बिरहा गीत' में भी इसी प्रकार का अलाप सुनने को मिलता है। अलाप, अन्तिम शब्द से प्रारंभ होता है। अलाप के अतिरिक्त सभी पंक्तियाँ बड़ी द्रुति गति से गाई जाती हैं। हम इसे 'द्रुतिगति छंद' (रन-आन-वर्सेस) कह सकते हैं। गायक एक हाथ कान पर लगा कर और दूसरा हाथ ऊपर उठाकर 'अरे' शब्द से लोकगाथा को द्रुतिगति से प्रारम्भ कर देता है।

लोरिक—समस्त लोकगाथा में लोरिक का चरित्र प्रधान है। लोरिक के जीवन का मुख्य उद्देश्य सती स्त्रियों के जीवन का उद्धार करना तथा दुष्ट प्रवृत्ति के व्यक्तियों का नाश करना है। लोरिक अपने जन्म के साथ ही अपना उद्देश्य प्रकट कर देता है कि "मैं भगवान लालदेव का अवतार हूँ, तथा दुष्टों का दलन करूँगा।" लोरिक एक अत्यन्त गरीब घर में जन्म लेता है और अपनी अलौकिक वीरता से समस्त देशवासियों को चकित कर देता है। लोरिक की वीरता भारतवर्ष की मध्ययुगीन वीरता है जिसमें विवाह और उसके लिए युद्ध, शृंगार और उसके लिए वीरता का विधान हुआ करता था। लोरिक ने भी तीन विवाह किये और उसी के बहाने उस समय के अनेक दुष्टों का दलन किया।

यहाँ इस लोकगाथा के दो खंडों (द्वितीय तथा तृतीय) का ही अध्ययन किया जायगा। इसके कई कारण हैं। पहला यही कि इन दोनों से ही लोरिक का मुख्य रूप से सम्बन्ध है। अन्य दोनों में लोरिक की गाथा गौण है। दूसरा कारण यह है कि यही दोनों प्रचलित भी अधिक हैं। एक तीसरा कारण भी है, वह यह कि द्वितीय तथा चतुर्थ खंड के मैथिली तथा छत्तीसगढ़ी रूप भी प्राप्त होते हैं। अतएव तुलनात्मक अध्ययन के लिये सुविधा होगी।

लोरिक मंजरी के विवाह की संक्षिप्त कथा—अगोरी का राजा मलयगित् जाति का दुसाध[1] था। इस नगरी में छत्तीसों जातियाँ निवास करती थीं। राजा मलयगित् ने ढिंढोरा पिटवा दिया था कि राज्य की सभी सुन्दरी कन्यायें महल में पलेंगी और राजा कीं पटरानियाँ बन कर रहेंगी।

उसी नगर के महरा नामक सज्जन व्यक्ति के यहाँ सती मंजरी ने जन्म लिया। महरा और उनकी पत्नी पद्मावती ने मलयगित् के भय से कन्या-जन्म

१—दुसाध-सूअर चराने वालों की जाति

की बात छिपा ली। परन्तु जन्म संस्कार के समय जो दाई आई थी उससे न रहा गया। उसने अपने पति से यह गुप्त बात कह दी। उसके पति ने राजा के नियम का स्मरण दिला कर दाई को बहुत बुरा भला कहा। उसने जाकर राजा के यहाँ सूचना दे दी। राजा ने तुरन्त सिपाहियों को महरा के यहाँ भेजा। महरा ने इस विपत्ति से बचने के लिये एक उपाय सोच निकाला। वे राजा के पास चले आये और प्रश्न किया कि नवजात बालिका आप किस प्रकार पालेंगे? राजा ने उत्तर दिया कि मेरी रानी उसे दूध पिला कर पालेगी। इस पर महरा ने कहा कि इस प्रकार से वह कन्या तो आपकी पुत्री के समान हो जायगी और फिर किस प्रकार उससे आप विवाह करेंगे? राजा यह सुन कर निरुत्तर हो गया। इस पर महरा ने कहा कि कन्या मेरे यहाँ ही पलने दीजिये। विवाह योग्य होने पर एक दुर्बल व्यक्ति के साथ उसका विवाह किया जायगा। उस व्यक्ति को मारकर आप मंजरी को सरलता से प्राप्त कर सकेंगे। इससे मेरी लाज बच जायगी और आपका भी काम बन जायगा। राजा यह तर्क मान गया। मंजरी अपने माता-पिता के यहाँ ही पलने लगी। महरा को अहोरात्र यही चिन्ता थी कि किस प्रकार इस दुष्ट राजा का सर नीचा किया जाय जिससे सबका कल्याण हो।

मँजरी जब विवाह योग्य हुई तो महरा ने चारों दिशाओं में योग्य वर खोजने के लिये नाई तथा ब्राह्मण भेजा। परन्तु कहीं भी मंजरी के योग्य वर न मिला। मंजरी अपने पिता को कष्ट में देखकर बहुत दुखित हुई। उसने आत्म हत्या कर लेना उचित समझा। वह गंगा में जाकर कूद पड़ी परन्तु गंगा ने लहर मार कर उसे किनारे लगा दिया। मंजरी ने सोचा कि मैं बहुत पापिष्ठा हूँ, इसीलिये गंगा भी शरण नहीं दे रही है। गंगा वृद्धा वेष धारण कर मंजरी के पास आई और सांत्वना देने लगी। मंजरी ने उनके सम्मुख विलाप करके सब हाल सुनाया। गंगा ने सहायता का वचन दिया। भाग्य से मार्ग में भावी (भविष्य) से गंगा की भेंट हो गई। भावी से गंगा ने मंजरी के विवाह के विषय में पूछा। भावी ने अपनी असमर्थता प्रकट की परन्तु पता लगाने का उसे वचन दिया। भावी, इन्द्र के यहाँ चली गई। इन्द्र ने उसे वशिष्ठ के यहाँ भेजा। वशिष्ठ ने विचार करके वतलाया कि मंजरी का विवाह—'गउरा गुजरात' ग्राम के बुढ़कूबे के यहाँ लोरिक से होगा। भावी ने आकर मंजरी को बुढ़कूबे के घर का पता बतला दिया। मंजरी महल में वापस चली आई। प्रातःकाल कोयल जब विरह की वाणी बोलने लगी तो मंजरी की नींद टूट गई। वह माता के पास आई और लज्जा छोड़ कर सब हाल कह सुनाया। मंजरी के मामा शिवचन्द गउरा-गुजरात

की ओर चल पड़े। अनेक कठिनाइयों के पश्चात् वे गउरा पहुँचे। गउरा के राजमहल के सम्मुख जब वे पहुँचे तो वहाँ के राजा शाहदेव ने इसे बुला लिया। वह भी अपनी बेटी की शादी लोरिक से करना चाहता था। परन्तु शिवचन्द किसी प्रकार जान बचाकर बुढ़कूबे के यहाँ पहुँचे। बुढ़कूबे ने लोरिक को बोहा गांव से बुलवाया। लोरिक सब समझ गया। उसने कहा कि मंजरी से विवाह करना कोई खेल नहीं है। उसके लिये अनेकों युद्ध करने पड़ेंगे। परन्तु बहुत कहने-सुनने के बाद तिलक चढ़वाने को तैयार हो गया। गउरा के राजा शाहदेव को जब यह मालूम हुआ तो वह क्रोधित हो उठा। वह अपनी कन्या चनवा का ब्याह लोरिक से ही करना चाहता था। उसने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो भी बुढ़कूबे के यहाँ तिलक में भाग लेगा या बारात में जायगा मृत्यु दंड का भागी होगा। देवी दुर्गा की कृपा से स्वर्ग से चौंसठ योगिनियों ने आकर मंगलगान किया और धून-धाम से तिलक चढ़वा दिया। लोरिक के बड़े भाई संवरू ने शिवचन्द से कहा कि बारात के लिये कोई विशेप प्रबन्ध न करना, केवल चार लोग आयेंगे।

लोरिक को दूल्हा बना कर जब चारो बाराती राजा शाहदेव के महल के सामने से निकले तो राजा शाहदेव की कन्या लोरिक को देखकर मोहित हो गई। चनवा ने अपनी मां से जाकर कहा कि मैं इसी से विवाह करूँगी। चनवा की माँ नें राजा शाहदेव से कहा। राजा शाहदेव ने संवरु से कहलवाया कि वे दुगुना दहेज देंगे और वह विवाह यहीं करे। परन्तु संवरु ने अस्वीकार कर दिया। इस पर राजा शाहदेव बहुत कुपित हुआ। उसने पार जाने के लिये गंगा की सभी नावें डुबा दीं। संवरु ने बुढ़कूबे को खांची में बिठाकर पार करवा दिया। शेष लोग तैर कर पार हो गये। इस प्रकार वे लोग नदी, पहाड़, जंगल पार करते हुये कोठवानगरभदोखा में जा पहुँचे। चलते चलते बारातियों की संख्या भी बढ़ती गई। वहाँ राजा चित्रसेन से घमासान युद्ध हुआ। उसे परास्त कर और बारात के लिये प्राप्य सामान लेकर वे सोनपी नदी के किनारे पहुँचे। सोनपी नदी के पार राजा मलयगित् का धोबी उनके कपड़े धो रहा था। उससे कपड़े छीन कर सब बारातियों ने पहन लिया। सब बाराती अगोरी नगर की सीमा पर पहुँच गये। मंजरी के मामा शिवचन्द ने इतनी बड़ी बारात देखी तो वह घबड़ा गया। उसने बारातियों की संख्या घटाने की बहुत चेष्टा की परन्तु उसे असफलता मिली। वह इतने बड़े बारात के प्रबन्ध में जुट गया। राजा मलयगित् ने शिवचन्द की सहायता की। इसके पश्चात् परम्परानुसार एक दूसरे के पक्ष की बुद्धि परखने का

कार्य मंजरी के पिता महरा ने किया। बुढ़कूबे के कारण बारात के लोग विजयी हुये।

इधर मंजरी ने इन्द्र से प्रार्थना की कि उसका विवाह कुशलता से संपन्न हो। लोरिक लग्न मंडप में आया। इधर मलयगित् ने लोरिक को मरवाने के लिये अनेक प्रयत्न किये परन्तु असफल रहा। लग्न मंडप युद्ध स्थल बन गया। लोरिक ने बड़ी वीरता से सबका सामना करके मार गिराया। मलयगित् स्वयं युद्ध के लिये चौसा के मैदान में उतरा। बड़ी देर तक घमासान युद्ध हुआ। अन्त में लोरिक ने मलयगित् को मार गिराया। उसके गढ़ और महल इत्यादि को उसने ध्वंस कर दिया। मलयगित् को अपने पाप का पूर्णतया दंड मिल गया। दूसरे दिन महरा ने अत्यधिक दहेज देकर लोरिक से मंजरी का विवाह कर दिया। लोरिक मंजरी के साथ विवाह करके गउरा के लिये प्रस्थान कर दिया।

२–लोरिक और चनवा का विवाह–लोरिक जब मंजरी के साथ विवाह करके गउरा लौट आया तो कुछ काल के पश्चात् एक नई घटना घटी जिससे मंजरी का जीवन दुखमय हो गया। लोरिक-मंजरी के विवाह-खंड में ही यह बतलाया जा चुका है गउरा का राजा शाहदेव था, जो अपनी कन्या चनवा का विवाह लोरिक से करना चाहता था। चनवा भी लोरिक को चाहती थी, परन्तु यह संभव न हो सका। राजा शाहदेव ने चनवा का ब्याह बंगाल के सिल-हट नगर में कर दिया। चनवा का मन वहाँ न लगा। एक दिन वह वहां से अकेले भाग चली। भागते हुये जब गउरा के समीप एक जंगल में पहुँची तो बाठवा चमार नामक व्यक्ति ने चनवा को अपनी स्त्री बनाना चाहा। बाठवा बड़ा बलवान था। उससे राजा शाहदेव भी घबड़ाता था। चनवा किसी प्रकार भागकर गउरा में पहुँच गई। बाठवा ने समस्त गउरा निवासियों को कष्ट देना प्रारंभ कर दिया। उसने वहां के सब कुओं में गऊ की हड्डी रख दी। केवल लोरिक के घर का कुंवा उसने छोड़ दिया। इस कारण लोगों को अपार कष्ट होने लगा। लोरिक गउरा में उपस्थित नहीं था। मंजरी ने उसके पास समाचार भेजा। लोरिक तुरन्त उपस्थित हुआ और बाठवा को कुश्ती में हरा कर भगा दिया। लोरिक की वीरता का यशोगान गउरा के घर-घर में होने लगा।

चनवा ने लोरिक की प्रशंसा सुनी और उसका मन उससे मिलने के लिये व्याकुल हो उठा। उसने एक उपाय निकाल लिया। अपने पिता से कहा कि मेरी इज्जत बच गई, इस खुशी में नगर भर को अपने यहाँ भोजन कराइये। राजा शाह-

देव यह सुन कर तैयार हो गया। भोजन का प्रबन्ध बड़े धूम धाम से होने लगा। सब नगरवासियों को निमन्त्रण दिया गया। लोरिक भी अपने बड़े भाई संवरू के साथ भोजन करने के लिये आया। सब लोग भोजन करने के लिये बैठ गये। तब चनवां सोचने लगी कि किस प्रकार लोरिक से आखें चार करूँ। उसने तुरन्त पान की खिल्ली बनाई और लोरिक जहां बैठा था, उसके उपर वाले झरोखे में जाकर बैठ गई। लोरिक आनन्द से भोजन कर रहा था, कि ऊपर से चनवा ने पान की खिल्ली उसके पत्तल मे गिरा दी। लोरिक ने उपर दृष्टि की तो उसने चनवा को जंम्हाई लेते देखा। लोरिक इसका आशय समझ गया। वह बार बार ऊपर देखने लगा। यह चनवा के भाई महादेव को बुरा लगा पर संवरू ने लोरिक को निर्दोष बताकर उसे शान्त किया।

उसी दिन रात्रि को लोरिक एक रस्सी लेकर चनवा के महल के पीछे पहुंचा। उसने चनवा के झरोखे पर अपनी रस्सी फेंकी। रस्सी फेंकने की आवाज़ सुन कर चनवा जाग पड़ी। उसने झरोखे से बाहर लोरिक को देखा। वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने कुछ देर लोरिक को चिढ़ाया। लोरिक जब रस्सी फेंकता था तो वह पकड़कर पुनः छोड़ देती थी। लोरिक जब क्रोधित होने लगा तो चनवा ने रस्सी को झरोखे से बांध दिया और उसके सहारे लोरिक ऊपर चढ़ गया। चनवा लोरिक के साथ आनन्द-विहार करने लगी। इसी प्रकार एक पक्ष बीत गया। एक रात्रि में जब चनवा के महल मे लोरिक चलने लगा तो गलती से चनवा की चादर अपने सिर में बांधकर चल दिया। घर पहुँचते ही मंजरी चादर देखकर हँस पड़ी। लोरिक घबड़ा गया और दौड़ा दौड़ा मितरजाइल धोबी के यहाँ पहुंचा। धोबी ने उसकी लाज बचाली। धोबिन चादर की तह करके सिर पर रख चनवा के यहाँ चली गई। इधर चनवा भी असमंजस में पड़ी थी। मुंगिया लौड़ीं ने मर्दाना चदरा चनवा के घर में देखा था। अतएव उसे चनवा पर संदेह हुआ। इसी समय धोबिन आ पहुँची और कहा कि चादर बदल गया है, अपना चादर ले लो और मर्दाना चादर लौटा दो। इस प्रकार चनवा और लोरिक दोनों की लाज बच गई।

इस प्रकार अनेक दिवस बीत गये। एक दिन चनवा ने कहा कि अब उन्हें दूसरे देश भाग चलना चाहिए, क्योंकि अब बदनामी का भी डर था। बहुत कहने-सुनने के पश्चात् उनके पलायन का दिन निश्चित हुआ। दोनों ने हरदी नगर में जाना निश्चित किया। वहाँ चनवा का परिचित साहूकार महीचन्द रहता था। हरदी प्रस्थान के पहले ही चनवा ने लोरिक से महीचन्द और राजा महुबल को न मारने का वचन ले लिया।

सती मंजरी ने अपने सत् से सब कुछ जान लिया। उसने चनवा और लोरिक को रोकने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु वह सफल न हो सकी। उसे सोला छोड़ कर लोरिक, चनवा के साथ पलायन कर गया। चलने के पहले लोरिक ने अपने बड़े भाई संवरू और गुरु मितारजईल धोबी से सब कुछ बतला दिया। उसने मंजरी से कहलवा दिया कि वह दस दिन में लौट आवेगा। इस प्रकार वे गउरा से चल कर बोहाबथान, फुहियापुर, बक्सर, बिहिया इत्यादि पार कर, ठूँठी पकड़ी पेड़ के नीचे पहुँचे। चनवा को वहा साँप ने काट लिया, परन्तु चनवा गर्भवती थी इसलिये बच गई। मार्ग में लोरिक ने रणदेनिया दुसाध को हराया और आगे वह बिदिंया के राजा रणपाल को हराकर आगे बढ़ा।

सारंगपुर पहुँचने पर महीपत जुआड़ी से पाला पड़ा। लोरिक जुए में सब कुछ हार गया, यहाँ तक कि चनवा को भी हार गया। यहां चनवा ने चालाकी की। वह भी जुआ खेलने के लिये बैठी। देवी की कृपा से उसने हारा धन फिर जीत लिया तथा सारंगपुर गाँव भी जीत लिया। इस प्रकार पति को बचाकर वह आगे बढ़ी। मार्ग में कतलपुर के डोम राजा को भी परास्त किया। अनेक दिनों के यात्रा के बाद वे हरदी बाजार पहुँचे। वहाँ पूछते-पूछते वे सेठ महीचन्द के द्वार पर गए। परिचय इत्यादि हुआ। चनवा और लोरिक सम्मानपूर्वक वहाँ रहने लगे। एक दिन शराब पीने के लिये लोरिक, जमुनी कलवारिन के यहाँ गया। वह उस पर मोहित हो गई। उसे खूब शराब पिलाकर अपने ही यहाँ रात में शयन कराया। (अन्त मे जमुनी भी उसकी स्त्रियों में एक हो गई) कुछ ही दिनों में लोरिक, हरदी बाजार में अपने ठाटबाट के कारण प्रसिद्ध हो गया। एक दिन राजा महुबल ने उसे अपने यहाँ बुलवाया। दरबार में उससे और मंत्री से कहासुनी हो गई। मंत्री ने राजा के महाबली भीमल पहलवान को ललकारा। भीमल तथा लोरिक का मल्ल-युद्ध हुआ। भीमल धराशायी हुआ। सारे नगर में लोरिक का यश फैल गया। अब तो राजा बहुत घबड़ाया। बहुत सोच-विचार करके लोरिक को मारने का एक उपाय निकाला। नेवारपुर का हरवा-बरवा दुसाध महाबली था। वह साल में एक दिन के लिये हरदी आता था और छः महीने की एकत्रित की गई खाद्य सामग्री एक ही दिन में समाप्त कर जाता था; अन्यथा राजा को दंड देता था। राजा महुबल ने लोरिक को बहाने से पत्र देकर नेवारपूर भेजा। लोरिक ने घोड़भंगरा नामक घोड़े पर बैठ कर, चनवा से बिदाई लेकर, मार्ग में अनेकों विजय करता हुआ नेवारपुर पहुँचा। वहाँ हरवा-बरवा दुसाध से युद्ध हुआ। घमासान युद्ध के पश्चात् उसने उसे मार गिराया। वह पुनः हरदी लौट आया, परन्तु चनवा को

पहले ही बचन दे देने के कारण महुबल को नहीं मारा। महुबल ने क्षमा माँगी। लोरिक हरदी का मालिक बन गया और आनन्द से रहने लगा। कुछ काल पश्चात् उसका मिलन मंजरी से हुआ। इस प्रकार मंजरी और चनवा के साथ उसका दिन सुख से बीतने लगा।

'लोरिकी' लोकगाथा के अन्य रूप—प्रस्तुत लोकगाथा के चार रूप उपलब्ध होते हैं जिनका संक्षेप में यहाँ हम वर्णन करेंगे।

मैथिली रूप—मैथिली प्रदेश में 'हरवा-बरवा' नामक वीरों की गाथा प्रचलित है। ये दोनों दुसाध नामक जाति के व्यक्ति थे। आस-पास के प्रदेशों पर आक्रमण करके लोगों को कष्ट देते थे। इनके कारण लोगों का जीवन दूभर हो रहा था। वीर लोरिक जब चनवा (मैथिली-रूप-चनैनी) के साथ भाग कर हरदी में पहुँचा तो वहाँ के राजा महुबल (मैथिली रूप-मलवर) से युद्ध हुआ, परन्तु बाद में दोनों में मित्रता स्थापित हो गई। एक दिन राजा मलवर ने नदी में स्नान करने के लिये अपने कपड़े को उतारा तो लोरिक ने उसके पीठ पर घाव के चिन्ह देखे। लोरिक ने इसका कारण पूछा। मलवर ने 'हरवा-बरवा' के अत्याचार का वर्णन किया। लोरिक ने प्रतिज्ञा की कि जब तक उन्हें मारूँगा नहीं तब तक जल तक नहीं ग्रहण करूँगा। लोरिक घोड़े पर सवार होकर हरवा-बरवा के नगर नेवारपुर गया। वहाँ बहुत घमासान युद्ध हुआ। अन्त में लोरिक ने हरवा-बरवा तथा उसके सहायकों को मार गिराया, और समस्त प्रदेश में शान्ति स्थापित की।

मैथिल-प्रदेश में लोरिक और हरवा-हरवा के युद्ध की गाथा अधिक गाई जाती है। इसी गाथा में मंजरी का त्याग, चनवा (चनैनी) के साथ हरदी भागना, हरदी के राजा के साथ युद्ध और मित्रता इत्यादि सभी वर्णित हैं। लोरिक के बल-वर्णन का मैथिली रूप कितना भव्य है—

असी मन का सेली, चौरासी मन का खार
मन पचहत्तर हे जम्बू कटार
सात से मन सात सेव हे बावन मन को सोने मूठकटार
बाइस मन का झिलमिल अस्सी मन को लोहबन्द
साद गारी का मत्री लोरिक बाँधे कमर लगाई[1]

१—यूनिवर्सिटी आफ़ इलाहाबाद स्टडीज; (अंग्रेजी भाग); इन्ट्रोडक्शन टु दी फोकलिट्रचर आफ मिथिला पार्ट। पोयट्री, पृ० २२।

शाहाबाद जिले का रूप—इस रूप में तथा आदर्श भोजपुरी रूप में बहुत समानता है। इसमें लोरिक और मंजरी के विवाह का विवरण मिलता है। इस कथा का संग्रह श्री जे० डी० बेग्लर ने किया है।[1] कथा इस प्रकार है :—

चनैनी (चनवा) के पति का नाम शिवधर है। शिवधर की समस्त शक्तियाँ पार्वती के श्राप से कुंठित हो गई हैं। चनैनी अपने पड़ोसी लोरिक से प्रेम करने लगती है। शिवधर बहुत मना करता है परन्तु वह नहीं मानती है। अन्त में लोरी (लोरिक) और शिवधर से युद्ध होता है, जिसमें शिवधर हार जाता है। लोरी और चनैनी वहाँ से चल देते हैं। मार्ग में उनकी भेंट महापतिया दुसाध से होती है। वह बहुत बड़ा जुआड़ी है। लोरी को वह जुआ खेलने के लिये बाध्य करता है। लोरी पहले तो हारता है परन्तु अन्त में उसकी विजय होती है। चनैनी, महीपतिया के बगल में खड़ी होकर उसे रिझाया करती है और इसी कारण वह हार जाता है। चनैनी महीपति पर लांछन लगाती है और लोरी महीपति को मार डालता है। लोरी हरदी के राजा को हराकर उसका राज्य लेता है। हरदी का राजा कलिंग के राजा से सहायता माँगता है। लोरी युद्ध में हार जाता है। वह सीकड़ों में बाँध दिया जाता है, परन्तु दुर्गा की कृपा से वह अन्त में विजयी होता है। उससे और चनैनी से एक पुत्र उत्पन्न होता है। अब वे अपनी जन्मभूमि को वापस लौटना चाहते हैं। इसी बीच में लोरी का बड़ा भाई कोल लोगों के हाथ मारा जाता है। लोरी और चनैनी के पलायन के पूर्व ही लोरी की मंगनी 'सतीमिनाइन' (सती मंजरी) से हुई रहती है। लोरी वापस लौटकर उसके सत की परीक्षा लेता है। उसे अग्नि पर चलाता है। वह सफल होती है। लोरी उसे बहुत धन देता है। लोरी अब न्याय पूर्ण ढंग से राज्य करने लगता है। अब स्वर्ग में बैठे इन्द्र ने उसकी इहालीला समाप्त करना चाहते हैं। दुर्गा को चनैनी का रूप धरवा कर लोरी के पास भेजते हैं। लोरी उसे पकड़ना चाहता है। दुर्गा उसके मुंह पर ऐसा तमाचा मारती है कि उसका सर घूम जाता है। दुख और लज्जा के मारे लोरी काशी चला जाता है। वह मर्णकर्णिका घाट पर पत्थर के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

१—जे० डी० बेग्लर-रिपोर्टस आफ़ दी आर्कालियोजिकल सर्वे, भाग ८, पृ० ७९।

मिर्जापुरी रूप—इस रूप को डब्ल्यू० क्रुक ने एकत्र किया है।[1] यह कथा लोरिक मंजरी के विवाह से मिलती जुलती है। कथा इस प्रकार है—

सोन नदी के किनारे अगोरी नामक किले में एक दुष्ट राजा राज्य करता था। उसके पास दासियों में गाय भैंस चराने वाली एक मंजरी भी थी। मंजरी, लोरिक से प्रेम करती थी। लोरिक अपने बड़े भाई संवरू के साथ राजा से मंजरी को माँगने आया। राजा ने उसके ऊपर क्रोध प्रदर्शित किया। वीर लोरिक मंजरी को चुपके से लेकर भाग चला। राजा अपने भयानक हाथी पर बैठकर लोरिक का पीछा किया। परन्तु लोरिक ने एक ही वार में उसके हाथी को धराशायी कर दिया। परन्तु राजा ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। मर्कुन्डी घाटी के पास जब लोरिक पहुंचा तो मंजरी ने अपने पिता की तलवार लोरिक को दे दी। लोरिक ने अभिमान में उसका तिरस्कार किया। लड़ाई में लोरिक की तलवार टूट गई। अब लोरिक सचेत हुआ। उसने मंजरी के पिता के तलवार को लेकर राजा को मार डाला। इस प्रकार विजय प्राप्त करने के पश्चात् वह मंजरी सहित गउरा की ओर चल पड़ा।

छत्तीसगढ़ी रूप—'लोरिकी' का छत्तीसगढ़ी रूप अत्यन्त रोचक है। इस प्रदेश में 'लोरिक तथा चनवा' की गाथा ही अधिक प्रचलित है। यहाँ इस लोकगाथा को 'लोरिक चनैनी' अथवा 'चनैनी' नाम से अभिहित किया जाता है। लोकगाथा के छत्तीसगढ़ी रूप को फ़ादर वैरियर एल्विन ने अंग्रेजी में अनुवाद करके अपने ग्रन्थ 'फोकसांग्स आफ छत्तीसगढ़' में उद्धृत किया है।[2] लोकगाथा की संक्षिप्त छत्तीसगढ़ी कथा इस प्रकार है—

चनैनी अपने पिता के घर से अपने पति वीर बावन के घर जा रही है। वीर बावन गउरा का निवासी है। मार्ग में भटुआ चमार ने चनैनी को अपनी स्त्री बनाना चाहा। लोरिक वहाँ सहायता के लिये आ गया और भटुआ चमार को मार भगाया। लोरिक अपनी स्त्री मंजरी के साथ गउरा में ही रहता है। चनैनी, भटुआ के साथ लड़ते हुए लोरिक की वीरता देखकर मुग्ध होती है। लोरिक भी चनैनी की सुन्दरता को देखकर मोहित होता है। दूसरे दिन लोरिक रस्सी लेकर चनैनी के घर के पीछे पहुँचता है। वहाँ पहुँचने पर चनैनी पहले तो उसे चिढ़ाती है पर बाद में उसे ऊपर चढ़ा लेती है। दोनों गउरा से भाग चलन

१—डब्ल्यू० क्रुक-ऐन इन्ट्रोडक्शन टू दी पापुलर रिलीजन एण्ड फोकलोर आफ नार्दर्न इंडिया पृ० २९२।

२—वैरियर एल्विन—फोकसांग्स आफ छत्तीसगढ़, पृ० ३३८

का निश्चय करते हैं। अन्त में एक दिन लोरिक तैयार हो जाता है और चनैंना को लेकर गढ़ हरदी के लिये चल देता है। मार्ग में उसका भाई संवरू रोकता है परन्तु वह नहीं रुकता। बीर-बावन उनका पीछा करता है परन्तु वह लोरिक को नहीं मार पाता है। मार्ग में लोरिक को साँप काट खाता है परन्तु महादेव व पार्वती की कृपा से वह पुनः जीवित हो उठता है। आगे चलकर करिंघा के राजा से युद्ध होता है। लोरिक राजा को हरा देता है। करिंघा का राजा उसे मारने के लिये षड्यन्त्र करता है और उसे पाटनगढ़ के राजा के यहाँ भेजता है। लोरिक करिंघा की चाल समझ जाता है। वह हरदीगढ़ चला जाता है वहाँ आनन्द से रहने लगता है। इस बीच गउरा से समाचार आता है कि उसकी स्त्री मंजरिया भीख माँग रही है। उसके भाई बन्धु सभी मर गये हैं। गायें इत्यादि भाग गई हैं और घर ध्वंस हो गया है। लोरिक चनैनी के साथ पुनः लौटता है। लोरिक अपने गायों तथा अन्य जानवरों की खोज में चला जाता है। मंजरिया और चनैनी में मार-पीट होती है। मंजरी विजयी होती है। वह बड़े अभिमान से पानी लेकर पति का स्वागत करने को आती है, पर बर्तन का पानी भूल से गंदला निकलता है। लोरिक यह देखकर अत्यन्त दुखी होता है और सब को छोड़कर कहीं चला जाता है और फिर कभी नहीं लौटता।

श्री काव्योपाध्याय महाशय द्वारा एक अन्य छत्तीसगढ़ी रूप है,[1] जिसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

बीर बावन एक महाबली व्यक्ति था जो कि कुंभकर्ण के समान छः महीने सोता था और छः महीने जागता था। उसकी स्त्री का नाम चन्दा था जो कि अत्यन्त रूपवती थी। एक बार वीर बावन गंभीर निद्रा में निमग्न था। चन्दा ने अपने गाँव में लोरी नामक धोबी को कपड़ा धोते देखा और उस पर मोहित हो गई। उसने लोरी को अपने महल में बुलाया। कोठे पर आने के लिये चन्दा ने नीचे रस्सी फेंकी। कुछ देर तक उसने लोरी को चिढ़ाया, परन्तु अन्त में लोरिक चढ़ गया। चन्दा पुनः महल में छिप गई परन्तु लोरी ने उसे ढूंढ़ लिया। लोरी और चन्दा ने रात्रि एक ही साथ व्यतीत की। लोरी प्रातःकाल चलते समय अपनी पगड़ी भूल गया और चन्दा की साड़ी बाँधकर चल दिया। लोरी की धोबिन साड़ी पहचान गई। लोरी ने उसे सब कथा बतला दी। धोबिन उन दोनों प्रेमियों की दूती बन गई।

१—वैरियर एल्विन—फोकसांग्स आफ छत्तीसगढ़, पृ० ३३८

चन्दा और लोरी दूसरे देश भागने की तैयारी करने लगे। पहले लोरी तैयार नहीं होता था। उसने वीर बावन को भी जगाने का प्रयत्न किया परन्तु वह नहीं जगा। अन्त में लोरी को चन्दा के साथ भागना ही पड़ा। चलते-चलते वे एक जंगल में पहुँचे जहाँ एक किला था और आवश्यकता की सारी सामग्री भी थी। वे वहीं आनन्द से रहने लगे। इधर छः महीने बाद वीर बावन की निंद्रा टूटी। उसने लोरी का पीछा किया। लोरी से उसका युद्ध हुआ और वह हार गया। निराश होकर वह लौट आया और अकेले ही रहने लगा।

प्रकाशित रूप—[1] भोजपुरी प्रकाशित रूप एवं मौखिक रूप में कोई विशेष अन्तर नहीं है। हेर-फेर से दोनों में कथानक एक ही हैं। प्रकाशित रूप में कहीं-कहीं 'गजल और कविताएं' भी दे दी गई हैं। इन्हें प्रकाशक ने लोकगाथा को रोचक बनाने के ख्याल से ही रखा है। लोरिक चनवा की गाथा में कथानक चनवा के चरित्र से प्रारम्भ होता है। मौखिक कथा मंजरी के विरह से आरम्भ होती है। मंजरी अन्त में विजयी होती है और लोरिक को पुनः प्राप्त कर लेती है। शेष कथा समान है। मौखिक रूप में मंजरी के चरित्र को देवी का स्थान मिला है। वह लोरिक को क्षमा कर देती है, और उसे अपने भगवान के रूप में पूजती है।

लोरिक के बंगला रूप की कथा[2]—बंगाल में यह लोकगाथा 'लोरमयनावती,' के नाम से अभिहित की जाती है। यदा कदा इसे 'सती मयनावती' भी कहा जाता है। इसी गाथा के आधार पर बंगाल के एक मुसलमान कवि दौलत काजी ने सुन्दर काव्य की रचना कर डाली है। कथा का सारांश इस प्रकार है:—गौहारी देश का राजा अथवा राजपुत्र 'लोर' के नाम से प्रसिद्ध है और उसके साथ मयनावती ब्याही जाती है, किन्तु काल पाकर लोर का प्रेम उसके प्रति कम होने लगता है और एक योगी से चित्र द्वारा यह जानकर कि मोहरा देश की एक अत्यन्त सुन्दर राज कन्या चंद्राली का ब्याह एक नपुसंक बावन बीर के साथ हुआ है, वह मोहरा चला जाता है। लोर और चंद्राली एक दूसरे को देखकर मोहित हो जाते हैं और उनका मिलन हो जाता है। बावनबीर की आशंका से दोनों भाग निकलते हैं। बावनबीर पीछा करता है और बन में युद्ध होता है। बावनबीर मारा जाता है किन्तु चंद्राली को सांप डस लेता है। तब तक वहाँ चंद्राली का पिता भी पहुँच जाता है। चंद्राली होश में आती

१—'चनवा का ओढ़ार'-दूधनाथ पुस्तकालय, कलकत्ता।

२—श्री परशराम चतुर्वेदी—भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा-पृष्ठ ६२ से ६८

है और दोनों का ब्याह हो जाता है तथा उसका पिता अपना राज्य भी लोर को दे देता है।

इधर मयनावती विरह से व्याकुल हो उठती है और वह शिव एवं दुर्गा की अराधना करती है। उसके पड़ोसी राजा नरेन्द्र का पुत्र छातन भी उसके सौंदर्य पर अनुरक्त हो जाता है। वह इसे वश में करने के लिए दूतियों को भी भेजता है किन्तु असफल होता है। मयनावती सखियों से सलाह लेकर एक शुक के साथ किसी ब्राह्मण को लोर के पास भेजती है। ब्राह्मण, लोर की स्मृति को जागृति कर देता है। लोर अपने पुत्र को राज्य देकर चंद्राली के साथ मयनावती के निकट आता है। इस प्रकार लोर, चन्द्राली और मयनावती के साथ सुखपूर्वक राज्य करने लगता है।

जिस प्रकार इस कथा के अधार पर बङ्गला के मुसमान कवि ने रचना की है उसी प्रकार बङ्गला के प्रसिद्ध कवि अलाओल ने, जिसने जायसी की रचना 'पद्मावत' का बङ्गला रूपान्तर लिखा है ; लोर एवं चन्द्राली की कथा का शेषांश लेकर 'लोर चन्द्राली' की रचना की है।

हैदराबाद (दक्षिण) में प्राप्त कथा का रूप[1]—इस प्रेम कथा का चंदा वाले अंश का यहाँ प्रचार नहीं है। यहाँ के किसी अज्ञात कवि की लिखी हुई एक 'मसनवी किस्सा मतवन्ती' नामक रचना पाई जाती है। इसके अनुसार किसी नगर के एक धनी व्यक्ति को 'लोरक, नाम का पुत्र था और किसी राजा की मैंना नाम की सुन्दरी पुत्री थी। वे दोनों परस्पर प्रेम करते थे और आनन्द से जीवन बिताते थे। किन्तु वे दोनों संयोगवश निर्धन हो गए और अपना नगर छोड़कर दूसरे स्थान के लिए चल पड़े। वहाँ लोरक पशु चराने लगा। वहीं लोरिक ने चन्दा नाम की एक सुन्दरी को देखा जिसका पति गंवार था। लोरक उसके घर गया और उसके महल पर चढ़ कर उसे देखा और तय हुआ कि धनमाल लेकर यहाँ से भाग चलें। पहले लोरक ने आनाकानी की, फिर मान गया। जब दोनों वहाँ से भाग निकले और इस बात का शोर मच गया तो लोगों ने राजा से जाकर कहा, किन्तु राजाने बतलाया कि वह स्वयं लोरक की पत्नी मैंना पर मुग्ध था तथा जब से उसने उसे देखा था तभी से बेचैन था।

विभिन्न रूपों के कथानक में समानता एवं अंतर—(१) प्रथमतः हम 'लोरिक' की लोकगाथा के 'लोरिक और मंजरी के विवाह' वाले भाग पर विचार

१—श्री परशुराम चतुर्वेदी-भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा—पृष्ठ ६२-६८

क ेंगे। विभिन्न रूपों में केवल श्री क्रुक द्वारा एकत्रित मिर्जापुरी रूप ही लोरिक मंजरी के विवाह से सम्बन्ध रखता है। परन्तु समानता कम है, अन्तर अधिक है। समानता केवल नामों में मिलती है, कथानक में नहीं। मिर्जापुरी रूप में लोरिक, मंजरी, संवरू तथा दुष्ट राजा का उल्लेख है। स्थानों के नाम में अगोरी का किला तथा सोन नदी का उल्लेख है। प्रस्तुत भोजपुरी रूप में इन नामों एवं स्थानों का उल्लेख है। इस साम्य के अतिरिक्त कथानक में अन्तर है।

प्रस्तुत भोजपुरी रूप का कथानक विशाल है। मंजरी, के जन्म से लोकगाथा प्रारम्भ होती है। मंजरी के पिता तथा राजा मलयगित् की वार्ता, मंजरी के लिये वर ढूंढा जाना, लोरिक का तिलक चढ़ना, लोरिक का अगोरी से आकर विवाह करना, राजा मलयगित् से युद्ध और उसे मारकर महल को ध्वंस करना इत्यादि भोजपुरी रूप के प्रमुख अंश हैं।

मिर्जापुरी रूप में मंजरी, राजा के जानवरों को चराने वाली दासी हैं; उससे और लोरिक से प्रेम हो जाता है। आगे इस गाथा में लोरिक और संवरू का राजा से मंजरी को माँगना, राजा से युद्ध, उसका मारा जाना, और लोरिक का मंजरी के साथ गउरा के लिये पलायन वर्णित है।

इस प्रकार कथानक में महान अन्तर है। समानता के लिये हम यह कह सकते हैं कि लोरिक और मंजरी का विवाह तथा राजा से युद्ध, दोनों में प्राप्य हैं। साथ-साथ अन्त भी दोनों में एक ही प्रकार का है।

(२) लोरिक की लोकगाथा का दूसरा भाग 'लोरिक एवं चनवा का विवाह' भोजपुरी क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में भी प्रचलित है। मैथिली और छत्तीसगढ़ी प्रदेशों में तो यह अत्यधिक प्रचलित है। यहाँ हम विभिन्न रूपों की भोजपुरी रूप से तुलना करेंगे। (तुलना करने के लिये भोजपुरी लोकगाथा के प्रमुख अंशों को हम प्रस्तुत करते चलेंगे।)

१—भोजपुरी रूप में चनवा का सिलहट (बंगाल) से लौट कर अपने पिता के घर (गउरा) आना वर्णित है। छत्तीसगढ़ी रूप में भी यह वर्णित है, परन्तु कुछ विभिन्नता है। इसमें चनवा (छत्तीसगढ़ी रूप की चनैनी) का अपने पिता के घर से पति (बीरबावन) के घर (गउरा) लौटना वर्णित है। अन्य रुपों में यह वर्णन नहीं है।

२—भोजपुरी रूप में चनवा को मार्ग में बाठवाचमार अपनी स्त्री बना लेना चाहता है, परन्तु वह किसी तरह गउरा अपने पिता के घर पहुँच जाती है। बाटवा चमार गउरा में आकर सबको कष्ट देता है। चनवा का पिता

राजा शाहदेव भी बाठवा से डरता है। मंजरी के बुलाने पर लोरिक पहुँचता है और बाठवा को मार भगाता है। उसकी सब लोग प्रशंसा करते हैं।

छत्तीसगढ़ी रूप में यह वर्णित है। परन्तु उसमें थोड़ा अन्तर है। भट्टुआ चमार (भोजपुरी-बाठवा) मार्ग में चनैनी को छेड़ता है, लोरिक वहाँ आकर उसे मार भगाता है। लोरिक की वीरता देखकर वह मोहित हो जाती है। लोरिक को वह अपने महल में बुलाती है।

शेष अन्य रूपों में यह वर्णन नहीं मिलता।

३—भोजपुरी रूप में राजा शाहदेव के यहाँ भोज है। चनवा लोरिक को अपनी ओर आकर्षित करती है; रात्रि में लोरिक रस्सी लेकर चनवा के महल के पीछे पहुँचता है, तथा दोनों का मिलन वर्णित है।

छत्तीसगढ़ी रूप में भोज का वर्णन नहीं मिलता है। परन्तु रात्रि में लोरिक उसी प्रकार रस्सी लेकर जाता है और कोठे पर चढ़ता है तथा दोनों एक साथ रात्रि व्यतीत करते हैं।

काव्योपाध्याय द्वारा प्रस्तुत छत्तीसगढ़ी में भी इसका वर्णन है परन्तु कुछ भिन्न रूप में। इसमें चन्दा (चनैनी) का पति बीरवावन महाबली है जो छः महीने सोता है तथा छः महीने जागता है। उसकी स्त्री चन्दा, लोरी (लोरिक) धोबी से प्रेम करने लगती है। वह उसे अपने महल में बुलाती है और स्वयं खिड़की से रस्सी फेंक कर ऊपर चढ़ाती है। मैथिली तथा ग्रेग्लर द्वारा प्रस्तुत शाहाबाद जिले के रूप में यह वर्णन नहीं प्राप्त होता।

४—भोजपुरी रूप में रात्रि व्यतीत कर जब लोरिक चनवा के महल से चलने लगता है तो अपनी पगड़ी के स्थान पर चनवा का चादर बांध कर चल देता है। धोबिन उसे इस कठिनाई से बचाती है।

वैरियर एल्विन द्वारा प्रस्तुत छत्तीसगढ़ी रूप में यह वर्णन नहीं है, परन्तु काव्योपाध्याय द्वारा प्रस्तुत वर्णन में यह अंश इसी प्रकार वर्णित है। शेष अन्य रूपों में यह नहीं मिलता।

५—चनवा के बहुत मनाने पर लोरिक का हरदी के लिये पलायन की घटना सभी रूपों में उपलब्ध है। ग्रेग्लर द्वारा प्रस्तुत वर्णन में उस घटना का क्रम इस प्रकार है। चनैनी के पति शिवधर की समस्त शक्तियाँ महादेव-पार्वती के श्राप से कुंठित हो जाती है। चनैनी अपने पड़ोसी लोरिक से प्रेम करने लगती है। शिवधर तथा लोरिक से युद्ध होता है। शिवधर हार कर वापस आ जाता है। इसके पश्चात् लोरिक और चनैनी, दोनों हरदी भाग जाते हैं।

६—लोरिक को मार्ग में मंजरी और संवरू रोकते है। छत्तीसगढ़ी रूप (एल्विन) में भी यह वर्णित है, परन्तु केवल संवरू का नाम आता है। शेष रूपों में नहीं प्राप्त होता।

७—भोजपुरी रूप में लोरिक, मार्ग में अनेकों विजय प्राप्त करता है; तथा महापतिया दुसाध को जुए में हराता है, और युद्ध में भी हराता है।

बेग्लर द्वारा सम्पादित शाहाबाद जिले के रूप में भी यह वर्णित है। उसमें चनैनी महापतिया को अपनी ओर लुभा लुभा कर पराजित करा देती है और अन्त में उसके ऊपर लांछन लगाकर उसे मरवा देती है। शेष रुपों में यह वर्णन नहीं प्राप्त होता।

भोजपुरी रूप में लोरिक अनेक छोटे मोटे दुष्ट राजाओं को मारता है। मार्ग में चनवा को सर्प काटता है, परन्तु वह गर्भवती होने के कारण बच जाती है। सर्प आकर पुनः जहर पी लेता है।

एल्विन द्वारा संपादित छत्तीसगढ़ी रूप में लोरिक को सर्प काटता है तथा चनवा शिव पार्वती से प्रार्थना करती है और लोरिक पुनः जीवित हो जाता है। शेष रूपों में यह वर्णन नहीं प्राप्त होता।

(९) भोजपुरी रूप के अनुसार लोरिक का हरदी के राजा महुबल से बनती नहीं थी। महुबल ने अनेकों उपाय किये परन्तु लोरिक मरा नहीं। अन्त में महुबल ने पत्र के साथ लोरिक को नेवारपुर हरवा-बरवा दुसाध के पास भेजा। लोरिक वहाँ भी विजयी होता है। अन्त में महुबल को उसे आधा राज-पाट देना पड़ता है और मैत्री स्थापित करनी पड़ती है।

शाहाबाद जिले के रूप में वर्णित है कि लोरिक हरदी के राजा को हरा कर स्वयं राज करने लगा।

मैथिली रूप के अनुसार हरदी के राजा मलवर (महुबल) और लोरिक आपस में मित्र हैं। मलवर अपने दुश्मन हरबा-बरवा के विरुद्ध सहायता चाहता है। लोरिक प्रतिज्ञा करके उन्हें नेवारपुर में मार डालता है।

एल्विन द्वारा प्रस्तुत छत्तीस गढ़ी रूप में यह कथा दूसरे रूप में है। इसमें लोरिक और करिंघा के राजा से युद्ध का का वर्णन है। करिंघा का राजा हार कर लोरिक के विरुद्ध षड्यन्त्र करता है और उसे पाटनगढ़ भेजना चाहता है। लोरिक नहीं जाता।

(१०) भोजपुरी रूप में कुछ काल पश्चात् मंजरी से पुनः मिलन वर्णित है। ग्रेग्लर द्वारा प्रस्तुत रूप में लोरिक अपनी जन्म भूमि (पाली) लौट आता है और अपनी मंगेतर सत्मनाइन (सतीमंजरी) की परीक्षा लेकर उससे विवाह करता है।

छत्तीसगढ़ी रूप में हरदी में लोरिक के पास मंजरी की दीन दशा का समाचार आता है, और लोरिक और चनवा दोनों गउरा लौट पड़ते हैं। शेष रूपों में यह वर्णन नहीं मिलता है।

(११) भोजपुरी रूप सुखान्त है। इसमें लोरिक अन्त में मंजरी और चनवा के साथ आनन्द से जीवन व्यतीत करता है। मैथिली रूप भी सुखान्त है परन्तु उसमें गउरा लौटना नहीं वर्णित है। एल्विन द्वारा प्रस्तुत छत्तीसगढ़ी रूप में लोरिक अपनी पत्नी से तथा घर की दशा से दुखित होकर सदा के लिये बाहर चला जाता है। ग्रेग्लर द्वारा प्रस्तुत शाहाबाद जिले के रूप में भी लोरिक दुर्गा के क्रोध से दंड पाता है और काशी जाकर मर्णकर्णिका घाट पर पत्थर में परिणित हो जाता है।

काव्योपाध्याय द्वारा प्रस्तुत रूप का अन्त इस प्रकार होता है :—

लोरी चन्दा के साथ भाग कर जंगल के किले में रहने लगता है। वहाँ चन्दा का पति बीरबावन पहुँचता है। उससे लोरी का युद्ध होता है। बीरबावन हार जाता है और निराश होकर अकेले गउरा में रहने लगता है।

लोक गाथा के बंगला रूप में वर्णित 'लोर मयनावती तथा चंद्राली' वास्तव में भोजपुरी के लोरिक, मंजरी और चनैनी ही हैं। बावन बीर का वर्णन छत्तीसगढ़ी रूप में भी प्राप्त होता है। बंगला रूप में चंद्राली को सर्प काटता है। भोजपुरी रूप में भी गर्भवती चनैनी को सर्प काटता है। दोनों रूपों में वह पुनः जीवित हो जाती है। बंगला रूप में 'मयनावती' के सतीत्व का वर्णन है। भोजपुरी में भी मंजरी को सतीरूप में वर्णन किया गया है।

लोक गाथा का हैदराबादी रूप, छत्तीसगढ़ी के काव्योपाध्याय से अधिक साम्य रखता है।

उपर्युक्त रूपों के तुलनात्मक अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव में लोकगाथा का भोजपुरी रूप ही आदि रूप है। भोजपुरी प्रदेश से ही इस गाथा का प्रसार हुआ। भोजपुरी रूप में प्रायः सब रूपों का समन्वय है।

हम यह प्रथम अध्याय में ही विचार कर चुके हैं कि लोकगाथाओं का कोई एक निश्चित रूप नहीं होता। उसका एक पाठ नहीं होता।[1] लोरिकी के

१—चाइल्ड-स्काटिश एण्ड इंगलिश पापुलर बैलेड्स-भूमिका, किट्रेज, 'देयर आर टेक्स्ट्स बट देयर इज नो टेक्स्ट'—पृ० १८

भी विविध रूप विभिन्न भागों में उपलब्ध होते हैं। इसके रूप निश्चित बदलते भी रहे हैं, जिसके परिणाम स्वरूप आज यह विविधता पैदा हो गई है।

लोरिकी की लोकगाथा क्षेत्र प्राय: अन्य लोक गाथाओं से अधिक व्यापक है। इसके कथानक के भी अनेकानेक रोचक रूप मिलते हैं। इसके कथानक में निहित प्रेमतत्व की ओर कुछ कवियों का भी खिचाव हुआ। बंगाल के दौलत काजी तथा अलाओल ने इस कथानक के आधार पर सुन्दर काव्य की रचना कर डाली है। इसी प्रकार मुल्ला दाउद नामक प्रसिद्ध सूफी कवि ने 'चंदायन' की रचना कर 'लोरिक चंदा' को अमर कर दिया है। परन्तु यह रचना लोरिक की ऐतिहासिकता को स्पष्ट नही करती है। जायसी ने जिस प्रकार 'पद्मावत' में ऐतिहासिकता को गौण कर कल्पना का सहारा लिया है उसी प्रकार मुल्लादाउद ने भी सूफी संप्रदाय एवं साहित्य की अभिवृद्धि के हेतु प्रसिद्ध लोकगाथा 'लोरिकी' को 'चंदायन' के रूप में अपनाया है। हिंदी में 'चंदायन' की प्रेम गाथा सूफी संप्रदाय की प्रथम गाथा मानी जाती है। इसे 'चंदायन' अथवा 'लोरक चंदा' कहते हैं। इसके विषय में लिखते हुए अल्बदायूनी ने कहा है कि "एक बार शेख से कुछ लोगों ने पूछा कि आपने इस हिन्दी मनसवी को क्यों चुना है ? शेख ने उत्तर दिया कि यह समस्त आख्यान ईश्वरीय सत्य है, पढ़ने में मनोरंजक है, प्रेमियों को आनन्द और चिन्तन की सामग्री देने वाला है, कुरान की कुछ आयतों का उपदेश देने वाला है और हिंदुस्तानी गायकों व भाटों के गीत जैसा है"।[1]

शेख तकीउद्दीन वायज़ रब्बानी इस रचना को प्रवचन के समय पढ़ा करते थे। यह रचना अभी तक अपने वास्तविक रूप में उपलब्ध नहीं है, किन्तु यदि 'लोरक' वा 'नूरक', 'लोरिक' हो तो इसकी कथा इसी लोक गाथा की हो सकती है। राजस्थान में उपलब्ध हस्तलिखित प्रति के अनुसार इसका रचना काल सं० १४३६ होना चाहिए।[2]

स्थानों और व्यक्तियों के नामो में बहुत अन्तर है। रूपों की विविधता के होते हुए भी नामों की यह समानता सचमुच विलक्षण है।

प्रमुख स्थानों के नाम—गउरा, बोहा, हरदी, पाली, अगोरी; नेवारपुर चौसाका मैदान, तथा बङ्गाल का सिलहट यही प्रमुख स्थानों के नाम हैं। ये ही इस

१—श्री परशुराम चतुर्वेदी भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा—पृष्ठ ८८
२— " " " " "

गाथा की घटनाओं के केन्द्र हैं। आगे इनके द्वारा लोकगाथा की ऐतिहासिकता पर विचार किया जाएगा।

भोजपुरी रूप में केवल 'पाली' का नाम नहीं आता। केवल बेग्लर द्वारा एकत्रित रूप में लोरिक की जन्मभूमि गउरा के स्थान पर 'पाली' बतलाया गया है। अन्य सभीरूपों में गउरा का नाम आता है।

प्रमुख व्यक्तियों के नाम—लोरिक, संवरु, मंजरी, चनवा, राजा शाहदेव, राजा मलयगित्, राजा महुवर, हरवा-बरवा महापतिया दुसाध तथा बाठवा चमार यही लोक गाथा के प्रधान चरित्रों के नाम हैं। कथानक का विकास इन्हीं व्यक्तियों के साथ हुआ है। इन नामों की ऐतिहासिकता अप्राप्य है। ये नाम केवल समाज के निम्नश्रेणी के व्यक्तियों में प्रचलित हैं। निम्नश्रेणी में इनका प्रचलन होते हुये भी लोकगाथाओं में प्रदेश की संस्कृति एवं सभ्यता के उच्चादर्शों की अभिव्यक्ति होती है।

उपर्युक्त सभी नाम भोजपुरी रूप में प्राप्य हैं। लोरिक, संवरु तथा मंजरी, के नाम तो सभी रूपों में मिलते हैं। शेषनामों में थोड़ा बहुत अन्तर है। 'चनवा' का नाम मिर्जापुरी, शाहाबादी तथा छत्तीसगढ़ी रूप में 'चनैनी' है। काव्योपाध्याय के छत्तीसगढ़ी रूप में लोरिक का नाम 'लोरी, है तथा चनवा का नाम 'चन्दा' है। बाठवा चमार का छत्तीसगढ़ी रूप 'भटुआ चमार है। शेष रूपों में यह नाम नहीं मिलता है।

'महापतिया दुसाध' का नाम केवल काव्योपाध्यय के छत्तीसगढ़ी रूप को छोड़कर सभी रूपों मे दिया गया है।

राजा शाहदेव एवं मलयगित् का नाम केवल भोजपुरीरूप में है। शेष रूपों में नामों के स्थान पर केवल 'राजा' का उल्लेख है।

हरदी के राजा महुवर का नाम मैथिली रूप में 'मलवर है। शेष रूपों में 'महुबल है। छत्तीसगढ़ी रूप में यह नाम नहीं है। काव्योपाध्याय के छत्तीसगढ़ी रूप में 'वीरबावन' का नाम आता है जो कि 'चन्दा' का पति है।

नदियों के नाम—प्रमुख नदियाँ लोकगाथा के अन्तर्गत, गंगा एवं सोन हैं। सोन के किनारे ही अगोरी का किला वर्णित है। गङ्गा का तो सभी लोकगाथाओं में समावेश है।

'लोरिकी' की ऐतिहासिकता—लोरिकी की ऐतिहासिकता के विषय में अभी तक कोई निश्चित तथ्य नहीं प्राप्त किया जा सका है। वास्तव में अभी तक 'अहीरजाति' के सांगोपांग इतिहास पर ही किसी निश्चित मत का प्रतिपादन नही किया गया है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि वे प्राचीन आभीरों

एवं गुर्जरों के वंशज हैं। पाश्चात्य इतिहासकारों का मत है कि आभीर एवं गुर्जर बाहर से आई हुई जातियाँ हैं। भारतीय विद्वानों का मत है कि आभीर एवं गुर्जर जातियाँ भारत की प्राचीन जातियों में से ही हैं। इनका उल्लेख रामायण महाभारत, पुराण, तथा मनुस्मृति में भी किया गया है।

अहीर लोग प्रायः समस्त भारतवर्ष में मिलते हैं। आठवीं शताब्दी में गुजरात में जब कट्टी जाति का आगमन हुआ था, उस समय ताप्ती तथा देवगढ़ के बीच के भाग को 'आभीर प्रदेश' कहा जाता था।[1] सर हेनरी का कथन है कि अहीर लोगों ने नेपाल पर भी राज्य किया था।[2] बंगाल के पालवंश से भी इनका संबंध बतलाया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन समय से अहीर एक महत्वपूर्ण जाति रही है।

आजकल साधारण रूप से अहीरजाति की गिनती शूद्रों में की जाती है। मनुस्मृति में आभीरों को ब्राह्मण तथा वैश्य से उत्पन्न बतलाया गया है। भागवत पुराण में प्रसिद्ध नन्द अहीर को वैश्य जाति का बतलाया गया है। साधारणतया सभी अहीर अपने को उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले से संबंधित बतलाते हैं। वैसे अहीरों की अस्सी से ऊपर उप-जातियाँ प्राप्त होती हैं, परन्तु इनके तीन प्रमुख भाग हैं : प्रथम नन्दवंश, द्वितीय यदुवंश, तृतीय ग्वालवंश। गंगा यमुना के दोआब के अहीर नन्दवंशी कहलाते हैं, यमुना के पश्चिम एवं उत्तर दोआब के अहीर यदुवंशी कहलाते हैं; तथा दोआब के नीचे और बनारस के पूरब के अहीर ग्वालवंशी कहलाते हैं।

वर्तमान समय में अहीरों का प्रधान कार्य गाय पालना और दूध बेचना है। ये लोग कुश्ती लड़ने के लिए प्रसिद्ध होते हैं। वास्तव में यह एक बलाढ्य जाति है। इनकी वीरता एवं उत्साह क्षत्रियों के समान है। लोकगाथा में ये लोग क्षत्रिय के समान ही चित्रित किये गये हैं। अहीर होते हुये राज्य करना, युद्ध करना इनका प्रधान कर्म है।

अब प्रश्न यह है कि 'लोरिक' की लोकगाथा का इतिहास क्या है ? डब्ल्यू० क्रुक (फेटिशिज़्म[4]) पर विचार करते हुये बतलाते हैं कि इस लोकगाथा का भी उद्भव इसी पूजा से है।[3] इनका कथन है कि भारतवर्ष में अद्भुत ढंग के बने

१—सर हेनरी—कास्ट्स एण्ड हर्डस्मेन-पृ० ३३२

२— वही पृ० ३३२

३—डब्ल्यू क्रुक—ऐन इन्ट्रोडक्शन टु दी पापुलर रिलजिन एण्ड फोकलोर आफ इंडिया। पृ० २८९—२९०

४—फीटेशिज्म—जड़ पदार्थों की पूजा

हुये पत्थरों, टीलों तथा वृक्षों की पूजा होती है। वस्तुतः प्रकृति की नैसर्गिक क्रिया में ये वस्तुयें अपना अद्भुत रूप धारण कर लेती हैं। परन्तु ग्रामीण समाज उसमें कुछ निहित अमानवीय भावना का दर्शन पाता है। धीरे-धीरे उस वस्तु की पूजा प्रारंभ हो जाती है। उसके पीछे अनेक कथायें प्रचलित हो जाती हैं। इसी प्रकार कथा एवं गाथा का निर्माण हो जाता है। इस कथन को और भी स्पष्ट करते हुए वे 'लोरिक' का उदाहरण देते हैं और लिखते हैं कि सोन नदी के किनारे लहरों से कटा हुआ एक पत्थर है जो कि हाथी के कटे सूंड़ के समान है। वहाँ एक बहुत बड़ा पत्थर का टुकड़ा भी पड़ा है जिसमें एक पतली दरार है। इन्हीं पत्थरों के आधार पर लोरिक की कथा का जन्म हो गया है जो कि हमें उस युग में ले जाता है जब कि आर्यों एवं अनार्यों में सोन नदी के किनारे विस्तृत भूमि भाग के लिये युद्ध हुआ करता था।[1]

प्रस्तुत लोकगाथा में सोन नदी के किनारे अगोरी किले का वर्णन मिलता है। अतः यह सम्भव हो सकता है कि प्राचीन समय में लोरिक नामक वीर ने अगोरी के राजा से युद्ध किया हो और उसी विजय का स्मरण उपर्युक्त पत्थर दिलाता हो। इस घटना के पश्चात धीरे-धीरे कथा विकसित होते-होते वर्तमान विशाल रूप में परिणत हो गई हो। प्रथम अध्याय में ही हम विचार कर चुके हैं कि लोकगाथाओं का विकास-क्रम बहुत ही असंबद्ध होता है। कोई भी साधारण या असाधारण घटना तत्काल या कालान्तर में समाज में एक कथा के रूप में फैल जाती है और तदनन्तर कालक्षेप के साथ लोकगाथा के रूप में परिणत हो जाती है।

डा० जयकान्त मिश्र ने मैथिली लोकसाहित्य पर विचार करते हुये 'लोरिकी' (मैथिलरूप-लोरिक का गीत) की लोकगाथा को छः सौ वर्ष पुराना बतलाया है।[2] आपका कथन है कि ज्योतिरेश्वर कृत 'वर्णरत्नाकर' की रचना सन् १३२४ में हुई थी, तथा लोरिकी की लोकगाथा प्रायः इसी समय प्रारंभ हुई थी। इस प्रकार 'लोरिकी' का उद्भव मध्य युग में हुआ होगा। लोकगाथा के चरित्रों एवं वर्णनों को देखने से हम उसमें मध्य युगीन संस्कृति की झलक पाते हैं। इसलिये

१—कुक-ऐन इन्ट्रोडक्शन टु दी पापुलर रिलीजन एण्ड फोकलोर आफ इण्डिया—पृ० २९१

२—युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज (अंग्रेजी भाग), इन्ट्रोडक्शन टु दी फोकलिटरेचर आफ मिथिला—पृ० २२

यह सम्भव हो सकता है कि यह एक मध्य युगीन घटना हो, अथवा यह भी संभव हो सकता है कि इस घटना का लोकगाथा के रूप में प्रचार मध्य युग में हुआ हो। इस प्रकार गायकों द्वारा उसमें मध्ययुगीन सांस्कृतिक तत्वों का समावेश कर दिया गया होगा। नीचे इस गाथा में वर्णित गावों, नदियों आदि की ऐतिहासिकता पर विचार प्रस्तुत किया जाता है।

गउरा—सम्पूर्ण लोकगाथा में सबसे प्रमुख स्थान 'गउरा' है। यहीं लोरिक का जन्म हुआ था। यहाँ के राजा का नाम शाहदेव था। इस गाथा में अनेक स्थानों पर 'गउरा गुजरात' का नाम आता है, जिससे यह प्रतीत होता है कि यह घटना गुजरात से संबंध रखती है। आभीरों का उद्भव भी गुजरात में प्रमुख रूप से हुआ था। परन्तु लोकगाथा में 'गउरा गुजरात' नाम के अतिरिक्त गुजरात के किसी भी उपप्रदेश, नगर, गाँव का उल्लेख नहीं है। गुजराती लोक-साहित्य के अन्तर्गत भी 'लोरिक' नामक व्यक्ति अथवा 'गउरा' स्थान का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। अतएव केवल सम्भावना है कि आभीरों के आगमन के साथ लोरिक की घटना घटी होगी। आभीर लोग ज्यों ज्यों पूरब की ओर बढ़ते गये त्यों त्यों इस घटना का विकास होता गया और भोजपुरी प्रदेश में आकर स्थानिक रूप ले लिया। लोककथाओं का गमनागमन मौखिक प्रचार के कारण होता है। इसी क्रम से तो जातकों की कथाएँ यूरोपीय देशों तक पहुँच गई हैं।

उपर्युक्त सम्भावना के ऐतिहासिक या भौगोलिक प्रमाण नहीं मिलते, किन्तु भोजपुरी प्रदेश में 'गउरा' नामक गाँव है। बिहार के शाहाबाद जिले में डुमरांव तहसील में 'गउरा' नामक ग्राम में अहीरों की एक बहुत बड़ी बस्ती है। 'लोरिकी' के गायक से यह ज्ञात हुआ कि लोरिक इसी 'गउरा' का रहने वाला था। परन्तु यहाँ पर कोई ऐतिहासिक चिन्ह नहीं है। अहीरों की बड़ी बस्ती से हम यह सम्भावना कर सकते हैं कि 'लोरिक' का स्थान यही है।

बोहा—प्रस्तुत लोकगाथा में 'बोहा के मैदान' का उल्लेख मिलता है। यहाँ लोरिक तथा उसका बड़ा भाई संवरू गाय-भैंसे चराते थे।

उत्तरप्रदेश के बलिया नगर से उत्तर दो मील की दूरी पर 'बोहा' का मैदान' आज भी स्थित है। इसका क्षेत्रफल प्रायः चौदह मील के लगभग बतलाया जाता है। इसी 'बोहा' के अन्तर्गत एक बड़ा ऊँचा टीला है जो 'लोरिक डीह' कहलाता है। बहुत सम्भव है कि खुदाई करने से यहाँ कुछ प्राचीन वस्तुएँ मिले जिनका लोरिक से कोई संबंध हो।

इसी 'लोरिक डीह' से चार पाँच फर्लाङ्ग दूरी पर 'संवरू बांध' नामक गाँव है, जो दन्तकथा के अनुसार लोरिक के बड़े भाई संवरू के नाम पर बसा है।

'संवरू बांध' से थोड़ी दूर पूरब की ओर 'अखार' नामक गांव है। लोकगाथा के अनुसार लोरिक तथा संवरू अखाड़े में कुश्ती लड़ते थे। यह गांव उसी अखाड़े का स्मरण दिलाता है।

अगोरी—प्रस्तुत लोकगाथा के मिर्जापुरी रूप से यह स्पष्ट होता है कि 'अगोरी का किला' सोन नदी के किनारे था। लोकगाथा के भोजपुरी रूप में भी अगोरी तथा सोन (सोन नदी) नदी का वर्णन मिलता है। श्री डबल्यू० क्रुक ने लिखा है कि मिर्जापुर के 'अगोरी परगने' के अहीर 'माथू' नाम से पुकारे जाते हैं। 'अगोरी परगना' आज भी है।

सोन नदी के किनारे 'अगोरी किले' का तो कहीं नाम निशान नहीं है। यह सम्भव है कि उपर्युक्त किला कभी रहा हो और कालान्तर में सोन की लहरों ने आत्मसात् कर लिया हो। यह भी सम्भव है कि क्रुक द्वारा वर्णित सोन नदी के तट का चट्टान उसी किले का भग्नावशेष हो।

हरदी—प्रस्तुत लोकगाथा में लोरिक तथा चनवा का भाग कर हरदी जाना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। भोजपुरी रूप में 'हरदी' बंगाल के सिलहट जिले में बतलाया गया है। गायकों का भी यही विश्वास है कि 'हरदी' बंगाल में ही है।

श्री बेग्लर ने हरदी को मुंगेर जिले के अन्तर्गत बतलाया है। यहाँ हरदी नामक एक गाँव है। बलिया जिले में भी एक 'हरदी' नामक प्रसिद्ध गाँव है। यहाँ हैहयवंशी क्षत्रिय निवास करते हैं परन्तु इस वंश से लोकगाथा का कोई सम्बन्ध नहीं बतलाया जाता है।

वस्तुतः उत्तरी भारत में 'हरदी' नामक अनेक गाँव मिलते हैं। परन्तु किसी भी गाँव में लोरिक की ऐतिहासिकता को स्पष्ट करने की सामग्री नहीं उपलब्ध होती है।

गंगा नदी और सोन नदी का उल्लेख लोकगाथा में स्वाभाविक है। बिहार से होकर ये दोनों नदियाँ बहती हैं। पर इनकी लहरें यह नहीं बतलाती कि लोरिक, मंजरी के साथ विवाह करके कब इन लहरों पर से पार हुआ होगा, अथवा लोरिक, चनवा के साथ पलायन करते हुए कब इन लहरों को काट कर

उस पार पहुंचा होगा। वे लहरें अब है ही कहां, वे तो विशाल महोदधि में विलीन हो गई।

'लोरिकी' की घटनायें अवश्य घटित हुई होंगी, परन्तु विशाल जनसमूह ने उन्हें आत्मसात् करके उसकी ऐतिहासिकता को समाप्त कर दिया। 'लोरिकी' को अपने नित्य जीवन का आदर्श मान लिया। लोरिक व्यक्ति न हो कर एक अवतार, वीरता, सज्जनता, एवं रसिकला की प्रतिमूर्ति बन गया।

उपर्युक्त स्थानों की भौगोलिकता पर विचार करने से यह विश्वास उत्पन्न होता है कि 'लोरिकी' की गाथा किसी अन्य प्रदेश से नहीं आई, अपितु उसकी घटनाएँ भोजपुरी प्रदेश में ही घटी होगीं। लोकगाथा के रग-रग में भोजपुरी जीवन व्याप्त है, इसमें सभी कुछ भोजपुरी है। अतएव यह कहना असंगत न होगा और न पक्षपात ही होगा कि यह घटना एक भोजपुरी घटना है।

लोरिक का चरित्र—लोरिकी की सम्पूर्ण लोकगाथा में और इसके समस्त रूपों में प्रथमतः वह वीरता का अवतार है, द्वितीय वह लोकरक्षक के रूप में हमारे सम्मुख आता है, वस्तुतः इसके तीन प्रधान रूप में सम्मुखआता है तथा तृतीय वह एक उत्कट प्रेमी है।

यह भारतीय परंपरा है कि जब जब देश में अनार्य प्रवृत्तियाँ अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं, तो भगवान् स्वयं इस पृथ्वी पर दुष्टों के पराभव तथा साधुजन की रक्षा के हेतु अवतार लेते हैं। भगवान् के जन्म लेते ही मंङ्गल भावना का उदय होता है। उनके तेजोमय रूप से चारों ओर आशा एवं विश्वास का संचार होता है तथा शठ अपनी शठता का यथोचित दंड पाते हैं। वीर लोरिक का जन्म भी एक अवतार की भाँति होता है। वह समस्त दुष्ट प्रकृति के लोगों का पराभव करता है। गरीब बुढ़कूबे के घर में भगवान लालदेव (अर्थात् लोरिक) अवतार लेते हैं। लोरिक के जन्म के साथ ही गउरा में आनन्द का साम्राज्य छा जाता है। गउरा का राजा शाहदेव एक दुराचारी व्यक्ति था। उसके अत्याचार से समस्त प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी। भगवान् कृष्ण की भांति ऐसी ही परिस्थित में लोरिक का जन्म होता है। बाल्यावस्था में ही वह सब विद्याओं म पारंगत हो जाता है। दंड, मुगदर, कसरत तथा शस्त्रास्त्र में निपुण हो जाता हैं। उसकी अद्भुत शक्ति को देखकर लोग चकित हो जाते हैं। शुक्ल-पक्ष के चंद्रमा की भाँति उसका रूप और गुण विकसित होता हैं। बोहा में वह गाय भैंसों से खेलता है। अखाड़े में अपने बड़े भाई संवरु तथा गुरू मितारजइल को भी पछाड़ देता है। अपने अद्भुत कृत्यों से पुरजनों को प्रसन्न करता है। बाल्यावस्था में पदार्पण करने के पहले ही उसके कर्त्तत्व की परीक्षा प्रारंभ

होती है। संवरू के विवाह में सकट देखकर पिता को ढाढ़स देता है और कहता है। बाबा तुम घबड़ाओ नहीं, जानते हो मैं कौन हूँ ?

अरे पहिला अवतरवा हो भइल मोहबा में हमार '
नइयाँ रहे बाबिल ऊदल हो हमार,
नैनागढ़ में कइले हो रहलीं आल्हा के बियाह,
अरे लेकर त हलिया जाने सब संव ये सार,
दोसर अवतरवा हो भाइल गढ़ रोही ए दास ,
नामवा तो रहले बाबिल बिजई कुंअर हमार,
बावन गढ़ किलवा बाबिल दिहलीं हो गिराय,
अरे तिसरे जनमवा ए बाबिल गउरवा में भइल हमार,
तोहरा हो घरवा नइयाँ लोरिकवा पड़ल हमार,
तू त बाबिल जालऽ थोड़े में घबड़ाय,
हमरो त हलिया बाबिल देखऽ आँख पसार।

उपर्युक्त वचन जब उसका पिता सुनता है तो उसे विश्वास होता है, और संवरू के विवाह की अनुमति देता है। वह सब प्रकार से सुसज्जित होकर बारात में चल देता है और जीवन के रणक्षेत्र में कूद पड़ता है।

लोरिक के जीवन का व्रत है लोकरंजन एवं लोकसेवा। उसे यह भली-भाँति विदित है कि बिना दुष्टों का नाश किये देश में शान्ति नहीं स्थापित हो सकती है। वह अपने बड़े भाई को तथा अपने ब्याह के बहाने इस समय के दुष्प्रकृति व्यक्तियों का नाश करता है। उसने सुरवलि के राजा बामदेव के अत्याचार को सुन रक्खा था। वह प्रतिज्ञा करता है 'बामदेव के किलवा में कोइला देबि हम बोवाय,' सुरवलि पहुँच कर राजा बामदेव से भीषण युद्ध होता है। वह अद्‌भुत पराक्रम से युद्ध करता है। जादू, टोना भूत-प्रेत इत्यादि अनार्य-शक्तियाँ उसका बाल भी बाँका नहीं कर पाती हैं। स्वर्ग के देवता भी उसकी सहायता करते हैं। वह लग्नमंडप में बैठकर भाई का ब्याह रचाता है तथा भाई की रक्षा के लिये वहीं युद्ध करता है। विवाह के पश्चात् वह सुरवलि के किले को नष्ट भ्रष्ट कर देता है।

इसी प्रकार अपने विवाह के लिये वह सात देशों एवं सात नदियों को पार करता हुआ अगोरी में पहुँचता है। द्वापर में कंस ने जिस प्रकार आज्ञा दे रक्खी थी कि मथुरा में उत्पन्न बालक काल के मुख में जायेंगे, उसी प्रकार अगोरी के राजा मलयगित् की आज्ञा थी कि समस्त अगोरी की समस्त बालिकायें उसकी पटरा-रानियाँ बनकर रहेंगी। मंजरी से विवाह करने के बहाने वह अगोरी पहुँच कर

राजा मलयगित् से भीषण युद्ध करता है। चौसाका मैदान रक्त रंजित हो उठता है। वह मलयगित् को धराशायी करता है। समस्त निवासी संतोष की साँस लेते हैं। इसी प्रकार चनवा के साथ पलायन करने में दुष्ट राक्षस हरवा-बरबा का नाश कर हरदी के राजा का भय दूर करता है।

लोरिक के जीवन का एक अन्य रूप है। वह उसका प्रेमी रूप है। वह एक सफल प्रेमी है। वह किसी नायिका से प्रेम की याचना नहीं करता है, अपितु उसकी वीरता को देखकर चनवा उसके ऊपर मोहित हो जाती है। प्रेम की मार बड़ी पैनी होती है। लोरिक चनवा के नयनबाण से घायल हो जाता है। उसके कर्मठ जीवन में वसन्त की कोयल कूक उठती है परन्तु उसके वीरकर्म का अन्त नहीं होता है। जीवन के इस नन्दन कानन में भी उसका हाथ तल-वार पर रहता है। अनेकानेक दुष्टों को वह दंड देता है। चनवा के प्रेम में रत होकर वह गउरा छोड़ देता है। सभी-नर-नारी रो उठते हैं, मंजरी के दुख का तो ठिकाना ही नहीं। भगवान कृष्ण भी तो गोपियों को रोता छोड़कर चले गये थे। लोरिक भी सबको बिलखता छोड़कर प्रेम की बाजी जीतना चाहता है। इसमें उसे सफलता मिलती है। चनवा सुन्दरी के लिए वह योग्य प्रेमी बनता है। मार्ग में उसे अनेक कष्टों से बचाता है। हरदी पहुँच कर नवीन राज्य की स्थापना करता है। चनवा जब उसके प्रेम को पूर्णतया परख लेती है तो गउरा लौटने को कहती है। उसके पश्चात् दोनों गउरा लौटते हैं।

इस प्रकार लोरिकी में 'लोरिक' का सर्वांगसुन्दर चित्र उपस्थित हुआ है। इसी कारण इस गाथा का नाम 'लोरिकी' पड़ा है। वास्तव में 'लोरिकी' अहीर जाति के लिये गर्व की वस्तु है। लोरिक भारतीयता से ओत-प्रोत एक बीर पुरुष है। वह आर्य पथानुगामी है तथा जीवन के के उच्चादर्श को हमारे सम्मुख रखता है।

——:०:——

(३) विजयमल

भोजपुरी वीरकथात्मक लोकगाथाओं के अन्तर्गत 'विजयमल' की लोकगाथा प्रमुख स्थान रखती है। इस लोकगाथा का दूसरा नाम 'कुंवर-बिजई' भी है। भोजपुरी प्रदेश में इसको नेटुआ[1] तथा तेली जाति के लोग अधिकांश रूप में गाते हैं। लोकगाथा के अन्तर्गत 'विजयमल' को तेली जाति का ही बतलाया गया है, परन्तु इसमें वर्णित सामाजिक स्तर निम्न श्रेणी का न होकर राजपुरुषों की भांति है। परम्परा में विश्वास करने वाले गायकवृन्द विजयमल को तेली जाति से ही संबंधित बतलाते हैं। वर्णव्यवस्था के अनुसार तेली लोगों की गणना शूद्रों में की जाती है, यद्यपि वे अपने को वैश्य ही समझते हैं। 'विजयमल' के गायक तेली अथवा नेटुआ जाति के ही होते हैं। परन्तु ऐसा कोई नियम नहीं है। अन्य जाति के लोग भी इसे गाते हैं।

यह सम्भाव्य है कि निम्न श्रेणी में प्रचलित होने के कारण इस गाथा के चरित्र भी निम्न वर्ण के कर दिये गये हों। वास्तव में उनका चरित्र, उनकी सभ्यता, उनका राज्य शासन तथा युद्ध कौशल, इसी बात के द्योतक हैं कि उनमें आर्य रक्त है तथा वे क्षत्रिय कुल के हैं।

'विजयमल' के नाम में 'मल' शब्द से विजयमल का क्षत्रिय होना सम्भव हो सकता है। क्षत्रियों में 'मल क्षत्रिय' भी एक उपजाति है। परन्तु क्षत्रिय लोग 'मल क्षत्रियों' को कुलीनवंश का नहीं मानते हैं।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों एवं विहार में अधिकांश रूप से मल क्षत्रिय रहते हैं। इसलिये यह संभव हो सकता है कि 'विजयमल' भी क्षत्रिय जाति के ही रहे हों। मल क्षत्रियों के विषय में लोकगाथा की ऐतिहासिकता के प्रकरण में विचार करेंगे।

इस लोकगाथा में कुंवर विजयमल का चरित्र प्रधान रूप से चित्रित किया गया है। वीर लोरिक के समान विजयमल भी दैवी कृपा युक्त एक वीर पुरुष है। प्रस्तुत लोकगाथा में प्रमुख रूप से विजयमल का विवाह तथा विजयमल के पिता के कष्ट का बदला लेना वर्णित है। इस लोकगाथा में भी मध्ययुगीन वीरता

१—एक जाति विशेष—यह एक बनजारों की जाति होती है, लोकगाथा गा कर अथवा शारीरिक व्यायाम दिखला कर जीवकोपार्जन करते हैं।

चित्रित हुई है। मध्ययुग की भाँति इस लोकगाथा में भी विवाह ही युद्ध का प्रधान कारण है। कथानक में विवाह तो गौण हो जाता है और युद्ध प्रधान बन जाता है। वीरता के साथ-साथ उदारता एवं उत्कट प्रेम की भावना का भी इसमें समावेश हुआ है। कुंवर विजयमल इस लोकगाथा में लोकरक्षक के रूप में चित्रित हुआ है। अत्याचारी को नष्ट करना ही उसके जीवन का प्रमुख उद्देश्य है।

प्रस्तुत लोकगाथा का कोई अन्य प्रादेशिक रूप अभी तक देखने अथवा सुनने में नहीं आया है। यह केवल भोजपुरी प्रदेश में गाई जाती है। सबसे प्रथम ग्रियर्सन ने शाहाबाद जिले में बोली जाने वाली भोजपुरी रूप को प्रस्तुत करने के लिये इस लोकगाथा को एकत्र किया था[1] और इसका अंग्रेजी में अनुवाद भी किया था।

प्रस्तुत लोकगाथा दूधनाथ प्रेस, हवड़ा से भी प्रकाशित की गई है। यही साधारणतया बाजारों एवं मेलों में बिकती है।[2]

लोकगाथा का तीसरा रूप मौखिक है। इस प्रकार 'विजयमल' की लोकगाथा के तीन भोजपुरी रूप हमारे सम्मुख हैं। तीनों ही आदर्श भोजपुरी रूप हैं। 'विजयमल' की लोकगाथा अधिकांश रूप में आदर्श भोजपुरी प्रदेश में ही गाई जाती है।

गाने का ढंग—अन्य भोजपुरी लोकगाथाओं की भाँति यह लोकगाथा भी समान स्वर में गाई जाती है जिसे 'द्रुतिगतिलय' नाम से अभिहित किया जा चुका है। लोकगाथा के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक प्रत्येक पंक्ति के प्रारम्भ में 'रामा' तथा अन्त में 'रेना' रहता है। गायक द्रुतलय से गाथा की प्रत्येक पंक्ति गाता चला जाता है। वर्णित भावों के अनुसार उसके स्वर में भी चढ़ाव-उतार हुआ करता है। परन्तु 'रामा' और 'रेने' का क्रम नहीं टूटने पाता है।

लोकगाथा की संक्षिप्त कथा—राजा घुरुमल सिंह तथा रानी मैनावती के दो पुत्र थे। प्रथम का नाम धीरानन तथा द्वितीय का विजयमल। धीरानन की स्त्री का नाम सोनमती था। देवी दुर्गा की कृपा से बहुत बाद में राजा घुरुमल सिंह के यहां विजयमल ने जन्म लिया। रोहदास गढ़ में इनका राज्य था।

बावन देश के राजा बावन सूबेदार के यहाँ कन्या ने जन्म लिया, जिसका

१—जे० एस० बी० १८८४ (१) पृ० ७४

२—कुंवर बिजई-दूधनाथ प्रेस एवं पुस्तकालय, हावड़ा।

नाम 'तिलकी' पड़ा। बावन सूबे के पुत्र का नाम मानिकचन्द था। कन्या के जन्म लेने के पश्चात् ही राजा ने देश-देशान्तरों में तिलकी के लिये वर खोजने नाई-ब्राम्हण को भेजा, परन्तु कहीं वर न मिला। कुछ काल के उपरान्त राजा घुरुमल सिंह के यहाँ भी विजयमल के लिये तिलक चढ़ाने नाई-ब्रम्हण पहुँचे। पहले तो घुरुमलसिंह ने तिलक अस्वीकार कर दिया क्योंकि वे राजा बावन सूबा के अत्याचारों से परिचित थे, परन्तु बड़े पुत्र धीरानन के कहने पर तिलक स्वीकार कर लिया। राजा बावन सूबा ने बहुत धूमधाम से तिलक भेजा। लाखों लोग बावन देश से आये। धीरानन ने लोगों के हाथ पैर धोने के लिये पानी की जगह तेल दिया तथा पीने के लिये घी। इस पर तिलकी का भाई मानिकचन्द क्रोधित हुआ और कहा, 'मैं भी विवाह में बदला लूँगा।' बावनसूबा ने जब इस सत्कार का समाचार सुना तो वह भी अत्यन्त क्रोधित हुआ।

राजा घुरुमल तथा धीरानन छप्पन लाख की बारात लेकर बावन देश पहुँच गये। बावन सूबा ने लोगों का बहुत आदर सत्कार किया। विवाह की विधि सुन्दर ढंग से सम्पन्न हुई। मानिकचन्द को अब बदला लेना था। उसने समस्त बारात को माँड़ों में आने के लिये निमन्त्रित किया। बड़े उत्साह से राजा घुरुमल सिंह बारात सहित माड़ों में आये। मानिकचन्द ने उसी समय विजयमल को छोड़कर सबको बँधवा कर बावन गढ़ के किले में डलवा दिया। माँड़ों के समीप ही हिंछल बछेड़ा (घोड़े का बच्चा) था। उसके आँख पर पट्टी बँधी हुई थी तथा हाथ पैर बाँध दिये गये थे। वह सब समझ रहा था। कैद होने से केवल विजममल बच गये थे। मानिकचन्द ने तिलकी की सखी चल्हकी नाऊन को आज्ञा दी कि वह विजयमल को आग में फेंक दे। परन्तु चल्हकी नाउन ने अपनी सखी के सौभाग्य की रक्षा के लिये दूसरा उपाय निकाला। उसने हिंछल बछड़े को खोल दिया, विजयमल को उस पर बिठा दिया और घोड़े से उड़ जाने की सलाह दी। हिंछल बछेड़ा विजयमल को लेकर आकाश मार्ग से रोहदासगढ़ पहुँच गया। हिंछल बछड़े ने सब समाचार सोनमती से कह सुनाया। उसके दुख का ठिकाना न रहा।

कुँवर विजयमल की अवस्था जब दस वर्ष की हुई तो वह एक दिन गुल्ली-डण्डा खेलने के लिये पड़ोस की बाल मण्डली में गया। लड़कों में से एक जो काना था, बोला कि अपना गुल्ली-डण्डा लाओ तब खिलायेंगे। विजयमल ने भाभी सोनमती से कहकर काठ का गुल्ली-डण्डा बनवा लिया। जब वह पुनः पहुँचा तो काने लड़के ने कहा कि तुम राजा हो, काठ के छोटे गुल्ली डण्डा से तुम क्या खेलोगे, जाकर लोहे की अस्सी मन की गुल्ली और अस्सी मन का डण्डा बनवा लाओ तब खेलेंगे। कुँवर विजयमल ने क्रोधित होकर यह बात सोन-

मती से कही। सोनमती ने कुँवर को प्रसन्न करने के लिये लोहार से अस्सी मन की गुल्ली डण्डा बनाने की आज्ञा दे दी। अस्सी मन का गुल्ली डण्डा तो बन गया पर वह किसी से उठता नहीं था। लोहार बड़ा घबड़ाया और महल में जाकर यह सूचना दी। यह सुनकर विजयमल वहाँ स्वयं गये और एक ही हाथ से गुल्ली डण्डा को उठाकर फेंका। गुल्ली जाकर बावनसूबे के महल में गिरा। कुँवर का यह कर्तव्य देखकर लोग चकित रह गये। उस काने लड़के ने फिर कहा कि 'यार तुम इतने वीर हो तो क्यों नहीं जाकर अपने पिता और भाई को कैद से छुड़ाते हो। विजयमल को अपने विवाह का स्मरण नहीं था। उसने जाकर सोनमती से पूछा। सोनमती यह सुनकर घबड़ा गई। वह सोचने लगी कि पूरे कुल में यही एक बालक बचा है, क्या यह भी बावनसूबा के हाथों से मारा जायगा? परन्तु कुंवर ने सोनमती की बात नहीं सुनी और प्रतिज्ञा की कि जब तक सबको कैद से छुड़ाकर बावनसूबा को दंड नहीं दूँगा तब तक हमारे जीवन को धिक्कार है।

विजयमल हिंछल बछड़े पर सवार होकर बावन देश की ओर चल पड़ा। जंगलों, पहाड़ों, नदियों को पार करते हुये विजयमल बावन देश पहुँच गया। राजा द्वारा निर्मित भवरानन पोखरे पर उसने अपना डेरा डाल दिया। तिलकी की सोलह सौ सखियाँ घड़ा लेकर वहाँ पानी भरने के लिये आई। विजयमल ने एक तीर से सब घड़ों को फोड़ दिया। सखियों ने जाकर तिलकी से यह समाचार कहा। तिलकी ने अपनी प्रिय सखी चल्हकी को देखने के लिये भेजा। चल्हकी को आते देखकर विजयमल योगी बनकर बैठ गया तथा मन्त्र बल से पोखरे के घाटों को बाँध दिया। चल्हकी ने उससे पोखरा छोड़ने के लिये कहा। विजयमल अपने स्थान से नहीं डिगा। इस पर चल्हकी ने कहा कि बावनसूबा तुम्हे मार डालेंगे। उस पर विजयमल ने बताया कि बावनसूबा उसके श्वसुर हैं। आगे उसने सारी कथा भी कह सुनाई और यह भी बता दिया कि मैं बदला लेने आया हूँ। यह समाचार तिलकी के पास पहुँचा। तिलकी स्नान के बहाने अपनी माता से आज्ञा लेकर शृंगार करके भवरानन पोखरे पर गई। विजयमल ने तिलकी का रूप देखा तो वह मूर्छित हो गया। हिंछल बछड़े ने उसकी मूर्छा दूर की। तिलकी को जब यह मालूम हुआ तो लाज के मारे उसने घूँघट निकाल लिया। तिलकी ने भविष्य की विपत्तियों से सचेत करते हुये विजयमल से भाग चलने के लिये कहा। विजयमल ने कहा कि जब तक प्रण पूरा न होगा तब तक नहीं जाऊँगा और तुम्हारा गवना सबके सम्मुख करा के ले जाऊँगा।

विजयमल, हिंछल बछड़े पर पुनः सवार होकर नगर में चल पड़ा। एक कुँये पर आकर वह रुका। वहाँ राजा की दासी पानी भरने आई थी। कुंवर ने पीने

के लिये पानी माँगा । दासी ने अस्वीकार कर दिया तो विजयमल ने घड़ा फोड़ दिया । यह समाचार राजा के पास पहुँचा । राजा ने चार पहलवानों को पकड़ने के लिये भेजा । विजयमल ने सबको धराशायी किया । राजा ने महाबली पहलवान 'जसराम' को भेजा । विजयमल ने उसे भी भूमिशायी कर दिया । राजा ने फिर तीन सौ डोमड़ों को भेजा । विजयमल ने इन्हें भी मार गिराया । इसके पश्चात् राजा स्वयं अपने पुत्र मानिकचन्द के साथ लाखों की सेना के साथ विजयमल को मारने के लिये पहुँचा । विजयमल ने देवी दुर्गा का स्मरण किया । हिंछल बछड़े ने उसे ढाँढ़स बंधाया । युद्ध प्रारम्भ हो गया । हिंछल सदा उसको विपत्तियों से बचाता रहा । वह आकाश में उड़कर, फौज पर दौड़कर सेना में कुहराम मचा देता था । विजयमल ने अपने खड्ग से समस्त सेना को काट डाला ।

विजयमल ने किले में पहुँचकर तिलकी की सहायता से जेल का द्वार खोल दिया और अपने पिता तथा भाई से मिला । सब की भलीभांति सेवा करके सबको घर भेजने का प्रबन्ध कर दिया । पिता ने विजयमल से भी चलने को कहा ! विजयमल ने कहा कि अभी प्रण पूरा नहीं हुआ है । यह कह कर कुँवर महल में गवने की रस्म करने के लिये चला गया । मानिकचन्द ने अवसर देखकर विजयमल पर घातक प्रहार किया । विजयमल मूर्छित हो गया । हिंछल बछेड़ा यह देख रहा था । वह विजयमल को टांगकर उड़ चला और देवी दुर्गा के निवास पर पहुँचा । देवी ने अपनी कनिष्ट अंगुली चीर कर विजयमल के मुख में खून की बूँदें डाल दीं । कुँवर जीवित हो उठा । क्षण भर में वह बावनगढ़ में पुनः पहुँच गया । पहुँचते ही मानिकचन्द को हरा कर राजा एवं मानिकचन्द, दोनों को सीकड़ से बँधवा दिया । बावनगढ़ को उसने ध्वंस कर दिया और तिलकी के साथ पालकी में बैठकर वह चल दिया । सींकड़ में बँधे राजा और मानिकचन्द को रोहवासगढ़ के जेल में आजन्म कारावास भुगतने के लिये डाल दिया । घुरमुलपुर में सोनमती के प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । उसे पति मिला, देवर मिला, श्वसुर मिला और तिलकी देवरानी भी मिली ।

प्रस्तुत लोकगाथा के अन्य दो रूपों (ग्रियर्सन द्वारा एकत्रित रूप तथा प्रकाशित रूप) में भी यही कथा दी हुई है । कथा में कोई अन्तर नहीं है । केवल कहीं कहीं पर घटा-बढ़ा दिया गया है । व्यक्तियों के नामों तथा स्थानों के नामों में अवश्य कुछ अन्तर मिलता है ।

लोकगाथा के भोजपुरी रूप एवं अन्य रूपों में अन्तर—(१) श्री ग्रियर्सन द्वारा एकत्र की हुई प्रस्तुत लोकगाथा मौखिक रूप से छोटी है । लोकगाथा का मौखिक रूप सैकड़ों पृष्ठों में उतारा गया है । वस्तुतः ग्रियर्सन ने लोकगाथा की

पुनुरुक्तियों को छोड़ दिया है। लोकगाथाओं में पुनरुक्तवर्णनों की भरमार रहती है। एक ही विषय को बार-बार दोहराया जाता है। डा० ग्रियर्सन ने कथानक के प्रमुख अंशों को कहीं नहीं छोड़ा है। ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत लोकगाथा का प्रारंभ तिलकी के वर ढूंढ़ने से प्रारंभ होता है।

व्यक्तियों के नामों में भी बहुत थोड़ा अन्तर है। राजा घुरुमलसिंह का नाम 'गोरखसिंह' तथा धीरानन क्षत्रिय का नाम 'धीर क्षत्रिय' है। शेष सभी नाम मौखिक रूप के समान ही हैं।

स्थानों के नाम में दो विशेष अन्तर हैं। मौखिक रूप में घुरुमलसिंह के गढ़ का नाम रोहिदासगढ़ है तथा नगर का नाम घुरुमुल पुर है। ग्रियर्सन के रूप में नगर का नाम 'घुनघुन शहर' दिया हुआ है। दूसरा अन्तर है बावनसूबों के किले के नाम में। मौखिक रूप में बावन सूबा के किला का नाम बावनगढ़ है तथा ग्रियर्सन के रूप में 'जिरहुल किला'। शेष सभी स्थानों के नाम एक समान ही हैं।

(२) प्रस्तुत लोक गाथा का प्रकाशित रूप, मौखिक रूप से भी बड़ा है। समस्त लोक गाथा सोलह भाग में वर्णित है। इसमें बीच-बीच में कथानक के अनुरूप भजन, झूमर, सोहर तथा जंतसार के गीत भी दिये गये हैं। प्रकाशित रूप में लोकगाथा का प्रारम्भ विजयमल के पितामहों से होता है। इस रूप के प्रथम भाग में विजयमल के पूर्वजों के तथा विजयमल का जन्म किस प्रकार होता है, वर्णित है। इसके पश्चात् कथा मौखिक रूप के ही समान चलती है। केवल शब्दावली का अन्तर है।

व्यक्तियों के नामों में ग्रियर्सन के रूप से अधिक अन्तर मिलता है। राजा घुरुमल सिंह का नाम प्रकाशित रूप में घोड़मल सिंह दिया गया है। धीरानन क्षत्रिय का नाम इसमें हीरा क्षत्रिय है। चल्हकी नाउन का नाम सल्हकी नाऊन है तथा हिंछल बछेड़ा का नाम हैदल बछेड़ा दिया गया है।

स्थानों के विषय में निम्नलिखित अन्तर मिलता है। मौखिक रूप के धमुंलपुर का नाम इसमें घोड़हुलपुर दिया गया है तथा भवरानन पोखरा का नाम सैरापोखरा है।

शेष सभी स्थानों एवं व्यक्तियों के नाम समान हैं। प्रकाशित रूप में लेखक ने लोकगाथा के अन्त में विजयमल के पुत्रों इत्यादि का भी वर्णन किया है। यह भी बतलाने का कष्ट किया है कि विजयमल के वंश में आगे चल कर 'शोभानयका बनजारा' ने जन्म लिया। शोभानयका बनजारा की लोकगाथा प्रेम

कथात्मक लोकगाथाओं के अन्तर्गत हमारे अध्ययन का विषय है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने भोजपुरी लोकगाथाओं को एकसूत्र में बाँधने के हेतु सब का नाम दिया है।

विजयमल लोकगाथा की ऐतिहासिकता—प्रस्तुत लोकगाथा की भी ऐतिहासिकता संदिग्ध है। 'विजयमल' के विषय में अभी तक कोई ऐसा तथ्य नहीं प्राप्त किया जा सका है, जिससे कि इसके ऐतिहासिकता का पता चल सके। डा० ग्रियर्सन ने प्रस्तुत लोकगाथा की भूमिका में लिखा है, कि "मैं लोकगाथा के चरित्रों को प्रकाश में लाने में अति कठिनाई का अनुभव करता हूँ।' उनका कथन है कि लोक गाथा में प्रचलित रीति रिवाजों का वर्णन उचित ढंग से मिलता है, परन्तु व्यक्तियों के नाम के विषय में वे कहते हैं कि बुन्देली लोकगाथा 'आल्हा' के चरित्रों से कुछ साम्य है। 'आल्हा' की लोकगाथा में 'बावन सूबा का वर्णन है। 'विजयमल' में भी बावन सूबा का वर्णन है। 'आल्हा' की लोकगाथा में 'बेंदुला घोड़ा' के अद्भुत कार्यों का वर्णन है। ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत लोकगाथा में 'हिंछल बछेड़ा' का वर्णन है।[१]

यह संभव हो सकता है कि गायकों ने आल्हा की लोकगाथा से उपर्युक्त चरित्रों का समावेश इस लोक गाथा में कर लिया है। प्रस्तुत लोकगाथा में वैवाहिक युद्ध, मानमर्दन, युद्ध वर्णन तथा दास दासियों के नामों में आल्हा की लोकगाथा से आश्चर्यजनक समानता मिलती है। अतएव यह भी संभव हो सकता है कि 'विजयमल' नामक किसी वीर के चरित्र को लेकर 'आल्हा' की गाथा के आधार पर, प्रस्तुत लोक गाथा की रचना कर दी गई हो।

प्रस्तुत लोक गाथा में 'रोहदास गढ़' का नाम आता है। रोहतास गढ़ का किला आज भी सोन नदी के किनारे बिहार में स्थित है। परन्तु रोहतास गढ़ के किले से संबंधित इतिहास से 'विजयमल' का कोई संबंध नहीं मिलता है। इसका भी कोई प्रमाण नहीं है कि 'मल क्षत्रियों' ने कभी इस पर राज्य किया था। यह गाथा गायक की ही कल्पना प्रतीत होती है।

लोकगाथा में 'बावन गढ़' नाम आता है। भोजपुरी प्रदेश में बावन गढ़ नामक कोई स्थान अथवा किला नहीं है। गोंड़ जाति के कथाओं इत्यादि में मंडला के बावन किलों का नाम मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हीं बावन किलों का समावेश 'बावनगढ़' के रूप में प्रस्तुत लोक गाथा में आ

१—जे० एस० बी० १८८४ (१) पृ० ९४

गया है। लोक गाथा में बावन सूबा का नाम भी आता है। यह नाम आल्हा की लोकगाथा में भी प्राप्त होता है। यह भी संभव है कि इस प्रकार के स्थानों अथवा व्यक्तियों के नाम से अधिकार एवं वैभव की व्यंजना होती है।

हम यह पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि गायकवृन्द 'विजयमल' को तेली जाति का बतलाते हैं। हमें इस पर विश्वास नहीं होता है। 'विजयमल' के 'मल' शब्द से उसका क्षत्रिय होना प्रतीत होता है। लोकगाथा के सामाजिक स्तर में भी इसी संभावना की पुष्टि होती है।

संस्कृत के 'मल्ल' शब्द का अर्थ होता है। कुश्ती लड़ने वाला। विजयमल की वीरता इस अर्थ को पुष्ट करती है। डा० आपर्ट ने भारतवर्ष के आदिम निवासियों पर विचार करते हुये लिखा है कि मल्ल, मल, मालवा तथा मलाया इत्यादि शब्द द्राविड़ी भाषा से निकले हैं जिसमें 'मल' का अर्थ होता है 'पर्वत'।[१] इस आधार पर यह भी संभव हो सकता है कि 'मल' शब्द दक्षिण से ही आया हो। किन्तु एक बात और भी है। उत्तरी भारत वर्ष में, विशेष करके उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में तथा बिहार में 'मल' नामक एक महत्वपूर्ण जाति निवास करती है। श्री डब्ल्यू०क्रुक ने 'मल' जाति पर विचार करते हुये लिखा है कि 'मल' लोग कुर्मी जाति के होते हैं। ये अपनी उत्पत्ति ऋषि मौर्य भट्ट तथा कुर्मिन वैश्या के संयोग से बतलाते हैं। सरयू नदी के किनारे गोरख-पुर जिले में 'कंकराडीह' नाम गाँव है। यहाँ मलों की बस्ती है। उनका कथन है कि कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के समय से उनको उक्त प्रदेश में राज्य करने की आज्ञा मिली थी। 'मल' लोगों में वैष्णव पंथी तथा शैवपंथी दोनों होते हैं। विशेष करके ये लोग काली तथा डीह (ग्राम देवता) की पूजा करते हैं।[२]

मल जाति की उत्पत्ति के विषय में उपर्युक्त कथन से यह निष्कर्ष निक-लता है कि 'मल' लोग निम्न जाति के होते हैं। वस्तुतः यह कथन सत्य है। यद्यपि मल लोग अपने को क्षत्रियों की जाति में बतलाते हैं और आज उनकी गिनती भी क्षत्रियों में होती है, परन्तु कुलीन क्षत्रिय उन्हें आदर की दृष्टि से नहीं देखते।

इस विषय में एक तथ्य और भी विचारणीय है। बुद्ध कालीन सोलह महा-जन पदों में से एक 'मल्ल जनपद' भी था। इसकी भौगोलिक सीमा क्या थी, आज भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। जैन कल्प-सूत्रों में नौ मल्लों

१—डब्ल्यू-क्रुक-ट्राइब्स एंड कास्ट्स आफ़ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेस एंड अवध भाग तीसरा पृ० ४५१। २—वही पृ० ४५०।

का उल्लेख मिलता है, किन्तु बौद्ध ग्रंथों में केवल तीन मल्लों का उल्लेख मिलता है। यह हैं क्रमशः कुशीनारा, पावा तथा अनूपिया के मल्ल। इनके अन्तर्गत अनेक प्रसिद्ध नगर थे जैसे, भोगनगर, अनूपिया तथा उरूवेलकप्प। कुशीनगर और पावा आधुनिक गोरखपुर जिले मे स्थित 'कसया और 'पडरौना' है। बुद्ध की मृत्यु कुशीनारा में ही हुई थी और उनका शरीर यहाँ के मल्लों के 'संस्थागार' में रखा गया था। ये मल्ल बुद्धयुग के प्राचीन क्षत्रिय थे। गोरखपुर में एक जाति मिलती है जिसका नाम है 'सइंथवार'। इस शब्द की उत्पत्ति संभवतः 'संस्थागार' से ही हुई है। कदाचित् प्राचीन संस्थागार (सभाभवन) के ये लोग रक्षक रूप में रहे होंगे और इनका भी सम्बन्ध मल्लों से होगा। मल्ल लोग गणतन्त्री थे। बहुत सम्भव है कि इन्हीं वीरों की कोई कथा 'विजयमल' के रूप में प्रचलित हो गई हो।[१]

वास्तव में उपर्युक्त संभावना यथार्थ के निकट प्रतीत होती है। गोरखपुर, आजमगढ़, छपरा इत्यादि जिलों में 'मलक्षत्रियों' की बहुत बड़ी आबादी है। अतएव यह संभव हो सकता है कि मध्य युग में अथवा उसके पहले ही किसी 'विजयमल' नामक वीर के ऊपर प्रस्तुत लोकगाथा की रचना हुई हो।

विजयमल का चरित्र—भोजपुरी वीरकथात्मक लोकगाथाओं में वीरत्व की प्रवृत्त एक समान नहीं मिलती है। प्रथमतः या तो वह वीर अवतार के समान चित्रित रहता है या दैव अनुग्रह युक्त रहता है। वीर लोरिक अवतारी पुरुष था। इसी प्रकार विजयमल भी देवी दुर्गा की कृपा से उत्पन्न महाबीर था। द्वितीय, लोकगाथाओं के वीर, अद्भुत कार्य करने की क्षमता रखते हैं। लोरिक विजयमल, आल्हा तथा ऊदल अपनी अद्भुत बीरता के कारण ही प्रसिद्ध हैं। अकेले सहस्रों की फौज को हरा डालना, सैकड़ों गज़ का छलांग मारना, एक तीर से सैकड़ों लोगों को धराशायी कर देना इन वीरों के लिये अत्यन्त सुगम कार्य है। कुंवर विजयमल भी बाल्यकाल से अद्भुत वीरता का परिचय देता है। दसवर्ष की ही अवस्था में अस्सी मन की गुल्ली को मारकर उड़ा देता है। तृतीय, लोकगाथाओ में वीरों को सहायता देने के लिये उनका एक गुरु होता है। यह आवश्यक नहीं कि वह गुरू मनुष्य ही हो। वह घोड़ा, हाथी, सुग्गा, केकड़ा अथवा किसी नीच जाति का व्यक्ति भी हो सकता है। लोरिक का गुरू मितारजइल धोबी था। प्रस्तुत लोकगाथा में विजयमल का गुरू हिंछल बछेड़ा (घोड़ा

१—डा० उदयनारायण तिवारी-'ओरिजिन एंड डेवलेप्मेंट आफ़ भोजपुरी' (अप्रकाशित)

है। वह उसे सभी विपत्तियों से बचाता है तथा समय-समय पर सचेत भी करता रहता है।

इस प्रकार प्रस्तुत लोकगाथा का नायक विजयमल दैवी कृपायुक्त, अद्भुत वीरता की क्षमता रखने वाला, तथा गुरू की सहायता से परिपूर्ण एक वीर है।

राजा घुघमल सिंह को देवी दुर्गा स्वप्न देती हैं—

"रामा सपना देले देबिमाई दुरुगवा रे ना।
बबुआ तोहरा पुतर होइहें तेज मनला रे ना ॥"

इस प्रकार विजयमल का जन्म होता है। शैशव में ही उसके वीरत्व का प्रारम्भ होता है। वह अस्सी मन के गुल्ली को आकाश में उड़ा देता है—

"रामा तब उहे मरले एगो चँपवा रे ना
रामा चँपवा जाके गिरल बावनगढ़ मुलुकवा रे ना"

उसकी वीरता को देखकर लोग चकित रह जाते हैं। हिंछल बछेड़ा उसका अभिन्न साथी है। विजयमल को जब अपने पिता की दुर्दशा का समाचार विदित हुआ तो वह हिंछल बछड़े पर सवार होकर चल देता है। हिंछल बछेड़ा उसे युद्ध की विपत्तियों से बचाता है और साथ ही विजयमल को उसकी स्त्री तिलकी से मिलाता है। वह विजय को डाँटकर सोते से जगाता है—

'तबले कनखी देखेला हिंछल बछेड़वा रे ना
ओइजा तड़पल बाटे हिंछल बछेड़वा रे ना
सरऊ फेंकऽ तुहूँ मखमल चदरिया रे ना
तोहरा तिले तिले लागल बा ऊँघइया रे ना
सरऊ आवतारी सोरह सौ लंउडिया रे ना
संगे आवतारी तिलकी बबुनिया रे ना'

इस प्रकार विजयमल और तिलकी का मिलन होता है। विजयमल वीर होने के साथ-साथ उत्कट प्रेमी भी ह। वह भंवरानन पोखरे पर आकर तिलकी के सखियों को तंग करता है। तिलकी जब आती है तो वह उसकी सुन्दरता देख-कर मूर्छित हो जाता है।

'रामा देखतारे तिलकी के सुरतिया रे ना
रामा गिरी परले पोखरा उपरवा रे ना,

तिलकी उससे भाग चलने के लिये प्रार्थना करती है परन्तु विजयमल को अपने कर्त्तव्य का ध्यान है। वह लोकरक्षक एवं दुष्ट संहारक है। वह कहता है

बिना बदला लिये मैं यहाँ से वापस नहीं जाऊँगा। वह अकेले हिंछल बछड़े पर सवार होकर बिजली की भाँति कौंधकर सेना में कूद पड़ता है। बावनसूबा तथा मानिकचन्द को बन्दी बनाता है और सारे किले को ध्वंस कर देता है। वह समस्त प्रजा के कष्ट को दूर करता है और अपने पिता और बन्धुओं को जेल से मुक्त करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विजयमल का चरित्र एक राजपूत वीर का चरित्र है जो अपनी प्रतिज्ञा पर मर मिटने वाला होता है। विवाह तथा स्त्री प्रेम उसके लिये गौण स्थान रखते हैं। वह शत्रु से बदला लेना जानता है। उसका सत्य में, ईश्वर में तथा देवी देवता में विश्वास है। वह आर्य पथ का अनुगामी है। अनेक कठिनाइयों के पश्चात् उसे सफलता मिलती है और इस प्रकार लोकगाथा का अन्त मङ्गलदायी होता है।

---

(४) बाबू कुंवरसिंह

भोजपुरी लोकजीवन में बाबू कुंवर सिंह का चरित्र परिव्याप्त है। बिहार राज्य में बाबू कुंवरसिंह का नाम बालक, युवक, वृद्ध सभी जानते हैं। स्वातंत्र्य-प्रेम का, पराक्रम एवं त्याग का अभूतपूर्व आदर्श बाबू कुंवर सिंह ने सबके सम्मुख रखा है। १८५७ के भारतीय विद्रोह के प्रधान अधिनायकों में उनका नाम आता है। बिहार के तो वे बिना मुकुट के राजा थे। उनकी वीरता महारानी लक्ष्मी बाई, तांत्या टोपे तथा नाना साहब इत्यादि वीरों से किसी भी प्रकार कम न थी। अस्सी वर्ष की वृद्धावस्था मे उन्होंने जो पराक्रम दिखलाया उसकी प्रशंसा अंग्रेजों ने भी की है। भोजपुरी लोकगाथाओं में यही एक मात्र अर्वाचीन लोकगाथा है। वीरकथात्मक लोकगाथा के साथ-साथ यह एक ऐतिहासिक गाथा भी है।

वंश परंपरा—बाबू कुंवरसिंह का संबंध उस कुलीन राजपूत वंश से था जिसके कारण आज बिहार राज्य की पश्चिमी बोली को भोजपुरी नाम से अभिहित किया जाता है। बिहार के शाहाबाद जिले के अन्तर्गत भोजपुर नामक गांव है। यह उज्जैन राजपूतों का गांव है। श्रीराहुल सांकृत्यायन का मत है कि चौदहवीं शताब्दी में महाराज भोज के वंश के श्री शान्तनुशाह, धार की राज धानी मुसलमानों के हाथ में पड़ जाने के कारण पूरब की ओर बढ़े और बिहार के इस भाग में पहुँचे।[१] यहाँ के पुराने शासकों को पराजित करके महाराज शान्तनुशाह ने पहले दांवा (बिहिआ स्टेशन) को अपनी राजधानी बनाई। उनके वंशजों ने जगदीशपुर, मठिला, और अन्त में डुमरांव में अपनी राजधानी स्थापित की। इसी जगदीशपुर से बाबू कुंवर सिंह का संबंध है। उज्जैन राजपूतों की वंश परंपरा आज भी यहाँ पर है। बाबू दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह ने अपनी पुस्तक में पितामहों द्वारा प्राप्त एक अलग वंशावली दी है। वंशका प्रारंभ राजा भोज से ही है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि चौदहवीं शताब्दी में इस वंश का बिहार में आगमन हुआ।[२] इनका कथन है कि कालान्तर में चलकर राजपूतों का राज्य कई टुकड़ों में बँट गया। जगदीशपुर भी उन्हीं टुकड़ों में से

१—श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—'भोजपुरी लोकगाथा में करुण रस' भूमिका भाग—श्री राहुल सांकृत्यायन का मत पृ० ४

२—वही, पृ०, १३

एक था। पहले तो यह एक साधारण ज़मींदारी के रूप में था, परन्तु शाहजहां के दरबार से जगदीशपुर रियासत के मालिक को राजा की उपाधि मिली। उसी समय वहाँ के मालिक राजा के नाम से पुकारे जाने लगे।[1] इस समय से लेकर १८५७ ई० तक जगदीशपुर के राजाओं का बिहार के अधिकांश भाग पर एकाधिपत्य था। मुगलकाल में इसे भोजपुर सरकार कहा जाता था।

बाबू कुंवरसिंह के पिता का नाम बाबू शाहज़ादा सिंह था। मृत्यु के पूर्व शाहज़ादा सिंह उन्हें अपनी जमींदारी के तीन चौथाई भाग का मालिक बना गये थे। शेष एक चोथाई भाग में उनके तीन भाई दयालसिंह, राजपतिसिंह तथा अमरसिंह सम्मिलित थे।[2] उज्जैन वंशी राजपूतों में बाबू कुंवरसिंह बड़े प्रतापी शासक हुये। उनका मान-सम्मान उन्हीं के वंश के डुमरांव के समकालीन महाराजा से बढ़-चढ़कर था। वे बहुत ही लोकप्रिय थे और युवावस्था में ही समस्त बिहार में राजपूतों के अग्रगण्य बन गये थे।

लोक गाथा के गाने का ढंग—प्रस्तुत लोकगाथा को दो व्यक्ति मिलकर एक साथ गाते हैं। प्रत्येक पद के प्रारम्भ में 'रामा' रहता है तथा अन्त में 'रेना'। यह लोकगाथा एक स्वर में गाई जाती है। इसमें स्थायी तथा अन्तरा नहीं रहता। इसके लय को द्रुतगतिलय कहते हैं। कथानक से उत्पन्न भावों के अनुरूप गायक का स्वर बदलता रहता हैं परन्तु लय वही रहता है। वाद्य यन्त्रों में खजड़ी और टुनटुनी (घंटी) रहता है। वस्तुतः अधिकांश भोजपुरी लोकगाथाएँ इसी प्रकार से गाई जाती है। उनमें ताल ठेका नहीं रहता। केवल स्वर साम्य ही रहता है।

भारतीय विद्रोह की भूमिका—१८५७ के भारतीय विद्रोह में बाबू कुंवरसिंह ने सक्रिय भाग लिया। अतः यहाँ पर संक्षेप में भारतीग विद्रोह के कारणों पर विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा।

भारतवासियों को अँग्रेजों के प्रति यदि यह संदेह न हुआ होता कि ये लोग यहाँ राज्य विस्तार करने आये हैं, तो यह निश्चित था कि १८५७ का विद्रोह न होता। परन्तु अँग्रेजों की अदूरदर्शिता तथा जल्दबाजी की नीति के कारण १८५७ में लोगों को अँग्रेजों के विरुद्ध बरबस अस्त्र उठाना ही पड़ा। मुगलों के लम्बे शासन के कारण देश एक विचित्र सुप्तावस्था में था। साधारण जनसमाज में स्वातन्त्र्य एवं गुलामी दोनों के विषय में स्पष्ट कल्पना नहीं रह

१—पं० सुन्दरलाल—भारत में अंग्रेजी राज-भाग तीसरा पृ० १५७८

२—पं० ईश्वरीदत्त शर्मा—सिपाही विद्रोह—अध्याय २२ पृ० ४४१

गयी थी। अपनी व्यक्तिगत साधना में सभी मस्त थे। छोटे-मोटे राजा अपनी स्थिति सम्हालने में लगे हुये थे। समस्त देश में केन्द्रीय शासन समाप्त हो चला था। ऐसे समय में अँग्रेजों के कपटपूर्ण नीति ने देश में खलबली मचा दी। लार्ड डलहौजी की अपहरण-नीति ने सोये हुओं को अकस्मात् जगा दिया। लार्ड कैनिंग के समय में यह जागृति अपनी चरम सीमा पर पहुँच कर विद्रोह के रूप में परिणत हो गयी। विद्रोह के प्रमुख चार कारण बतलाये जाते हैं जिनके विषय में समस्त इतिहासकार सहमत हैं।[1]

प्रथम कारण डलहौजी की अपहरण नीति थी। डलहौजी ने देशी राजाओं के मर जाने पर गोद लिये हुये लड़कों को हटाकर राज्यों को अँग्रेजी राज्य में मिला लिया। मृत राजाओं की संपत्ति को उनके निकट उत्तराधिकारियों को न देकर अँग्रेजी खजाने में मिला लिया। इस कारण राज्यों के उत्तराधिकारियों में असंतोष फैल गया। वे अँग्रेजों के इस नीति में निहित प्रवृत्ति को समझ गये। राजा अथवा उत्तराधिकारी ही उस युग में प्रदेशों का नेतृत्व करते थे। अतः उनके द्वारा देश में असन्तोष की भावना फैलने लगी।

विद्रोह का द्वितीय कारण था अँग्रेजी भाषा तथा सभ्यता का विस्तार। अँग्रेजों के आगमन के साथ-साथ अँग्रेजी भाषा एवं अँग्रेजी रहन-सहन भी क्रमशः देश में पनपने लगा था। साधारण जनता ने इससे यह समझा कि सब लोग ईसाई बना लिये जायेंगे। इससे देश की धार्मिक आस्था पर आघात हुआ। अँग्रेजों ने धार्मिक विषयों में भी हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया था। इस कारण लोगों के हृदय में इसाई बना लिए जाने का सन्देह प्रबल हो गया।

विद्रोह का तृतीय कारण यह था कि डलहौजी के समय में यह नियम लागू किया गया कि समय आ पड़ने पर देशी सिपाही लड़ने के लिये विदेश भेजे जायेंगे। विदेश जाने की कल्पना उस समय निकृष्ट समझी जाती थी। सिपाही लोग इस कारण मन ही मन असंतुष्ट हो रहे थे।

इस प्रकार अँग्रेजों के विरुद्ध राजाओं की, साधारण जनता की, तथा सिपाहियों की सन्देह की भावना प्रबल होती जा रही थी। अब केवल एक चिनगारी की आवश्यकता थी। विद्रोह के चतुर्थ कारण ने चिनगारी का काम किया। उस समय सिपाहियों को नई बन्दूकें दी गई थीं जिनमें चरबी या मोम लगा हुआ

१—टी. आर. होम्स-'हिस्ट्री आफ़ इंडियन म्यूटिनी'
तथा
पं० ईश्वरी दत्त शर्मा—'सिपाही विद्रोह'।

कारतूस दाँत से काट कर भरना पड़ता था। बिजली की भाँति यह खबर फैल गई कि कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी लगी हुई है। फिर क्या था। हिन्दू और मुसलमान सिपाही अपने धर्म को भ्रष्ट होते नहीं देख सके, और उन्होंने अँग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठा लिया।

उपर्युक्त चार कारणों में प्रधान कारण प्रथम ही था। इसी के कारण विद्रोह ने तूल पकड़ा। यदि यह विद्रोह केवल सिपाहियों का रहा होता तो उसमें राजाओं को मिलने की आवश्यकता न थी, और देश की उस सुषुप्तावस्था में विद्रोह शीघ्र ही दब गया होता। परन्तु अँग्रेजों की नीति सबके लिए अहितकर सिद्ध हुई। सभी ने अँग्रेजों की नीति को "समान विपत्ति" (कामन डेंजर) समझी। सबने यह स्पष्ट रूप से समझ लिया कि सारी दुर्व्यवस्था की जड़ ये अँग्रेज ही हैं और बिना इनको यहाँ से खदेड़े किसी का कल्याण नहीं। बाबू कुंवरसिंह, रानी लक्ष्मी बाई तथा सम्राट् बहादुरशाह इत्यादि सभी लोग अपने व्यक्तिगत कारणों से ही प्रेरित होकर इस विद्रोह में सम्मिलित हो गये। पंडित ईश्वरी दत्त शर्मा "सिपाही विद्रोह" में लिखते हैं "बाबू कुंवरसिंह को घटनाक्रम में पड़कर विद्रोह का झंडा उठाना पड़ा।"[१] वास्तविक बात यही थी। बाबू साहब का कोई झगड़ा अँग्रेजों से न था। वे अस्सी वर्ष के वृद्ध हो चले थे। उनका पुत्र जीवित न था। पौत्र पागल हो गया था। उनके जीवन में निराशा ही थी। तत्कालीन पटने के कमिश्नर ने उनके ऊपर अकारण संदेह किया। उसकी इस अदूरदर्शिता ने कुंवरसिंह को विद्रोही बना दिया। बाबू साहब को बाध्य होकर विद्रोह का नेतृत्व ग्रहण करना पड़ा। जीवन का ध्येय अब निश्चित हो गया और उस वृद्ध वीर ने अँग्रेजी राज्य के नींव को एक बार आमूल हिला दिया।

बाबू कुंवरसिंह के विद्रोह का ऐतिहासिक वृत्त—लार्ड डलहौजी के इंगलैंड जाने के पश्चात् ही भारत में विद्रोह के चिन्ह स्पष्ट होने लगे थे। ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने का गुप्त प्रयत्न प्रारम्भ हो गया था। राजाओं का राज्य समाप्त हो रहा था। नवाबों की नवाबी खतम हो रही थी। अपनी व्यक्तिगत रक्षा के हेतु लोग एक प्रांत से दूसरे प्रांत में जा रहे थे। इस प्रकार असन्तोष की आग चारों ओर फैलने लगी थी। १८५७ में सिपाहियों के विद्रोह ने उसमें होम का कार्य किया। एकाएक दिल्ली में मुगल बादशाह बहादुरशाह का विद्रोह का पक्ष लेने का समाचार समस्त देश में फैल

१—पं० ईश्वरी दत्त शर्मा-सिपाही विद्रोह—पृ० ४४२

गया । इधर बनारस के सिपाहियों के निहत्थे कर दिये जाने का समाचार दानापुर (बिहार) में पहुँचा । दिल्ली के समाचार ने पटने में एक सनसनी फैला दी । अँगरेजों पर दानापुर के सिपाहियों का सन्देह पक्का हो गया । पटने में अवध की नवाबी समाप्त करके आये हुये मुसललानों ने बुरी तरह उत्तेजना फैलाना प्रारम्भ कर दिया ।[1] अकस्मात् हल्ला उड़ गया कि बहुत से गोरे सिपाही पटना और दानापुर की ओर आ रहे हैं । पटने के अँग्रेजों में भी गलत खबर उड़ गई कि दानापुर के सिपाही बलवाई हो गये हैं ।

ऐसी आतंकपूर्ण परिस्थिति में पटने के कमिश्नर टेलर ने स्थिति सम्हालने के लिए, नगर के प्रतिष्ठित मुसलमानों को गृहबन्दी बना दिया । इसके कारण उत्तेजना और फली । अब स्पष्ट रूप से विद्रोह की आग भड़क उठी । अफ़ीम विभाग के अफसर डाक्डर लायल विद्रोहियों को संतोष दिलाने गये । लोगों ने उन्हें गोली का शिकार बना दिया । इसके पश्चात् पटने में धर-पकड़ प्रारम्भ हो गई । लखनऊ का पीरअली कुतुबफरोश भी पकड़ा गया । उसके ऊपर डाक्टर लायल की हत्या का अभियोग लगाया गया । १८५७ की ३ जुलाई को उसने बड़ी वीरता से फाँसी के तख्ते का सामना किया । २५ जुलाई को दानापुर के सिपाहियों ने भी स्वाधीनता की घोषणा कर दी । गोरे सिपाहियों से युद्ध प्रारम्भ कर दिया । दानापुर छावनी से देशी सेना ने कूच कर दिया । पटना में कमिश्नर टेलर ने परेड के मैदान पर गिरफ्तार व्यक्तियों को फाँसी की आज्ञा दे दी ।[2]

आरा में भी विद्रोह का समाचार पहुँचा । यह हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि बाबू कुंवर सिंह का दबदबा चारों ओर था । सब लोग उन्हें अपना त्राता मानते थे । यद्यपि बाबू कुंवरसिंह बहुत बड़ी जमींदारी के मालिक थे, परन्तु अपने बेहद खर्चीलेपन के कारण उन्हें बराबर कड़े सूद पर महाजनों से कर्ज लेना पड़ता था । धीरे-धीरे कर्ज बीस लाख से ऊपर पहुँच गया । परन्तु उन पर नालिश करने की हिम्मत किसी में न थी । अंत में आरा के सब महाजनों ने मिलकर बाबू साहब पर नालिश कर ही दी । डिग्री भी हो गई और इजराय की नौबत आ पहुँची । अंत में लाचार होकर बाबू साहब आरा के कलक्टर साहब के पास गये । कलक्टर साहब बाबू कुंवर सिंह का बहुत आदर करते थे । सारा हाल सुनकर उन्होंने कमिश्नर टेलर के पास लिखा कि बाबू

१—पं० सुन्दरलाल-भारत में अँग्रेजी राज—भाग तीसरा पृ० १५७७
२—वही पृ० १५७७

साहब की जमींदारी बिकने न पाये, इसलिए यह उचित है कि अँग्रेजी सरकार जमींदारी का प्रबन्ध अपने हाथ में ले ले और क्रमशः ऋण चुका दे। बोर्ड आफ़ रेवेन्यू ने जमींदारी का प्रबन्ध करना तो स्वीकार कर लिया पर ऋण का भार कुंवरसिंह पर ही रखा। बाबू साहब ने लाचार होकर यही प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और बीस लाख रुपया एकत्र करने के प्रबन्ध में लग गये। कुछ रकम तो उनके पहुँच में थी, कि इतने में बोर्ड आफ़ रेवेन्यू ने लिखा कि यदि आप एक महीने में रुपए न अदा करेंगे तो सरकार आप की जमींदारी का प्रबन्ध छोड़ देगी। आरा के कलक्टर ने कुंवरसिंह का बहुत पक्ष लिया। परन्तु बोर्ड टस से मस न हुआ।[१]

इस घटना से बाबू कुंवरसिंह को बहुत धक्का पहुँचा। उन्हें अब यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजों की इच्छा क्या है। पुत्र के जीवित न रहने से तथा पौत्र के पागल हो जाने से वे पहले ही दुखी थे। इधर उनके विरोधियों ने अँग्रेजों का कान भरना प्रारम्भ कर दिया। बढ़ती हुई अराजकता देखकर कमिश्नर टेलर को बाबू साहब पर भी सन्देह हो गया। उसने एक डिप्टी कलक्टर भेज कर कुंवरसिंह को पटना आने के लिए निमंत्रित किया। बाबू साहब को सन्देह हो गया और उन्होंने बीमारी का बहाना किया। डिप्टी कलक्टर उनका मित्र था। उसने कहा कि 'आप के न जाने से सन्देह पक्का हो जायगा।' इस पर कुंवर सिंह ने उत्तर दिया कि "आप मेरे पुराने मित्र हैं, उसी मित्रता की याद दिलाते हुये मैं आप से पूछता हूँ कि क्या आप ईमान से कह सकते हैं कि पटने जाने पर मेरी कोई बुराई न होगी ?' डिप्टी साहब इसका कुछ उत्तर न दे सके और चुपचाप चलते बने।[२] बैरिस्टर सावरकर ने इस घटना की तुलना अफजल खाँ द्वारा भेजे गये ब्राह्मण एवं शिवाजी से की है।

यद्यपि बाबू कुंवर सिंह के विरुद्ध विद्रोह का कोई प्रमाण न था, परन्तु अब लाचारी थी। उन्होंने बहुत दुख सहा था, परन्तु इस अविश्वास को नहीं सह सकते थे। अँग्रेजों के विरुद्ध उनकी भृकुटी तन गई और क्रान्ति के अग्रदूत बन गये। इधर दानापुर के सिपाही आरा पहुँच गये थे। कुंवर सिंह भी जगदीशपुर से आरा पहुँचे। उनके आगमन से सिपाहियों का जोश दुगुना हो गया। कुंवरसिंह अपनी आरे वाली कोठी के मैदान में घोड़े पर सवार होकर आये। सिपाहियों ने उन्हें फौजी ढंग से सलाम दिया और अपना अधिनायक बनाया।

१—टी. आर. होम्स–'हिस्ट्री आफ दी इंडियन म्यूटिनी'—पृ० १८०
२—पं० ईश्वरी दत्त शर्मा–'सिपाही विद्रोह'—पृ० ४४२

बाबू कुंवरसिंह के प्रधान लोगों में थे उनके छोटे भाई अमरसिंह, हरिकिशन सिंह और रणदलन सिंह।

२७वीं जुलाई को दानापुर के सिपाहियों ने कैदखाना तोड़ कर कैदियों को छोड़ दिया। कचहरी के कुछ कागज पत्र नष्ट किये गये परन्तु कलक्टरी के कागजों को बाबू साहब ने नहीं रद्द करने दिया। उन्होंने कहा कि 'अँग्रेजों को भारत से भगाने पर इन कागजों के आधार पर ही लोगों के वंश परम्परागत उत्तराधिकार का निर्णय करेंगे'।

आरा का घेरा—आरा में विद्रोह प्रारम्भ होने के पहले ही अँग्रेजों ने वहाँ का खजाना तथा अँग्रेजी कुटुम्बों को हटाकर एक नवनिर्मित दुर्ग में लाकर सुरक्षित कर दिया था। इनकी रक्षा के लिए सिख सिपाही भी बुला लिये गये थे। बाबू कुंवरसिंह ने यहाँ आकर घेरा डाल दिया। आग लगाया गया। मिर्चें जलाये गये। परन्तु अँग्रेज न हटे। किले में पानी की कमी होने पर सिक्खों ने गड्ढा खोद कर पानी निकाल लिया, पर बाहर घेरा ज्यों का त्यों पड़ा रहा।[१]

आम के बाग का संग्राम—२८ जुलाई को दानापुर से कप्तान डनबर के अधीन प्रायः तीन सौ गोरे सिपाही और सौ सिख आरा की सेना की सहायता के लिये चले। आरा के निकट ही एक आम का बाग था। बाबू साहब ने अपने सिपाहियों को वृक्षों की डालों पर छिपा दिया था। रात का समय था। अँग्रेजी सेना अमराई के बीच पहुँची तो ऊपर से गोलियाँ बरसनी प्रारम्भ हो गईं। प्रातःकाल तक ४१५ में ५० अँग्रेज सिपाही जीवित बचे। कप्तान डनबर इसी आम के बाग में मारा गया।[२]

बीबीगंज का संग्राम—२ अगस्त को मेजर आयर और कुंवरसिंह की मुठभेड़ बीबीगंज के निकट हुई। आयर विजयी रहा। इस प्रकार आरा का घेरा समाप्त हुआ और पूरा नगर और किला अँग्रेजों के हाथ में फिर आ गया। कुंवरसिंह सेना सहित जगदीशपुर लौट आये। मेजर आयर ने पीछा किया। कई दिनों तक संग्राम जारी रहा। अँग्रेजों का बल बढ़ता गया। १४ अगस्त को कुंवर सिंह सौ सैनिकों और अपने महल की स्त्रियों को साथ लेकर ससराम के पहाड़ में चले गये।[३] जनरल आयर ने आरा और जगदीशपुर के

१—होम्स-हिस्ट्री आफ दी इन्डियन म्यूटिनी पृ०, १८१

२—पं० सुन्दरलाल-भारत में अँग्रेजी राज-भाग तीसरा पृ०, १५७८

३—होम्स—हिस्ट्री आफ़ दी इंडियन म्युटिनी पृ० १८७

गल्ले को ध्वंस कर दिया। निहत्थे लोगों को मारा तथा कैदी सिपाहियों को फाँसी पर चढ़ा दिया। कुँवरसिंह के सर पर पचीस हजार रुपये का इनाम बोला गया। परन्तु अपने लोकप्रिय नेता के साथ किसी ने भी विश्वासघात नहीं किया। वे बेखटके जहाँ चाहते चले जाते थे। बाबू साहब की दुर्दशा सुनकर लोगों के हृदय में आग लग गई। कहते हैं कि मध्यप्रदेश तथा बरार और उसके आसपास भी इनकी धाक फैली हुई थी। जबलपुर के सिपाही भी इनके लिये बलवाई हो गये थे। नागपुर से सागर-नर्मदा प्रदेश तक इनके लिए हलचल मच गई थी। सुदूर आसाम प्रदेश के एक राजा के सैनिक भी बाबू साहब के लिए बिगड़ खड़े हुये थे। इसी से उनकी व्यापक प्रतिष्ठा को हम जान सकते हैं।

मिलमैन की पराजय—बाबू साहब की इच्छा थी कि ससराम के पहाड़ों से निकल कर दिल्ली, आगरा और झाँसी के क्रान्तकारियों से सम्बन्ध स्थापित किया जाय। १८ मार्च १८५८ को कुँवरसिंह आगे बढ़े। आजमगढ़ से पच्चीस मील दूर उन्होंने अपना डेरा जमाया। जिस समय अँग्रेजों को यह समाचार मिला तुरन्त मिलमैन की अध्यक्षता में कुछ पैदल, कुछ घुड़सवार, तथा दो तोपें २२ मार्च १८५८ को कुँवरसिंह के विरोध में आ गईं। घमासान युद्ध हुआ। कुंवर सिंह ने एक चाल चली। वे पीछे हटने लगे। ऐसा प्रतीत होने लगा कि कुंवर सिंह हार गये। अँग्रेजी फौज एक बगीचे में ठहर गई और भोजन का प्रबन्धकरने लगी। शिवा जी की भाँति कुंवरसिंह गुरिल्ला युद्ध पद्धति के अनुसार उसी समय टूट पड़े। मिलमैन आजमगढ़ की ओर भाग निकला। उसके हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने उसका साथ छोड़ दिया। पूर्ण विजय कुंवर सिंह की रही। लिखा है कि कम्पनी के सैनिक, बैलों और गाड़ियों समेत इधर-उधर भाग गये। शेष सामान बाबू साहब के हाथ लगा।[1]

डेम्स की पराजय—कर्नल डेम्स के अधीन दूसरी अँग्रेजी सेना मिलमैन की सहायता के लिए गाजीपुर पहुँची। २८ को वह सँयुक्त सेना कुंवरसिंह के हाथों मार खाई। डेम्स ने आजमगढ़ के किले में जाकर आश्रय लिया। बाबू कुंवरसिंह ने आजमगढ़ नगर में प्रवेश किया।[2]

आजमगढ़ से कुंवरसिंह बनारस की ओर बढ़े। वाइसराय लार्ड कैनिंग उस समय इलाहाबाद में था। उस समय का इतिहासकार मोलेसन लिखता

१—पं० सुन्दर लाल—'भारत में अंग्रेजी राज'—भाग तीसरा पृ० १! ७८

२—शाहाबाद गजेटियर पृ० २८-३५

है कि कुंवरसिंह के विजयों और उसके बनारस पर चढ़ाई का समाचार सुनकर लार्ड कैनिंग घबरा गया।[१]

डगलस की पराजय— सेनापति डगलस के अधीन दूसरी अंग्रेजी सेना कुंवरसिंह से नघई ग्राम के निकट भिड़ गई। कुंवरसिंह ने अपनी सेना के तीन दल किये। कम संख्यावाला दल वहीं रह गया, जिसे डगलस दबाता गया। जब अंग्रेजी सेना थक कर रुकी तो दोनों ओर से दो अन्य दलों ने आक्रमण कर दिया। पराजित डगलस को पीछे हटना पड़ा। कुंवरसिंह ने आगे बढ़कर सरयू नदी पार किया। मनोहर ग्राम में पुनः मुठभेड़ हुई परन्तु कुंवरसिंह सेना को छोटी छोटी टुकड़ियों में बाँटकर आगे बढ़ गया। अंग्रेजी सेना पीछा न कर सकी। डगलस हताश हो गये।[२]

बाबू कुंवरसिंह गोली से घायल—गङ्गा के निकट पहुँचकर कुँवरसिंह ने हल्ला मचा दिया कि उनकी सेना बलिया के निकट हाथियों पर गङ्गा पार करेगी। अंग्रेजी सेना उसी स्थान पर आ डटी। कुँवरसिंह वहाँ से सात मील दक्षिण शिवपुर घाट से सेना को पार भेजने लगे। स्वयं अन्तिम नाव पर बैठकर गङ्गा पार होने लगे कि इतने में अँग्रेजी सेना आ गई और नावों पर गोली बरसाना प्रारम्भ कर दिया। एक गोली कुँवरसिंह के दाहिनी कलाई में लगी। शरीर मे विष फैल जाने का भय था। अतः उस वीर ने बाँयें हाथ से तलवार लेकर दाहिना हाथ काटकर गङ्गा को भेंट कर दिया। अँग्रेजी सेना उनका पीछा न कर सकी।[३]

क्रान्ति की अमर चिनगारी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई वीरगति को प्राप्त हो चुकी थीं। इस समाचार ने बाबु कुँवर सिंह की योजना को बिगाड़ दिया। बाबू साहब लौट पड़े। आठ महीने के पश्चात् कुँवर सिंह ने २२ अप्रैल १८५८ को जगदीशपुर में पुनः प्रवेश कर अपना अधिकार स्थापित किया।

लीग्रंड की पराजय—२३ अप्रैल को लीग्रंड के अधीन अँग्रजी सेना ने पुनः जगदीशपुर पर आक्रमण किया। कटे हाथ से बाबू कुँवर सिंह लड़े। अँग्रेज पुनः

२—प सुन्दरलाल-भारत म अँग्रेजी राज भाग–तीसरा पृ. १५७९

३—शाहाबाद गजेटियर पृ-२९-६५

४— वही

पराजित हुये। इतिहास लेखक व्हाइट लिखता है कि इस अवसर पर अँग्रेजों ने बरी तरह से हार खाई।[१]

बाबू कुंवरसिंह की मृत्यु—कुँवरसिंह थक चुके थे। अस्सी वर्ष के उस वृद्ध का शरीर जर्जर हो चला था। इतिहासकार होम्स लिखता है कि वह वृद्ध राजपूत इतने सम्मानपूर्वक तथा वीरता से अँग्रेजों से लड़कर २६ अप्रेल १८५८ को काल कवलित हो गया। बाबू कुँवरसिंह दिवंगत हुए। जीवन की दारुण संध्या में यह कितना भव्य अन्त था।

क्रान्ति की बागडोर उनके छोटे भाई बाबू अमर सिंह के हाथों में आई। सात महीने तक अँग्रेजों को इनके कारण अपार कष्ट हुआ। अवध की लड़ाई के विजेता सर हेनरी हैवलाक तथा डगलस के अधिनायकत्व में १७ अक्टूबर को नोनदी का सँग्राम हुआ। अमरसिंह हार गये। वे कैमूर की पहाड़ियों में चले गये, और फिर उनका पता नहीं लग सका।

बिहार के उस प्रदेश से अँग्रेजों को जितना कष्ट उठाना पड़ा उसे वे बहुत दिनों तक भूल न सके। पिछले जर्मन युद्ध तक वहाँ से कोई युद्ध में भरती नहीं किया जाता था।

लोकगाथा में वर्णित वृत्त—बाबू कुँवरसिंह उज्जैनकुल भूषण थे तथा उनकी राजधानी जगदीशपुर में थी। उस समय जगदीशपुर बिहार के प्रधान राज्यों में था। कुँवरसिंह और अमरसिंह दो भाई थे। बाबू कुँवरसिंह उस समय गद्दी पर थे। स्वातन्त्र्य संग्राम के समय उनकी अवस्था अस्सी वर्ष की थी। इस अवस्था में जो पराक्रम उन्होंने दिखलाया वह अद्वितीय था। बाल्य काल से ही वीरता उनके बाँट पड़ी थी। शस्त्र विद्या में वे पूर्ण पारंगत थे और मृगया में बहुत चाव रखते थे। उनके जीवन का अधिक अंश आनन्द एवं शांति में व्यतीत हुआ। बाल्यकाल खेल कूद में बीता। यौवन काल राज सुख में बीता। वृद्धावस्था में आकर उन्हें स्वातन्त्र्य संग्राम में भाग लेना पड़ा।

भारतीय विद्रोह की आग दिल्ली, आगरा, मेरठ, लखनऊ, झाँसी ग्वालियर, इन्दौर तथा बनारस होते हुये पटना भी पहुँची। पटना के कमिश्नर टेलर ने कई विद्रोहियों को फाँसी पर चढ़ा दिया, जिनमें पीरअली थे। उसने आस-पास

१—शाहाबाद गजेटियर . पृ. २९-३५

२ वही

के जमीदारों से भी विद्रोह दमन में सहायता ली। जिसने सहायता न दी उनमें से अनेकों को जेल भिजवा दिया अथवा फाँसी दिलवा दी।

इस परिस्थिति को देखकर बाबू कुँवरसिंह ने न्यायपथ को चुन लिया। इसी समय दानापुर के सिपाहियों ने जाकर पटने का हाल सुनाया और अँग्रेजों के विरुद्ध झन्डा खड़ा करने की प्रार्थना की। इस प्रकार जीवन के संध्याकाल में भारतीय स्वातन्त्र्य समर में बाबू कुँवरसिंह ने अपना जीवन समर्पित कर दिया।

युद्ध के लिये सन्नद्ध होकर वे दानापुर पहुँचे और आधी रात के समय गङ्गा के तीर पर बन्दूकों की धाँय-धाँय गरज उठी। सब ओर त्राहि-त्राहि मच गई। अँग्रेजों को ऐसे अचानक आक्रमण की आशा न थी। उनके पैर उखड़ गये। जिसको जहाँ भी ठौर मिला वह वहीं भाग खड़ा हुआ। बाबू कुँवरसिंह ने दानापुर में विजय की पताका फहरा दी। अँग्रेजों के विरुद्ध यह प्रथम विजय थी।

इस विजय के पश्चात् बाबू कुँवरसिंह ने समस्त उत्तरापथसे अँग्रेजी राज्य की नींव उखाड़ने का निश्चय कर लिया। उन्होंने दानापुर के पश्चात आरा पर आक्रकण कर दिया। आरा कचहरी और वहाँ का खजाना लूट लिया। अँग्रेजी फौज भागकर किले में छिप गई। इस विद्रोह का समाचार बक्सर के आयर साहेब के पास पहुँचा। बहुत बड़े तोपखाने और फौज के साथ उसने आरा पर आक्रमण कर दिया। कुछ हिन्दुस्तानी गद्दारों ने भी आयर की सहायता की। कुँवरसिंह ने बीरता के साथ सामना किया। परन्तु सेना और युद्ध सामग्री की कमी के कारण आरा से हटना पड़ा।

इधर आयर ने आरापर अँग्रेजी झंडा गाड़ कर कुंवर सिंह की राजधानी जगदीशपुर पर भी आक्रमण कर दिया। जगदीशपुर की रक्षा के लिये बाबू कुंवरसिंह के अनुज श्री अमरसिंह तत्पर थे। उन्होंने बड़ी वीरता के साथ सामना किया। अमरसिंह की वीरता को देखकर अँग्रेजों के छक्के छूट गये। परन्तु इस देश का दुर्भाग्य कि डुमराँव के महाराजा ने अंग्रजों का साथ दिया। अमरसिंह ने क्रोध में आकर डुमराँव के महाराजा पर आक्रमण कर दिया। हाथी की सूंड कट गई और वह चिग्घाड़ कर मैदान से भाग निकला। कुंवरसिंह ने नगर छोड़ दिया। अमरसिंह के साथ वे ससराम के पहाड़ों में चले गये। अंग्रेजों ने समस्त नगर को श्मशान भूमि बना डाला।

बाबू कुंवर सिंह ने अब पश्चिम की ओर बढ़ने का निश्चय किया। वे आजमगढ़ की ओर चल पड़े। रास्ते में अतरौलिया के मैदान में अँग्रेजों से घमासान

युद्ध हुआ। अँग्रेजों के कदम वहाँ से उखड़ गये और उनकी फौज तितर-बितर हो गई। कुंवर सिंह ने आजमगढ़ पर आक्रमण किया और कर्नल डेम्स को हरा कर आजमगढ़ को स्वतन्त्र कर दिया। कुंवरसिंह की वीरता का समाचार वाइसराय लार्ड कैनिंग तक पहुँचा। बाबू कुंवरसिंह का नाम अँग्रेजों के लिए अत्यन्त भयावह हो गया।

आजमगढ़ से आगे चल कर कुंवरसिंह ने बनारस पर आक्रमण कर दिया। लार्ड मार्कंकर के अधिनायकत्व में अँग्रेजी फौज ने उनका सामना किया। कुछ देर के घमासान युद्ध के पश्चात् अँग्रेजों की हार हो गई और लोग जहाँ तहाँ जान लेकर भागे। लार्ड मार्कंकर भी भाग निकला।

स्वातन्त्र्य-संग्राम को एक सूत्र में बाँधने के हेतु बाबू कुंवरसिंह ने झांसी की ओर रानी लक्ष्मीबाई से मिलने के लिए प्रस्थान किया। इसी बीच समाचार मिला कि रानी वीरगति को प्राप्त हो गईं। इस निराशाजनक समाचार को सुनकर बाबू कुंवरसिंह पुनः पूरब की ओर लौट पड़े। अँग्रेजों ने उनका पीछा किया। गाजीपुर के पास आकर पुनः घमासान युद्ध हुआ। जनरल डगलस फौज लेकर पिल पड़ा और कुंवर सिंह को घेर लिया। परन्तु बाबू साहब चालाकी से घेरे में से निकल आये। शत्रुओं ने फिर भी पीछा नहीं छोड़ा और जिस समय वे गंगा में नाव पर बैठ कर पार जा रहे थे, उन पर गोली की वर्षा प्रारम्भ कर दी। बाबू कुंवर सिंह के दाहिने हाथ में गोली लगी, परन्तु उस वीर ने तलवार से दाहिने हाथ को काट कर गंगा मैया को अर्पण कर दिया। वे पुनः जगदीशपुर लौट आये और भग्न महल पर विजय पताका फहराई।

अँग्रेज सेनापति लीग्रंड ने जगदीशपुर पर पुनः घेरा डाल दिया। आठ महीने तक उसी घायल अवस्था में कुंवरसिंह मोर्चा लेते रहे। परन्तु अस्सी वर्ष का वह जर्जर शरीर इस व्यथा को सहन न कर सका और वे इहलोक की लीला समाप्त कर परलोक सिधार गये।

उनके देहान्त के पश्चात् अँग्रेजों ने उस सुनसान जगदीशपुर के गढ़ को पूर्णतया ध्वंस कर डाला। मन्दिरों-मूर्तियों को गिराकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। कुंवर सिंह के अनुज अमर सिंह को इतना शोक हुआ कि जगदीशपुर छोड़कर कहीं चले गये और फिर कभी नहीं लौटे।

बाबू कुंवरसिंह के ऐतिहासिक वृत्त तथा लोकगाथा वृत्त में निम्नलिखित समानता एवं अंतर है।

समानता—प्रस्तुत लोकगाथा अत्यन्त अर्वाचीन होने के कारण घटनाओं में विशेष अन्तर नहीं आने पाया है। यह लोकगाथा इतिहास के आधार पर रची गयी है। निम्नलिखित तथ्य समान हैं।

बाबू कुंवरसिंह का वंश; उनका वीर स्वभाव, भारतीय विद्रोह का वर्णन; पीरअली की फाँसी; पटना के कमिश्नर टेलर का बाबू कुंवर सिंह पर सन्देह; दानापुर के सिपाहियों पर विद्रोह; बाबू साहब का विद्रोह का नेतृत्व ग्रहण करना; आरा का घेरा; अतरौलिया (आम का बाग) का संग्राम; बीबीगंज का संग्राम; मिलमैन की पराजय; कर्नल डेम्स की पराजय; डगलस की पराजय; बाबू कुंवर सिंह का गोली से घायल होना; जगदीशपुर पुनः लौटना और उनकी मृत्यु तथा अमर सिंह का पलायन। इस प्रकार लोकगाथा में प्रायः सभी युद्धों का का वर्णन है। स्थानों के नाम में भी अन्तर नहीं मिलता। केवल कहीं-कहीं पर नाम नहीं दिये गये हैं और घटनाओं के दिनांक का भी उल्लेख नहीं किया गया है।

अन्तर—यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि घटनाओं का क्रम समान ही है। इतिहास में प्रत्येक घटनाओं एवं कारणों का व्यवस्थित वर्णन मिलता है। लोकगाथा में कारणों का उल्लेख न करके बाबू कुंवरसिंह की वीरता का ही अधिक वर्णन है। अंतर इस प्रकार है—

प्रथम, लोकगाथा में आरा का खजाना लूटने का भी वर्णन है, परन्तु इतिहास के अनुसार अँग्रेजों ने खजाने को पहले ही किले में रख लिया था। कुंवर सिंह ने किले पर घेरा डाला परन्तु सफलता न मिली।

द्वितीय, लोकगाथा में कुंवर सिंह के छोटे भाई अमरसिंह को भी यथेष्ट महत्व मिला है। अमरसिंह का राजा डुमरांव से युद्ध का वर्णन सुन्दर रीति से किया गया है। इतिहास में यह घटना उतनी महत्वपूर्ण नहीं है।

तृतीय, लोकगाथा में कुंवरसिंह की मृत्यु के पश्चात् अमरसिंह का पलायन वर्णित है। परन्तु इतिहास में अँग्रेजों से सात महीने युद्ध का जारी करना लिखित है। नौनदी के संग्राम में हार कर अमरसिंह कैमूर की पहाड़ियों में अन्तर्ध्यान हो गया। गाथा में यह वर्णन नहीं है।

लोकगाथा तथा इतिहास के वृत्तों में विशेष अंतर नहीं है। एक बात उल्लेखनीय है, वह यह कि इस लोकगाथा में कहीं भी अतिरंजित वर्णन नहीं मिलता। यह प्रवृत्ति अन्य किसी भोजपुरी लोकगाथा से भिन्न है। सभी में

अतिरंजना है एवं देवी-देवताओं का समावेश हैं। इसमें सभी घटनाओं का और बाबू कुंवर सिंह की वीरता का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

बाबू कुंवरसिंह की लोकगाथा का प्रकाशित रूप[1] भी आजकल प्रचार में है। एक विशेष बात इस प्रकाशित रूप में भी दिखलाई पड़ती है। वह यह कि अन्य प्रकाशित लोकगाथाओं के समान इसके प्रकाशित एवं मौखिक रूपों में भिन्नता नहीं है। बाबू कुंवरसिंह का जीवनचरित, घटनाओं का वर्णन तथा टेक पदों की पुनरावृत्ति इत्यादि सब समान हैं। केवल शब्दावली का अंतर है, जो कि स्वाभाविक भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यन्त अर्वाचीन होने के कारण इसमें सम्मिश्रण तथा घटनाओं का फेर-फार नहीं होने पाया है। इस लोकगाथा के वर्णन की स्वाभाविकता ही इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। रंचमात्र भी इसमें अतिरंजना नहीं हैं। अतएव यहाँ पर मौखिक एवं प्रकाशित रूपों की तुलना की आवश्यकता नहीं है।

बाबू कुंवरसिंह की लोकगाथा के मौखिक रूप के खोज में एक नवीन बात दिखलाई पड़ी। कुंवर सिंह का जीवनचरित भोजपुरी समाज में लोकगाथा के के रूप में उतना नहीं व्याप्त है जितना कि लोकगीतों के रूप में। बाबू कुंवर सिंह के ऊपर निर्मित लोकगीतों की भरमार है। चैता, बारहमासा, होली, बिरहा तथा देशभक्ति के गीतों में कुंवर सिंह का चरित्र बहुत ही सुन्दरता से व्यक्त किया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि लोकगाथा के गायक प्राचीनता एवं रसिकता म अधिक रुचि रखते हैं। ये बाते 'कुंवर सिंह' की लोकगाथा में नहीं हैं। सम्भवतः इसी कारण गायक, कुंवरसिंह के चरित्र को ऋतुओं तथा अन्य रसिक गीतों में सम्मिलित करके जाते हैं।

बाबू कुंवरसिंह की लोकगाथा कथात्मक के साथ-साथ ऐतिहासिक भी है। यहां इस लोकगाथा में आये हुये स्थानों की भौगोलिकता पर विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा।

भौगोलिकता—लोकगाथा मे जिन-जिन स्थानों, नगरों, नदियों एवं पहाड़ों के नाम आये हैं वे सभी सत्य हैं। इस लोकगाथा मे कल्पना का लेशमात्र भी स्थान नहीं हैं।

१—बाबू कुंवर सिंह—दूधनाथ पुस्तकालय, हवड़ा

प्रमुख नगरों के नाम—दिल्ली, आगरा, ग्वालियर, इंदौर, कानपुर, बिठूर, लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस, आजमगढ़, गाजीपुर, बलिया, पटना, दानापुर, बक्सर, आरा एवं जगदीशपुर ।

उपर्युक्त नगर आज भी स्थित हैं तथा यह हम भली भाँति जानते हैं कि इन स्थानों पर भारतीय विद्रोह का विशेष प्रभाव रहा है । इसके अतिरिक्त अतरौलिया, बीबीगंज इत्यादि स्थान आज भी हैं ।

नदियों के नाम—गंगा तथा सरयू (घाघरा) का नाम प्रमुख रूप से आता है। कुंवरसिंह जिस मार्ग से आगे बढ़े थे उनमें गंगा एवं सरयू का उल्लेख पूर्णतया उपयुक्त है ।

पहाड़ों के नाम—ससराम के पहाड़ों एवं कैमूर की पहाड़ी का उल्लेख लोकगाथा में है। यह भी एक भौगोलिक सत्य है। ये बिहार में ही पड़ते हैं।

व्यक्तियों के नाम भी जो दिये गये हैं, वह सब ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य हैं ।

बाबू कुँवरसिंह का चरित्र—भारतीय पुनर्जागरण के इतिहास में बाबू कुंवर सिंह का नाम अमर है । अपने जीवन के संध्याकाल में इस महापुरुष ने जो वीरता दिखलाई उससे उसके कुल का, प्रदेश का तथा समस्त देश का अन्धकारमय विगत इतिहास प्रदीप्त हो उठा । सर्वत्र स्वातन्त्र्य भावना की लहर दौड़ गई । विदेशियों के चंगुल से छुटकारा पाने के लिये यह महादेश जाग पड़ा और प्रायः अर्द्धशताब्दी तक विदेशियों से जूझते हुये अपने ध्येय का साक्षात्कार किया ।

भारतवर्ष के इतिहास में अनेकों बार ऐसी घटनाएँ घटी हैं जब इतिहास का मंगल पृष्ठ लिखते-लिखते रुक गया है । मध्य युग में गुरुगोविन्दसिंह शिवा जी से भेंट करने के लिये चल पड़े थे । पर देश का दुर्भाग्य, कि शिवा जी चल बसे । इतिहास बनते-बनते रुक गया । इसी प्रकार बाबू कुँवरसिंह स्वातन्त्र्य की बैजयन्ती लहराते झांसी की रानी से मिलने चल पड़े थे, पर हमारे दुर्भाग्य से रानी दिवंगता हो गईं । संभवतः हमारे कर्तृत्व शक्ति की परीक्षा अभी शेष थी । इतिहास गिरते-पड़ते आगे बढ़ता गया ।

संग्राम में भाग लेने के पूर्व बाबू कुँवरसिंह का जीवन अत्यन्त सादगी का था। वे सादा वस्त्र पहनते थे और सादा जीवन व्यतीत करते थे। पराक्रम उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था । बाल्यकाल से ही उन्हें वीरता के कार्यों में अधिक रुचि थी । अध्ययन में उनकी रुचि कम थी । सदा हथियार चलाने, घुड़सवारी करने और शिकार खेलने में ही मस्त रहते थे । अपनी बलिष्ठ भुजाओं के कारण वे यौवनकाल ही में बिहार के राजपूतों के अग्रगण्य हो गये थे । सब लोग उनका

आदर करते थे। कोई उनके विरुद्ध एक बात भी बोलने का साहस नहीं करता था। शाहाबाद जिले के तो वे राजा ही थे। इस प्रदेश में उनका ऐसा प्रताप व्याप्त था कि वे जिस रास्ते निकल जाते थे, उधर के लोग रास्ते के दोनों किनारे हाथ जोड़कर खड़े हो रहते थे। कोई उनके सामने ऊँचे स्वर से बात नहीं करता था, कोई तम्बाकू नहीं पीता था, कोई छाता नहीं लगाता था। उनका ऐश्वर्य सम्राट् की भाँति था।

उनकी यह धाक बलपूर्वक नहीं जमी थी। वस्तुतः वह एक लोकप्रिय व्यक्ति थे। दुःखी जन की सेवा ही उनका व्रत था। परोपकार में उन्होंने अपना खजाना खाली कर दिया। उनके ऊपर बीस लाख रुपये का कर्ज चढ़ गया; परन्तु लोक सेवा का व्रत नहीं टूटा। शरणागत्वत्सलता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। उनके यहाँ से कोई खाली हाथ नहीं लौटता था। एक बार नैपाल के रणदलन सिंह खून करके उनकी शरण में आये। बाबू साहब ने अपने यहाँ शरण दिया। संग्राम में चलकर रणदलनसिंह उनका प्रमुख सेनापति बना।

बाबू कुँवरसिंह ने अपने जीवन में किसी से झगड़ा नहीं मोल लिया। सभी उनके मित्र थे। यहाँ तक कि अंग्रेज भी उनके मित्र थे। आरा का कलक्टर तथा पटने का कमिश्नर टेलर भी उनके घनिष्ठ मित्रों में से थे। इतिहासकार होम्स भी इस मित्रता का समर्थन करता है।[१] परन्तु सन्देह की कोई दवा नहीं। अंग्रेजों ने बाबू साहब पर अविश्वास प्रकट किया। वह भारतीय वीर भला इस अविश्वास को कैसे सहन कर सकता था। उसने म्यान से तलवार बाहर निकाल ली और समरांगण में कूद पड़ा। अंग्रेजों को भी भारत के वृद्ध बाहु का प्रताप देखना था। उन्होंने खुली आँखों से देखा। कुँवरसिंह का नाम उनके लिये भयावह हो गया।

वीरता के साथ साथ बाबू कुँवरसिंह में नीतिमत्ता भी थी। संग्राम में भाग लेने के पूर्व उनकी नीतिकुशलता का उदाहरण पुनः प्रस्तुत करना अनुपयुक्त न होगा। पटना से टेलर ने एक डिप्टी कलक्टर को कुँवरसिंह को बुलाने के लिये भेजा। कुँवरसिंह ताड़ गये। डिप्टी कलक्टर ने कहा, 'आपके न जाने से टेलर साहब को आप पर जरूर शक होगा।' इस पर बाबू साहब ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया, 'आप मेरे पुराने दोस्त हैं, उसी दोस्ती की याद दिलाते हुए मैं आप से पूछता हूँ कि क्या आप ईमान से कह सकते हैं कि पटने जाने पर मेरी कोई बुराई न होगी?' डिप्टी साहब इसका कुछ उत्तर न दे सके और चुपचाप चलते

१—टी० आर० होम्स—ए हिस्ट्री आफ इण्डियन म्युटिनी—पृ० १९०

बने। यह घटना इतिहास के उस चिरस्मरणीय घटना को स्मरण कराती है, जब अफजल खाँ ने एक ब्राह्मण द्वारा शिवा जी को निमन्त्रित किया था।

संग्राम में भाग लेने पर उन्होंने क्षत्रियत्व के आदर्श को कभी नहीं छोड़ा। वे एक कुशल सिपाही और कुशल सेनापति थे। आवश्यकतानुसार शिवा जी की तरह उन्होंने भी गुरिल्ला युद्ध की पद्धति अपनाई और अंग्रेजों को नाच नचाया। उन्होंने अपने थोड़े से सिपाहियों के साथ अंग्रेजों को घेर-घेरकर पराजित किया। गंगा पार करने के समय भी उन्होंने अंग्रेजों को धोखा दिया और सात मील दक्षिण जाकर गंगा को पार किया। अंग्रेज हाथ मलते रह गये। बाबू कुंवरसिंह ने युद्ध नीति में युद्ध-धर्म कभी नहीं छोड़ा। अंग्रेजों ने उनकी वीरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों को उन्होंने कभी नहीं मारा। निहत्थे सिपाहियों पर कभी भी अस्त्र नहीं उठाया। शरणागतों को अपनी सेना में स्थान दिया। जब आरा की कचहरी लूटी गई, उस समय उन्होंने कागजात को नष्ट नहीं होने दिया। उन्होंने कहा कि इन्हीं कागजात के द्वारा भविष्य में लोगों को जमीन-जायदाद दी जायगी।

उनकी व्यक्तिगत वीरता अप्रतिम थी। अस्सी वर्ष की वृद्धावस्था में घोड़े पर सवार होकर युद्ध करना वास्तव में एक अद्भुत कार्य था। कुँवरसिंह तलवार लेकर स्वयं पिल पड़ते थे। अपनी वीरता का 'नजराना' उन्होंने गंगा को कैसे दिया इसका कितना सुन्दर वर्णन लोकगाथा में है।

"रामा गोली आई लागल दहिना हथवा रेना
रामा हाथ होइ गइल बेकरवा रेना
रामा जानिकर हाथ बेकरवा रेना
रामा काटि दिहले लेके तरवरवा रेना
रामा कहेले जे लेहु गंगा हथवा रेना
रामा कहिकर उतना बचनवा रेना
रामा डाल दिहले गंगा जी में हथवा रेना
रामा बीर भगत के ईहे निशानवाँ रेना
रामा गंगा जी के रहल नजरानवाँ रेना"

यही श्री बाबू कुँवरसिंह के चरित्र की संक्षिप्त झांकी है। उनके अमर जीवन की यह गाथा भोजपुरी प्रदेश में अत्यधिक प्रचलित है। वीरता एवं परोपकार के लिये उन्हीं से तुलना की जाती है। देशभक्ति के तो वे स्फूर्तिमय देवता बन गये हैं। भोजपुरी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका जीवन व्याप्त है।

पहले ही बताया जा चुका है कि लोकगीतों में भी उनका चरित्र परिव्याप्त है। कुछ गीत इस प्रकार हैं :—
उदाहरण के लिये 'फाग' का एक पद,

'बाबू कुंवरसिंह तोहरे बिनु—
अब न रंगइबों केसरिया ॥
इतते अइले घेरि फिरंगी,
उतते कुँवर दुई भाई ॥
गोला बारूद के चले पिचकारी
बिचवा में होत लड़ाई ॥ बाबू० ॥

इसी प्रकार 'बिरहा में इनका चरित्र परिव्याप्त है—

बाबू कुँवरसिंह के नील का बछेड़वा,
पीअले कटोरवन में दूध ॥
हाली हाली दुधवा पिआईए कुँवरसिंह
अबकी रयनियाँ जिताव निलका बछेड़वा
सोनवे मढ़इबों चारों खूँट ॥

अध्याय ४

भोजपुरी प्रेमकथात्मक लोकगाथा का अध्ययन

शोभानयका बनजारा—प्रेमकथात्मक लोकगाथा के अन्तर्गत भोजपुरी की केवल 'शोभानयका बनजारा' की लोकगाथा ही स्थान पाती है। इस लोकगाथा में युद्ध नहीं है, रहस्य एवं रोमाँच नहीं है। इसमें केवल पति और पत्नी के प्रेम का ही सुन्दर चित्रण है।

वास्तव में भोजपुरी संस्कृति वीर संस्कृति मानी जाती है। परन्तु इसमें प्रेम तत्व कितना व्यापक एवं कितना उच्च है, इसका भी दिग्दर्शन प्रस्तुत लोकगाथा में हुआ है। प्रेम एक नैसर्गिक अनिवार्य तत्व है। इस गाथा में इसी तत्व का विविध दशाओं में चित्रण हुआ है। प्रस्तुत लोकगाथा में आदर्श भारतीय महिला के चरित्र को अत्यन्त सुन्दर रीति से चित्रित किया गया है। यह भारतीय ललना सीता, दमयन्ती के परम्परा का पालन करती है। उसके चरित्र पर अनेकों लाँछन लगते हैं, परन्तु सब कष्टों को सहन करते हुये वह अन्त में विजयी होती है। उसकी सहनशीलता और उसका संयम भारत की परम्परागत स्त्रियों की सहनशीलता का एक जीता जागता चित्र है। प्रस्तुत लोकगाथा की नायिका संभ्रांत अथवा कुलीन परिवार की नहीं है। लोगों का मत है कि शोभनयका बनजारा तेली जाति का था। अतः इस लोकगाथा में भारतीय शूद्र के जीवन का महान् चित्र उपस्थित किया गया है। हमारे समाजतंत्र के नस-नस में आर्य रक्त कितना घुल मिल गया है, यह लोकगाथा इसका परिचय देती है। समाज की निम्नश्रेणी में भी कितना आदर्श कितनी तपस्या एवं त्याग की भावना वर्तमान है, इस गाथा से स्पष्ट हो जाता है।

प्रस्तुत लोकगाथा के मौखिक तथा प्रकाशित रूपों से यह विदित होता है कि इसके चरित्र तेली जाति से सम्बन्ध रखते हैं। गायक वृन्द भी इसी बात की पुष्टि करते हैं। स्वतः समस्त लोकगाथा में इस जाति का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत लोकगाथा के चरित्र संभ्रांत तथा धनवान वैश्य कुल से संबंध रखते हैं। 'बनजारा' शब्द से भी घूम-घामकर व्यापार करने वालों का ही अर्थ स्पष्ट होता है। बिहार और बंगाल में 'नायक' लोगों की बहुत बड़ी बस्ती है जिनका प्रधान कार्य व्यापार करना ही है। ग्रियर्सन ने भी इस गाथा के चरित्रों

को व्यापार करने वाले सौदागर (ट्रेडिंग मर्चेन्ट्स) कहा है।[१] ऐसा प्रतीत होता है कि निम्न श्रेणी के लोगों ने इसके चरित्रों को भी अपनी जाति का बना लिया है। क्योंकि इस लोकगाथा को तेली नेटुआ लोग अधिकांश रूप में गाते हैं। यह निश्चित है कि प्रस्तुत लोकगाथा वैश्य जाति से ही संबंध रखती है।

गाने का ढंग—प्रस्तुत लोकगाथा के गाने का ढंग 'विजयमल' के ही समान है। दो व्यक्ति एक साथ गाते हैं। दोनों ही एक स्वर में द्रुतिगति से गाते चले जाते हैं। प्रत्येक पंक्ति के प्रारम्भ में 'एरामा या 'रामा' रहता है तथा अन्त में 'रैना'।

संक्षिप्त कथा—अपने महल में बारी दसवन्ती (जसुमति) सो रही थी। देवी ने प्रकट होकर उसे एक थप्पड़ मारा और कहा, "तेरा पति बहुत दिनों के लिये परदेश जा रहा है और तू यहाँ पड़ी सो रही है।" यह सुनते ही दसवन्ती जाग पड़ी। वह दौड़ी हुई अपनी भाभी के पास गई और कहा कि मेरे पति परदेश जा रहे हैं, मेरा गवना कर दो, अन्यथा मेरा यौवन व्यर्थ चला जायगा। बारी को अपने मुख से अपना गवना माँगते देखकर उसकी भाभी सन्नाटे में आ गई। भाभी ने जाकर दसवन्ती की मां से यह बात कही। माता यह सुनते ही अपनी पतोहू पर ही आग बबूला हो उठी और उसने कहा तू मेरी बेटी पर कलंक लगा रही है। अभी वह नादान है। उसकी बिदाई नहीं होगी। अब तो दसवन्ती बड़े सोच में पड़ गई। वह बैठकर पत्र लिखने लगी।

इधर बाँसडीह नगर के शंभू बनजारा के मन में यह विचार उठा कि अब पुत्र शोभानायक जवान हो गया है अतएव उसका गवना कर देना चाहिये। यह विचार करके नाई को तिरहुत नगर भेजा। दसवन्ती के पिता जादूसाह ने बेटी को नादान बतला कर नाई को वापस कर दिया। इस प्रकार तीन बार नाई आया और वापस चला गया। नवयुवक शोभानायक के मन में प्रेम हिलोरें ले रहा था। उसके मन में प्रश्न उठा कि क्या वास्तव में 'मेरी पत्नी दसवन्ती नादान है'? उसने स्वयं इस बात का पता लगाने का निश्चय किया। वह अपने मुनीम मधवापगहिया को साथ लेकर काशी चला गया और वहाँ मनिहारी का सब सामान खरीदकर तिरहुत नगर को चल दिया। मार्ग में कई जादूगरिनियों ने शोभा को अपना पति बनाने के लिये उसे भेड़ा और कबूतर बनाकर अपने यहाँ रख लिया परन्तु मधवापगहिया की सहायता से सारे कष्टों से बचते हुये वह तिरहुत नगर पहुँचा।

१—जेड० डी० एम० जी० १८८८ पृ० ४६८

तिरहुत नगर पहुँच कर दसवन्ती के घर के समीप शोभानायक ने मनिहारी की दुकान सजा दी और स्वयं मनिहारी का भेष बनाकर बेचने बैठ गया। दसवन्ती की एक सखी बाजार में सामान खरीदने चली आ रही थी। वह मनिहारी की दुकान देखकर टिकुली, सेंदुर, चूड़ी इत्यादि खरीदने के लिये वहाँ पहुँची, परन्तु शोभा के सुन्दर रूप को देखते ही वह मूर्छित हो गई। शोभा ने जल छिड़क कर उसकी मुर्छा दूर की। होश आते ही वह दासी दसवन्ती के महल में गई और सारा हाल कह सनाया। ऐसे मनिहारी को देखने के लिये दसवन्ती तीन सौ साठ दासियों के साथ मनिहारी की दुकान पर गई। एक दासी ने चोली उठाकर उसका मोल पूछा। शोभा ने कहा कि तुममें से जो सर्दार हो वही मोल-भाव करे। निर्भीक होकर दसवन्ती सामने आ गई। शोभा ने देखा कि बारी दसवन्ती पूर्ण यौवन को प्रप्त कर चुकी है। शोभा ने कहा कि, 'तुम तो पूरी जवान हो चुकी हो और बाजार में घूमती हो? मैं शोभा का मित्र हूँ। उससे जाकर यह बात कह दूँगा।' यह सुनते ही वह शोभा को पहचान गई और नौ हाथ का घूँघट काढ़कर महल में भाग गई।

महल में जाकर सोचने लगी कि जिस प्रकार शोभा न मुझे छकाया है उसी प्रकार मैं भी उसे छकाऊँगी नहीं तो वह जीवन भर मेरी मजाक उड़ायेगा। वह अपने पिता से आज्ञा लेकर पूरे सामान के साथ तीर्थ-यात्रा करने चल पड़ी। नगर के बाहर जाकर उसने तम्बू डलवा दिया और रास्ते पर पहरा बिठा दिया। उधर शोभानायक अपना सब समान बाँध कर घर के लिये उसी मार्ग से रवाना हुआ। नगर के बाहर घाट पर दसवन्ती द्वारा तैनात पुलिस ने रोककर उससे बावन लाख कौड़ी चुँगी माँगी। शोभा ने कहा, "आजतक मैंने चुंगी नहीं दी फिर आज क्यों?" इस पर पुलिस ने उसे बाँधकर तम्बू में डाल दिया। दसवन्ती ने कहलाया कि 'यदि वह मुर्गे का माँस खायगा तो छोड़ दिया जायगा।" शोभा को तो छुटकारा पाना था। इसलिए मुर्गे का मांस खाने के लिये तैयार हो गया। साध्वी दसवन्ती ने पति का धर्म भ्रष्ट होने से बचाने के लिए मुर्गे के स्थान पर बकरे का माँस भेज दिया। शोभा ने उसे मुर्गे का माँस समझ कर खा लिया। उसके बाद वह छोड़ दिया गया। वह अपने नगर बाँसडीह चला गया और दसवन्ती अपने महल में वापस चली गई।

शंभू बनजारा से आज्ञा लेकर शोभानायक गवने की पूरी तैयारी करके तिर-हुत नगर में पहुँचा और दसवंती को विदा करा लाया। कोहबर की रात्रि में शोभा ने बाजारवाली घटना सुनाकर दसवंती का मजाक उड़ाया। इस पर दसवन्ती ने मुर्गा खाने वाली घटना कह सुनाई। यह सुनकर शोभा सिटपिटा गया। बारी हंस पड़ी और सारा हाल कह सुनाया। इसी समय शम्भू शाह ने

सूचना दी कि उसका व्यापार नष्ट हो रहा है, इसलिए आज ही मोरंग देश के लिये रवाना होना है। शोभा ने तुरंत तैयारी प्रारम्भ कर दी। सोलह सौ बैलों पर जीरा मिर्च लादकर मोरंग के लिये चल पड़ा। चलते-चलते जब बहुत दूर निकल गया तो पड़ाव डाल दिया गया। जहाँ शोभा सो रहा था वहीं एक वृक्ष के ऊपर हँस और हँसिनी बातें कर रहे थे। वे आपस में कह रहे थे कि, "जो व्यक्ति आज की रात में सोहाग रात मनाता होगा उसे सुन्दर एवं गुणी पुत्र उत्पन्न होगा। जिसके हँसने से लाल गिरे और रोने से हीरा झरे"। शोभा पड़े पड़े सब बातें सुन रहा था। उसे अपनी गलती का अनुभव हुआ। वह हंस से प्रियतमा के पास पहुँचने के लिये प्रार्थना करने लगा। हंस नें उसे ले जाना स्वीकार कर लिया और अपनी पीठ पर बैठाकर उसी रात्रि में दसवन्ती के महल में पहुँचा दिया।

महल में पहुँच कर शोभानायक दसवन्ती का द्वार खटखटाने लगा। पहले तो दसवन्ती को विश्वास नहीं हुआ परन्तु जब यह सिद्ध हो गया कि वह उसका पति है तो उसने दरवाजा खोल दिया। उसी रात्रि शोभा ने सोहागरात मनाई। चलते समय शोभा ने आगमन के चिन्ह स्वरूप अपना रुमाल दे दिया। उसने अपने छोटे भाई चतुर्गुन से भी सब बातें बतला दीं। शोभा पुनः हंस की पीठ पर सवार होकर प्रातःकाल होते-होते अपने पड़ाव पर पहुँच गया।

इधर दसवन्ती को गर्भ रह गया। कुछ दिनों बाद उसकी ननद को भी पता चला। उसने दसवन्ती को कुलकलंकिनी समझा। दसवन्ती ने उससे सब हाल कह सुनाया और चिन्ह स्वरूप दी गई रुमाल भी दिखलाया, परन्तु ननद ने विश्वास नहीं किया। ननद ने दसवन्ती को समाज से बहिष्कृत कर दिया। चतुर्गुन तो सब हाल जानता ही था। वह भी अपनी भाभी के पास चला गया। वह नौकरी मजदूरी करके दसवन्ती का तथा अपना पेट पालने लगा। नव महीनें बाद दसवन्ती को पुत्र उत्पन्न हुआ। ननद ने तब भी पीछा नहीं छोड़ा। उसने नवजात शिशु को कुम्हार के आँवाँ में डलवा दिया और दसवन्ती को जंगल में मार डालने के लिये हत्यारों के हाथ में सौंप दिया। जंगल में दसवन्ती ने हत्यारों से कहा कि मुझे मारने से क्या लाभ, मुझे बेंच दो, तुम्हें पैसा मिल जायगा। हत्यारों को दया आ गई। उन्होंने ऐसा ही किया। बाजार में शोभानायक का बहनोई दीपचन्द दसवन्ती की सुन्दरता देखकर मुग्ध हो गया। उसने नवलाख अशरफ़ी देकर दसवन्ती को खरीद लिया। हत्यारों ने कुत्ते का कलेजा निकालकर ननद को दिखला दिया। उधर बालक भी आँवाँ में से जीता जागता निकल आया और कुम्हार के यहाँ पलने लगा।

देवी दुर्गा को अब दसवन्ती का दुःख देखा न गया। वह मोरंग देश चल पड़ी। देवी ने शोभा को जादुगरनियों के पंजे से छुड़ाया। बरहज बाजार, लधी शहर होते हुये शोभा अपने बहनोई दीपचं द के यहाँ पहुँचा। व्यापार के लिये जाते समय शोभा ने दीपचंद से कर्ज लिया था। उसी कर्ज को चुकता करने वह आया। वहाँ उसने दसवन्ती को रसोईया का काम करते देखा। दोनों का मिलन हुआ। वहीं उसे सारी विगत् घटना मालूम हुई। दसवन्ती को साथ लेकर वह बांसडीह नगर पहुँचा। केका कुम्हार के यहाँ से बालक बुलवाया गया। केका ने इस पर अपत्ति की। केका की स्त्री ने कहा कि यह बालक मेरा है। इसकी परीक्षा ली गई। दसवन्ती के स्तन की दूध की धारा बह निकली। यह सिद्ध हो गया कि बालक उसी का है। शोभा ने अपनी बहिन को गढ़े में डाल कर पटवा कर मार डाला। चतुर्गुन को घर का मालिक बनाया। इस प्रकार शोभानायक और दसवन्ती का दिन फिर लौटा और वे सुख से जीवन व्यतीत करने लगे।

लोकगाथा के अन्य रूप

प्रस्तुत मौखिक रूप के अतिरिक्त 'शोभानयका बनजारा' लोकगाथा के चार अन्य रूप और प्राप्त होते हैं। प्रथम, सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'सेलेक्टेड स्पेसिमेन्स आफ बिहारी लैंग्वुएज' के अन्तर्गत शोभानायक बनजारा लोकगाथा को प्रस्तुत किया है तथा उसका अंग्रेजी अनुवाद भी किया है।[1] यह एक आदर्श भोजपुरी रूप है।

लोकगाथा का द्वितीय रूप प्रकाशित भोजपुरी रूप है जो कि हबड़ा (कलकत्ता) से प्रकाशित हुई है तथा बाजारों या मेलों में बिकता है।

तृतीय रूप मगही रूप है। मगही प्रदेशों में भी प्रस्तुत लोकगाथा का प्रचार है। परन्तु यह मगही रूप भोजपुरी रूप से बिल्कुल समानता रखती है। केवल बोली का अन्तर है।

लोकगाथा का चतुर्थ रूप मैथिली रूप है, इसमें भी कथा भोजपुरी के ही समान है। मैथिली में इस लोकगाथा को 'गीत नेबारक' कहते हैं।

छत्तीसगढ़ में 'सीताराम नायक' की लोकगाथा प्रचलित है, परन्तु उसकी कथा सर्वथा भिन्न है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि शोभानायक बनजारा की लोकगाथा केवल बिहार में ही सीमित है। यह लोकगाथा भोजपुरी प्रदेश में ही विशेष रूप से

१—जेड० डी० एम० जी० १८८६ पृ० ४६८—५०९

प्रचलित है। भोजपुरी प्रदेश से ही यह लोकगाथा अन्य प्रदेशों में फैली है। क्योंकि कथानक, चरित्रों एवं नगरों के नाम अन्य रूपों में प्रायः समान ही है।

लोकगाथा के भोजपुरी रूप तथा अन्य रूपों में समानता एवं अंतर— ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत लोकगाथा में तथा मौखिक रूप की कथा एक समान है। देवी दुर्गा द्वारा दसवन्ती का पति का परदेश जाना विदित होना; भाभी और माँ से बिदाई के लिये याचना करना; शोभानायक का मनिहारी का रूप धरकर दसवन्ती से भेंट करना; शोभा का दसवन्ती को चिढ़ाना; दसवन्ती का भी शोभा से बदला लेना; शोभा की मोरंग यात्रा; हँस-हँसिनी सम्बाद; दसवन्ती को पुत्र उत्पन्न होना तथा उस पर कलंक लगना तथा ननद को दंड देना इत्यादि सभी घटनायें इस रूप में भी वर्णित हैं।

दोनों रूपों में केवल कुछ स्थानों के नाम अन्तर है। कथानक में अन्तर केवल यही है कि दसवन्ती स्वयं पत्र लिखकर शोभा को बुलवाती है, तथा शोभा-नायक जब मोरंग से लौटता है तो अपने ससुराल भी जाता है।

भोजपुरी मौखिक रूप में शोभानायक बाँसडीह नगर का रहने वाला है। तथा ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत रूप में शोभानायक गउरा गुजरात का रहने वाला है तथा दसवन्ती हरदी बाजार की रहने वाली है। ऐसा प्रतीत होता है लोकगाथा के इस रूप में 'लोरिकी' की लोकगाथा के स्थानों का नाम गायकों द्वारा जोड़ दिया गया है। 'लोरिकी' में गउरा गुजरात तथा हरदी बाजार बड़े प्रमुख स्थान हैं।

लोकगाथा के प्रकाशित भोजपुरी रूप में बढ़ा चढ़ा करके वर्णन मिलता है। उसमें दसवन्ती के माता-पिता का वर्णन पहले है, तत्पश्चात् दसवन्ती के भाई के जन्म का वर्णन है। इसके पश्चात् शोभा के माता-पिता का वर्णन है। इसके बाद शोभा के बहिन के विवाह का वर्णन है। इसके पश्चात् वास्तविक लोकगाथा प्रारम्भ होती है।

चरित्रों के नाम में भी अन्तर कम मिलता है। दसवन्ती का दूसरा नाम 'जसुमति' इसमें दिया हुआ है। शोभा के मुनीम का नाम मौखिक रूप में 'मधवा पगहिया' है, परन्तु प्रकाशित रूप में 'जगुमुनीब' है।

स्थानों के नाम मौखिक रूप के ही समान हैं। प्रकाशित रूप में कुछ नगर बढ़ा भी दिये गये हैं। जैसे बहराइच, मोतिहारी इत्यादि।

लोकगाथा के मगही और मैथिली रूप मौखिक भोजपुरी रूप से बिल्कुल समानता रखती है। उसमें व्यक्तियों तथा स्थानों के नाम में भी अन्तर नहीं

मिलता है। भोजपुरी प्रदेश से दूर जाकर भी इसमें अन्तर नही आया है, यह आश्चर्यजनक बात है।

लोकगाथा की ऐतिहासिकता

वास्तव में प्रस्तुत लोकगाथा के ऐतिहासिकता का कोई प्रश्न नहीं उठता है। यह एक व्यापारी समाज की कहानी है। अनेक वर्षों के लिये व्यापार के लिये परदेश जाना व्यापारियों का पुरातन नियम है। उनकी स्त्रियों का बिरह के कष्ट झेलना तथा समाज की यातनायें सहना एक स्वाभाविक बात है। इस विषय पर लोकगीतों में चैता, चौमासा एवं बारहमासा इत्यादि के गीत रचे गये हैं। इनमें पति का परदेस से न लौटने पर विरहणियों का करुण चित्र उपस्थित किया गया है। इसी प्रकार से यह लोकगाथा एक प्रेम कथा है, जो धीरे-धीरे भोजपुरी प्रदेश में महत्व प्राप्त करती गई तथा आज हमारे सम्मुख एक प्रसिद्ध लोकगाथा के रूप में आ गई है।

प्रस्तुत लोकगाथा की भूमिका में श्री ग्रियर्सन लिखते हैं कि 'यह गीत भोजपुरी समाज के साधारण जीवन को प्रस्तुत करता है। व्यापारी लोग बैलों पर सामान लादकर चावल की खोज में नपाल की तराई में जाया करते थे। वे वहाँ से चावल लाकर 'पटना चावल' के नाम से बेचते थे। यह 'पटना चावल' कलकत्ता के द्वारा सारे संसार में जाता था। इस 'पटना चावल' की प्रसिद्धि बहुत दूर-दूर तक फैली हुई थी। चावल के अतिरिक्त तेल के बीज का भी व्यापार होता था जिससे कि जर्मन व्यापारियों ने अकूत धन कमाया।'[१]

इस प्रकार से हम देखते हैं कि यह भोजपुरी व्यापारियों के दैनिक जीवन की कहानी है। लोकगाथा के स्थानों का जो वर्णन मिलता है वह भौगोलिक दृष्टि से भी अधिकांश में सत्य है।

मोरंग—लोकगाथा में शोभानायक का मोरंग देश यात्रा करना वर्णित है। ग्रियर्सन ने हिमालय की तराई को ही मोरंग देश बतलाया है[२] उनका कथन है कि दोआब के उत्तर और हिमालय पर्वत के बीच में जो भूमि भाग है, उसके पश्चिमी भाग को तराई कहा जाता है तथा पूर्वी भाग 'मोरंग' कहा जाता है। वस्तुतः यह कथन सत्य है। मोरंग इसी भाग को कहते हैं। यहाँ पर चावल का आज भी बहुत बड़ा व्यापार होता है।

१—जे० डी० एम० जी० १८८८ पृ० ४६८

२—वही

तिरहुत—लोकगाथा में तिरहुत नगर का वर्णन है। तिरहुत नगर तो कहीं नहीं मिलता है; परन्तु बिहार के उत्तरी-पूर्वी प्रदेश को 'तिरहुत' कहते हैं। यह संस्कृत 'तीरभुक्ति' से निकला है। यहाँ की भाषा मैथिली है।

बांसडीह—बलिये जिले में 'बाँसडीह' एक कस्बा और स्टेशन है। यह भी गल्ले के व्यापार का बड़ा केन्द्र है।

बहराइच—नैपाल की तराई में एक नगर और जिला है। यह भी गल्ले की बहुत बड़ी मंडी है।

बरहज बाजार—सरयू नदी के उत्तरी किनारे पर गोरखपूर जिले में स्थित है। नदी के किनारे होने के कारण व्यापार का एक अच्छा केन्द्र है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि लोकगाथा में भारत के पूर्वी प्रदेश के प्रमुख व्यापारी केन्द्रों का वर्णन मिलता है। सदा से इन नगरों में पूर्वी भारत के गल्ले का व्यापार होता चला आया है अतएव लोकगाथा में इनका वर्णन होना स्वाभाविक है।

इन स्थानों पर दूर दूर से गल्ले और मसाले के व्यापारी आया करते हैं। कुछ समय पहले शोभानायक भी इन्हीं व्यापारियों में से एक रहा होगा जो अपने रसिक चरित्र के कारण प्रसिद्ध हो गया होगा और गायकों ने एक विस्तृत लोकगाथा उसके जीवन पर रच डाली होगी

शोभानायक का चरित्र—शोभानायक प्रस्तुत लोकगाथा का नायक है। इसके चरित्र के तीन अंग हैं। प्रथमतः वह एक रसिक बनजारा है, द्वितीय वह एक अनन्य प्रेमी है तथा तृतीय वह एक सज्जन एवं सच्चरित्र व्यक्ति है।

शोभानायक जब पूर्ण यौवन को प्राप्त करता है तो उसके हृदय में अपनी पत्नी से भेंट करने की इच्छा जागृत होती है। दसवन्ती का द्विरागमन निकट भविष्य में संभव नहीं था, अतएव शोभानायक अपनी पत्नी को देखने के लिये चल देता है। वह मनिहारी का रूप धारण करके दसवन्ती से भेंट करता हैं। उसका यह चरित्र किसी रीतिकालीन नायक की भाँति चित्रित हुआ है। वह अपनी नायिका से अभिसार करता है। उसकी रसिकता की मात्रा यहाँ तक बढ़ जाता है कि वह अश्लील मजाक भी अपनी स्त्री से करता है। उसके सुन्दर रूप और रसिक स्वभाव के कारण मार्ग में अनेक जादूगरनियाँ उसके ऊपर मोहित हो जाती है। परन्तु उसकी यह रसिकता संयम को नहीं छोड़ती हैं। वह सब कुमार्गों से बचकर दसवन्ती से भेंट करता है। उसका उद्देश्य था दसवन्ती को देखना और यह कार्य समाप्त करके वह वापस घर लौट आता है, और गवने की तैयारी प्रारम्भ कर देता है।

शोभानायक व्यपारी होने के साथसाथ एक अनन्य प्रेमी भी है। भारतीय वैवाहिक संस्कार में सोहाग रत्रि अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं पवित्र रात्रि मानी जाती है। इस प्रथम रात्रि में ही उसे अकस्मात् व्यापार के लिये मोरंग देश की यात्रा करनी पड़ती है। उसके हृदय में एक टीस उठती है परन्तु वह बेबस था। वह व्यापार के लिये चल देता है। परन्तु हंस की कृपा से वह पुनः दसवन्ती से भेंट करता है। वह रातों रात चलकर दसवन्ती से प्रेम की याचना करता है। दसवन्ती अपने आखों में आँसू भर कर उसे बिदा देती है। दसवन्ती को कोई कलंक न लगने पाये; इसलिये वह सब प्रबन्ध करके जाता है। इस प्रकार से हम पति पत्नी के नैसर्गिक प्रेम का सुन्दर चित्र यहाँ पाते हैं।

शोभानायक एक अत्यन्त सज्जन एवं सच्चरित्र पुरुष है। बारह वर्ष पश्चात् परदेश से लौटने पर भी वह अपनी पत्नी को उसी विश्वास से अपनाता है। उसके ऊपर लगी हुई लांछनाओं पर वह विश्वास नहीं करता है। बहनोई के घर देखकर भी उसके अन्तःकरण में रंचमात्र भी संदेह नहीं उठता है। वह उसे सब कलंकों से बचाता है तथा अपने प्रिय भाई चतुर्गुण का भी यथा सत्कार करता है। शोभा के चरित्र में रसिकता तथा प्रेम के साथ एक उच्च विचार रखने वाला व्यक्ति चित्रित हुआ है।

दसवन्ती—प्रस्तुत लोकगथा में शोभानायक के चरित्र से अधिक सबल चरित्र उसकी पत्नी दसवन्ती का है। लोकगाथा में दसवन्ती के चरित्र का साँगोपांग विकास किया गया है। एक साधारण व्यापारी की स्त्री ने भारतीय आदर्श का सफल रूप में निर्वाह किया है। दसवन्ती का पति प्रेम, विरह-यातना, सामाजिक लाँछना एवं उसका मातृत्व सभी भारतीय आदर्श के अनुरूप है।

लोकगाथा में दसवन्ती उस परंपरा का विरोध करती हुई चित्रित की गई है जहाँ कि कन्यायें अपने मुख से ससुराल जाने का नाम नहीं लेती हैं। प्रस्तुत लोकगाथा में अति स्वाभाविक रूप में वह अपनी माता से पति के घर जाने का प्रस्ताव रखती है। यहाँ पर वह मुग्धा नायिका की भाँति है, उसे अभी यौवन की लाज का अनुभव ही नहीं था। माता दुर्गा उसे फटकारती हैं। अतः देवी की इस बात को ध्यान में रखकर सहज रूप में वह शोभानायक से मिलना चाहती है।

शोभानायक से उसका प्रथम मिलन, उसकी निर्भीकता, उसकी लज्जा सभी सच्चरित्र नारी का गुण प्रस्तुत करते हैं। उसमें आत्माभिमान है, परन्तु वह शोभा के जाति धर्म को नष्ट नहीं करती है। वह पति को मुरगे का माँस नहीं खिलाती अपितु बकरे का माँस खिलाती है।

शोभानायक के परदेश गमन के पश्चात् उसके दुख के दिन प्रारम्भ होते हैं। वह गर्भवती होती है। कुटुम्बी और समाज उस पर कलंक लगाते हैं। उसका नवजात शिशु आंवा में झोंक दिय जाता है। वह दासी के रूप में दीपचन्द के यहाँ पलती है। वह सब कुछ चुप चाप सहा करती है। उसे सत्य में, ईश्वर में तथा प्रति में विश्वास है। वह संतोष के साथ पति के आगमन की प्रतीक्षा करती है। भारतीय ग्राम्या का इतना मनोरम एवं स्वाभाविक चित्रण अन्य किसी लोकगाथा में नहीं मिलता।

शोभानायक के लौटने के साथ ही उसकी विपत्तियों का तो अन्त होता है परन्तु अभी एक कठिन परीक्षा तो शेष ही थी। वह थी उसकी मातृत्व परीक्षा। उसका पुत्र जन्म लेते ही उससे छीन लिया गया था। पंच परमेश्वर के सम्मुख उस पतिव्रता के मातृत्व की परीक्षा होती है। उसका मातृत्व उसके स्तन के मार्ग से बह उठता है। बालक उसकी ओर स्वाभाविक रूप से दौड़ पड़ता है। दसवन्ती सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करती है उसे परदेशी पति मिला, पुत्र मिला तथा खोया वैभव मिला।

भोजपुरी प्रदेश के निम्नश्रेणी में प्रचलित इस लोकगाथा में हम भारतीय आदर्श का सुन्दर समावेश पाते हैं। दसवन्ती सीता, कुंती के परम्परा का पालन करने वाली एक ग्रमीण वैश्य स्त्री है। उसका चरित्र भोजपुरी ग्रामीण स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करता है।

अध्याय ५

भोजपुरी रोमांचकथात्मक लोकगाथा का अध्ययन

भोजपुरी वीरकथात्मक तथा प्रेमकथात्मक लोकगाथाओं के पश्चात रोमाँच-कथात्मक लोकगाथाओं का स्थान आता है। इस वर्ग में दो लोकगाथायें आती हैं। प्रथम 'सोरठी' तथा द्वितीय 'बिहुला'। भोजपुरी समाज में वैसे तो प्रेम सभी लोकगाथाओं से है, परन्तु जो आदर और श्रद्धा इन दोनों लोकगथाओं को मिला है, उतना अन्य कोई भी लोकगाथा नहीं प्राप्त कर सकी है। भोज-पुरी लोकजीवन में सोरठी एवं बिहुला स्वर्ग में निवास करने वाली देवियों की परम्परा में हैं। अत्यन्त श्रद्धा एवं पूज्य भाव से इन लोकगाथाओं का गान किया जाता है।

यद्यपि सोरठी एवं बिहुला पतिव्रत धर्म की अमर लोकगाथाए है परन्तु इसमें रोमांचतत्व अत्याधिक रूप से पाया जाता है। इसी कारण इन दोनों लोकगाथाओं को पातिव्रतधर्म विषयक लोकगाथाएँ न कहकर रोमाँचकथात्मक लोकगाथाएँ कही गयी हैं। यह रोमांच तत्व क्या है? वास्तव में अँग्रेजी के 'रोमान्स' शब्द से इसकी व्युत्पत्ति है। 'रोमान्स' का अर्थ होता है प्रेम एवं सौन्दर्य। परन्तु हिन्दी में 'रोमांच' शब्द कुछ अधिक अर्थ रखता है। 'रोमाँच' शब्द में अँग्रेजी के 'सुपरनेचुरल एलिमेन्ट' का भी भाव समावेष कर गया है। 'रोमाँच' एक भाव है जो किसी अद्भुत दृश्य देखने अथवा अद्भुत कार्य करने के कारण उत्पन्न होता है। इसके दोनों पक्ष होते हैं। मनुष्य की कल्पना के परे कोई सुन्दर दृश्य अथवा अद्भुत कार्य जैसे घोड़े का उड़ना पेड़ का बोलना इत्यादि देखकर मन को आनन्द प्राप्त होता है। इसके विपरति भूत प्रेत, जादू टोना का कार्य देखकर भय भी उत्पन्न होता है। यह दोनों ही रोमाँच तत्व के अन्तर्गत आते हैं।

'सोरठी' एवं 'बिहुला' की लोकगाथा के अन्तर्गत अमानवीय चरित्रों का अत्याधिक समावेष है। अतएव रोमाँच तत्व का इसमें प्रमुख स्थान रहना स्वाभाविक है। इन दोनों लोकगाथाओं में देवी, देवता, भूत प्रेत सभी प्रमुख स्थान रखते हैं। नदी, तालाब, वृक्ष पहाड़ भी क्रियात्मक रूप से इन लोकगा-थाओं में सहयोग देते हैं। कुत्ता, बिल्ली, मछली तथा अनेक जानवर, क्या थलचर, जलचर अथवा नभचर, सभी बातचीत करते हुए एवं कथानक में भाग

लेते हुये दिखाये गये हैं। जादू, मंत्र, पूजा तथा टोना इत्यादि भी कथा को मोड़ने में प्रमुख स्थान रखते हैं। दैवी सहायताओं से मनुष्य आकाश के मार्ग से चलता है, नदी की उल्टी धार पर चढ़ा चलता है तथा स्वर्ण विमान पर आसीन होता है। इन लोकगाथाओं में स्वर्गलोक से मृत्युलोक तक तथा मृत्युलोक से पाताल लोक तक एक तांता बंधा हुआ है। लोकगाथा के चरित्रों को इस ब्रह्मांड में कहीं भी आना जाना बिल्कुल असंभव नहीं है। इन्द्रपुरी ही तो इनका हाइकोर्ट है जहाँ प्रत्येक झगड़ों का अन्तिम फैसला होता है। अतएव इन लोकगाथाओं के चरित्र इस लोक के होते हुये भी इस लोक के नहीं अपितु सर्वव्यापी हैं।

वास्तव में मनुष्य का स्वभाव है अपने से परे देखने की चेष्टा करना। यही प्रवृत्ति उसे नाना कल्पनाओं की ओर ले जाती है। कुछ का तो वह विज्ञानादि के सहारे यथार्थ जीवन में साक्षात्कार कर लेता है तथा कुछ के लिये सदा ही व्याकुल रहता है। लोकगाथा के प्रथम गायक को एक घटना हाथ में लगी, उसे अपनी कल्पना की डोर पर उसने चढ़ा दिया, फिर उसके कवित्वमय हृदय ने इस संसार और उस संसार के भिन्नता को मिटा दिया। वह समस्त सचराचर में विचरण करने लगा। इस प्रकार उस गायक के जीवन की पृष्ठभूमि में जो संस्कृति एवं सभ्यता निहित रहती है उसी आधार पर लोकगाथा की रचना होने लगती है। इस प्रकार से उस लोकगाथा में वास्तविक जीवन के साथ अन्य रोमांचकारी तत्वों का समावेष हो जाता है। उसमें कौतूहल रहता है, अलौकिकता रहती है तथा एक अभिनव सम्मोहन रहता है, जिसके कारण घंटों लोग बैठकर श्रवण किया करते हैं तथा गायक के साथ समस्त ब्रह्मांड की सैर किया करते हैं।

भारतीय जीवन के लिये यह रोमांचतत्व कोई नवीन वस्तु नहीं है। वस्तुतः जब हम सोरठी एवं बिहुला की लोकगाथा को सुनते हैं तो हमें कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता है। हम यह ऊपर विचार कर चुके हैं गायक के जीवन के आधार में जो संस्कृति एवं सभ्यता निहित रहती है उसी के आधार पर लोकगाथा की रचना होने लगती है। अतएव हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति में इस प्रकार के तत्व कोई नवीन वस्तु नहीं है। पुराणों एवं धार्मिक कथाओं में देवी देवताओं के अलौकिक चरित्र वर्णित रहते हैं। यह कथाएँ प्रत्येक भारतीय के हृदय में घर किये हुये रहती हैं। इसी कारण 'सोरठी' एवं 'बिहुला' में वर्णित रोमांचतत्व को श्रोतागण अस्वाभाविक नहीं मानते हैं। इसके विपरीत उनके हृदय में सोरठी एवं बिहुला के प्रति अत्यन्त आदर एवं श्रद्धा का भाव जागृत होता है तथा वे भी पुराणों एवं धार्मिक कथाओं की देवी बन जाती है।

इन लोकगाथाओं में रोमांचतत्व भारतीय जीवन के अनुरूप ही चित्रित हुआ है। भारतीय जीवन का प्रमुख आदर्श है 'सत्य' की विजय। वह इन लोकगाथाओं में भली भाँति दर्शाया गया है। देवी, देवता, नदी, तालाब इत्यादि सभी अमानव तत्व सत्य का ही पक्ष लेते हैं। असत्य चाहे कितना ही प्रबल क्यों न हों, कितना भी जादू, टोना, मंत्र इत्यादि से उसकी शक्ति बढ़ गई हो, परन्तु अन्त में उनका पराभव ही होता है। हम यह भली भांति जानते हैं कि भारतीय साहित्य में दुखान्तकी (ट्रेजेडी) नामक कोई वस्तु नहीं है। सत्य के विजय में भला दुखद अन्त कैसा ? इस सिद्धान्त का अक्षरशः पालन इन लोकगाथाओं में किया गया है। यद्यपि इन लोकगाथाओं का अन्त आध्यात्मिकता की अन्तिम सीढ़ी पर पहुँच गई है, परन्तु अन्त मंगलमय ही होता है। आध्यात्मिकता तो भारतीय जीवन की चरम स्थिति है ही। प्रत्येक भारतीय इहलोक से अधिक परलोक का चिंतन करता है। यह तत्व इन लोकगाथाओं में भली भाँति प्रतिपादित है।

इस प्रकार इन लोकगाथाओं में रोमाँचतत्व का समावेष मंगल आदर्श के ही लिये किया गया है। इससे हृदय में शान्ति एवं उल्लास का अनुभव होता है। गायक जब लोकगाथा के अन्त में कहता है कि जिस प्रकार सोरठी अथवा बिहुला के सौभाग्य का दिन लौटा है, उसी प्रकार सभी श्रोताओं के दिन भी लौटें; तो श्रोतागण हाथ जोड़कर अत्यन्त श्रद्धा से भगवान की जय बोलते हैं और आत्मा में सन्तोष एवं शान्ति का अनुभव करते हुये अपने घर की राह लेते हैं।

---

(१) सोरठी

प्रस्तुत लोकगाथा भोजपुरी प्रदेश के पूर्वीय भाग में विशेष रूप से प्रचलित है। बनारस, गोरखपुर, बस्ती जिलों की ओर इसके गाने वाले बहुत कम मिलते हैं, परंतु नाम से इसका परिचय सब ओर है। प्रकाशित पुस्तकों द्वारा इसका प्रचार भोजपुरी प्रदेश से बाहर भी हो गया है। बिहारी भाषाओं का अध्ययन करते हुये ग्रियर्सन ने कई भोजपुरी लोकगाथाओं को एकत्र किया था, परंतु आश्चर्य कि इस लोकप्रिय लोकगाथा की ओर उनका ध्यान क्यों नहीं गया? केवल दूधनाथ प्रेस, हवड़ा तथा बैजनाथ प्रसाद बुक्सेलर, काशी के यहाँ से लोकगाथायें प्रकाशित हुई हैं। मैथिली में भी इसका प्रकाशन हो गया है। संभवतः अत्यंत वृहद् लोकगाथा होने के कारण ही किसी को एकत्र करने का साहस नहीं हुआ है। इसी वृहद आकार के कारण मुझे भी एकत्र करने में अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं।

'सोरठी' गाने वाले जब इसे विधिपूर्वक गाते हैं तो तेरह रातों में जाकर यह लोकगाथा समाप्त होती है। गायक इस लोकगाथा को बड़े भाव से गाते हैं। दो व्यक्ति एक साथ मिलकर गाते हैं। प्रमुख रूप से इसके गाने के दो तर्ज हैं। परन्तु दोनों ही द्रुतलय में ही गाये जाते हैं। एक-एक टप्पे में एक छोटा कथानक होता है। गवैया खजड़ी और टुनटनी (घंटी) पर ही अधिकतर गाते हैं। प्रस्तुत लोकगाथा के गायकों की कोई निश्चित जाति नहीं होती है। वैसे इसके गाने वाले निम्न जाति के ही होते हैं, परंतु 'सोरठी' गाना उनके जीवकोपार्जन का साधन नहीं होता है। ये गायक इस लोकगाथा में लोकगीतों के राग भी मिश्रित कर देते हैं, जैसे, भजन, सोहर, जंतसार इत्यादि। प्रकाशित पुस्तकों में यह लोकगांथा बत्तीस खंड़ों में विभाजित है। गायक लोगों के पास यह लोकगाथा खंडों में नहीं विभाजित रहती है। वे जब जमकर बैठ जाते हैं तो निरंतर गाते ही रहते हैं और कई रातों में जाकर आदि से अन्त तक की कथा की समाप्ति करते हैं।

'सोरठी' में यद्यपि रोमाँचतत्व अत्यधिक है परन्तु इसमें पतिव्रत धर्म एवं प्रेम का उज्जवल रूप दिखलाया गया है। इस लोकगाथा पर नाथ सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप पड़ी है, यद्यपि इसमें सभी देवी देवताओं का भी पूर्ण रुपेण उल्लेख है। लोकगाथा का नायक वृजाभार गुरु गोरखनाथ का शिष्य है। वृजाभार इसमें

साधक के रूप में दिखलाया गया है। जायसी के 'पद्मावत्' में जिस प्रकार राजा रत्नसेन, पद्मावती को प्राप्त करने के लिये दुर्गम यात्रा करता है तथा भीषण कष्ट झेलता है, उसी प्रकार, उससे भी अधिक यातनायें सोरठी को प्राप्त करने के लिये बृजाभार को भुगुतनी पड़ती हैं। जिस प्रकार 'पद्मावत्' में पद्मावती एक साध्य के समान है, उसी प्रकार प्रस्तुत लोकगाथा में सोरठी भी एक साध्य है जिसे प्राप्त करने के लिये बृजाभार को कष्टप्रद साधना करनी पड़ती है। जिस प्रकार 'पद्मावत्' एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण का महाकाव्य है, उसी प्रकार सोरठी की लोकगाथा की चरम सीमा आध्यात्मिकता पर पहुँच जाती है। यह भोजपुरी का दुर्भाग्य है कि इस बोली में कोई जायसी जैसा महाकवि नहीं उत्पन्न हुआ, अन्यथा यह लोकगाथा छन्दबद्ध एवं परिष्कृत होकर 'पद्मावत्' से कई गुना रोचक एवं विचारोत्पादक होती। परंतु तो भी यह भोजपुरी का सौभाग्य है कि समय की लम्बी अवधि में यह लोकगाथा विस्मृत न होकर आज भी बड़े जतन से मौखिक परंपरा में सुरक्षित है।

सोरठी की संक्षिप्त कथा सोरठपुर के राजा उदयभान को संतान न थी। इस कारण राजा बहुत चिन्तित रहते थे। राजपंडित व्यासमुनि (जो कि पूर्व जन्म के गंधर्व थे) ने बतलाया कि तप करने से संतान संभव है। राजा, जंगलों में तप करने चले गये। कुछ काल के पश्चात् आकाशवाणी हुई कि 'राजा के यहाँ एक अत्यन्त गुणवती कन्या जन्म लेगी।' राजा प्रसन्नचित्त होकर घर लौटे। ठीक समय पर रानी तारा के गर्भ से कन्याने जन्म लिया। राजपंडित ने उसका नाम सोरठी रखा। जन्म के समय नार काटने के लिये जब धाय बुलाई गई तो नवजात सोरठी बोल पड़ी, "मुझे धाय से स्पर्श मत कराओ अन्यथा मैं अपवित्र हो जाऊँगी"। रानी को यह सुनकर बड़ा भय हुआ। इस पर सोरठी बोली, "डरो नहीं मैं इन्द्रपुरी से आई हूँ, एक त्रुटि हो गई है इसी कारण मत्युलोक में आना पड़ा है"। इसके पश्चात् इन्द्र से प्रार्थना करने पर चार अप्सराएँ आईं और धाय सेवा करके चली गईं।

राजपंडित व्यास मुनि ने देखा कि यह कन्या सुलक्षणी एवं बारह जन्मों का हाल जानने वाली है। पंडित के मन में ईर्ष्या जागृत हुई। उसने सोचा कि यदि यह कन्या जीवित रहेगी तो उन्हें कोई न पूछेगा, और मानसम्मान सब नष्ट हो जायगा। यह सोचकर उन्होंने राजा से कहा कि 'हे राजन् यह कन्या सर्वगुण संपन्न है परन्तु यह नगर की राशि पर जन्मी है, इस कारण समस्त नगर नष्ट हो जायगा और उसके पश्चात् राजकुल भी समाप्त हो जायगा'। राजा ने इस आपत्ति से बचने का उपाय पूछा। इस पर पंडित ने

कहा कि काठ के संदूक में कन्या को रखकर गंगा में बहा दिया जाय, तभी कल्याण होगा। राजा और रानी को अत्यन्त दुख हुआ परन्तु क्या करते, उन्होंनें काठ के सन्दूक में 'सोरठी' को रखकर गङ्गा में बहा दिया। 'सोरठी' के स्पर्श करते ही वह सन्दूक सोने का हो गया। बहते बहते वह सन्दूक एक धोबी के घाट के सामने आया। धोबी सोने का सन्दूक देखकर लालच में आ गया। बक्स पकड़ने की अनेक चेष्टा की परन्तु वह पकड़ न पाया। पड़ोस में उसने केका कुम्हार को सूचना दी। केका एक धर्मात्मा व्यक्ति था, उसने सरलता से पकड़ लिया। सन्दूक में कन्या देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि उसके कोई सन्तान न थी। उसने सोने का सन्दूक लालची धोबी को दिया। धोबी के स्पर्श करते ही वह सन्दूक पुनः काठ का हो गया। उसे अपनी लालच का फल मिल गया।

केका कुम्हार और उसकी स्त्री बड़े लाड़ प्यार से सोरठी को पालने लगे। बंध्या कुम्हारिन को भी दूध निकलने लगा। सोरठी धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। एक बार अपने कुम्हार पिता से उसने कहा कि, 'तुम इतना काम करते हो परन्तु तुम्हें कम ही पैसा मिलता है'। यह कहकर उसने आंवां में हाथ लगा दिया। सब मिट्टी के बर्तन सोने के हो गये। केका उन्हें न पहचान कर धेले में ही बेचने लगा। परन्तु खरीदार धेले के जगह अपने आप पाँच रुपया देकर चले जाते थे। यह देखकर उसे सच्ची बात विदित हुई और उसने फिर अपने व्यापार को भली भाँति सम्हाल लिया। कुछ दिन पश्चात् इन्द्र की कृपा से सोरठी के लिये विश्वकर्मा ने एक ही रात में आकर स्वर्ण मंदिर निर्माण कर दिया। इस आश्चर्य जनक घटना से समस्त देश में समाचार फैल गया। राजपंडित व्यास मुनि भी यह देखने के लिये आये। उन्होंने आते ही सोरठी को पहचान लिया। उसने अब दूसरी चाल चली। इस बार उसने सोरठी के धर्म को भ्रष्ट करना चाहा। सोरठी अब विवाह योग्य हो चुकी थी। व्यास पंडित ने राजा उदयभान से कहा कि तुम्हारे योग्य एक कन्या है, उसी से विवाह करो। राजा ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। केका कुम्हार भी राजा के भय से विवाह के लिये तैयार हो गया। सिन्दूरदान की जब घड़ी पहुँची तो भविष्यज्ञानी सोरठी बोल उठी कि "हाय रे दुर्भाग्य! दुनियाँ बाप बेटी में ही विवाह करा रही है"। लोगों ने सुना परंतु व्यास पण्डित ने सब को बहला दिया। सोरठी ने पुनः वही बात कही। राजा को संदेह हुआ। उसनें सोरठी से सब हाल पूछा। सोरठी ने सभी विगत् घटनायें सुना दीं। राजा ने अपनी बेटी से क्षमा माँगी और उसे गले लगा लिया। केका को धन देकर सोरठी को महल में ले आये। व्यास पण्डित को पकड़वा कर, उनका हाथ, नाक कान कटवा कर राज्य से बाहर निकाल दिया।

दक्षिण शहर में टोडरमल सिंह नामक राजा राज्य करता था। उनकी रानी का नाम सुनयना था। उन्हें भी कोई संतान न थी। गुरू गोरखनाथ की सेवा के फलस्वरूप रानी को गर्भ रहा। गर्भाधान के छः महीने के पश्चात ही राजा टोडरमल का देहान्त हो गया। नौ महीने के पश्चात् एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण से लक्षण पुछवा कर उसका नाम "वृजाभार" रखा गया। पंडित ने बतलाया कि यह लड़का महाबली उत्पन्न हुआ है, किन्तु इसके कर्म में राजयोग के स्थान पर वैराग्य लिखा हुआ है। रानी को यह सुनकर बड़ी चिन्ता हुई। वृजाभार क्रमशः यौवनावस्था को प्राप्त हुये।

इन्द्रपुरी से सात अप्सरायें अपनी त्रुटियों के कारण स्वर्गच्युत होकर मृत्यु-लोक में भिन्न-भिन्न स्थानों में निवास करने लगीं। हेवंचलपुर में हेवंचल नामक राजा राज्य करता था। उसे हेवन्ती नामक एक कन्या थी। उसने अपनी कन्या के विवाह के लिये स्वयंवर रचा था। इधर गुरू गोरखनाथ को स्वयंवर का समाचार मिला। वे तुरन्त दक्षिणशहर में गये और वृजाभार को कन्धे पर बिठाकर ले भागे। सारे राज्य में हाहाकार मच गया। माता सुनयना ढाढ़े मार मार कर रोने लगीं। इधर गुरू गोरखनाथ हेवंचलपुर पहुँचे। गोरखनाथ की आज्ञा से वृजाभार ने कोढ़ी का रूप धर कर स्वयंवर में प्रवेश किया। राज-कुमारी हेवन्ती ने वृजाभार कोढ़ी को ही अपना वर चुन लिया। राजा हेवंचल को यह बड़ा अपमानजनक प्रतीत हुआ। राजा क्षुब्ध होकर कोढ़ी वृजाभार को गड्ढे में डलवा दिया। परन्तु हेवन्ती न मानी और उसे ही अपना पति चुना। लोगों ने कहा कि हेवन्ती का भाग्य फूट गया है और नाक दबा कर विवाह संस्कार करने के लिये बैठे। यह देखकर हेवन्ती ने कहा कि "हे पतिदेव ! तुम्हें पाने के लिये मैंने शिव की सेवा की है, अपने कोढ़ी रूप को तुम छोड़ दो"। वृजाभार ने मस्कुराकर अपना पूर्व सुन्दर रूप उपस्थित कर दिया। लोगों ने विस्मय से वृजाभार को देखा तथा उपस्थित स्त्रियां उस पर मोहित हो गईं। निमन्त्रित व्यक्तियों म सोरठी भी वहाँ उपस्थित थी। सोरठी भी मोहित हो गई। उसने वृजाभार से कहा कि विवाह करूँगी तो तुम्हीं से। वृजाभार ने उत्तर दिया कि समय आने पर तुम्हें प्राप्त करने के लिये मैं स्वयं आऊँगा। वृजाभार बारात को बिदा करके हेवन्ती के साथ दक्षिण शहर पहुँचा। माता सुनयना ने यह देखकर कि पुत्र विवाह करके आया है, बड़ी प्रसन्न हुई। इधर वृजाभार को अपने मामा के यहाँ गये बहुत दिन हो गया था। कुछ दिन बाद पीलीधोती पहनकर गुजरात के लिये प्रस्थान कर दिया।

सोरठपुर से हाथ नाक कटवा कर व्यास पंडित गुजरात के राजा खेंखड़-मल के यहाँ पहुँचे। यहाँ का राजा कोढ़ी था। उसे कोई सन्तान भी न थी।

पंडित के मन में सोरठी से बदला लेने की इच्छा थी ही। उसने राजा खेंखड़-मल से कहा कि,"हे राजन् ! तुम सोरठपूर की राजकन्या सोरठी से विवाह करो। उससे तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा तथा कोढ़ भी अच्छा हो जायगा"। पंडित ने यह भी बतलाया कि सोरठपुर की यात्रा अत्यन्त कठिन है। इसमें बारह वर्ष लग जायेंगें। तुम्हारा भांजा वृजाभार ही इस कार्य को पूर्ण कर सकता है। राजा खेंखड़मल ने अपने भांजे वृजभार के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा। वृद्धावस्था में मामा का यह कौतुक देखकर वृजाभार को बड़ा विस्मय हुआ। परन्तु अब तो उसे मामा के आज्ञा का पालन करना ही था। वृजाभार ने योगी का रूप धारण कर लिया तथा गुरू गोरखनाथ का आर्शीवाद लेकर चला। खेंखड़मल की तीन-सौसाठ रानियों ने बहुत रोका पर वह नहीं रुका। स्वर्ग से पदच्युत सात अप्सराएं 'सातो सांवरी' ने आकर कहा कि तुम इस दुर्गम मार्ग पर मत जाओ। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम पाँच मिनट में सोरठी को यहीं प्रस्तुत कर देंगें। इस पर वृजभार ने उत्तर दिया कि मैंने इस कार्य का बीड़ा उठाया है, तुम लोगों की सहायता लेने से हमारी प्रतिज्ञा नष्ट हो जायगी और क्षत्रिय धर्म में बट्टा लगेगा। इसके पश्चात् "सातो सांवरी" ने वृजभार को एक फल दिया जिसे खा लेने से भूख प्यास नहीं लगती थी। आधा फल तो वृजाभार ने वहीं खालिया और आधा झोली में रखकर पहले दक्षिण शहर की ओर चल दिया।

दक्षिण शहर पहुँचने पर अपने महल के सम्मुख राजा भरथरी के समान भिक्षा के लिये पुकार लगाया। माता सुनयना बाहर निकली परन्तु योगीरूप अपने पुत्र को न पहचान सकी। दरवाजे की ओट में हेवन्ती खड़ी थी। उसने देखते ही पति को पहचान लिया। उसने वृजाभार को घर में लाकर आदर सत्कार किया, तथा त्रिया चरित्र के जो भी उपाय होते हैं उसे वृजाभार पर लगाया। परन्तु वृजाभार अपने उद्देश्य से नहीं डिगा; और महल से बाहर निकल गया। हेवन्ती ने उसका पीछा किया। वृजाभार ने डांटकर वापस भेज दिया। हेवन्ती ने वृजाभार से पूछा कि यह कैसे मालूम होगा कि आप पर विपत्ति पड़ी है? वृजाभार ने बतलाया कि जब मेरे उपर विपत्ति पड़ेगी तो तुम्हारे आंगन की तुलसी सूख जायगी तथा तुम्हारे मांग का सिंदूर फीका पड़ जायगा। हेवन्ती ने उसे सोरठपुर का मार्ग बतलाया और हफ्तापुर, और ठूंठी पकड़ी वृक्ष के नीचे जाने से मना कर दिया।

योगी वृजभार वहां से चलकर नगर के बाहर जाकर पोखरे में स्नान किया। वहाँ उसकी गंगाराम केकड़ा से भेंट हुई। उसने अपनी झोली में केकड़े को रख लिया। चलते चलते वह ठूंठीपकड़ी के पेड़ के नीचे पहुँचा और वहाँ

जाकर सो गया। पेड़ पर एक कौआ और एक नागिन रहते थे। कौए ने नागिन से कहा कि तुम इसे डंस लो जिससे मैं मनुष्य का माँस खाऊँ। नागिन ने आकर डंस लिया। गंगा राम केकड़ा यह देख रहा था। उसने आते हुये कौए का गला दबाकर मार डाला और नागिन को धमका कर वृजाभार को पुनः जीवित करा दिया।

छः गाम चलने के पश्चात् वृजाभार रत्नपुर नगर पहुँचा। वहाँ की राजकन्या उसके लिये प्रतीक्षा कर रही थी। उसने वृजाभार से विवाह प्रस्ताव किया। वृजमार ने वहाँ से छुटकारा पाने के अनेकों प्रयत्न किये परन्तु असफल रहा। उसने कहा कि सोरठी को प्राप्त करने के पश्चात् ही तुम से विवाह करूँगा। यह बचन देकर वह आगे बढ़ा।

आगे चलने पर योगी वृजाभार फूलपूर नगर में पहुँचा। वहाँ की राजकन्या फूलकुंवरी उसे देखकर मोहित हो गई। योगी वहाँ से भाग खड़ा हुआ। फूलकुंवरी ने जादू से उसे चील बनाकर उसे पकड़ लिया, परंतु हेवंती के सत् तथा उसके प्रयत्नों से किसी प्रकार से उसकी जान छूटी और आगे बढ़ा।

चलते चलते वृजाभार केदली बन में पहुँचे वहां उसने एक बुढ़िया को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा। बुढ़िया ने योगी वृजाभार को देखा और उस पर दया आ गई। उसने योगी से भाग जाने के लिये कहा। वृजाभार ने उपाय पूछा तो उसने झाड़ी में छुपा दिया और कहा कि 'जब यहाँ का दानव सो जायगा तो भाग जाना। दानव जब वहाँ पहुँचा तो उसे मनुष्य के गंध का अनुभव हुआ। उसने वृजाभार को ढूँढ़ निकाला और खड़े निगल गया। पेट में पहुँचने पर वृजाभार गुरू सुमिरन करने लगे। गुरू गोरखनाथ ने वहीं दर्शन देकर कहा कि अपनी झोली में से छुड़ा निकाल कर दानव का पेट चीर दो। वृजाभार ने दानव का पेट चीर दिया, और दानव मृत होकर गिर पड़ा। वृजाभार बाहर निकल आये। बुढ़िया ने वृजाभार से दानव की दाहिनी जाँघ चीरने के लिये कहा। वृजाभार ने वैसा ही किया। जाँघ में से अनुपम सुंदरी देवकन्या निकल पड़ी। देवकन्या ने कहा मैं तुम्हारी प्रतीक्षामें थी, मुझसे विवाह करो। वृजाभार ने लौटती बार साथ ले चलने का बचन देकर आगे बढ़ा।

वंशी बजाते हुये वृजाभार सुबुकीनगर पहुँचे। वहाँ की दो स्त्रियाँ ननद-भौजाई, उसे देखकर मोहित हो गई और विवाह का प्रस्ताव किया। परन्तु किसी प्रकार वृजाभार वहाँ से बच निकला। आगे चलने पर हफ्तापुर नगर में पहुँचा। वहाँ धुपिया जादूगरनी ने उसे तोता बना लिया और विवाह रचाने

लगी। हेवन्ती और सातों साँवरी की सहायता से वहाँ वृजाभार को छुटकारा मिला। चलते चलते वृजाभार हेवल पुर पहुँचा। वहाँ हेवली-केवली नामक दो बहनों ने वृजाभार से विवाह करना चाहा। वृजाभार ने तिरस्कार किया, उन्होंने वृजाभार को बंधवाकर बाँस के कईन (बेंत) से पिटवाना प्रारंभ किया। साथ ही वेउसके घावों पर नमक भी छिड़कती गईं। अन्त में वृजाभार का प्राण निकल गया। उसके मरते ही वृक्ष, नदी-तालाब सूख गये। पशुपक्षी रोने लगे। हेवल-केवली ने वृजा भार की आँखें निकलवा लीं और उसके शरीर को यमुना के किनारे जलाकर राखकर दिया। जब उसका शरीर जल रहा था, उस समय वृजाभार का मस्तक फूटने पर एक मणि निकली और यमुना में गिर पड़ी जिसे रेघवा नामक मछली निगल गई। मणि की गर्मी से व्याकुल होकर वह पाताल लोक पहुँची और बेहोश होकर गिर पड़ी। वहाँ एक साधू यह कौतुक देख रहा था। उसने रेघवा मछली के पेट से मणि निकाल लिया। उधर हेवन्ती के आँगन की तुलसी सूख गई, माँग का सिंदूर फीका पड़ गया। हेवन्ती उड़न-खटोले में बैठकर सातो साँवरी के साथ आई। परन्तु वृजाभार का कुछ पता न चला। हेवली केवली से जादू-मंत्र से युद्ध हुआ परन्तु कुछ फल न निकला। हेवन्ती पाताल लोक में चली गई। उसने देखा कि एक साधू मंदिर में बैठा तप कर रहा है, और मंदिर में एक मणि दमक रही है। मणि को देखते ही हेवन्ती पहचान गई। वह साधू के पास पहुँच कर विलाप करने लगी। साधू ने सब हाल कह सुनाया और मणि दे दी। हेवन्ती मणि को हृदय से लगा कर सातों साँवरी के पास पहुँची। उन्होंने इन्द्र से प्रार्थना करके वृजाभार को जीवित करा दिया। तत्पश्चात वृजाभार ने हेवली केवली को मृत्यु दंड दिया और आगे बढ़ा।

चलते चलते वृजाभार सोरठपुर के समीप पहुँचा। सोरठपुर के राजा उदय-भान ने राजाज्ञा निकलवा दी थी कि नगर की सीमा में कोई घुसने न पाये। केवल वृद्ध व्यक्ति आ जा सकते थे। हेवन्ती के विवाह में ही वृजाभार ने सोरठी से कहा था कि जब मैं सोरठपुर पहुँचूँगा तो तुम्हारी फुलवारी सूख जायगी और फुलवारी में जब पहुँचूँगा तो वह पुनः हरी हो जायगी। सोरठी ने देखा कि फुलवारी सूख गई है तो समझ गई कि वृजाभार आ रहा है। उसने एक उपकारी को अशरफ़ियाँ इनाम में दे कर कहा कि "यह दो गुटके ले जाओ, नगर के बाहर एक योगी मिलेगा उसे एक गुटका खिला देना। एक गुटका खाने से वह वृद्ध हो जायगा और जब वह नगर में आ जाय तो दूसरा गुटका खिला देना, जिससे वह पुनः जवान हो जायगा।" वृजाभार को उसी प्रकार की

सहायता मिली और वंशी बजाते हुए फुलवारी में पहुँचा। फुलवारी पुनः हरी भरी हो गई। सोरठी सजधज कर वृजाभार से मिलने आई। दोनों का मिलन हुआ। सोरठी पुनः आधी रात में आने का बचन देकर चली गई। फुलवारी की निर्जल मालिन भी उसके ऊपर अनुरक्त हो गई।

अर्द्धरात्रि में सोरठी पुनः वृजाभार के पास आई और इन्द्र से विमान भेजने की प्रार्थना की। इन्द्र ने विमान भेज दिया। सोरठी और वृजाभार उस पर आसीन हुये। सोरठी की प्रार्थना पर निर्जल मालिन को भी उस पर बिठा लिया। सोरठपुर से विमान उड़ चला। प्रातःकाल सोरठपुर में हलचल मच गई। विमान को जमुनीपुर में ले जाकर जमुनी को उस पर बिठाया तथा इसी प्रकार रतनपुर से रतनावत कन्या, कैदली बन से देवकन्या तथा फूलपुर से फुलवन्ती को लेकर गुजरात नगर मामा खेंखड़मल के यहाँ पहुँचा। सोरठी को देखते ही उनका कोढ़ अच्छा हो गया। परन्तु अब उनमें सुबुद्धि आ गई थी। उन्होंने वृजाभार से कहा कि, "मेरा तो चौथापन आ गया है, मैं अब सन्यास लूँगा अतएव तुम्हीं सोरठी से विवाह कर लो तथा यहाँ के राज्य का भी उपयोग करो"।

सोरठी तथा अन्य स्त्रियों को साथ लेकर वृजाभार, दक्षिणी शहर पहुँचा। माता सुनयना और हेवन्ती के प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। हेवन्ती के साथ रात्रि में शयन करने जब वह जा रहा था तो गुरु गोरखनाथ ने दर्शन देकर कहा कि लीलापुर में लीलावती तुम्हारे नाम की माला जप रही है, उसे जाकर ले आओ। वृजाभार सब को छोड़कर पुनः चल पड़ा। मार्ग में चम्पापुर के राजा की पुत्री 'लाड़ली' को स्वयंवर में जीत लिया। लीलापुर के मार्ग में अनेक जादूगरनियों से युद्ध हुआ। सब को हराते हुये वह लीलापुर से पहुँचा। सोरठी और हेवन्ती की सहायता से वह लीलापुर से लीलावती को भी ले आया। दक्षिणी शहर में जब वृजाभार आनन्द मना ही रहा था कि गुरु गोरखनाथ ने पुनः दर्शन दिया कि 'मैं सुगवा-सुगेसरी से वचन हार गया हूँ, तुम धवलागिरि जाकर उन्हें भी ले जाओ।' वृजाभार पुनः विजय करने के लिये चल पड़ा। इधर माता सुनयना हेवन्ती से बहुत बुरा भला कहने लगी कि वह अपने पति को वश में नहीं रखती है। यह सुनकर हेवन्ती को बड़ा दुख हुआ और वह वृजाभार की मोहिनी बंसरी लेकर स्वर्ग चली गई। उसकी देखा देखी अन्य सभी स्त्रियाँ भी चली गई। वृजाभार जब सुगवा-सुगेसरी के साथ वापस आया तो किसी को नहीं पाया। आकाशवाणी हुई कि मोहिनी बंसरी बजाओ तो सब वापस आ जायगी। परन्तु बंसरी तो वहाँ थी नहीं। वृजाभार

ने गुरु का सुमिरन किया और उनकी कृपा से वह इन्द्रपुरी पहुँचा। उसने इन्द्र से बंसरी माँगा तो इन्द्र ने कहा कि तुम्हारे हाथ में तलवार शोभा देगी बाँसुरी नहीं। वृजाभार यह सुनकर सब स्त्रियों के साथ लौट आया और शेष सभी के साथ विवाह किया।

कुछ काल के उपरान्त इन्द्र ने विचार किया कि सबने मृत्युलोक में अपनी लीलाएँ कर ली हैं, अब इन्हें वापस बुलाना चाहिये। इन्द्र ने मोहिनी बंसरी बजाकर सब स्त्रियों को बुला लिया। वृजाभार क्रोधित होकर इन्द्र के पास पहुँचा। इन्द्र ने डर के मारे बंसरी वापस कर दी। वृजाभार ने बंसरी बजाकर पुनः सबको बुला लिया। इन्द्र ने लालपरी को बंसरी लाने के लिये भेजा। लालपरी ने वृजाभार को नृत्य से प्रसन्न करके बाँसुरी इनाम में माँग लिया। इन्द्र को पुनः बाँसुरी मिल गई। उसके बजाते ही सब स्त्रियाँ पुनः इन्द्रलोक में चली गईं। व्रजाभार ने दुखित होकर गुरु गोरखनाथ का सुमिरण किया। इस बार गुरु ने भी असमर्थता प्रकट की। वृजाभार ने मायामोह की क्षणभंगुरता को समझ कर अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया। उसकी सभी स्त्रियाँ पुनः भूमि पर उतर कर सती हो गईं। इन्द्र ने सबकी आत्माओं को लाने के लिए विमान भेजा। वृजाभार अपनी सभी स्त्रियों, सोरठी, हेवन्ती इत्यादि के साथ स्वर्ग विमान पर बैठकर इन्द्रपुरी के लिये प्रस्थान कर दिया।

लोकगाथा के अन्य रूप—प्रस्तुत लोकगाथा के दो अन्य रूप प्राप्त होते हैं। प्रथम प्रकाशित भोजपरी रूप तथा द्वितीय मैथिली रूप। मगही में भी यह गाथा गाई जाती है, परन्तु अभी तक इसका एकत्रीकरण नहीं हुआ है।

लोकगाथा का प्रकाशित भोजपरी रूप तथा मौखिक रूप अधिकांश में समान है। केवल शब्दावली तथा कुछ व्यक्तियों के नामों में अन्तर है। वर्णन करने के ढंग तथा कथोपकथन एक समान हैं। प्रकाशित रूप में कथा बड़े व्यापक ढंग से बत्तीस खंडों में दी हुई है। कथा को स्पष्ट करने के लिये बीच बीच मे गद्य का भी प्रयोग किया गया है। मौखिक रूप के समान ही भजन, सोहर, जंतसार, बिरहा इत्यादि लोकगीतों का भी प्रयोग किया गया है। टेक पदों की पुनरावृत्ति दोनों में एक समान है। प्रकाशित रूप में संस्कृत श्लोकादि का भी प्रयोग किया गया है तथा सुमिरन भी बहुत बढ़ा चढ़ा कर किया गया हैं।

केवल दो व्यक्तियों के नामों में स्पष्ट अन्तर मिलता है। मौखिक रूप में सोरठी के पिता का नाम 'उदयभान' तथा माता का नाम 'तारामती' है। प्रकाशित रूप में सोरठी के पिता का नाम 'राजा दक्षसिंह' तथा माता का नाम 'रानी कंवलापति' दिया हुआ है। शेष सभी नाम जैसे हेवन्ती, खंखड़मल, व्यास-

पंडित, केंका कुम्हार, तथा स्थानों के नाम जैसे सोरठपुर, गुजरात, दक्षिणी-शहर इत्यादि सभी एक समान हैं। ऐसा प्रतीत होता है भोजपुरी लोकगाथाओं का प्रकाशित रूप भी गायकों द्वारा एकत्र करके तथा उसमें कुछ जोड़ घटाकर प्रकाशित करवा दिया दिया गया है। क्योंकि हम देखते हैं कि समस्त भोजपुरी लोकगाथाओं के प्रकाशित रूप प्रायः मौखिक रूप के समान ही हैं।

मैथिली रूप—'सोरठी' की लोकगाथा मैथिल-प्रदेश में बड़े चाव से सुनी जाती है। यद्यपि मैथिली रूप के कथानक में बहुत हेर-फेर है, परन्तु अन्तोगत्वा कथा समान ही है। 'सोरठी' की लोकगाथा का मैथिली रूप भी प्रकाशित हो चुका है। मैथिली रूप भोजपुरी रूप से छोटा है। मैथिली रूप आठ खंडों में वर्णित है। लोकगाथा के मैथिली रूप पर अभी तक किसी विद्वान का ध्यान नहीं गया है। केवल डा० जयकान्त मिश्र ने इस लोकगाथा के कुछ अंशों पर विचार किया है।[1]

मैथिली में इस लोकगाथा को 'कुंवर वृजाभार का गीत' अथवा 'सुट्ठी (सोरठी) कुमारी का गीत' नाम से अभिहित किया जाता है। इसका संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है :—

पुहुपनगर (पुष्प नगर) के राजा का नाम रोहनमल था। उसका भाँजा ब्रजाभार बहुत ही वीर था। राजा के सात रानियाँ थीं परन्तु किसी से पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। राजा को ज्योतिषियों ने बतलाया कि कुंवर ब्रजाभार को बुलवाया जाय क्योंकि वही कटकबन की रानी मनकली की बहन सुट्ठी कुमारी (सोरठी) को ला सकते हैं। सोरठी कुमारी से ही पुत्र सम्भव है। चिट्ठी भेजकर राजा ने ब्रजाभार को बुलवाया। कुंवर ब्रजाभार का कुछ दिन हुये विवाह हुआ था, परन्तु मामा की आज्ञा के कारण उसे घर बार छोड़ना पड़ा। मामा से आज्ञा लेकर ब्रजाभार गुरु गोरखनाथ के यहाँ पहुँचे और उनकी सहायता से कटकवन, तथा मैनाक पर्वत पार किया। गुरु की आज्ञा से उन्होंने योगी का रूप धारण किया। इसके पश्चात् वृजाभार को वताश, लवलंग, सानोपिपरिया, महानद, मलिनी बन, गीदरगंज, दौरा इत्यादि कई भयानक नगरों एवं नदियों को पार करना पड़ा। अनेक जादू की लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। परन्तु सब कष्टों को वीरता-पूर्वक झेलते हुये उन्होंने सुट्ठीकुमारी को प्राप्त किया। सुट्ठीकुमारी उन पर

१—डा० जयकान्त मिश्र—इन्ट्रोडक्शन टु दी फोक लिटरेचर आफ मिथिला, यूनिवर्सिटी आफ़ इलाहाबाद स्टडीज, भाग १ पृ० २१—२४

अनुरक्त हो गई। कालान्तर में मामा की आज्ञा से उन्होंने उसके साथ विवाह किया और तत्पश्चात् स्वर्ग चले गये।

कथा के अन्तर्गत योगी के रूप में अपनी माता मैनावती से भिक्षा माँगनें के लिये जाना, सुट्ठी कुमारी के जन्म की कथा, कैंका कुम्हार के यहाँ लालन-पालन तथा राज पंडित की दुष्टता इत्यादि सभी कथा मैथिली रूप में भी वर्णित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मैथिली रूप की कथा भोजपुरी रूप के समान ही है। लोकगाथा के प्रमुख चरित्रों के नाम भी प्रायः एक समान हैं। केवल स्थानों के नाम में विशेष भिन्नता है, जिसे कि ऊपर दिया गया है। मैथिली रूप में प्रायः सभी स्थानों के नाम भोजपुरी रूप से भिन्न हैं।

लोकगाथा की ऐतिहासिकता—'सोरठी की लोकगाथा के विषय में कोई ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती है। लोकगाथा के वर्णन में भी कोई ऐसा तथ्य नहीं प्राप्त होता है जिससे कि ऐतिहासिक अनुसंधान किया जा सके। अतएव यह लोकगाथा भी अपनी 'संदिग्ध ऐतिहासिकता' की विशेषता लिये हुये है। मौखिक परंपरा से निर्मित इन रचनाओं के स्थान, समय तथा व्यक्तिओं के विषय में खोज करना दूभर ही नहीं अपितु असम्भव सा हो गया है। परंतु तो भी हमारे सम्मुख कुछ सम्भावनायें हैं। अतएव हम इन्हीं सम्भावनाओं पर विचार करेंगे। निकट भविष्य में हो सकता है कि इन्हीं सम्भावनाओं के द्वारा ऐतिहासिकता भी प्राप्त किया जा सके।

(१) 'सोरठी' की लोकगाथा के गायकों का विश्वास है कि सोरठी तथा नायक बृजाभार तथा लोकगाथा के कुछ अन्य चरित्र वास्तव में इस लोक के नहीं हैं। वे इन्द्रपुरी से अपनी त्रुटियों के कारण कुछ काल के लिये दंड स्वरूप मृत्यु-लोक में चले आये थे। जितने समय तक ये अप्सरायें एवं गंधर्व इस भूमि पर रहे, उन्होंने अपनी लीलायें कीं और तत्पश्चात् वे पुनः इन्द्रलोक में चले गये।

वस्तुतः उपर्युक्त भाव हमारे लिये नवीन नहीं हैं। अवतारों की कथा हम भली भाँति जानते हैं। इन्द्रपुरी से च्युत "मेघदूत" के यक्ष के विषय में तथा मदान्ध नहुष के पतन के विषय में हम सभी परिचित हैं। अवतार एवं स्वर्ग-पतन की कथाएँ सर्वत्र भारत में प्रचलित हैं। अतएव यह सम्भव हो सकता है कि अवतारवाद एवं स्वर्गपतन की इन्हीं कथाओं के आधार पर प्रस्तुत लोक-गाथा का भी निर्माण हुआ हो। लोकगाथा के गायक ने एक छोटी घटना में पौराणिक कथाओं के भाव का मिश्रण करके एक बृहद लोकगाथा का निर्माण कर दिया हो।

(२) प्रस्तुत लोकगाथा में गुरु गोरखनाथ का नाम बार बार आता है। गुरु गोरखनाथ की ही कृपा से बृजाभार का जन्म हुआ था तथा वह आजन्म उन्हीं का शिष्य बना रहा। भोजपुरी लोकगाथाओं में 'सोरठी' की लोकगाथा एक मात्र लोकगाथा है जिसमें अन्य देवी देवताओं, दुर्गा, शंकर पार्वती इत्यादि के नाम का उल्लेख नहीं होता है। इसमें केवल इन्द्र, अप्सरायें तथा यक्ष किन्नरों का ही उल्लेख है। इन्हीं के साथ गुरु गोरखनाथ का नाम लगा हुआ है। गुरु गोरखनाथ की ही कृपा से बृजाभार सब कार्यों में सफल होता है। नाथ सम्प्रदाय के जोगियों की भाँति वह भी वेष धारण करता है। अतएव हम देखते हैं कि नाथसम्प्रदाय का भी समावेष इस लोकगाथा में हुआ है।

विद्वानों के मत के अनुसार गोरखनाथ का आविर्भाव तेरहवीं शताब्दी में हुआ था। उनके द्वारा प्रचलित नाथधर्म का प्रभाव सर्वत्र देश में फैल गया था। इसलिये यह सम्भव हो सकता है कि प्रस्तुत लोकगाथा की रचना गोरखनाथ के समय में अथवा परवर्ती काल में हुई हो। साथ ही उसमें प्रचलित लोकप्रिय नाथधर्म का भी गायक ने समावेष कर लिया हो। इस लोकगाथा में केवल गोरखनाथ और बृजाभार के योगी वेष एवं तप इत्यादि का ही वर्णन है। इसमें नाथधर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन कहीं भी नहीं किया गया है। वस्तुतः इसमें नाथधर्म के विपरीत सिद्धान्तों का उल्लेख है। नाथ धर्म में स्त्री को कहीं भी महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया है। स्त्री से सदा दूर रहने की शिक्षा नाथधर्म में दी गई है। परन्तु यहाँ इसके विपरीत स्वयं गुरु गोरखनाथ बृजाभार को स्वयंबर में ले जाते हैं, उसका विवाह कराते हैं तथा इस मार्ग में आने वाले कष्टों का निवारण भी करते हैं।

अतएव यह सिद्ध होता है कि प्रचलित धर्म होने के कारण ही गायकों ने गोरखनाथ के नाम का मिश्रण कर लिया है। मध्ययुग में साधू-सन्तों की परंपरा में नाथधर्म के ही योगी अधिकाँश रूप में जाने जाते थे। अतएव बृजाभार का योगी रूप धारण करना प्रचलित परंपरा के अनुसार ही वर्णित हुआ है। नाथ सम्प्रदाय में बृजाभार के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

(३) प्रस्तुत लोकगाथा में देश के प्रचलित लोककथाओं का भी समावेष हुआ है। अतएव यह सम्भव हो सकता है कि प्रचलित लोकप्रिय कथाओं के मिश्रित रूप से ही सोरठी की लोकगाथा का निर्माण हुआ हो।

सोरठी की लोकगाथा जायसी के 'पद्मावत्' से कुछ अंश तक मिलती जुलती है। बृजाभार का चरित्र 'पद्मावत्' के राजा रत्नसेन से मिलता जुलता है। जिस

प्रकार राजा रत्नसेन ने पद्मावती को प्राप्त करने के लिये अनेक कष्ट उठाये, नाना प्रकार की विपत्तियों को झेला, ठीक उसी प्रकार बृजाभार को भी सोरठी से मिलने के लिये कष्ट उठाना पड़ा। पद्मावती के समान 'सोरठी' भी एक साध्य के रूप में चित्रित की गई है। राजा रत्नसेन का गुरु जिस प्रकार हीरामनतोता था, उसी प्रकार इसमें भी बृजाभार के गुरु गोरखनाथ हैं। दोनों ही कथाओं का अन्त आध्यात्मिक सीमा पर होता है। अतएव यह सम्भव है कि इसी कथा के आधार पर 'सोरठी' की भी रचना हुई हो।

एक अन्य कथा का समावेश इस लोकगाथा में किया गया है। वह है राजा भरथरी की कथा। राजा भरथरी का योगीरूप धारण कर रानी सामदेई से भिक्षा माँगने की कथा सर्वत्र व्यापक है। इस अंश का दूसरा रूप इस लोकगाथा में वर्णित है। बृजाभार योगी का रूप धारण कर अपने नगर में आता है और महल के बाहर भिक्षा की याचना करता है। माता सुनयना उसे नहीं पहचानती है पर उसकी पत्नी हेवन्ती पहचान जाती है। इसके पश्चात् दोनों के कथोप-कथन प्रारम्भ होते हैं। हेवन्ती अपने पति को वश में करना चाहती है। यह कथा भरथरी की कथा का दूसरा रूप है।

लोकगाथा में बौद्ध जातक कथा के एक अंश का उल्लेख मिलता है। जातक कथा में केकड़ा (जलचर विशेष) को बोधिसत्व का रूप दिया गया है। केकड़ा सदा ही आर्य पथानुगामी की सहायता करता है। प्रस्तुत लोकगाथा में 'गंगाराम केकड़ा' का उल्लेख है। यह बृजाभार को मृत्यु से बचाता है। बृजाभार जब ठूँठी-पकड़ी वृक्ष के नीचे शयन करता है तो वहाँ नागिन उसे डंस लेती है। कौआ जब माँस खाने आता है तो केकड़ा झोली से निकल कर उसे मार डालता है और बृजाभार को पुनः जीवित कराता है।

उपर्युक्त तीन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि सोरठी की लोकगाथा में कालान्तर में इन कथाओं का समावेष हो गया जिससे कि यह लोकगाथा अत्यन्त रोचक बन गई है। भिन्न-भिन्न कथाओं के मिश्रण से हमें अनेक मतों का सामंजस्य भी इस लोकगाथा में दिखलाई पड़ता है। इसमें सनातन हिन्दू धर्म, नाथ संप्रदाय, सूफ़ीमत तथा बौद्ध मत के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इस लिये यह कहना असंगत न होगा कि 'सोरठी' की मौखिक परंपरा ने उत्तर पूर्व भारत के अनेक धर्मों में सामंजस्य स्थापित करने की सफल चेष्टा की है।

(४) 'सोरठी' की ऐतिहासिकता पर विचार करने के लिये हमारे सम्मुख एक और सामग्री उपलब्ध होती है। वह है लोकगाथा में आये हुये स्थानों के

नाम। लोकगाथा में वैसे तो अनेक नगरों के नाम आये हुये हैं, परन्तु प्रमुख नगरों के नाम हैं—सोरठपुर, गुजरात तथा दक्षिणी शहर।

उपर्युक्त तीनों नगरों के नाम भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष के दक्षिणी भाग, विशेष रूप से गुजरात प्रान्त का बोध कराते हैं। सौराष्ट्र प्रदेश को 'सोरठ' भी कहा जाता है। अतएव यह संभावना उठती है कि क्या 'सोरठी' की लोकगाथा सौराष्ट्र से आई हुई है? राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त रचित 'सिद्धराज' खंड-काव्य में 'राणक दे' का चरित्र हमें लोकगाथा की 'सोरठी' का स्मरण कराती है। 'राणक दे' को जन्म के पश्चात पिटारे में बन्द कर नदी में बहा दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार 'सोरठी' को जन्म लेते ही पिटारे में बंद कर नदी में बहा दिया जाता है। 'सिद्धराज' की कथा आगे चल कर दूसरा रूप धारण कर लेती है और सोरठी की कथा से कहीं भी साम्य नहीं होता। हमें भली भाँति विदित है कि 'सिद्धराज' गुजरात (सौराष्ट्र) का प्रसिद्ध सोलंकीकुलदीपक महाराज कर्णदेव का वीर पुत्र था। सिद्धराज ने कालांतर में चक्रवर्ती शासन की नींव डाली थी। सोलंकी कुल से संबंधित अनेकों कथाएँ एवं गाथाएँ सौराष्ट्र में प्रचलित हैं। अतः यह संभावना कि 'सोरठी' की लोकगाथा का प्रादुर्भाव वहीं से हुआ, किसी सीमा तक उचित ही प्रतीत होता है। इस लोकगाथा में सोरठपुर, गुजरात तथा दक्षिणीशहर का नाम आने से यही विश्वास उत्पन्न होता है कि प्रस्तुत लोकगाथा का उद्‌गम स्थल सौराष्ट्र ही है। आभीरों एवं गुर्जरों के साथ इस लोकगाथा ने पूर्व की ओर बढ़ते बढ़ते भोजपुरी प्रदेश में स्थानिक रूप ले लिया है। भोजपुरी प्रदेश में आकर भी यहाँ के नगरों, गाँवों तथा पहाड़ों के नाम का समावेश इस लोकगाथा में नहीं हो पाया है। केवल गंगा नदी का नाम आता है। लोकगाथाओं में गंगा अनिवार्य रूप से वर्त्तमान रहती हैं, क्योंकि हमारे देश में प्रत्येक नदी और जलाशय को कभी कभी गंगा कह दिया जाता है।

सोरठी का चरित्र—प्रस्तुत लोकगाथा में आदर्श एवं स्फूर्ति का केन्द्र सोरठी का जीवन चरित्र ही है। इसी के कारण यह लोकगाथा 'सोरठी' नाम से अभिहित की जाती है। वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो विदित होगा कि लोकगाथा के कथानक में सोरठी ने विशेष भाग नहीं लिया है अपितु बृजाभार के कार्य कलापों का अधिक वर्णन है। परन्तु यह होते हुए भी सोरठी का चरित्र अनिवार्य रूप से महत्वपूर्ण है। समस्त लोकगाथा में वह परिमल की भाँति व्याप्त है। अन्य सभी चरित्रों का निर्माण उसी के हेतु हुआ है। शेष सभी चरित्र सोरठी को केन्द्र में रखकर अपनी लीलाएँ करते हैं।

यह प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि 'सोरठी' एक साध्य के रूप में चित्रित हुई है। वृजाभार एक साधक है जो सोरठी को प्राप्त करने के लिये अनेक प्रयत्न करता है। इस प्रकार सोरठी का स्थान एक देवी के समान है। वह एक अत्यन्त उच्च धरातल पर स्थित हो जाती है, तथा वृजाभार के प्रयत्नों का अवलोकन करती है। वह ऐसी नायिका नहीं जो अपने प्रेमी को प्रत्येक सहायता देती है। वृजाभार और हेवन्ती के विवाह में सोरठी केवल इतना ही कहती है 'तुम सोरठपुर आना मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी।" बस इसके अतिरिक्त किंचित प्रेम-संभाषण भी नहीं हुआ। संभव था कि वृजाभार वहां न पहुंच पाता अथवा सोरठी को भूल जाता। परन्तु इधर सोरठी का तो निश्चय था जीवन भर उसकी प्रतीक्षा करना। वह बारहवर्ष तक उसी की प्रतीक्षा में बैठी हुई है। वृजाभार भी अपनी प्रतिज्ञा पर अटल है, और अनेक दुर्गम यातनाओं को सहन कर बारह वर्ष के पश्चात् सोरठी को प्राप्त करता है। केवल एक बार सोरठी अभिसारिका नायिका की भाँति फुलवारी में वृजाभार से मिलती है। इसके पश्चात् सोरठी की इच्छानुसार ही सोरठीहरण होता है। अर्द्धरात्रि में दोनों विमान पर बैठकर चल देते हैं। सोरठी की बस यही प्रेम कहानी है। प्रेमिका की भांति उसने इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं किया। इसके चरित्र का शेष भाग एक आदर्श देवी, स्वर्गीय कृपा से युक्त एवं अलौकिक शक्तियों से परिपूर्ण एक पूज्य देवी के रूप में चित्रित हुई है।

सोरठी का देवत्व उसके जन्म से ही प्रगट होता हैं। राजा उदयभान के अनेक वर्षों के तपस्या के फलस्वरूप सोरठी का जन्म होता है। वह जन्म लेते ही बोलना प्रारम्भ कर देती है। वह बारह जन्मों का हाल जानती है। विधि के विधान से उसे गंगा में प्रवाहित कर दिया जाता है। उसके स्पर्श से काठ का सन्दूक सोने का हो जाता है, मिट्टी के बर्तन स्वर्ण में परिवर्तित हो जाते हैं। जहाँ भी जाती है वहां सुखसम्पन्नता छा जाती है। वह ऐसी पारसमणि है जिसके संसर्ग में आते ही सभी वस्तुयें एवं व्यक्ति स्वर्णिम आभा से यक्त हो जाते हैं। वह एक कल्याणमयी देवी है। सब को सुख देने के लिए ही उसका जन्म होता है। इन्द्र का विमान एवं उनकी अप्सारायें उसकी दासी के रूप में है। पिता और पुत्री के विवाह का जब करुणा जनक प्रसंग उपस्थित होता है तो वह कहती है—

एकिया हो रामा तब तब सोरठी वचन उचारेले रेनु की
एकिया हो रामा नरक दुआरिया पंडित खोलावेले रेनु की

एकिया हो रामा बाप बेटी संग बियाह करावेले रेनु की
एकिया हो रामा जनम करमवां सब बिगारेले रेनु की

यह कह कर वह पिता को कुमार्ग से बचाती है। इस प्रकार से हम सोरठी के चरित्र में देवत्व एवं अलौकिक शक्तियों का समावेष पाते हैं।

सोरठी के चरित्र के प्रत्येक अंश में आदर्श निहित है। सोरठी अपने को साधारण नारी एवं प्रेमी के रूप में समझती है। उसके प्रेम में त्याग है ईर्ष्या नहीं। वह बृजाभार के अन्य प्रेमिकाओं का भी समुचित आदर करती है। यहाँ तक कि उन्हें वह सहायता भी देती है। तुच्छ से तुच्छ चरित्र को भी वह सम्मान देती है। सोरठपुर में जब वह विमान पर चढ़ती है तो निर्जन मालिन को भी साथ में बिठा लेती है। इसी प्रकार मार्ग में बृजाभार की अनेकों प्रेमिकाओं को समान स्थान देती है। प्रथम रात्रि में ही वह बृजाभार से कहती है कि 'हेवन्ती का तुम्हारे ऊपर अधिक हक है, प्रथम रात्रि उसी के महल में मनाओ।' इस प्रकार से सोरठी के चरित्र में आदर्श स्त्री का भाव पाते हैं।

सोरठी के चरित्र में से अलौकिक शक्तियों को एक बार हटा दें तो हमें प्रतीत होगा कि वह एक आदर्श भारतीय महिला है। उसमें पतिप्रेम की उच्चतम साधना है। वह पति को ही अपना ईश्वर मानती है। उसीके साथ वह सती भी हो जाती है। अलौकिक शक्तियों से परिपूर्ण होकर भी पति के सम्मुख हीन बन कर रहती है। अलौकिक शक्तियों का उसने कभी भी दुरुपयोग नहीं किया। वह आर्य पथ की अनुगामिनी है और इस प्रकार वह एक महान आदर्श की स्थापना करती है।

बृजाभार का चरित्र—'सोरठी' की लोकगाथा में बृजाभार का चरित्र अत्यन्त व्यापक रूप से दर्शाया गया है। इसमें वह एक साधक, योगी तथा प्रेमी के रूप में दिखलाया गया है। भारत के मध्यकालीन युग में हमें दो प्रकार के नायकों का वर्णन मिलता है। प्रथम तो वे जो अपनी वीरता एवं रणकुशलता से युद्ध में विजय प्राप्त कर एवं दुष्टों को पराभव करके नायिका का वरण करते थे। द्वितीय प्रकार के वे नायक जो कि नायिका को प्राप्त करने के लिए योगी का रूप धारण करते थे। योग मार्ग की यह परम्परा निश्चित रूप से उस समय के प्रचलित नाथ धर्म से ही प्राप्त हुई थी। राजा भरथरी एवं गोपीचन्द की जीवन-गाथा उस समय अत्यन्त प्रसिद्ध थी। बृजाभार भी उसी परम्परा के योगी के रूप में चित्रित किया गया है।

लोकगाथा में बृजाभार का जन्म गुरू गोरखनाथ की कृपा द्वारा वर्णित है। यद्यपि बृजाभार भी स्वर्ग च्युत एक गंधर्व है, परन्तु मृत्युलोक में गुरू गोरखनाथ उस पर कृपा रखते हैं। बृजाभार भी उन्हीं का अनन्य भक्त एवं आज्ञाकारी सेवक है। वह सब कार्य गुरू की आज्ञा लेकर ही करता है। सोरठी को प्राप्त करने में जो भी कठिनाइयाँ आती हैं उसे प्रथमतः वह अपनी शक्ति से झेलता है अथवा गुरुकृपा से उसे विजय मिलती है। गोरखनाथ की ही इच्छानुसार वह स्वयंवर में हेवन्ती को अपनी ओर आकर्षित करके उससे विवाह करता है। मामा की इच्छा पूर्ति करने के लिए जब वह चलता है तो गुरू के पास जाकर उपाय पूछता है तथा योगी रूप धारण करता है।

अपने उद्देश्य की प्राप्ति में वह इतना लवलीन हो जाता है कि उसे स्त्री, माता, राज्य इत्यादि का भी कुछ ध्यान नहीं रह जाता है। मन को दृढ़ करने के हेतु वह स्वयं अपने घर के द्वार पर भिक्षा माँगने के लिए जाता है। हेवन्ती भी उसे मोहित नहीं कर पाती है और वह सोरठपुर के दुर्गम मार्ग पर चल देता है। मार्ग में अनेकानेक कष्ट एवं आकर्षण मिलते हैं परन्तु अनासक्त योगी की भाँति अपनी साधना को सफल करने के लिए किसी भी ओर विचलित न होते हुए वह आगे ही बढ़ता जाता है। सोरठपुर में सोरठी से भेंट करता है, उसके हृदय में भी प्रेम जागृत होता है परन्तु वह अपने कर्तव्य को नहीं भूलता है। सोरठी तथा अन्यान्य स्त्रियों को लाकर प्रथमतः वह अपने मामा के सम्मुख समर्पित करता है। मामा जब अपनी असमर्थता प्रगट करते हैं तब वह पुनः गुरू की इच्छानुसार सबसे विवाह करता है।

बृजाभार के चरित्र में कहीं लौकिक प्रेम एवं वासना की गंध नहीं मिलती है। वह एक अनासक्त प्रेमी के रूप में है। उसका कार्य है सभी स्त्रियों के सत् की रक्षा करना। जीवन के क्षणिक सुखों की उसे तनिक चिन्ता नहीं रहती है। सतियों के जीवन का उद्धार करना ही मानो उसकी साधना है। लौकिक सुख के क्षण जब-जब उसके जीवन में आते हैं तब-तब वह गुरू की आज्ञा से सुख त्याग करके चला जाना पड़ता है। इसके कारण उसके मन में तनिक भी रोष नहीं उत्पन्न होता है। उसके जीवन का उद्देश्य ही गुरू सेवा है। सांसारिक मोह-माया उसे रोक नहीं पाती है। उसकी स्त्रियाँ उससे भले ही कुपित हो जाती हैं परन्तु वह कभी भी गुरू के प्रति कोई अन्य भाव मन में नहीं लाता।

वृजाभार एक कर्मठ योगी है और गुरु का परम भक्त है। उसने जीवन में अन्त तक इसी आदर्श को निबाहा है। इन्द्र के साथ उसका झगड़ा होता है, परन्तु गुरू की इच्छा जान कर वह सहर्ष इस नश्वर शरीर को त्याग देता है। इस प्रकार से उसके जीवन में भौतिक सुख की छाया भी नहीं पड़ती। वह अपने कर्तृत्व से समस्त समाज को सुखी कर अवधूत के समान सदा के लिए चल देता है। वास्तविक अर्थ में वह एक योगी है।

---

(२) बिहुला

बिहुला की लोकगाथा समस्त भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित है। विशेष रूप से उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों एवं समस्त बिहार में तो अत्यन्त व्यापक है। वस्तुतः यह लोकगाथा केवल भोजपुरी प्रदेश में ही नहीं गाई जाती है अपितु इसका विस्तार बंगाल तक है। बस्ती, गोंडा एवं गोरखपुर जिलों में यह लोकगाथा 'बालालखन्दर' अथवा 'बारहलखन्दर' के नाम से अभिहित की जाती है। शेष भाग में इसे 'बिहुला' ही कहते हैं।

'सोरठी' के समान बिहुला भी एक पूज्य देवी के समान है। परन्तु सोरठी और बिहुला में एक विशेष अन्तर है। सोरठी की लोकगाथा में नायक बृजाभार सोरठी को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रयत्न करता है। परन्तु बिहुला की लोकगाथा में बिहुला सती ही प्रधान चरित्र है। बिहुला अपने पति के पुनर्जीवन के लिए अनेक प्रयत्न करती है। बिहुला का चरित्र, प्रसिद्ध पौराणिक कथा 'सावित्री सत्यवान' से साम्यता रखती है। जिस प्रकार से सावित्री को अपने मृत पति सत्यवान को जीवित करने के लिए यमराज का पीछा करना पड़ा, ठीक उसी प्रकार बिहुला भी अपने मृतपति "बालालखन्दर' के जीवन के लिए सदेह इन्द्रपुरी जाती है तथा इन्द्र को प्रसन्न करके अपने पति को जीवनदान दिलाती है। सावित्री के चरित्र से साम्यता रखते हुए भी, यह निश्चित है कि लोकगाथा उस पौराणिक कथा का रूपान्तर नहीं है। 'बिहुला' की लोकगाथा में एक अन्य तत्त्व निहित है। यह लोकगाथा 'मनसा देवी की पूजा से सम्बन्ध रखती है। 'मनसा' सर्पों की देवी मानी गई है। मनसा देवी का पूजा बंगाल में विशेष रूप से होती है। 'मनसा' के पूजा के अन्तर्गत 'बिहुला' की लोकगाथा का भी समावेश है।

ऐसा विश्वास है कि मनसा देवी की पूजा का उद्भव बंगाल में ही हुआ। डा० दिनेशचन्द्र सेन के कथानानुसार 'मनसा पूजा' शाक्त एवं शैवमत के अन्तर्द्वन्द्वों का प्रतीक है। लोकगाथा में चित्रित है, कि बालालखन्दर का पिता चांद सौदागर (भोजपुरीरूप-चंद्रू शाह) शिव का उपासक था। सर्पों की देवी मनसा ने उसीसे अपनी पूजा करवानी चाही। चांद सौदागर ने उसका तिरस्कार किया। इसके पश्चात मनसा ने चांद सौदागर को अनेक कष्ट दिए और अन्त में विजयी रही। इस प्रकार से शाक्त मत का शैवमत पर विजय दिखलाया गया है।

हम यह भली भाँति जानते हैं कि प्रायः समस्त पूर्वी भारत में शाक्तमत और शैवमत का प्रभाव अधिक है। दुर्गा, चंडी, काली तथा मनसा देवी की पूजा इस भाग में बहुत व्यापक है। अतएव शिव के उपासकों से युद्ध होना स्वाभाविक है। शाक्त उपासना का उद्भव कब हुआ, इस विषय में हम आगे विचार करेंगे। परन्तु 'मनसा देवी' की पूजा निश्चित रूप से एक मध्ययुगीन पूजा है। इसी समय से बंगाल में 'मनसा संप्रदाय' भी प्रचलित हो गया है जिसमें कि अधिकांश रूप मे वैश्य एवं निम्न वर्ग के लोग हैं। प्रत्येक वर्ष श्रावण मास में 'मनसा' पूजा बंगाल में बड़े धूम से मनाई जाती है। बंगाल के दक्षिणी भाग के सिलहट, बाकरगंज इत्यादि जिलों में महीने भर यह पूजा होती है। हजारों की संख्या में लोग नदी के किनारे अथवा मंदिरों में जाकर 'बिहुला' के गीत गाते हैं, नावों की दौड़ होती है तथा मनसा देवी के लिए भिन्न भिन्न पकवान बनते हैं।

बिहार के पूर्वीय भाग में भी श्रावण मास में नागपंचमी के अवसर पर बिहुला की कथा का श्रवण किया जाता है तथा नदी में केले के पत्ते पर दीप-दान दिया जाता है।

वास्तव में प्रस्तुत लोकगाथा का भोजपुरी रूप प्रतिनिधि रूप नहीं है। वस्तुतः इस लोकगाथा का उद्भव बंगाल में हुआ था जिसका कि वर्णन हम आगे करेंगे। बंगाल में 'मनसा मंगल' के अन्तर्गत यह लोकगाथा सविस्तार वर्णित है। इसकी रचना में अनेक कवियों का हाथ है। भोजपुरी रूप बंगला का ही लघुरुपान्तर है। भोजपुरी रूप में लोकगाथा में निहित सिद्धान्त का भी प्रति-पादन नहीं किया गया है। केवल एक कथा का वर्णन है जिसमें बिहुला का आदर्श चित्र उपस्थित किया गया है।

लोकगाथा गाने का ढंग—प्रस्तुत लोकगाथा को दो व्यक्ति एक साथ द्रुतिलय में गाते हैं। बीच बीच जंतसार तथा बिरहा का गीत भी गाया जाता है। वाद्य यन्त्रों में खंजड़ी और टुनटुनी रहती है। सोरठी के समान इसे भी बड़े पवित्र भाव से गाया जाता है। गायकों का यह विश्वास रहता है कि बिहुला की गाथा सुनने के लिए सर्प भी आते हैं। इस लोकगाथा में करुण स्वर प्रधान रहता है। इस कारण करुणामय वातावरण उत्पन्न हो जाता है। गाथा की पहली पंक्ति के प्रारम्भ में 'ए राम' तथा अन्त में 'रे दइबा' रहता है।

१—डा० दिनेशचन्द्र सेन-हिस्ट्री आफ़ दी बेंगाली लैंगुएज एण्ड लिटरेचर पृष्ठ २५०

दूसरे लाइन के अन्त में केवल 'ए राम' रहता है। इस प्रकार इसमें टेक पदों की पुनरावृत्ति एक लाइन छोड़कर होती है।

संक्षिप्त कथा—चंदूशाह दिल्ली शहर के निवासी थे। उनके छः पुत्र थे। यथासमय सभी का विवाह-दान इत्यादि कर दिया गया था। उनका जीवन आनंद से बीत रहा था तथा लक्ष्मी की उन पर अनन्य कृपा थी। उसी नगर में विषहर नामक एक ब्राह्मण भी रहता था। उसने समस्त सर्पों को अपने वश में कर लिया था। चन्दूशाह से एवं विषहर ब्राह्मण से अनबन थी। चंदूशाह को नष्ट करने के लिये उसने अनेक प्रयत्न किये। क्रम से उसने चंदूशाह के छः पुत्रों को सर्प से कटवा कर मार डाला। चंदूशाह पर इस प्रकार बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी। कुछ काल पश्चात् भगवान की कृपा से चंदूशाह को एक और पुत्र उत्पन्न हुआ। रोहिणी नक्षत्र में जन्में हुये बालक का नाम 'बाला लखन्दर' पड़ा। विषहर को पुनः चिन्ता हुई कि किस प्रकार इस बालक को भी मारा जाय। परन्तु उसे उचित अवसर नहीं मिलता था। इधर शुक्ल पक्ष की चंद्रमा की भाँति दिनों दिन लखंदर की आयु बढ़ती गई।

इन्द्र महाराज ने श्यामपरी और नीलमपरी नामक दो अप्सराओं को मृत्युलोक में जन्म लेने की आज्ञा दी। श्यामपरी ने मृत्युलोक में आने के पहले प्रत्येक संकट में इन्द्र और ब्रह्मा से सहायता लेने का वचन ले लिया। नीलमपरी ने मृत्युलोक में नागिन के रूप में जन्म लिया। श्यामपरी, चीनानगर के चीनाशाह के यहाँ 'बिहुला' के नाम से जन्म लिया। बिहुला के जन्म लेते ही चीनाशाह का घर धनधान्य से परिपूर्ण हो गया और व्यापार में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी।

इधर एक दिन लखन्दर गंगा में मछली का शिकार करने के लिए गया। विषधर ने प्राण लेने का यह सुअवसर देखा। उसने लखन्दर को गहरे पानी में ले जाकर डुबाने का प्रयत्न किया। परन्तु लखन्दर की जान किसी प्रकार बच गई। लखन्दर को मार डालने के लिये विषहर ने अनेकों प्रयत्न किये परन्तु सबमें वह असफल रहा। अन्त में उसने एक चाल चली। विषहर ने चंदूसाह के सम्मुख लखन्दर के विवाह का प्रस्ताव रखा। लखन्दर विवाह योग्य हो भी चला था अतएव चंदूशाह ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

इधर बिहुला के पिता चीनाशाह भी कन्या के लिये सब ओर वर खोजने लगे परन्तु कहीं योग्य वर न मिला। उधर चंदूशाह से विचार विमर्श करके विषहर ब्राह्मण, लखन्दर के लिये बधू-ढूंढने चल पड़ा। चलते चलते वह चीना शहर

पहुँचा और जाकर चीनाशाह के महल के द्वार पर बैठ गया। बिहुला अपनी तीन सौ साठ सखियों के साथ बाहर निकली। विषधर ने देखते ही पहचान लिया कि यही बिहुला है तथा बारह जन्मों का हाल जानने वाली है। विषहर भी बिहुला के पीछे पीछे चल पड़ा। बिहुला गंगा के किनारे पहुँची। विषहर ने मंत्र-चलाकर सिंदूर और अक्षत गङ्गा के घाट पर छोड़ दिया। बिहुला की सखियों ने सिंदूर और अक्षत देखकर बिहुला से स्नान करने के लिये मना कर दिया। परन्तु बिहुला न मानी। वह अपने सत् से पुरइन के पत्ते पर बैठ करगङ्गा के बीच धार में स्नान करने के लिये चली गई। तीन डुबकी मारने के पश्चात् विषहर का छोड़ा हुआ सिंदूर और अक्षत उसके माँग और आंचल में भर गया बिहुला को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसकी सखियाँ उसे छोड़कर पहले ही चलीं गई थीं। अब उसे भय हुआ कि यह सिंदूर देख कर घर के लोग क्या कहेंगे। यह सोचकर उसने प्राण देने का निश्चय किया। वह वन में चली गई, परन्तु बाघ बाघिन ने उस पर दया दिखलाई। विषहर वृद्ध का रूप धर कर उसके सम्मुख आया और कहने लगा कि यदि तुम विवाह के लिये तैयार हो जाओ तो यह कलंक मिट जायगा। बिहुला ने यह स्वीकार कर लिया और उसके माँग और आंचल से सिंदूर और अक्षत गायब हो गया।

बिहुला ने घर पहुँच कर अपने विवाह की इच्छा प्रगट की। पहले तो माता-पिता को आश्चर्य हुआ। परन्तु बिहुला की दैवी शक्ति से सभी परिचित थे, अतएव विवाह के लिये तैयार हो गये। चीनाशाह से विषहर की भेंट हुई। चीनाशाह ने कहा कि आप देश-देश के भँवरा हैं, मेरी कन्या का विवाह ठीक करा दीजिए। विषहर ने चीनाशाह से दिल्ली शहर चलने के लिये कहा। दोनों व्यक्ति नाई ब्राह्मण और तिलक का सामान लेकर दिल्ली शहर पहुँच गये। पहले तो चंदूशाह तैयार नहीं होते थे परन्तु अन्त में तिलक स्वीकार कर लिया। चंदूशाह को अभी संतोष नहीं हुआ था। उड़नखटोले पर बैठकर स्वयं वे चीना-शहर में बिहुला को देख आये। वापस आकर बड़े धूम धाम से बारात की तैयारी करने लगे।

बारात जब चीनाशाह के घर पहुँच गई तो विषहर ने बिहुला की परीक्षा लेनी चाही। बारात जब अगवानी के लिये द्वार पर लगी तो चीनाशाह ने देखा कि बालालखन्दर के समान सैकड़ों वर पालकियों पर चढ़े हुये हैं। किसकी द्वारपूजा की जाय, वे यही सोचने लगे। घर में आकर उन्होंने सब हाल बतलाय। बिहुला ने भी यह सुना। उसने पिता से कहा कि जिस पालकी पर मक्खियाँ भिनक रही हों उसी पालकी में बालालखन्दर है। चीनाशाह जाकर तुरन्त

पहचान लिया और द्वार पूजा किया। द्वार पूजा के पश्चात् विषहर ने पुनः लोहे की मछली पकाने के लिये चीनाशाह को दिया। चीनाशाह मछली लेकर महल में आये। किसी से मछली कटती ही न थी। बिहुला ने बड़ी सरलता से मछली को हँसिया से टूक-टूक कर दिया और पका कर विषहर के पास भिजवा दिया। इसके पश्चात् धूमधाम से विवाह हुआ। बारात वहाँ नौ दिन तक टिकी रही। खूब आदर सत्कार हुआ। बिदा होते समय बिहुला ने दहेज में अपने पिता से कुत्ता, बिल्ली, गरुड़ पक्षी तथा नेवला माँग लिया। दिल्ली शहर पहुँचते ही अपने श्वसुर से सोहागरात मनाने के लिये 'लोहे का अचलघर' बनवाने के लिये कहा। एक ही दिन में चंदूशाह ने विशाल अचलघर बनवा दिया। पंडित से सोहागरात की साइत पूछ कर बिहुला और बालालखन्दर को दासी से कहला-कर अचल घर में भिजवा दिया।

अचलघर में पहुँच कर बिहुला ने पलंग के चारो पांव में नेवला, कुत्ता, बिल्ली तथा गरुड़ को बाँध दिया। श्रृंगार सज्जा करके वह पलंग पर बैठ गई। बालालखन्दर भी भीतर आया। बिहुला और बालालखन्दर बैठकर चौपड़ खेलने लगे। बिषहर ने सोचा कि बाला को मारने का अब समय आ गया है। उसने डोड़वा साँप से विष की मोटरी लाने के लिये कहा। डोड़, विष की गठरी लेकर चला। मार्ग में उसे स्नान करने की इच्छा हुई और पोखरे में स्नान करने लगा। इसी बीच मछलियों ने आकर विष की मोटरी खोल दी। कुछ अन्य साँपों ने तथा कुछ बिच्छियों ने विष पी लिया। डोड़वा साँप खाली हाथ थरथर काँपता हुआ विषहर के सामने गया। विषहर ने क्रोध में उसे श्राप दिया कि तेरे काटने से किसी को लहर नहीं आवेगा। विषहर ने गेंहुअन साँप को बुलाया और उसे अचलघर में भेजा। परन्तु वह बहुत मोटा था, इस कारण उसे अन्दर जाने का मार्ग ही न मिला और लौट आया। विषहर ने काली नागिन (नीलमपरी) को बुलवाया और उसे भेजा। परन्तु वह भी मोटी पड़ी। फिर तो विषहर ने झांवा से रगड़-रगड़ कर उसे तागे की तरह पतला करके भेजा। अचल घर में वह समा गई। उसने बिहुला और बाला को जागते देखा, इस कारण वह लौट आई। अब विषहर शिवजी के पास गया और उनसे सवा भार निद्रा माँगकर अचलघर में छोड़ दिया। नागिन पुनः अचलघर में गई। वह बिहुला को पहचान गई। वह सोचने लगी कि यह तो मेरी सखी है यदि इसके पति को डसूंगी तो नरक मिलेगा। विषहर से जाकर पुनः उसने कहा कि बिना कसूर के मैं किस तरह काटूँ? विषहर ने इस बार मच्छड़ों को छोड़ा और कहा कि मच्छड़ जब बाला के पैर में काटेंगे तो वह हाथ चलायेगा जिससे तुम्हें

चोट लगेगी और फिर तुम उसे डँस लेना। नागिन जाकर बाला के समीप बैठ गई। मच्छड़ काटने के कारण बाला ने तीन बार हाथ चलाया। तीसरी बार नागिन ने उसे डंस लिया। बाला ने जब जग कर देखा कि उसे नागिन ने काट खाया है तो वह बिहुला को जगाने लगा। परन्तु बिहुला तो निद्रा में बेहोश थी। नागिन बिहुला के केश में छिप गई थी। इधर बाला का चिल्लाते-चिल्लाते प्राण निकल गया।

जब सवाभार निद्रा समाप्त हुई तो बिहुला जगी और बाला को मृत देख-कर अपना सर पीट लिया। उसने सोचा कि लोग यही कहेंगे कि अचलघर में बैठकर बिहुला ने अपने पति को मार डाला। वह अत्यन्त दुख के कारण विलाप करने लगी। प्रातःकाल ही रोना सुनकर लोग अचलघर के सामने एकत्र होने लगे। विषहर ने जाकर चन्दू शाह से कहा कि तुम्हारी पतोहू डायन है, उसी नें बाला को मारा है। चन्दूशाह को उसके कथन पर विश्वास हो गया। विषहर ने कहा कि उसे भरी सभा में लाकर दंड देना चाहिये तथा बाँस के कईन (बेंत) से मार कर और उसके घावों पर नमक डाल कर मार डालना चाहिये। बिहुला को भरी सभा में घसीटते हुये लाया गया। बिहुला ने भरी सभा में कहा कि 'यदि मैं कईन के मार से नहीं मरूँगी तो मुझे पति का लाश दे दिया जाय मैं उन्हें पुनः जीवित करूंगी।' बिहुला पर बुरी तरह से मार पड़ने लगी, परन्तु वह मरी नहीं। उसने लाश माँगी। इस पर विषहर ने अपत्ति की, परन्तु जनता ने लाश देने में कोई हानि नहीं माना। बिहुला ने लाश लेकर मटका भर दही में लपेट दिया और गंगा में बरिया (बेड़ा) बनाकर और उस पर लाश रख कर चल पड़ी। बिहुला गंगा की उल्टी धार पर चल दी। विषहर ने मार्ग में अनेक विघ्न उपस्थिति किये परंतु बिहुला सबसे बचती हुई चल निकली। मार्ग में उसके मामा का गाँव पड़ा। मामा, बिहुला को न पहचान सका। उसने कहा कि लाश फेंक दो और मेरी पत्नी बनकर रहो। बिहुला ने सोचा कि विपत् में अपने भी पराये हो जाते हैं। चलते-चलते वह नाथूपुर पहुँची। वहाँ नेतिया धोबिन इन्द्र का कपड़ा धो रही थी। बिहुला भी लाश को रेघवा मछली के संरक्षकत्व में छोड़कर नेतिया के कपड़े धोने लगी। नेतिया ने उसका परिचय पूछा। बिहुला ने स्वयं को उसकी भाँजी बतलाया।

नेतिया धोबिन उसके कपड़े धोने से बड़ी प्रसन्न हुई। बिहुला ने कपड़ों की इस्त्री की। नेतिया कपड़ा लेकर उड़न खटोले पर बैठकर इन्द्रपुरी पहुँची। वहाँ पहुँचकर नेतिया धोबिन कपड़ों का बटवारा ठीक से न कर पाई। यह देखकर परियाँ बहुत बहुत बिगड़ीं। इस पर नेतिया ने कहा कि ये कपड़े मेरी भाँजी के

लगाये हुये हैं। परियों ने उसे बुलाने की आज्ञा दी। नेतिया ने जाकर बिहुला को डाँटा और उसे साथ लेकर चली। बिहुला को देखते ही लालपरी पहचान गई। बिहुला से उसने कुशल समाचार पूछा। बिहुला ने आद्योपान्त सभी हाल कह सुनाया। सबूत के रूप में उसके केश में से छिपी नागिन भी निकल आई। बाला की लाश को दुर्गा ने स्वर्ग में पहुँचा दिया। लाश पर चरणामृत छिड़का गया और बाला लखन्दर जीवित हो उठा। बिहुला ने शेष छः जेठों को भी जीवित कराया। इस प्रकार से सब को स्वर्ग से पृथ्वी पर ले आई। चन्दूशाह ने ऐसी सतवन्ती पतोहू पाकर अपने को धन्य माना।

चन्दूशाह ने विषहर को बुलवाया। विषहर ने सोचा कि उसे इनाम मिलने वाला है, परन्तु जाकर देखा तो बिहुला सम्मुख खड़ी है। विषहर का नाक-कान कटवाकर देश निकाला दे दिया गया।

लोकगाथा के अन्य रूप

प्रकाशित भोजपुरी रूप—लोकगाथा के मौखिक रूप तथा प्रकाशित रूप के कथानक में तथा चरित्रों के नाम में विशेष अन्तर नहीं मिलता है। प्रकाशित भोजपुरी बारह भागों में वर्णित है।[1] कथानक के प्रमुख अंश समान हैं—चन्दूशाह और विषहर का आन्तरिक वैमनस्य; बाला लखन्दर का जन्म, बिहुला का जन्म, बिहुला का विवाह, अचलघर का निर्माण, बाला की मृत्यु, बिहुला को दंड मिलना, बिहुला का नेतिया धोबिन के पास जाना तथा कपड़ा धोना, बिहुला का स्वर्ग में जाना और पति को जीवित कराना तथा अन्त में विषहर को दंड मिलना।

कथानक में अन्तर इस प्रकार है :—

प्रकाशित रूप में वर्णित है कि बिहुला इन्द्र के दरबार में जाकर नृत्य करती है तथा इन्द्र को प्रसन्न करके पति का जीवन माँगती है। मौखिक रूप में केवल यही वर्णित है कि बिहुला इन्द्रपुरी गई और उसकी भेंट लालपरी से होती है और तत्पश्चात् दुर्गा देवी बाला को जीवित करती हैं।

प्रकाशित रूप में विषहर को मृत्यु दंड दिया जाता है तथा मौखिक रूप में विषहर को देश निकाला दिया जाता है।

१—दूधनाथ प्रेस, हवड़ा

चरित्रों के नाम में प्रमुख अन्तर इस प्रकार है :—

प्रकाशित रूप में बिहुला के पिता का नाम बेंचू शाह दिया गया है जो कि उज्जैन के निवासी बतलाये गये हैं। परन्तु मौखिक रूप में बिहुला के पिता का नाम चीना शाह दिया गया है जो कि चीना नगर के रहने वाले हैं। इसी प्रकार से बाला लखन्दर के पिता का नाम जादूशाह प्रकाशित रूप में है तथा वे सुरुजपुर के निवासी हैं। परन्तु मौखिक रूप में चन्दूशाह, दिल्ली शहर के निवासी बतलाये गये हैं।

लोकगाथा के मैथली रूप की कथा—मैथिल प्रदेश में यह लोकगाथा 'बिहुला' अथवा 'बिहुलाविषहरी' के नाम से अभिहित किया, जाता है। लोकगाथा के बंगला एवं मैथिली रूप में बहुत समानता है। मैथिली रूप नौ खंडो में प्रकाशित भी हो चुका है। मैथिली एवं बंगला रूप में विषहरी स्त्री के रूप में वर्णित है।

मैथिली रूप में कथा विषहरी से प्रारम्भ होती है। विषहरी की पाँच बहनें है तथा इनके पति का नाम नागबासुकी है। विपहरी का विवाह जब नागबासुकी से हो जाता तो वह गौरा पार्वती को किसी त्रुटि के कारण डंस लेती है। शिव के कहने से वह उन्हें पुनः जीवित कर देती है। इस पर शिव आशीर्वाद देते हैं। शिव ने यह भी कहा कि मृत्युलोक में तुम्हारी पूजा चम्पानगर का चांदो सौदागर करेगा। विषहरी चाँदो सौदागर से आकर मिलती है और पूजा करने के लिये कहती है परन्तु चाँदो सौदगर, जो कि शिव का उपासक था, विषहरी को पूजने से अस्वीकार कर देता है।

होरै हमै नहीं पूजब रे दइबा कानी बंगाखौकी रे।
होरै बेंगवा बेंगवी रे छिकौ तोहार आहार रे॥

इस पर विषहरी चाँदो से न पूजने का दुष्परिणाम बतलाती है।

होरै विषहरी पूजब रे बनियाँ भल फल पइबे रे।
होरै विषहरी न पुजबें रे बनिया बड़े दुखः देबों रे॥

इसके पश्चात् प्रमुख कथा प्रारम्भ होती है। विपहरी चाँदो के छः पुत्रों को मार डालती है। इसके पश्चात बाला लखन्दर का जन्म होता है और कुछ काल पश्चात् बिहुला से उसका विवाह होता है। विषहरी उसको भी मारने के प्रयत्न में है। बिहुला लोहबाँसघर (अचलघर) का निर्माण करवाती है। विषहरी की आज्ञा से नागिन का लोहबाँसघर में जाना और बाला लख-

दर को काटना; बिहुला का अपन पति के लाश के साथ नेतुला (नेतिया) धोबिन के यहाँ जाना; उसकी सहायता से इन्द्र के यहाँ जाना और दरबार में नृत्य करना; बिहुला की प्रार्थना पर मनसा देवी का आना और बालालखन्दर को जीवित करना तथा चांदो सौदागर का मनसा देवी एवं बिपहरी आदि पांचो देवी को पूजा देने का बचन देना। यहाँ पर लोकगाथा समाप्त हो जाती है।

लोकगाथा के भोजपुरी रूप में विषहर को एक इर्ष्यालु ब्राह्मण के रूप में चित्रित किया गया है तथा जिसे अन्त में दंड भी मिलता है। प्रस्तुत भोजपुरी रूप में मनसा देवी की पूजा के विषय कुछ भी नहीं वर्णित है अतएव कथा की भावभूमि दूसरी हो जाती है। मैथिली रूप में मनसा देवी का उद्‌भव, विषहरी और चाँदो का झगड़ा तथा अन्त में मनसा देवी की ही कृपा से बाला लखन्दर का जीवित होना वर्णित है। चाँदो सौदागर भी विषहारी की पूजा करता है। इस प्रकार कथानक में उपर्युक्त विशेष अन्तर हो जाता है। भोज-पुरी मौखिक रूप में देवी दुर्गा बाला को जीवन दान देती है। इसमें मनसा का उल्लेख नहीं है।

स्थानों तथा व्यक्तियों के नाम में विशेष अन्तर मिलता है। भोजपुरी रूप में लखन्दर के पिता का नाम चंदूशाह है तथा जो दिल्ली शहर के निवासी हैं। मैथिली रूप में लखन्दर के पिता का नाम चान्दो सौदागर है जो चम्पा-नगर का निवासी है। भोजपुरी रूप में बिहुला के पिता का नाम चीनाशाह है जो कि चीनानगर में रहता है। मैथिली रूप में बिहुला के पिता का नाम 'बासू सौदागर' है जो कि उज्जैन का निवासी है।

भोजपुरी रूप में चम्पानगर का कहीं उल्लेख नहीं है। शेष सभी नाम एवं स्थान समान हैं।

लोकगाथा के बंगला रूप की कथा—भगवान शिव ने मनसा देवी से कहा कि जब तक चम्पकनगर निवासी चांद सौदागर तुम्हारी पूजा नहीं करेगा तब तक मृत्यु लोक में तुम्हारी पूजा नहीं प्रारम्भ होगी। यह सुनकर मनसादेवी चांद सौदागर के पास गई। शिवभक्त चांद सौदागर ने मनसा का तिरस्कार किया। मनसा ने क्रुद्ध कर हो उसके 'गउबाड़ी' नामक सुन्दर बगीचे को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। परन्तु चांद सौदगर ने अपने बल से पुनः बगीचे को हरा भरा कर लिया। चांद सौदागर के पास महाज्ञान था। मनसा ने सुन्दरी स्त्री का रूप

धारणकर उसके महाज्ञान को हर लिया। इस पर भी चांद सौदागर नहीं डिगा। मनसा ने चांद सौदागर के छः पुत्रों को मार डाला। सोनिका (चांद की स्त्री) को इससे बड़ा दुख हुआ, परन्तु चांद ने कोई परवाह न की। वह समुद्र यात्रा के लिए निकल पड़ा। मनसा ने उसके जहाज को डुबा दिया। चांद सौदागर को मनसा ने सहायता देनी चाही परन्तु चांद ने इस विपत्ति में भी उसकी सहायता न ली। वह किसी तरह बचकर अपने मित्र चन्द्रकेतु के घर पहुँचा। चाँदसौदागर बिल्कुल दरिद्र हो गया। उसने द्वार द्वार भिक्षा मांगना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु प्रत्येक ओर से उसे अनादर मिला। किसी प्रकार वह घर लौटा। उसके पुनः एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम 'लक्ष्मीन्द्र' रखा गया। निछानीनगर के शाह बनिया के यहां बेहुला ने जन्म लिया। बड़े होने पर बेहुला और लक्ष्मीन्द्र (लखीन्दर) का विवाह हुआ। सोहाग रात के लिए सताईं पहाड़ पर लोहे का घर बनवाया गया। मनसा ने कारीगर से उसमें एक छेद करने के लिए कहा। उस घर में जाने के पहले तीन अपशकुन हुए। परन्तु वर-वधू उसमें ले जाये गये। मनसा ने उदयनाग और कालदन्त को भेजा। बेहुला गंभीर निद्रामें निमग्न हो गई। सांप ने लखीन्दर को काट लिया। बेहुला अपने मृत पति को नदी के मार्ग से नेता धोबिन के यहां ले गई। नेता के मृत बालक को उसने जीवित कराया। नेता उसे इन्द्र के दरबार में ले गई। बेहुला ने मनसा की प्रार्थना की। मनसा ने प्रसन्न होकर लखीन्दर को जीवित कर दिया। बेहुला अपने पति के साथ भेष बदलकर निछानीनगर गई। उसके पश्चात् वे चम्पकनगर पहुँचे। चांद सौदागर ने मनसा के महात्म्य को स्वीकार किया और उसकी पूजा मृत्यु लोक में प्रारम्भ हो गई।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि बिहुला की लोकगाथा, कथानक और चरित्र की दृष्टि से बहुत अंश तक भोजपुरी रूप से मिलती जुलती है। लोकगाथा का बंगला रूप अत्यन्त बृहद् है। इसमें चांद सौदागर को बिहुला से भी अधिक महत्व मिला है। बिहुला एक साधन है जिसके द्वारा मनसा विजय प्राप्त करती है।

स्थानों एवं चरित्रों के नाम में भी कम अन्तर मिलता है। बंगला रूप में बंगाल के स्थानों का ही वर्णन आया है। वास्तव में लोकगाथा का प्रतिनिधि रूप बंगला ही है। यहीं से यह लोकगाथा अन्य प्रदेशों में गई है। अन्य प्रदेशों में पहुँचते पहुंचते कथा के भाव में थोड़ा अन्तर पड़ गया है, यद्यपि प्रमुख चरित्र वही हैं। भोजपुरी रूप मे 'मनसा देवी' का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है।

लोकगाथा की ऐतिहासिकता

बिहुला की लोकगाथा के अनेक रूपों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत लोकगाथा शाक्तमत से संबंध रखती है। शाक्तमत के अन्तर्गत देवताओं के स्थान पर देवियों का अधिक समावेश है। प्रमुख रूप से उसमें दुर्गा, काली, भवानी, शीतला, तथा मनसा देवी का वर्णन है। इन सबको जगन्माता कहा गया है। ईश्वर की मातृस्वरूप में पूजा कब से प्रारंभ हुई इसका स्पष्ट इतिहास नहीं प्राप्त होता है। वैदिक-युग में, इस प्रकार की पूजा का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है।[१]

हिन्दू धर्म के अनुसार चंडी और महिषासुर का युद्ध सत्ययुग के प्रारंभ में हुआ था, परन्तु इसका उल्लेख वेद के अन्तर्गत नहीं है[२]। अतएव यह निश्चित है कि वैदिक युग के पश्चात् ही, संभवतः ब्राह्मणयुग में शाक्तमत का आविर्भाव हुआ होगा। इसी समय से 'शक्ति' को स्त्री रूप में मानकर उसकी पूजा प्रारंभ की गई होगी। दुर्गा और चंडी का इतिहास इसी समय से प्रारंभ होता है। डा० दिनेश चन्द्र सेन के कथनानुसार शक्तमत के कुछ रूप चीन देश से आये जान पड़ते हैं। तंत्रों में इस प्रकार की पूजा विधि मिलती है जो आज भी चीन में वर्तमान हैं।[३]

वास्तव में शाक्तमत का उद्भव अनार्यपूजा से है। वैदिक युग में आर्य लोगों में ईश्वर को स्त्री रूप में नहीं देखा जाता था। उस समय अनार्यों में इस प्रकार की पूजा वर्तमान थी तथा जिसका प्रभाव भी बहुत व्यापक था। आर्यों की सामजस्य नीति ने धीरे धीरे इन उपासनाओं को अपनाना प्रारंभ किया। उसे वे विशुद्ध संस्कृत रूप देने लगे और इस प्रकार से धीरे धीरे आर्य जाति में शक्ति पूजा का भी विकास हो गया। शक्ति पूजा आर्य परिधि के अन्तर्गत आते ही नहीं लोकप्रिय हो गई, अपितु उसके लिए अनेक प्रयत्न करने पड़े। उस समय के प्रचलित शैव धर्म से उसे टक्कर लेना पड़ा। शताब्दियों के संघर्ष के पश्चात 'शाक्तमत' भी अपना प्रमुख स्थान निर्माण कर पाया। शाक्तधर्म के विस्तार के साथ साथ अनेक कथाओं, गीतों एवं गाथाओं का भी विकास हुआ। उन्हीं में 'बिहुला' की लोकगाथा एक प्रमुख स्थान रखती है।

१—डा० दिनेश चन्द्र सेन-हि० आ० दी बें० लै० एण्ड लिट० पृ० २५०

२—वही

३—वही

'बिहुला' में सर्प पूजा को विशेष स्थान दिया गया है। सर्प पूजा के विषय में डा० इवान्स ने क्रीट देश में ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त किये हैं। उनके अनुसार ईसा के तीन हजार वर्ष पूर्व सर्पों की पूजा संसार में प्रत्येक स्थान पर होती थी।[१] इस प्रकार सर्प पूजा भी एक अनार्य पूजा थी। आर्यों ने इसे भी अपना लिया। महाभारत काल में नागवंश की कन्या उलूपी से अर्जुन ने विवाह किया था। भगवान विष्णु को शेषशायी बतलाया गया है। इस प्रकार से सर्पों से संबंधित मनुष्य जाति का भी इतिहास हम पाते हैं। अब यह पूजा पूर्ण रूप से आर्य पूजा हो गई है। वर्तमान समय में भी भारतवर्ष में नागपूजा का अत्यन्त महत्व है। नागपंचमी के अवसर नागदेव की पूजा प्रत्येक घर में होती है। तंत्रशास्त्र में सर्प की महिमा का विशद् वर्णन मिलता है। प्रस्तुत लोकगाथा भी सर्प पूजा के इतिहास को बतलाती है। साधारण जन समाज का मत है कि बिहुला के जन्म के पश्चात् ही सर्प अथवा 'मनसा देवी' की पूजा प्रारंभ हुई है। डा० दिनेश चन्द्र के मतानुसार मनसा पूजा बंगाल में ही प्रारम्भ हुई। दक्षिण बंगाल में निरन्तर वर्षा होते रहने के कारण सर्पों का अत्यधिक निवास है। यहाँ के लोगों ने सापों के भय के कारण उसे देवी देवता का रूप दे दिया है। अधिकांश लोग सर्पों को देवी मान कर उसकी पूजा करते हैं। चैतन्य भागवत में, जिसकी रचना १५३६ ई० में हुई थी, मनसा देवी की पूजा का उल्लेख मिलता है।[२]

बंगला साहित्य में 'मंगल काव्य' प्रमुख स्थान रखता है। 'मंगल काव्य' के अन्तर्गत तीन प्रमुख भाग हैं। प्रथम 'धर्म मंगल' काव्य है जिसमें धार्मिक देवी देवताओं, उत्सवों एवं पूजाओं के विषय में प्राचीन कवियों की रचना मिलती है। द्वितीय 'चंडी मंगल' काव्य है, जिसमें चंडी देवी के प्रताप का वर्णन अनेकानेक कवियों ने की है। तृतीय 'मनसा मंगल' नामक काव्यों की परम्परा आती है। इसके अन्तर्गत प्रायः साठ रचनायें प्राप्त होती हैं। यह सभी रचनायें मनसा-देवी की महिमा के हेतु लिखी गई हैं। 'मनसा मंगल' में ही बिहुला की लोक-गाथा स्थान रखती है। 'मनसा मंगल' सम्बन्धी रचनाओं में सर्व प्रथम नाम हरिदत्त का आता है जिन्होंने बारहवीं शताब्दी में मनसा देवी की प्रशंसा में रचनायें की थीं।[3]

१—डा० दिनेश चन्द्र सेन हि० आफ० दी बें० ल० एंड लिट० है २६७

२—वही—पृ० २५२

३—वही—पृ० २७७

'मनसा मंगल' के प्रथम रचयिताओं में क्षेमानंद एवं केतक दास का नाम आता है। तीन सौ वर्ष से भी पूर्व इनके द्वारा रचित 'पांचालि ग्रन्थ' नामक पुस्तक उपलब्ध होती है। इसमें मनसा देवी की वंदना के साथ बिहुला की कथा सविस्तार दी हुई है। मनसा-मंगल की परम्परा में मंगल कवि (जो जाति का कायस्थ था) का नाम आता है। उसके अनुसार बिहुला की कथा चैतन्य के पहले प्रारम्भ हुई थी।[१]

क्षेमानंद एवं केतक दास द्वारा प्रस्तुत कथा में दो खंड हैं। प्रथम है देव खंड तथा द्वितीय मनुष्य खंड। देव खंड में मोथोनपाला (अमृत मंथन) तथा ऊषाहरण, इत्यादि का स्थान आता है तथा मनुष्य खंड में बिहुला लखन्दर का स्थान आता है।[२]

मोथोन पाला में अमृत मंथन, विष की उत्पत्ति, शिवजी का विष पी जाना तथा मनसादेवी का शिव की रक्षा करना वर्णित है।

ऊषाहरण में ऊषा और अनिरुद्ध की कथा वर्णित है। ऊषा और अनिरुद्ध मृत्युलोक में बिहुला और लखन्दर के रूप में जन्म लेते हैं तथा मनसादेवी लखन्दर को जीवन दान देती हैं। इसके अन्तर्गत बड़े विस्तार से बिहुला की कथा वर्णित है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि बिहुला की लोकगाथा का वास्तविक स्वरूप बंगला साहित्य के 'मंगल काव्य' में प्रमुख स्थान रखता है। बिहुला का चरित्र पौराणिक देवियों के समान चित्रित है। इसकी ऐतिहासिकता पर अभी तक कोई निश्चित प्रकाश नहीं डाला जा सका है। लोकगाथा के बंगला रूप में आये हुये स्थानों के द्वारा भी कुछ निश्चित इतिहास का पता नहीं चलता है। बंगाल में यह लोकगाथा इतनी लोकप्रिय है कि बंगाल के नौ जिले इसे अपने यहाँ की घटना बतलाते हैं। महाकवि होमर के विषय में भी इसी प्रकार झगड़ा ग्रीस देश के राज्यों में है। वहाँ के सात राज्य होमर को अपने यहाँ का मानता है।

लोकगाथा में चम्पकनगर एक प्रमुख स्थान का नाम है। चाँद सौदागर इसी नगर का सर्वश्रेष्ठ श्रेष्ठि था। बंगाल, आसाम तथा दार्जिलिंग आदि

१—ज्योतिन्द्र मोहन भट्टाचार्या—'मनसा मंगल' भूमिका भाग पृ० १-८३

२—वही

स्थानों में चम्पकनगर नामक स्थान है जिनसे कि इस लोकगाथा का संबन्ध बतलाया जाता है।[१]

(१) बंगाल के बर्दवान जिले में चम्पकनगर है। ऐसा विश्वास है कि चाँद सौदागर की राजधानी यहीं थी। इसी चम्पकनगर के समीप बेहुला नामक एक छोटी नदी भी बहती है, जो कि लोकगाथा की नायिका बिहुला के नाम पर ही रखा गया प्रतीत होता है।

(२) बंगाल के टिपरा जिले में भी चम्पकनगर है। यहां के लोग चाँद सौदागर को इसी स्थान का बतलाते हैं।

(३) आसाम में ढुबरी नामक स्थान है। लोगों का विश्वास है कि चाँद सौदागर इसी स्थान का निवासी था।

(४) बोगरा जिले में महास्थान नामक एक कस्बा है। इसे भी चांद सौदागर से संबन्धित बतलाया जाता है।

(५) दार्जिलिंग के लोगों का विश्वास है कि मनसा मङ्गल में वर्णित घटनाएं रानीत नदी के समीप ही घटी थीं।

(६) दिनाजपुर जिले में कान्तानगर के समीप सनकानगर स्थित है। लोकगाथा में चाँद सौदागर की स्त्री का नाम सनका है। ऐसा विश्वास है कि चाँद सौदागर और सनका यहीं के निवासी थे तथा सनका के नाम पर ही इस नगर का नाम पड़ा है।

(७) मालदह जिले में भी चम्पाईनगर स्थित है। घटना का संबन्ध यहाँ से भी बतलाया जाता है।

(८) बंगाल के बीरभूम जिले में बिहुला के आदर में प्रत्येक वर्ष मेला लगता है। ऐसा विश्वास है कि यह मेला बिहुला के समय से ही प्रारम्भ हुआ है।

(९) चिटगाँव में एक स्थान पर एक मकान है जिसे कालूकामार का घर कहते हैं। कालूकामार ने ही बिहुला के लिये लाहे का घर बनवाया था। इसी के घर के समीप एक पोखरा है जिसे चाँदपोखर कहते हैं।

१—डा० दिनेश चन्द्रसेन-हिस्ट्री आफ़ बेंगाली लैंगुएज एण्ड लिटरेचर पृ० २५६-२५७

(१०) बिहार के भागलपुर जिले में चम्पानगर है। यहाँ एक बहुत पुराना घर है, जिसे बिहुला का 'अचलघर' समझा जाता है । यहाँ भी श्रावण में मेला लगता है तथा बिहुला की पूजा होती है ।

इस प्रकार लोकगाथा से संबंधित हमें अनेक स्थानों का पता चलता है, परन्तु किसी भी स्थान पर कोई ऐतिहासिक चिन्ह नहीं प्राप्त होता है जिससे ऐतिहासिकता को निश्चित किया जा सके। अतएव बिहुला भी पौराणिक देवियों की परम्परा में आ जाती है । उसकी गाथा एक सर्वव्यापक लोकगाथा बन गई है। अब वह किसी एक स्थान की नहीं है अपितु सर्वकल्याणमयी है।

बिहुला का चरित्र—लोकगाथा में बिहुला का चरित्र प्रमुख है। बाला लखन्दर तो लोकगाथा के प्रमुख भाग में मृत पड़ा हुआ है। बिहुला के महान् प्रयत्नों से ही वह पुनः जीवित होता है।

बिहुला का जीवन पातिव्रत धर्म का एक मूर्तिमंत प्रतीक है। भारतीय स्त्री के लिए पति ही परमेश्वर है, इस लोकगाथा में यह भाव पूर्णतया चित्रित है। बिहुला, नारी समाज को एक सन्देश देती है कि स्त्री अपने गुणों एवं तपस्या से मृत को भी जीवित कर सकती है। सतयुग में यह सन्देश सती सावित्री ने दिया था जिसकी पूजा आज घर घर में बट सावित्री के नाम से होती है। कलियुग में पति सेवा का अन्यतम उदाहरण बिहुला ने प्रस्तुत किया है। यह घटना शताब्दियों पूर्व हुई परन्तु आज भी भारत के पूर्वीय भाग में श्रावण मास में इसकी पूजा होती है, तथा लोग उसकी जीवनकथा का श्रवण करते हैं।

बिहुला का जीवन एक संघर्ष का जीवन है। उसका जीवन कठिन परीक्षाओं में ही बीता। चन्द्रशाह से तथा मनसा से अनबन हुई, और इस झगड़े का परिणाम भुगतना पड़ा बिहुला को। बिहुला के लिए तो यह जीवन-मरण का प्रश्न था। पति के बिना स्त्रीजीवन की अभिव्यक्ति शून्य है। अतएव बिहुला ने सतीत्व के चुनौती को स्वीकार किया। वह समस्त समाज से लड़ी, स्वर्ग में सदेह गई, और अन्त में अपने कर्तव्य से मनसा देवी को उसने प्रसन्न कर ही लिया। मनसा देवी की मनोकामना पूर्ण हुई। उसकी पूजा संसार में व्याप्त हो गई। परन्तु बिहुला का विजय मनसा से भी श्रेष्ठ था। उसने समस्त संसार में पतिव्रत धर्म का, कर्मठ जीवन का महान् आदर्श रखा। समस्त स्त्री समाज में उसने चेतना उत्पन्न की जो कि आज के जीवन में परिलक्षित है। मनसा देवी का भी महत्व बिहुला के कारण ही मिला। बिहुला जैसी सती स्त्री न होती तो मनसा की मनोकामना कैसे पूरी होती। फिर कौन उसे समाज में पूजता ?

बिहुला के जीवन का कर्तव्य उसके पति तक ही नहीं सीमित रहता है अपितु वह अपने पति के छः बड़े भाइयों को भी पुनः जीवित कराती है। नेता धोबिन की सेवा करती है तथा उसके पुत्र को भी मृत्यु मुख से बचाती है। वह सत्य के पथ पर चलने वाली देवी है, इसी कारण स्वर्ग की अप्सरायें एवं देवी दुर्गा भी उसकी सहायता में तत्पर है। अपने कर्तृत्व शक्ति का उसे तनिक भी अभिमान नहीं है अपितु वह एक नम्र एवं क्षमाशील देवी है। वह अपने ऊपर किए गए अत्याचारों का बदला क्षमा से लेती है। वह अपने श्वसुर को क्षमा करती है, अपने मामा को क्षमा करती है तथा काली नागन को भी क्षमा करती है।

बिहुला अपनेचरित्र से समाज को एक संदेश देती है कि लक्ष्मी ही सब कुछ नहीं है। प्रकृति के संहारी प्राणी भी कल्याणमय हो सकते हैं तथा मनुष्य की सहायता कर सकते हैं, यह सन्देश बिहुला के चरित्र से मिलता है। मानव समाज में सर्पों से बहुत घृणा है। परन्तु आज भी धार्मिक व्यक्ति सर्प को देव स्वरूप मानता है। अकारण उसे मारने का प्रयत्न नहीं करता है।

बिहुला का चरित्र समस्त नारी जाति को उच्च बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है भले ही यह लोकगाथा निम्नश्रेणी में प्रचलित है, परन्तु जीवन में श्रद्धा, प्रेम एवं कर्तव्य का जो सुन्दर चित्रण इस लोकगाथा में वर्णित है, वैसा अन्य साहित्य में क्वचित ही प्राप्त होता है।

अध्याय ६

भोजपुरी योगकथात्मक लोकगाथा का अध्ययन

भोजपुरी लोकगाथाओं के अन्तिम वर्ग में योगकथात्मक लोकगाथाओं का स्थान आता है। योगकथात्मक लोकगाथाओं के अन्तर्गत 'राजा भरथरी' एवं 'राजा गोपीचन्द' की लोकगाथाएं आती हैं। जिस प्रकार से वीरकथात्मक लोकगाथाओं में 'लोरिकी' की लोकगाथा अहीर जाति से सम्बन्ध रखती है। उसी प्रकार से प्रस्तुत दोनों लोकगाथाएं एक जाति एवं एक मत से सम्बन्ध रखती हैं। वह जाति जोगियों की है, तथा वह मत नाथ संप्रदाय है। एक जाति विशेष एवं मत विशेष से सम्बन्ध रखती हुई भी यह लोकगाथाएं आज समस्त समाज की लोकगाथाएं हैं। नगरों तथा गांवों, शिक्षितों तथा अशिक्षितों में, प्रत्येक समुदाय में ये लोकगाथायें बड़े चाव से सुनी जाती हैं। 'आल्हा' के पश्चात यह दोनो लोकगाथाएं ही केवल नगरों में पदार्पण कर सकी हैं। समय समय पर जोगियों के झुंड सारंगी लिये हुये हमें नगर के बाजारों एवं गलियों में दिखाई पड़ते हैं। ये गोपीचन्द, भरथरी तथा निर्गुण गाकर भिक्षा माँगते हैं। भोजपुरी लोकगाथाओं म केवल इसी वर्ग की लोकगाथाओं द्वारा गायक जीविकोपार्जन करते हैं।

नाथ संप्रदाय से सम्बन्ध रखने के कारण ही इन लोकगाथाओं को योग-कथात्मक लोकगाथाएं नाम दिया गया है। इसमें भरथरी एवं गोपीचन्द के राजपाट, वैभव विलास त्याग कर गुरु गोरखनाथ एवं जालंधरनाथ के शिष्य होकर योगी रूप धारण करने की कथा वर्णित है। नाथ संप्रदाय के अनेक नामों में 'योगीमार्ग' नाम भी आता है। अतएव प्रस्तुत लोकगाथाओं को 'योग-कथात्मक लोकगाथा' कहना उचित है।

जोगी समुदाय—योगकथात्मक लोकगाथाओं के गायकों के विषय में यहाँ विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा। क्योंकि जोगियों की जाति भारतवर्ष में विशेष स्थान रखती है। लोकगाथाओं को एकत्र करते समय जोगियों से जो भी तथ्य प्राप्त हो सके हैं, उन्हें नीचे दिया गया है।

(१) जोगी नामक एक अलग जाति इस देश में अपना अस्तित्व रखती है। यद्यपि इनकी गणना हिन्दू जाति के अन्तर्गत होती है, परन्तु इनके जीवन

और परंपरा से यह स्पष्ट होता है कि चार वर्णों से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

(२) ये लोग शिव को अपना ईश्वर तथा गुरु गोरखनाथ को अपना गुरु मानते हैं। वस्तुत: इनकी दार्शनिक विचार धारा अत्यन्त उलझी हुई है। इन अपढ़ जोगियों से कुछ स्पष्ट पता नहीं चलता है। इतना निश्चित है कि इनका सम्बन्ध नाथ सम्प्रदाय से है। किन्तु ये लोग अन्य देवी देवता, राम, कृष्ण, हनुमान इत्यादि सबको मानते हैं।

(३) इनकी सामाजिक रीतियाँ साधारण हिन्दुओं की भाँति हैं। इनके विवाहसंस्कार, श्राद्धसंस्कार इत्यादि साधारण हिन्दू गृहस्थ की भांति होते हैं।

(४) जोगियों का अलग अलग झुंड होता है। प्रत्येक झुंड का एक मुखिया अथवा महंत रहता है। महंत की आज्ञा लेकर ही ये लोग भिक्षा माँगने निकलते हैं। अन्य सामाजिक कार्य भी उन्हीं के अनुमोदन से करते हैं।

(५) जोगी लोग भगवा वस्त्र पहनते हैं। सर पर भगवे रंग की पगड़ी, शरीर पर एक ढीला कुरता तथा भगवे रंग की गुदड़ी, एक बड़ी झोली तथा एक सारंगी। धोती का रंग भी भगवा होता है, अथवा सादा भी रहता है।

(६) इनके जीवन म विशेष संयम नहीं दिखलाई पड़ता है। यद्यपि ये भगवा वस्त्र पहनते हैं, परन्तु साथ ही गाँजा, चरस, भाँग, धतूरा, पान बीड़ी, सुरती इत्यादि इनके अनिवार्य अंग हैं। जोगी लोग अब मांस मदिरा भी खाने पीने लगे हैं।

नाथ संप्रदाय से सम्बन्ध होने के कारण इन जोगियों का कुछ महत्व है। इसी कारण अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इनके विषय में गवेषणाएं की हैं। इनमें से प्रमुख आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा श्री डब्ल्यू० क्रुक हैं।

'कबीर' नामक पुस्तक की प्रस्तावना में सन्तकबीर की जाति निश्चित करने के विवरण में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जोगियों का भी उल्लेख किया है। वयन जीवियों की अनेक उपजातियों पर विचार करते हुये उन्होंने जोगियों के विषय में लिखा है कि 'जोगी जाति का सम्बन्ध नाथपंथ से है। ....जोगी नामक आश्रम भ्रष्ट घर बस्तियों की एक जाति सारे उत्तर और पूर्व भारत में फैली थी। ये नाथपंथी थे, कपड़ा बुनकर और सूत कात

कर या गोरखनाथ और भरथरी के नाम पर भीख माँगकर जीविका चलाया करते थे।"[१]

श्री डब्ल्यू० क्रुक के कथनानुसार भी जोगियों की जाति का सम्बन्ध नाथ-पंथ से है। उत्तरी भारत के जोगी लोग गुरु गोरखनाथ को अपना गुरु मानते हैं।[२] इन्होंने हिन्दू योगी और नागपंथी जोगियों के भेद को भी स्पष्ट किया है। इनके कथनानुसार एक जोगी वे होते हैं जो पातंजल हठयोग के अनुसार योगिक क्रिया करते हैं। ये लोग हिन्दू शास्त्र सम्मत विधि से जीवन व्यतीत करते हैं। दूसरे जोगी वे होते हैं, जो कि नाथ धर्म के अन्तर्गत आते हैं। ये लोग नाथधर्म में वर्णित जोगी वस्त्र पहनते हैं। इनके कई प्रकार होते हैं जैसे, औघड़, कनफटा, नन्दिया भद्दर तथा भरथरी जोगी। इनमें भद्दर जोगी मुसलमान जाति के होते हैं।[३]

उत्तरी भारतवर्ष में ही नहीं अपितु समस्त भारत में जोगियों की जाति फैली हुई है। दक्षिण भारत में भी जोगियों के अनेक प्रकार मिलते हैं जिनमें से प्रमुख धोड्डियाँ तथा जोट्टियाँ जोगी हैं। अधिकाश में ये शूद्र होते हैं तथा अनार्य देवताओं की पूजा करते हैं।[४]

बंगाल में भी जोगियों की बहुत बड़ी बस्ती है। ये लोग 'जुगी' अथवा जोगी कहलाते हैं। यहाँ जोगियों में भिक्षा माँगने का कार्य समाप्त होता जा रहा है। ये लोग हिन्दू परिधि में बड़ी तेजी के साथ आ रहे हैं और अपने नाम के पीछे या पहले शर्मा या पंडित भी लगाते हैं।[५]

इस प्रकार से हम समस्त भारत में जोगियों का विस्तार पाते हैं। वस्तुतः अब इनका प्रभाव समाप्त होता जा रहा है। ये विशुद्ध हिन्दुत्व की ओर आकर्षित होते जा रहे हैं। परन्तु इन्हें आज भी निम्न दृष्टि से देखा जाता है। इसका प्रधान कारण यह है आश्रम भ्रष्ट व्यक्तियों को आज भी हिन्दू समाज में आदर नहीं है। डा० हजारी प्रसाद लिखते हैं कि जब तक संन्यासी अपने

१—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी-कबीर—पृ० ११-१४

२—डब्ल्यू० क्रुक—ट्राइब्स ऐण्ड कास्ट्स आफ़ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज ऐन्ड अवध। वाल २ पृ० ५९

३—डब्ल्यू क्रुक—ट्रा० एंड का० आफ ना० वे० एंड अ० वाल २ प० ५९

४—ई० थर्स्टन—कास्ट्स एंड ट्राइबल इन्डिया, वाल २ पृ० ४८४-८५

५—हजारी प्रसाद द्विवेदी—कबीर, पृ० ८

संन्यासाश्रम में होता है वह हिन्दू का पूज्य होता है, पर घरबारी होकर वह उसकी आँखों में गिरकर भ्रष्ट हो जाता है। घरबारी संन्यासियों की संतति से जो जातियाँ बनती है वे समाज के निचले स्तर में चली जाती हैं। इसलिये साधक, योगी और गृहस्थ जाति के योगी में बड़ा भेद है। योगी जाति अर्थात् आश्रम भ्रष्ट योगियों की सन्तति न तो किसी आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत आती है और न वर्ण व्यवस्था के। इस प्रकार के आश्रमभ्रष्ट जोगियों के अनेक प्रकार हमें उत्तर भारत में मिलेंगे जिनमें, गोसांई, बैरागी, अतीत जोगी तथा फकीर इत्यादि प्रमुख हैं।"[1] यद्यपि ये लोग स्वयं कोब्राह्मणों से कम ही नहीं अपितु उससे भी अधिक पवित्र मानते हैं परन्तु समाज उनको पूज्य भाव से नहीं देखता है, उन्हें केवल भिखमंगा ही समझता है।

जोगियों के विषय में उपर्युक्त विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि नाथ संप्रदाय का यह आश्रमभ्रष्ट अवशिष्ट जोगियों की जाति, किसी न किसी रूप में समस्त भारत में विद्यमान है। यह हिन्दू जाति का उपकार है कि इन्हें भी अपनी परिधि में समेट लिया है।

हिन्दू समाज ने जोगियों को आदर का स्थान भले ही न दिया हो, परंतु एक बात निश्चित है कि इन जोगियों ने नाथ संप्रदाय के सिद्धान्तों एवं उसके अन्तर्गत महान् तपस्वियों के चरित्र को बड़े ही सुन्दर एवं सरल ढंग से हमारे सम्मुख रखा है। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि "निस्संदेह जोगियों ने योग के सिद्धान्तों को अत्यन्त व्यवहारिक रूप से समझाने का प्रयत्न किया है। इन्होंने शताब्दियों तक जिस धार्मिक जीवन में आस्था रखने का संदेश दिया है वह बड़े बड़े तत्व ज्ञानियों द्वारा नहीं दिया जा सकता"।२

नाथ सम्प्रदाय—योगकथात्मक लोकगाथाएं नाथ संप्रदाय के दो महान विभूतियों से सम्बंध रखती हैं। अतएव नाथ संप्रदाय के सिद्धान्त एवं परंपरा के विषय में संक्षिप्त विचार कर लेना असंगत न होगा।

नाथ संप्रदाय में शिव को आदिनाथ माना गया है, इसी कारण इस संप्रदाय का नाम 'नाथ संप्रदाय' पड़ा हैं। अनेक ग्रन्थों में नाथ संप्रदाय के भिन्न

१—हजारी प्रसाद द्विवेदी—कबीर पृ० १०

२—डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १७३।

नाम भी मिलते हैं जैसे योगमार्ग, योगसंप्रदाय अवधूतमत तथा अवधूत संप्रदाय। इसे कहीं कहीं सिद्धमार्ग भी कहा गया है। परन्तु सबसे लोकप्रिय नाम 'नाथ संप्रदाय' ही रहा है। इस नाम के लोकप्रिय बनानेंका श्रेय गोरख-नाथ को ही हैं।[1]

नाथ संप्रदाय वस्तुतः शैवमत, शाक्तमत तथा बौद्धमत का मिश्रित निचोड़ है। इस संप्रदाय में हम तीनों मतों का स्पष्ट प्रभाव देख सकते हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि, "यह विश्वास किया जाता है कि आदिनाथ स्वयं शिव ही हैं और मूलतः समग्र नाथ संप्रदाय शैव है।"[२] डा० रामकुमार वर्मा ने नाथ संप्रदाय को बौद्ध धर्म एवं शाक्त धर्म के बीच की स्थिति मानी है। उनका कथन है कि, "वस्तुतः नाथ संप्रदाय, बौद्ध धर्म एवं शाक्त धर्मके बीच की स्थिति है जिसे पातंजल के हठयोग से पुष्ट किया गया है"।[3]

नाथ संप्रदाय में योग के द्वारा संसार मुक्त होने की शिक्षा दी गई है। मुक्त होने के लिये वैराग्य लेना पड़ता है। वैराग्य की भावना गुरूकी कृपा से ही आती है। अतः नाथ संप्रदाय क्रियापक्ष में गुरू मन्त्र या गुरू दीक्षा से प्रारम्भ होता है। इसमें उपवास और कठिन संयम का कड़ा निर्देश है। वैराग्य की भावना जब हृदय में दृढ़ हो जाती है तो योगी को तीन अवस्थाओं को पार करना पड़ता है। वह है इन्द्रिय निग्रह, प्राण साधना तथा मन साधना। इसके पश्चात ही योगी 'असंप्रज्ञात समाधि' में प्रविष्ट करता है तथा जीवनमुक्त हो जाता है।

नाथ संप्रदाय की परम्परा के अन्तर्गत नव नाथों की चर्चा होती है। वैसे तो नाथ परम्परा में सैकड़ों सन्तों का नाम आता है, परन्तु उन सबमें प्रमुख नव नाथ ही हैं, जो कि नाथ संप्रदाय के आधार स्तम्भ माने जाते हैं। नव-नाथों की नामावली के विषय में बड़ा मतभेद है। भिन्न भिन्न ग्रंथों में भिन्न भिन्न नवनाथों की नामावली दी हुई है। डा०रामकुमार वर्मा न इनकी सूची इस प्रकार दी है[४] :—

१—हजारी प्रसाद द्विवेदी —नाथ संप्रदाय —पृ० १-२

२—वही—पृ० ३

३—डा. रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ०१५३

४—वही—पृ०, १६७

१—आदिनाथ

२—मत्स्येन्द्रनाथ

३—गोरखनाथ

४—गाहिणीनाथ

५—चर्पटनाथ

६—चौरंगी नाथ

७—ज्वालेंद्र नाथ

८—भर्तनाथ

९—गोपीचन्दनाथ

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'योगिसंप्रदाय आविष्कृति' नामक ग्रन्थ में वर्णित नवनाथों की सूची इस प्रकार प्रस्तुत की है[१] :—

१—मत्स्येन्द्र नाथ

२—गाहिनीनाथ

३—ज्वालेन्द्रनाथ

४—करणिपानाथ

५—नागनाथ

६—चर्पटनाथ

७—रेवानाथ

८—भर्तृनाथ

९—गोपीचन्द्र नाथ

उपर्युक्त सूची में 'आदिनाथ' और 'गोरखनाथ' का नाम नहीं दिया हुआ है। संत ज्ञानदेव की गुरुपरम्परा में गोपीचन्द्र की माता मैनावती का नाम तो दिया है, परन्तु गोपीचन्द तथा भर्तृनाथ का उल्लेख नहीं मिलता है।

इस प्रकार से नवनाथों के अंतर्गत हमारे लोकगाथाओं के नायक भरथरी और गोपीचन्द का भी नाम आता है। भरथरी और गोपीचन्द नवनाथों में वर्णित ज्वालेंद्रनाथ (जलंधर नाथ) के तथा गोरखनाथ के शिष्य थे। इन दोनों व्यक्तियों की जीवन गाथा अत्यन्त रोचक होने के कारण जोगियों ने इसे विशेष रूप से अपना लिया। जोगियों द्वारा प्रचार के कारण समाज में गोरखनाथ के पश्चात् नाथ परंपरा में भरथरी और गोपीचन्द के नाम से ही लोग अधिक परिचित हैं।

१—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय—पृ. २५

लोकगाथाओं की गाने की पद्धति--योगकथात्मक लोकगाथाओं को जोगी लोग सारंगी पर गाते हैं। यह लोकगाथाएं अत्यन्त करुण स्वर में गाई जाती है। इनमें स्वर और लय की प्रधानता रहती है, परन्तु स्थायी और अंतरा का कोई निश्चित निर्देश नहीं रहता। वस्तुतः लोकगाथाएं कथोपकथन में गाई जाती हैं। राजा भरथरी का अपनी रानी सामदेई से संवाद, तथा राजा गोपीचंद का का माता मैनावती एवं बहन बीरम से संवाद, लोकगाथा में वर्णित है। अतएव जोगी लोग भी इन्हीं संवादों पर स्वर चढ़ाकर गाते हैं। उनकी सारंगी को 'गोपीचंदी' भी कहा जाता है।

राजा भरथरी

समस्त उत्तरी भारत में 'राजा भरथरी' की गाथा एक अत्यन्त लोकप्रिय लोकगाथा है। जोगियों के द्वारा यह लोकगाथा अन्य जनपदी बोलियों में भी प्रचलित हो गई है। लोकगाथा का भोजपुरी रूप ही प्रतिनिधि रूप प्रतीत होता है। क्योंकि अन्य प्रदेशों में गाई जाने वाली राजा भरथरी के गीत का कथानक एवं रूप भोजपुरी से पूर्णतया साम्यता रखती है।

नाथ सम्प्रदाय के परवर्ती संत परम्परा के अन्तर्गत भरथरी का नाम आता है। अपने त्याग और तपस्या के कारण ये बहुत ही महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गये और इनका नाम नवनाथों के अन्तर्गत आ गया। इन्होंने नाथ परम्परा के अन्तर्गत 'वैराग्यपंथ' का भी प्रचार किया। इनके प्रधान शिष्यों में माईनाथ, प्रेम नाथ तथा रतन नाथ का उल्लेख होता है।[1]

प्रस्तुत लोकगाथा में भरथरी के दार्शनिक पक्ष को न प्रस्तुत करके उनके जीवन का विवरण दिया हुआ है। इसमें राजा भरथरी के वैराग्य लेने की कथा वर्णित है। राजा भरथरी एवं रानी सामदेई का विवाह, रानी सामदेई का अपने पूर्व जन्म की कथा बतलाना तथा भरथरी का वैराग्य लेकर गुरु गोरखनाथ का शिष्यत्व ग्रहण करना, इस लोकगाथा में वर्णित है। नारी के प्रति आकर्षण रहित होना नाथ सम्प्रदाय के दार्शनिक पक्ष का मुख्य अंग था। अतएव गोरखनाथ ने भरथरी से रानी सामदेई को 'माँ' सम्बोधित करवा कर परीक्षा ली है। इस प्रकार से इस लोकगाथा में नाथ धर्म के व्यावहारिक पक्ष का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है।

संक्षिप्त कथा—प्रस्तुत लोकगाथा में दो कथा वर्णित है। प्रथम, राजा भरथरी का वैराग्य लेकर चलना और रानी सामदेई का रोकना तथा पिंगला द्वारा रानी सामदेई के पूर्व जन्म की कथा कहना। दूसरी कथा है, राजा भरथरी का बन में मृग का शिकार करने जाना और वैराग्य भाव का उदय होना तथा गोरखनाथ का शिष्यत्व ग्रहण करना।

राजा भरथरी जब योगी का वेष धारण कर चलने लगे तो रानी सामदेई ने उनका उत्तरीय पकड़ लिया और कहने लगी कि 'हे राजा उस दिन का तो तुम

१—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी नाथ सम्प्रदाय—पृ० १५१

ध्यान करो जिस दिन तुम मौर चढ़ाकर आये थे और मैंने तुम्हारे गले में जय-माला डाली थी और तुमने मेरी माँग में अमर सुहाग भरा था। अभी तक गवने की पहनी हुई पीली धोती का दाग तक नहीं छूटा है, क्या इसी दिन के लिये तुम मुझे ब्याह लाये थे ?' इस पर राजा भरथरी ने जन्म कुंडली में लिखित वैराग्य का उल्लेख किया। रानी सामदेई को तब भी संतोष नहीं हुआ। इस पर भरथरी ने रानी से प्रश्न किया कि, 'हे रानी यह बतलाओ कि जिस दिन तुम्हें गवना कराकर ले आया था, उसी दिन रात्रि में तुम्हारे पलंग पर चढ़ते ही पलंग की पाटी क्यों टूट गई ?' रानी सामदेई ने उत्तर दिया कि 'पलंग टूटने का भेद मैं तो नहीं जानती, परन्तु मेरी छोटी बहिन पिंगला जानती है'। पिंगला का विवाह दिल्लीगढ़ में हुआ था। राजा भरथरी ने पत्र भेज कर पिंगला को बुलवाया और उससे पलंग टूटने का भेद पूछा। पिंगला ने कहा कि, 'हे राजा ! रानी सामदेई पिछले जन्म में तुम्हारी माता थीं, इसी कारण पलंग की पाटी टूट गई, अब तुम्हें भोग करना हो तो भोग करो अथवा जोग करना हो तो जोग करो।' यह सुन कर राजा उदास हो गया।

राजा भरथरी ने रानी सामदेई से शिकार खेलने का पोशाक मांगा। पोशाक पहनकर तथा घोड़े पर चढ़कर राजा भरथरी सिंहल द्वीप में शिकार खेलने चला गया। वह उस बन में पहुँचा जहाँ एक काला मृग रहता था, जो कि सत्तर सौ मृगिणियों का पति था। राजा का खेमा गड़ते हुए जब मृगिणियों ने देखा तो वे दौड़ती हुई राजा के पास पहुँचीं और पूछने लगी कि, 'हे राजा ! तुम यहाँ क्यों आए हो। अपने दिल का भेद बताओ।' इसपर डपटकर राजा भरथरी बोला कि, 'मैं यहाँ शिकार खेलने आया हूँ तथा काला मृग को मारकर उसके खून का पान करूँगा।' इसपर मृगिणियाँ बोली कि, 'हे राजा ! यदि तुम्हें शिकार खेलने और खून पीने का शौक है तो हम में से दो चार का शिकार कर लो।' राजा भरथरी ने उत्तर दिया कि, 'मैं तिरिया के ऊपर हाथ नहीं छोड़ता हूँ, यह तो कलंक की बात होगी।' यह सुनकर सत्तर सौ मृगिणियों में से आधी तो वहां राजा से बहस करने के लिये रुक गईं और आधी काले मृग को बन में ढूढ़ने चली गईं। काला मृग बीच जंगल में घूम रहा था। मृगिणियों ने वहाँ पहुँचकर कहा कि, 'हे स्वामी ! आज के दिन जंगल छोड़ दीजिये, आज राजा भरथरी आप का शिकार खेलने आये हैं।' इसपर काले मृग ने उत्तर दिया कि, 'हे मृगिणियों सुनों, तुम लोग स्त्री जाति की हो इसलिए बात-बात में डर जाती हो। भला राजा मुझे क्यों मारेगा, उसका मैंने क्या बिगाड़ा है ?' यह सुनकर मृगिणियाँ रोने लगीं और कहने लगीं कि 'हे स्वामी ! आज जंगल छोड़ दो नहीं तो हम सभी रांड़ हो जायंगी।'

काले मृग को अब कुछ परिस्थिति गंभीर प्रतीत हुई। वह उड़कर आकाश में गया, परन्तु वहाँ उसका ठिकाना न लगा। वहाँ से उड़कर वह नेपाल के राजा के यहाँ गया, पर वहाँ भी उसका ठिकाना न लगा। मृगा हताश होकर राजा भरथरी के सम्मुख पहुँचा और झुककर सलाम किया। राजा ने मृग को देखते ही धनुष पर तीर चढाकर मारा। पहले तीर से तो कालामृग को ईश्वर ने बचा लिया। दूसरे तीर से गंगा जी ने बचा लिया। तीसरे तीर से बनसप्ती देवी ने बचाया, चौथा और पांचवा गुरु गोरखनाथ ने, छठा तीर मृग ने अपने सींग पर रोक लिया, परन्तु सातवें तीर से मृग घायल होकर गिर पड़ा।

मरते समय अत्यन्त करुण स्वर से काला मृग बोला कि, 'हे राजा! मुझे तो आपने मार दिया, मै तो सीधे सुरधाम जाऊँगा। मेरी आँख को निकाल कर रानी को देना जिससे वह श्रृंगार करेगी, सींघ निकाल कर किसी राजा को देना जो अपने दरवाजे की शोभा बढ़ायेगा। खाल खिचवाकर किसी साधू को देना जिसपर वह आसन लगावेगा। शेष मेरा मांस तुम तल कर खा जाना।' यह कह कर मृग ने राजा को श्राप दिया कि, "जिस प्रकार मेरी सत्तर सौ मृगिनियाँ कलपेंगी, इसी प्रकार तुम्हारी रानियाँ भी तुम्हारे बिना विलाप करेंगी।" राजा भरथरी ने जब यह सुना तो उसके हृदय पर चोट लगी। राजा विचार करने लगा कि आज यदि मृग को नहीं जिलाया जायगा तो सत्तर सौ मृगिणियों का कलपना लगेगा। यह सोचकर उसने काले मृग को घोड़े पर लाद लिया और बाबा गोरखनाथ के पास पहुँचा। गोरखनाथ, देखते ही बोले कि, 'बच्चा तुमने बहुत बड़ा पाप किया है।" भरथरी ने गोरखनाथ से कहा कि 'बाबा काला मृग को जीवित कर दीजिए अन्यथा में धूनी में कूद कर स्वयं को भस्म कर दूंगा।' बाबा गोरखनाथ ने मृग को जीवित कर दिया। काला मृग वहाँ से उड़ कर मृगिणियों के बीच पहुँचा। मृगिणियों ने कहा कि 'एक तो पापी राजा भरथरी है जिन्होंने सत्तर सौ मृगिनियों को राँड़ कर दिया था, और एक बाबा गोरखनाथ हैं जिन्होंने सबके अहिवात (सौभाग्य) को बचा लिया।

इस घटना से राजा भरथरी को अपनी असमर्थता का ज्ञान हुआ। वे विरक्त हो गए। उन्होंने गोरखनाथ से शिष्य बनाने की विनती की। गोरखनाथ ने कहा कि 'तुम राजा हो, तुम जोगी का जीवन नहीं व्यतीत कर पाओगे, तुम कुशा के आसन पर नहीं शयन कर पाओगे, तुम नीच घरों में भिक्षा नहीं माँग पाओगे। किसी गरभी (घमंडी) ने कुछ बोल दिया तो तुमसे सहा नहीं जायगा, किसी के घर में सुन्दर स्त्री देख लोगे तो उस पर आसक्त हो जाओगे और इस

प्रकार योग विद्या नष्ट कर दोगे।' यह बचन सुनकर भरथरी ने उत्तर दिया कि, 'नीच के द्वार पर भिक्षा माँगने जाऊँगा तो बहरा बन जाऊँगा, काँटा कुश पर सोऊँगा, और यदि सुन्दर स्त्री देखूँगा तो सूर बन जाऊँगा।" अन्त में गोरखनाथ उन्हें शिष्य बनाने के लिए तैयार हो गए, परन्तु उन्होंने एक शर्त लगाई। गोरखनाथ ने कहा कि, 'यदि तुम अपनी रानी को 'माँ' कह कर भिक्षा माँग लाओ तो तुम्हें शिष्य बना लूँगा।' भरथरी योग वस्त्र धारणकर सारंगी लेकर अपने नगर की ओर चल दिये। महल के सम्मुख पहुँच कर उन्होंने भिक्षा की पुकार लगाई। रानी सामदेई जब महल से बाहर निकली, तो राजा ने कहा कि 'माँ भिक्षा दे।' इस पर रानी सामदेई बोली कि, "हे राजा तुम कौन सा रूप लेकर शिकार खेलने गए थे और कौन सा रूप लेकर आये हो, मैं आपको जोगी नहीं बनने दूँगी, अरे! तीन पन में एक पन भी नहीं बीता, अभी तो वंश को कायम रखने के लिए एक पुत्र भी नहीं हुआ।" यह सुनकर राजा भरथरी बोले कि, 'हे रानी! बेटे की लालसा तुझे है तो मेरे भांजे गोपीचन्द को बुलाले, दुख में वही तेरे काम आयेगा।' इसपर रानी ने कहा कि 'जो सुख तुम्हारे साथ है वह अन्य किसी से नहीं मिल सकता।' इस पर राजा ने उसे अपनी माता के घर चले जाने के लिए कहा। परन्तु रानी ने यह बात भी अनसुनी कर दी। रानी ने बड़े आग्रह से कहा, 'मुझे भोग विलास से कुछ मतलब नहीं, तुम घर में ही रह कर योग साधन करो, मैं तुम्हारी केवल सेवा करती रहूँगी।' राजा न कहा कि, 'स्त्री जाति से और योग से बैर है, मैं यहाँ नहीं रहूँगा।' इस पर रानी भी योगिनी बनने के लिये कहने लगी परन्तु राजा ने कहा कि, 'फिर तो योग विद्या बदनाम हो जायगी, लोग हमें ठग कहेंगे, गुरू हमें श्राप दे देंगे।'

इसके पश्चात् रानी ने राज्य में ही रहकर योग करने की प्रार्थना राजा से की और सब प्रकार का प्रबन्ध कर देने का बचन दिया। इस पर भरथरी ने कहा कि 'जब तुम इतना प्रबन्ध कर सकती हो तो गंगाजी भी क्यों नहीं यहीं बुलवा लेती?' रानी ने अपने सत् के द्वारा गंगा को भी वहाँ उपस्थित कर दिया। इसपर राजा ने कहा "द्वार-द्वार पर गंगा को गंगा नहीं कहा जायगा, यह गड़ही और पोखरे के नाम से ही पुकारी जायगी। तुम तो अन्य लोगों के तीर्थ पुण्य करने का भी धर्म छीन रही हो।" अब रानी बहुत घबड़ाई। अन्त म उसने चौपड़ की बाजी खेलने को कहा और कहा कि 'जो जीतेगा उसी का मान रहेगा।' चौपड़ की बाजी में पहले तो रानी जीतने लगीं, परन्तु अन्त में गुरू की कृपा से भरथरी ने रानी को हरा दिया। रानी मुरझा गई। राजा अपने गुरु के पास चले आये और शिष्यत्व ग्रहण कर लिया।

लोकगाथा का एक अन्य रूप—भरथरी की लोकगाथा का एक अन्य रूप 'विधना क्या कर्त्तार' द्वारा रचित 'भरथरी चरित्र' प्राप्त होता है। इसकी भाषा उर्दू मिश्रित खड़ी बोली है।[1] पुस्तक में दी हुई कथा संक्षेप में इस प्रकार है :—

उज्जैन के राजा इन्द्रसेन और रानी रूपदेई से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम पंडितों ने भरथरी रखा। पंडित ने यह भी बतलाया कि यह बालक बारह वर्ष तक राज्य करेगा और तेरह वर्ष में योगी हो जायगा।

सिंहलद्वीप के राजा के यहाँ एक कन्या हुई। इसका नाम सामदेई पड़ा। कन्या जब सयानी हुई तो वर के लिये चारो दिशा में नाई ब्रह्मण गये, परन्तु कहीं वर न मिला। अन्त में पंडित ने राजा भरथरी और रानी सामदेई का संयोग बतलाया। पंडित ने धूम धाम से राजा भरथरी का तिलक कर दिया। साज सामान के साथ बारात सिंहल द्वीप पहुँची। चन्दन पीढ़ा पर जब सामदेई बैठने लगी तो उसने राजा भरथरी को देखा। उसने देखते ही जान लिया कि यह तो पूर्व जन्म का मेरा पुत्र है। परंतु वह चुप रही। राजा भरथरी विवाह के पश्चात गवना करा कर रानी सामदेई को उज्जैन में ले आये। रानी सामदेई सोचने लगीं कि यदि भरथरी के साथ भोग किया तो सत् चला जायगा। भरथरी ज्योंही आकर पलंग पर बैठा तो पलंग टूट गई। यह देख कर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने रानी से पलंग टूटने का भेद पूछा। रानी ने कहा, "मैं तो इसका कारण नहीं बतला सकती, मेरी बहिन पिंगला दिल्ली नगर में ब्याही गई है, वही बतला सकती है।" उधर दिल्ली के राजा मानसिंह तथा रानी पिंगला से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा मानसिंह ने अपने साढ़ भरथरी के पास निमंत्रण भेजा। राजा भरथरी तो पलंग टूटने का भेद जानना ही चाहते थे। उन्होंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। पूरी सेना सजा कर दिल्ली की ओर कूँच कर दिया। (फौज में आल्हा ऊदल भी थे।) राजा भरथरी दिल्ली पहुँचे। राजा मानसिंह इतनी बड़ी सेना देखकर घबड़ा गये। परन्तु पिंगला ने अपने सत् से सबका खर्चा जुटा दिया। एक माह तक डेरा पड़ा रहा। रानी पिंगला ने एक दिन राजा भरथरी को महल में बुलवाया। कुशल क्षेम के पश्चात् राजा भरथरी ने रानी पिंगला से पलंग टूटने का भेद पूछा। रानी ने उस समय कुछ

१—विधना क्या कर्तार—भरथरी चरित्र—दूधनाथ प्रेस, हवड़ा

उत्तर न दिया। उसने कहा, "कि कल मैं नागिन द्वारा डंसी जाऊँगी और कोइ-रिन के घर जन्म लूंगी। वहीं तुमको भेद बतलाऊँगी।"

रानी पिंगला ने कोइरिन के घर जन्म लिया। राजा भरथरी जब वहाँ पहुँचे तो रानी ने कहा कि दूसरे जन्म में बतलाऊँगी। रानी पिंगला इसी प्रकार मरती गई और क्रमशः सुअरी, कुत्ता, सर्पिणी, गाय का जन्म लेने के पश्चात राजा बोढ़नसिंह की पुत्री के रूप में गढ़गोंदियां में जन्म लिया। उसका नाम फुलवा पड़ा। राजा भरथरी वहाँ भी पहुँचे तो फुलवा ने कहा कि, 'बारह वर्ष बाद मेरा ब्याह रचा जायगा। उसी समय तुमको भेद बतलाऊँगी'। बारह वर्ष पश्चात फुलवा का ब्याह दिल्ली के राजा मानसिंह के पुत्र बंशीधर से हुआ। बारात जब वापस दिल्ली चलने लगी तो फुलवा ने राजा भरथरी को बुलवाया और पलंग टूटने का भेद बतलाया। उसने कहा कि, "हे राजा! जिस प्रकार बंशीधर मेरे पूर्व जन्म का पुत्र है, उसी प्रकार तुम भी रानी सामदेई के पूर्व जन्म के पुत्र हो, इसी कारण पलंग की पाटी टूट गई थी।" यह सुनकर राजा उदास मन घर लौटा और शिकार खेलने चला गया।

इसके पश्चात् कथा भोजपुरी मौखिक रूप के समान ही है। राजा का काला मृग को मारना, गोरखनाथ द्वारा उसका पुनः जीवित होना; भरथरी के मन में वैराग्य उठना, गोरखनाथ का भरथरी की परीक्षा लेना; भरथरी का भिक्षा मांगने के लिये रानी सामदेई के पास जाना; रानी सामदेई का मनाना। अंत में भरथरी का सामदेई का दूध पीना; भरथरी का अनेक दुर्गम यातनाओं को सहन करते गुरू गोरखनाथ के पास पहुँचना तथा गुरू गोरखनाथ का प्रसन्न होना और भरथरी को शिष्य बना लेना वर्णित है। इस रूप में गोपीचंद और मयनावती का भी आना वर्णित है।

उपर्युक्त लोकगाथा के दो रूपों के अतिरिक्त भी भरथरी विषय अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। उनमें से डा० रामकुमार वर्मा द्वारा प्रस्तुत एक कथा इस प्रकार है।[१]

राजा भरथरी की रानी का नाम पिंगला था। एक बार राजा शिकार खेलने गये। उन्होंने शिकार में देखा कि किसी शिकारी को नाग ने काट लिया। शिकारी की स्त्री ने अपने पति को चिता पर रखकर अपना शरीर काटकर सती हो गई। यह दृश्य देखकर भरथरी ने अपनी रानी पिंगला की परीक्षा

१—डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ०—१७१

लेनी चाही और यह कथा रानी पिंगला को सुनाई। पिंगला ने कहा कि, "मैं तो तुम्हारी मृत्यु का संवाद मात्र सुनते ही सती हो जाऊंगी।' कुछ दिनों बाद जब भरथरी पुन: शिकार खेलने के लिए गए तो उन्होंने झूठमूठ अपनी मृत्यु का संवाद प्रचारित कर दिया। रानी पिंगला संवाद सुनते ही चिता में भस्म हो गई। घर आकर भरथरी ने जलती हुई चिता देखी। वे शोक में डूब गये। उसी समय वहाँ गोरखनाथ पहुंचे। उन्होंने यह दृश्य देखकर अपना भिक्षा पात्र गिर जाने दिया। जब वह भिक्षापात्र टूट गया तो वे भरथरी की ही भाँति रोने लगे। भरथरी ने कहा कि, 'भिक्षापात्र टूट जाने से आप क्यों रोते हैं, आपको दूसरा पात्र मिल जायगा।' इस पर गोरखनाथने कहा 'तुम क्यों शोक करते हो पिंगला तो फिर जीवित हो सकती है।' गोरखनाथ ने चिता में जल डाल दिया और चिता से पच्चीस रानियाँ पिंगला रूप में उठ खड़ी हुई। दुबारा जल डालने पर केवल पिंगला रानी रह गई। भरथरी का अब मोह दूर हुआ और वे योगी हो गए। पिंगला को माता कहकर उन्होंने भिक्षा प्राप्त की और गोरखनाथ का शिष्यत्व ग्रहण किया।

भरथरी के विषय मे एक कथा और है जिसका संक्षेप है कि भरथरी पतिव्रता रानी पिंगला की मृत्यु के पश्चात् गोरखनाथ के प्रभाव में आकर विरक्त हुए और उज्जैन का राज्य अपने भाई विक्रमादित्य को सौंप कर योगी हो गये।[1]

राजा भरथरी के विषय में प्रचलित दो लोकगाथाएँ तथा अनेक छोटी मोटी कथाएँ हमें प्राप्त होती हैं। सभी में राजा भरथरी के योगी होने का वर्णन है। इनमें सांसारिक मोहमाया, भोगविलास, तथा ऐश्वर्य इत्यादि की निस्सारता, स्थान स्थान पर कथोपकथन के रूप में स्पष्ट किया गया है। जोगियों द्वारा नाथधर्म के महान् सिद्धान्त को हम लोकगाथाओं मे प्रतिपादित देखते हैं। नाथधर्म के दर्शन के अध्ययन से हमारे हृदयों में वैराग्य का भाव भले ही न उत्पन्न हो, परन्तु इन लोकगाथाओं के श्रवण से मन एक बार वैराग्य की ओर झुके बिना नहीं रहता।

प्रस्तुत लोकगाथा के मौखिक भोजपुरी रूप तथा प्रकाशित रूप की कथा एक समान है। प्रकाशित रूप में कथा बढ़ा चढ़ाकर वर्णित है। 'विधना क्या कर्तार' द्वारा रचित कथा में राजा भरथरी और सामदेई के विवाह का विधिवत वर्णन है जो कि भोजपुरी रूप मे नहीं है। प्रकाशित रूप में राजा

1 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय पृ० १६८

भरथरी स्वयं रानी पिंगला के यहाँ जाते हैं और पलंग टटने का भेद पूछते हैं। भोजपुरी रूप में राजा भरथरी पिंगला को अपने ही यहाँ बुलवाते हैं। प्रकाशित रूप में रानी पिंगला स्वयं के उदाहरण से राजा को पलंग टूटने का भेद बतलाती है। भोजपुरी रूप में राजा भरथरी से भेंट करते ही वह भेद बतलाती है।

उपर्युक्त अन्तर के अतिरिक्त शेष कथा समान है, जैसे कि राजा भरथरी का शिकार खेलने जाना, काला मृग का मारा जाना, गोरखनाथ से भेंट, राजा भरथरी का विरक्त होना तथा अपनी स्त्री को माँ कहना तथा राजा का योगी होकर चल देना।

डा० रामकुमार वर्मा द्वारा प्रस्तुत कथा इन दोनों लोकगाथाओं से भिन्न है। इसमें राजा भरथरी की स्त्री का नाम 'पिंगला' दिया हुआ है तथा शिकार खेलने की कथा भी भिन्न रूप में दी हुई है। इसमें राजा भरथरी अपनी रानी पिंगला के पातिव्रत की परीक्षा लेता है तथा रानी जलकर भस्म हो जाती है। इसके पश्चात् भरथरी गोरखनाथ के प्रभाव में आ जाते हैं।

कथा का अन्तिम रूप लोकगाथाओं के समान है। इस कथा में भी राजा भरथरी का अपनी स्त्री को 'माँ' संबोधन करना वर्णित है।

लोकगाथा की ऐतिहासिकता

प्रस्तुत लोकगाथा राजा भरथरी के जीवन से सम्बन्ध रखती है, अतएव यहाँ भरथरी की ऐतिहासिकता पर विचार करना आवश्यक है। भरथरी के विषय में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं:—

(१) भर्तृहरि, जिन्होंने शृंगारशतक, नीतिशतक, तथा वैराग्यशतक की रचना की थी। गोरख शिष्य भरथरी जिन्होंने वैराग्य पन्थ प्रचलित किया।[1]

(२) भरथरी, जो उज्जैन के शासक थे और बाद में गोरखनाथ के शिष्य बन गये।[2]

(३) भरथरी, जिन्होंने विरक्त होकर अपने भाई विक्रमादित्य को राज्य सौंप दिया। इनका सम्बन्ध बंगाल के पालवंश के राजा गोपीचन्द तथा मयनावती से था।[3]

१—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय—पृ० १६७

२—वही

३—वही

(४) एक किंवदंती है कि भरथरी, गोरखपुर (उत्तर-प्रदेश) क्षेत्र के शासक थे।[१]

संस्कृत साहित्य में भर्तृहरि का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने तीन अमर शतकों की रचना की थी। वे तीन शतक हैं, शृंगारशतक, नीतिशतक तथा वैराग्यशतक। भर्तृहरि ने स्वयं के जीवन से प्राप्त अनुभवों को बड़े सुन्दर ढंग से इन शतकों में चित्रित किया है। परन्तु इन शतकों में भर्तृहरि ने किसी निश्चित धर्म या मत विशेष का प्रतिपादन नहीं किया है। यह सन्देह उठता है कि क्या लोकगाथा के भर्तृहरी और शतकों के रचयिता भर्तृहरि एक ही व्यक्ति हैं? आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शतकों के रचयिता भर्तृहरि तथा गोरख परम्परा के भर्तृहरी को दो भिन्न व्यक्ति माना है। चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार शतकों के रचयिता भर्तृहरि का समय दसवीं शताब्दी का पूर्व भाग ठहरता है। इसके विपरीत गोरखनाथ के शिष्य भरथरी का समय दसवीं शताब्दी के अन्त में ठहरता है। दोनों व्यक्ति भिन्न थे, इसका सबसे बड़ा प्रमाण शतक के रचयिता भर्तृहरि का 'वैराग्यशतक' है। 'वैराग्यशतक' के रचयिता ने कहीं भी गोरखनाथ अथवा नाथधर्म का उल्लेख नहीं किया है। गोरखनाथ के शिष्य तथा वैराग्यपन्थ के प्रणेता यदि वैराग्य शतक रचयिता भर्तृहरि ही होते तो उसमें कहीं न कहीं पंथ अथवा गुरु का अवश्य ही उल्लेख होता। अतएव निश्चित रूप से दोनों भर्तृहरी भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं। वास्तव में शतकों के रचयिता भर्तृहरि अपनी किसी रानी के अनुचित आचरण के कारण विरक्त हुए थे और अन्त में 'वैराग्यशतक' की रचना की थी।[२]

भोजपुरी लोकगाथा में भरथरी को उज्जैन का राजा बतलाया गया है। 'विधना क्या कर्तार' द्वारा 'भरथरी चरित्र' में भरथरी उज्जैन के राजा इन्द्रसेन के पौत्र तथा चन्द्रसेन के पुत्र बतलाए गए हैं। लोकगाथा में दिए हुए नाम इतिहास में नहीं मिलते हैं और न कहीं यही मिलता है कि भरथरी उज्जैन के शासक थे। ऐसा प्रतीत होता है कि, भरथरी ने राजा बनते ही या राजा बनने के पहले ही वैराग्य ग्रहण कर लिया। यह भी सम्भव हो सकता है कि भरथरी का संबंध उज्जैन से कभी भी न रहा हो, और लोकगाथा के गायकों ने उज्जैन एक प्राचीन एवं प्रसिद्ध नगर होने के कारण भरथरी को उसी नगर का राजा बना दिया हो। हम यह भली भाँति जानते हैं कि भारतवर्ष में प्रचलित अनेक कथाएँ

१—श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी लोकगीत में करुणरस, पृ० १३
२—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय, पृ० १६८

किंवदंतियाँ तथा गाथाएँ रूढ़ि रूप में उज्जैन से संबंध रखती हैं। जिस प्रकार कहानियों में राजा विक्रमादित्य का नाम रूढ़ि के रूप में बारबार आता है, उसी प्रकार नगरों के उल्लेख में उज्जैन का भी नाम अनेक कथाओं में आता है।

भरथरी संबंधी एक अन्य कथा में यह वर्णित है कि राजा भरथरी अपना राज्य अपने भाई विक्रमादित्य को सौंपकर गोरखना का शिष्य हो गया। ब्रिग्स के अनुसार उज्जैन में एक विक्रमादित्य नामक राजा सन् १०७६ से १२२६ तक राज्य करता रहा। इस प्रकार से भरथरी का समय ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य भाग में ठहरता है।[1]

'विधना क्या कर्तार' रचित 'भरथरी चरित्र' में राजा भरथरी को गोपीचंद का मामा बतलाया गया है। गोपीचंद का संबंध बंगाल के पालवंश से बतलाया जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि, 'पालवंश के राजा मही-पाल के राज्य में ही, कहते हैं, रमणवज्र नामक वज्रयानी सिद्ध ने मत्स्येन्द्रनाथ से दीक्षा लेकर शैव मार्ग स्वीकार किया था। यही गोरखनाथ हैं। पालों और प्रतीहारों (उज्जैन) का झगड़ा चल रहा था। कहा जाता है कि गोविंदचंद महीपाल का समसामयिक राजा था और प्रतीहारों से उनका संबंध होना विचित्र नहीं'।[2]

उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में एक जनश्रुति है कि राजा भरथरी यहीं के शासक थे। श्री दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह ने भोजपुरी की व्युत्पति और प्राचीनता पर विचार करते हुए बिहार के उज्जैन वंशी राजपूतों की वंशावली का उल्लेख किया है। 'तवारीख उज्जैनिया' का हवाला देते हुए वे लिखते हैं, "......
२७४वीं पीढ़ी में राजा गंधर्वसेन हैं जिनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम महाराज विक्रमा-दित्य और छोटे का नाम भरथरी है। यही इतिहास प्रसिद्ध शकारि विक्रमादित्य कहे जाते हैं, और इन्हीं का चलाया हुआ विक्रम संवत् भी कहा जाता है, पम्मारवंश मात्र अपने को विक्रम (शकारि) का वंश कहता है। राजा भरथरी (भर्तृहरि) का गोरखपुर जिला में होना आज भी किंवदंती से हमें ज्ञात है। और भरथरी गीत आज भी वहीं से शुरू होकर सर्वत्र भोजपुरी भाषी जिलों में गाया जाता है। जान पड़ता है भर्तृहरि गोरखपुर में आकर अपना राज अपने भाई विक्रमादित्य के अधीन ही कायम किए थे या विक्रम राज्य के इस प्रान्त के

१—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ सम्प्रदाय—पृ० १६८

२—वही

शासक यही बनाए गए थे । यद्यपि विक्रम संवत् तथा स्वयं विक्रमादित्य के संबंध में आज भी इतिहासकार कई मत रखते है पर इन पम्मारों के इतिहास से वही प्रतिपादित है जो जनसाधारण का युग युग से विश्वास है। लेखक के पूज्य पितामह का कहना है कि उज्जैन के राजा शकारि विक्रमादित्य के समय में ही राजा भर्तृहरि गोरखपुर में अपनी राजधानी कायम करके इन प्रदेशों के शासक थे । यही बात लोक परम्परागत विश्वासों में चली आ रही है।"[1]

भरथरी के संबंध में जो तथ्य उपलब्ध है, उनके संबंध में ऊपर विचार किया गया है। इन तथ्यों के आधार पर किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। ऐसा प्रतीत होता है कि भरथरी राजा अवश्य थे किन्तु सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व राज्य का परित्याग करके योगी हो गए। यह भी सत्य है कि भरथरी गोरखनाथ के शिष्य थे तथा 'वैराग्यपंथ' के प्रवर्त्तक थे और उनका समय दसवीं से बारहवीं शताब्दी की मध्य में था।

१—श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी लोकगीत में करुणरस-पृ०-१३-१४

राजा गोपीचन्द्

नाथ सम्प्रदाय के योगमार्गीय शाखा में गोपीचन्द का स्थान अत्यन्त महत्व-पूर्ण है। नाथ सम्प्रदाय के प्रमुख संतों में गोपीचन्द की माता मैनावती का भी नाम आता है। मैनावती, नवनाथों में प्रसिद्ध जालन्धरनाथ की शिष्या थीं। मैनावती के आग्रह से ही गोपीचन्द ने अपने यौवनकाल में वैराग्य ग्रहण किया। गोपीचन्द और मैनावती के विषय में अनेक कथायें एवं गीत प्रचलित हैं जिनका विवरण आगे दिया जायेगा। राजा गोपीचन्द की लोकगाथा भोजपुरी प्रदेश में अत्यन्त लोकप्रिय है। माता की आज्ञा से पुत्र का योगी होना, एक आश्चर्य-कारी घटना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'इतिहास में यह शायद अद्वितीय घटना है जब माता ने पुत्र को स्वयं वैराग्य ग्रहण करने को उत्साहित किया है।"[1]

प्रायः समस्त भारतवर्ष की जनपदी बोलियों में कथाओं अथवा लोकगाथाओं के रूप में गोपीचन्द का चरित्र व्याप्त हैं। बंगाल में तो यह कथा अत्यन्त व्यापक है। इसका प्रधान कारण यही है कि गोपीचन्द का सम्बन्ध बंगाल के पालवंश से था। परन्तु जोगियों ने गोपीचन्द के चरित् को भोजपुरी मगही एवं मैथिली भाषाओं में भी अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया है। पूर्वीय प्रदेश के अतिरिक्त यह लोकगाथा पश्चिमी प्रदेश, पञ्जाब सिंध इत्यादि प्रान्तों तक अन्यान्य रूपों में प्रचलित है। 'सिंध में गोपीचन्द', 'परीपटाव' के नाम से मशहूर हैं,...'तुफुतुल किरान' में परीपटाव की कहानी दी हुई है परन्तु परी-पटाव गोपीचन्द ही थे या नहीं, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।[2] शेष समस्त प्रान्तों में 'गोपीचन्द' नाम ही प्रसिद्ध है।

नाथ संप्रदाय विषयक सभी ग्रन्थों में वर्णित है कि माता मैनावती ने गोपी-चन्द को वैराग्य मार्ग ग्रहण करने का आदेश दिया। परन्तु प्रस्तुत लोकगाथा में गोपीचन्द जब योगी रूप धारण कर चलते हैं तो उस समय उसकी माता उसे रोकती है और अपने दूध का मूल्य माँगती है। संभव है कि गोपीचन्द के चरित्र को उन्नत बनाने के हेतु गायकों ने लोकगाथा में जीवन के यथार्थ एवं

१—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय पृ० १६८

२—वही

स्वाभाविक चित्र को उपस्थित किया है। लोकगाथा के नायक गोपीचन्द, माता, स्त्री, बहन तथा प्रजा इत्यादि को मोह को समाप्त कर वैराग्य ग्रहण करते हैं। लोकगाथा में शरीर की नश्वरता, माया का जंजाल, तथा योग के महत्व को अत्यन्त सुन्दर रीति से समझाया गया है।

भरथरी के समान गोपीचन्द की लोकगाथा भी करुणा रस से परिपूर्ण है। जिस प्रकार से भरथरी की लोकगाथा में सामदेई एवं राजा भरथरी का कथोपकथन दिया हुआ है, उसी प्रकार इस लोकगाथा में गोपीचन्द एवं माता मैनावती तथा बहिन बीरम का कथोपकथन वर्णित है।

लोकगाथा की संक्षिप्त कथा :—राजसी पीताम्बर को फाड़कर, उसकी गुदड़ी बनाकर राजा गोपीचन्द ने पहन लिया और इस प्रकार योगी का रूप धारण कर चलने को तैयार हुये। उसी समय माता गुदड़ी पकड़ कर खड़ी हो गई और विलाप करने लगी। गोपीचन्द ने माता से कहा, "का करबी माई बरम्हा लिखें जोगी"। इस पर माता ने कहा कि 'तुमको अपना दूध पिलाकर बड़ा किया है, उस दूध का दाम देते जाओ तब पीछे जोगी बनना।" गोपीचन्द ने दूध से पोखरा भराने को कहा परन्तु माता को संतोष न हुआ। अंत में गोपीचंद ने कहा 'हे माता चाहे मैं अपना कलेजा काटकर भी तेरे सामने रख दूँ, परन्तु तिसपर भी मैं तेरे दूध से उत्तीर्ण नहीं हो सकता।'

इस प्रकार राजा गोपीचन्द बावन किले की बादशाही, छप्पन कोस का राज तथा तिरपन करोड़ की तहसील छोड़कर चलने लगा। प्रजा, दरबारी, तथा रनिवास के सभी लोग विलाप करने लगे। लचिया (पानवाली) बरई ने गोपीचंद के सम्मुख आकर कहा कि 'मैंने पांच बिगहा पान का खेत तुम्हारे लिये लगाया था, उसका मूल्य देते जाओ।' गोपीचंद नेतुरन्त लचिया के नाम पांच गाँव लिख दिया और कहा कि, 'मेरी माता को पान बराबर खिलाती रहना।' सबको रोता छोड़कर गोपीचन्द चल दिये।

चलते चलते गोपीचन्द ने विचार किया कि बिना बहिन से भेंट किये बन जाना उचित नहीं, अतएव वे बहिन के घर की ओर चल दिये। चलते चलते वे केदली बन में पहुँचे। केदलीबन सदा अंधकार से ढका रहता था और उसमें पशुओं का निवास था। मैया बनसप्ती ने गोपीचन्द के सुन्दर रूप को देखकर सोचने लगीं कि इन्हें तो बन में बड़ा कष्ट होगा। वे गोपीचन्द के सम्मुख प्रगट हो गईं। गोपीचन्द ने कहा कि मुझे शीघ्र ही बहिन के घर पहुँचा दो अन्यथा श्राप दे दूँगा। बनसप्ती ने ले चलना स्वीकार कर लिया। उसने

हंस का रूप बना लिया और गोपीचन्द को तोता बनाकर, अपने पंख पर बिठा लिया। बनसप्ती ने छः महीने के मार्ग को छः पहर में समाप्त कर दिया। गोपीचन्द ने नगर में बहिन के घर को ढूंढ़ना प्रारम्भ किया पर न मिला। अंत में उन्होंने देखा कि बहिन बीरम चन्दन के मुरझाये पेड़ को पकड़ कर रो रही है। बहिन के द्वार पर पहुच कर राजा गोपीचन्द ने सारंगी बजा दिया। बहिन ने सारंगी की ध्वनि सुन कर मुंगिया दासी को द्वार पर भिक्षा देकर भेजा। गोपीचन्द ने कहा कि, 'मैं तेरे हाथ से भिक्षा नहीं लूंगा क्योंकि तू जूठन से पली है।' मुंगिया ने ध्यान से गोपीचन्द को देखा और उसे कुछ संदेह हुआ। वह दौड़कर महल में गई और बहिन से कहा, 'गोपीचन्द की सूरत का एक योगी द्वार पर खड़ा है'। बीरम भी देखने के लिए आई परन्तु वह भाई को पहचान न सकी। गोपीचन्द को इससे बहुत दुख हुआ। गोपीचन्द कहने लगे कि, 'तुझे कौन सा श्राप दूं जिससे तेरा घमंड चूर हो जाय।' बीरम ने कहा कि, 'यदि ऐसी बात करोगे तो मृत्युदंड मिलेगा।' गोपीचन्द तब भी विचलित न हुये। इस पर बीरम ने गोपीचन्द की परीक्षा ली। उसने अपने तिलक, बारात, तथा विवाह इत्यादि के बारे में पूछा। गोपीचन्द ने सबका ब्योरा सुना दिया। बीरम को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने गोपीचन्द की परीक्षा लेने के लिये पिता के घर से मिले हुये बौड़हिया हाथी को छोड़ा। गोपीचन्द की आँखों से आंसू निकलने लगा। हाथी उसे देखते ही पहचान लिया और अपने मस्तक पर बठा लिया। बीरम ने पुनः अपने कुत्ते को गोपीचन्द पर ललकारा। कुत्ता भी गोपीचन्द को पहचान गया और उनके शरीर पर लोटने लगा। बीरम को फिर भी संतोष न हुआ। उसने कंकापुर माता के पास पत्र लिखा। पत्र का उत्तर तोता उड़ कर लाया। बीरम ने अपने भाई गोपीचन्द को अब पहचाना। उसका योगी रूप देखते ही वह भाई के शरीर पर गिर पड़ी और रोते-रोते प्राण त्याग दिया। गोपीचन्द को इससे बड़ा दुख हुआ। वे दौड़े हुये गुरू मछिन्द्रनाथ के पास पहुँचे और बहिन को जीवित करने का उपाय पूछा। गुरू ने कहा कि 'अपनी कानी अंगुली चीर कर दो बूंद खून पिला दो।' गोपीचन्द ने वैसा ही किया और बीरम जीवित हो उठी। गोपीचन्द न बहिन से भोजन बनाने के लिये कहा। बहिन बीरम भोजन बनाने के लिये बैठी। गोपीचन्द इधर पोखरे में स्नान करने के लिये सिपाहियों के साथ गये। गोपीचन्द ने एक बुड़की लगाई जिसे सबने देखा। दूसरी बुड़की लगाई तब भी सबने देखा। परन्तु तीसरी बुड़की लगाते ही वे अन्तर्ध्यान हो गये, फिर किसी ने नहीं देखा। गोपीचन्द भँवरे का रूप धर, गुरू मछिन्द्रनाथ के पास चले गये।

बहिन ने पोखरे में जाल डलवाया पर कुछ पता नहीं चला। रोते कलपते बहिन महल में पहुँची और प्रजाजन उसे सात्वना देने लगे।

लोकगाथा के अन्य रूप—आज से प्रायः संरसठ वर्ष पूर्व श्री ग्रियर्सन ने शाहाबाद जिले की भोजपुरी और गया जिले की मगही बोली के अध्ययन के निमित्त गोपीचन्द की लोकगाथा को एकत्र किया था।[1] अर्द्धशताब्दी पूर्व एकत्र की हुई इस लोकगाथा में और इसके वर्त्तमान मौखिक रूप में आश्चर्य जनक समानता है। मौखिक परंपरा में निवास करने के कारण लोकगाथा के रूप में अन्तर आ जाना एक स्वाभिक बात है। परन्तु इन रूपों के कथानक एवं चरित्रों में अन्तर नहीं आने पाया है। केवल ग्रियर्सन द्वारा एकत्रित रूपों के कथानक का अन्त वर्त्तमान मौखिक रूप से भिन्न है।

ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत शाहाबाद के भोजपुरी रूप का अन्त इस प्रकार होता है:—

बहिन बिरना (वर्त्तमान रूप बीरम) जब अपने भाई गोपीचन्द को पहचानती है, तो अतिशय दुख के कारण उसका प्राणान्त हो जाता है। गुरू की कृपा से गोपीचन्द पुनः उसे जीवित करते हैं, तथा वन के लिये चल देते हैं—

'चीर के अंगुरिया बहिन के पियाए
जोगी रम के चल देलें,

ग्रियर्सन द्वरा प्रस्तुत गया जिले के मगही रूप का अन्त इस प्रकार होता है:-

गोपीचन्द बहिन को पुनः जीवित करके चल देते ह, तो बहिन पुनः दुख के कारण पछाड़ खा कर गिरती है तथा धरती फटती है और वह उसमें समा जाती है।

"बहिनी उठ बैठल। गली गली के रोए।
चन्दन के पेड़ धरि रोए, चन्दन के पेड़ जवाब कैलक,
तुम का रोऊ। तोहरा भाइ जोगी होइ गइल।
एतना में बहिनी हाय करे। फाटे धरती जाय समाय।
भाइ बहिन के नाते दुन्नो जने के टूट गेल।"

प्रस्तुत लोकगाथा के वर्तमान भोजपुरी रूप के कथानक का अन्त इस प्रकार है:—

१—ग्रियर्सन-जे० ए० एस० बी० १८८५ वाल० ७१९ पृ० ३५

गोपीचन्द जब पुनः अपनी बहिन को जीवित कर देते हैं तो वह बहिन से भोजन करने के लिये कहते हैं। बहिन बीरम जब भोजन तैयार करके बुलाने आती है तो गोपीचन्द पोखरा में स्नान करने के लिये कहते हैं। बहिन चार सिपाहियों के साथ भेज देती है। गोपीचंद पोखरे में स्नान करते समय अन्तर्ध्यान हो जाते हैं और भंवरा का रूप धरकर मछिन्द्रनाथ के पास चले जाते हैं

"आपन सगड़वा (पोखरा) बहिनी देतू बताय,
बिना असननवा कइले बहिनी भोजन नाहीं होई,
तब बहिनिया चारि सिपहिया अगवा चारि-पीछे
दिहलिन लगाइ,
बिचवा में ना, अपने भइया गोपीचन्द के करे
तबतऽ सगड़े पर गइले करावे असनान
एक एक बुड़इया मारे सब कोई देखे
दुसर बुड़इया सब कोई देखे
तिसरे बुड़किया भइया नापता होइ गइले
भंवरा के रुपवा धैके गुरु मछिन्दर लगे गइले
. . . .
तब जब बहिनिया बिरमा महजलिया नवावे
जेतना रहले सूंस घरियार, घोंघी सवार सब बंधि गइले,
बकि भइया गोपीचन्द के पता नाहीं लगले
तबतऽ बहिनिया रोवत रोवत घरे चलि गइली
गउवाँ रैयत सबुर धरावें।"

उपर्युक्त तीनों रूपों में शाहाबाद जिले के भोजपुरी रूप एवं मौखिक रूप में बहिन बीरम की पुनः मृत्यु नहीं होती है। परन्तु मगही रूप में बहिन धरती में समा जाती है।

लोकगाथा के तीनों रूप का शेष कथानक समान है। राजा गोपीचन्द का योगी रूप धारण करना, माता मयनावती का अपने दूध का मूल्य माँगना; गोपीचन्द का असमर्थता प्रकट करना; माता का गोपीचन्द को कंचनपुर जाने से मना करना; सब को रोता छोड़कर गोपी चन्द का केदली बन में जाना। केदली बन में वनदेवी की सहायता से तोते का रूप धरकर कंचनपुर बहिन के यहाँ जाना; बहिन के घर मुंगिया दासी से भेंट होना; बहिन का भाई को पहचानना; विश्वास के लिये तिलक दहेज, विवाह का ब्योरा देना; गोपीचन्द का पागल हाथी और कुत्ते का सामना करना; अन्त में बहिन का

भाई को पहचानना तथा अतिशय दुख के कारण उसका प्राणान्त होना तथा गोपी चन्द का गुरू कृपा से बहिन को पुनः जीवित करना।

प्रकाशित रूप—गोपीचंद की लोकगाथा का प्रकाशित भोजपुरी रूप नहीं मिलता होता है। इसका एक अन्य प्रकाशित रूप प्राप्त होता है जिसे कि बालकराम योगीश्वर ने रचा है। यह ३३६ पृष्ठों का ग्रंथ है। भाषा ठेट पँछाहीं हिन्दी है तथा जिसमें उर्दू फारसी शब्दों का धड़ाके साथ प्रयोग हुआ है। इसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है।

गोपीचन्द की माता मैनावती अपने पुत्र से योगी बनने के लिये कहती है। गोपीचन्द और मैनावती में योग के ऊपर बड़ी देर तक बहस होती है। गोपीचन्द, अन्त में योगी बनना और जलन्धरनाथ का शिष्यत्व ग्रहण करना स्वीकार कर लेते हैं। परन्तु बीच में ही गोपीचन्द के सभासद उनसे जलन्धरनाथ के विषय में नाना प्रकार की बात कहते हैं। गोपीचन्द उनकी बातों में आ जाते हैं। गुरु जलन्धरनाथ इसी समय महलों में पधारते है। गोपीचन्द क्रोध में आकर उन्हें कुँए में फिकवा देते हैं। मैनावती यह देख कर विलाप करती हैं। उसी समय गुरु गोरखनाथ का आगमन होता है। मैनावती उनसे सब हाल कहती है। गुरु गोरखनाथ, गोपीचन्द की गलती बतलाते हैं तथा उन्हें कुएँ पर जाने से मना करते हैं। गोरखनाथ, मछिन्द्रनाथ से कुएँ में समाधिस्थ जलन्धरनाथ को निकालने का उपाय पूछते हैं। इसी बीच म जलन्धरनाथ के शिष्य कानिपा आते हैं तथा गुरु को कुएँ में से निकालने का उपाय करते है। परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती है। मछिन्द्रनाथ से उपाय पूछ कर गोरखनाथ लौटते हैं तथा कुएँ पर गोपीचन्द के रूप के पाँच पुतले रखते हैं। जलन्धर अपनी दृष्टि ऊपर करते है तथा पुतले को गोपीचंद समझ कर भस्म हो जाने का श्राप देते हैं। एक के बाद एक पाँचों पुतले भस्म हो जाते हैं तथा वे बाहर निकलते हैं। गोरखनाथ जलन्धरनाथ द्वारा गोपीचन्द को क्षमा करवाते हैं। गोपीचन्द, जलन्धरनाथ के पैर छूते हैं और उनके शिष्य हो जाते हैं।

गोपीचन्द घर बार छोड़ कर चलने के लिये तैयार होते हैं। इसी समय उनकी माता, पुत्र के मोह में पड़कर गोपीचन्द को योगी बनने से मना करती हैं। गोपीचन्द नहीं मानते हैं। इस पर माता अपने दूध का मूल्य माँगती है। गोपीचन्द माता से क्षमा माँग कर बहन चन्द्रावली से मिलने चले जाते हैं। चन्द्रावली उन्हें पहचानती नहीं है। गोपीचन्द उसके विवाह इत्यादि

१—योगीश्वर बालकराम—भक्त गोपीचन्द।

के विषय में बतलाते हैं परन्तु तिस पर भी वह नहीं पहचान पाती है। गोपीचन्द को अनेक सबूतों के पश्चात् वह पहचानती है तथा विलाप करने लगती है। गोपीचन्द उसे सोता छोड़कर चल देते हैं। चन्द्रावली अपने भाई को न पाकर प्राण छोड़ देती है। गोपीचन्द पुनः लौट कर आते हैं तथा जलन्धरनाथ की कृपा से चन्द्रावली को पुनः जीवित कराते हैं। चन्द्रावली भी वैराग्य ग्रहण करने के को कहती है। बहुत कहने सुनने पर गोपीचन्द उसकी प्रार्थना स्वीकार करते हैं। चन्द्रावली भी योगिनी बनकर वन म चली जाती है। गोपीचन्द की भेंट केदलीवन में मामा भरथरी से होती है। वे दोनों अनन्तकाल तक तप करते हैं।

उपर्युक्त कथा भोजपुरी रूप से अधिकांश में साम्यता रखती है। भोजपुरी रूप में गोपीचन्द तथा जलन्धरनाथ का कथानक नहीं वर्णित है। परन्तु शेष कथा एक समान है। पुस्तक में दी हुई कथा के अनुसार गोपीचन्द की बहिन भी योग धारण कर लेती है तथा गोपीचन्द की भेंट भरथरी से होती है। भोजपुरी रूप में बहिन का योगी होना और भरथरी से भेंट नहीं वर्णित है। चरित्रों के नाम तथा स्थानों के नाम में प्रमुख दो अन्तर हैं। प्रकाशित रूप में बहन का नाम चन्द्रावली तथा उसके नगर का नाम ढाका दिया हुआ है। भोजपुरी रूप में बहन का नाम 'बीरम' तथा उसका घर कंचनपुर में है।

प्रस्तुत कथा में प्रमुख चरित्रों के नाम भी भोजपुरी रूप से समानता रखते हैं। केवल इसमें बहिन का नाम 'चन्द्रावली' दिया हुआ है, परन्तु भोजपुरी रूप में 'बीरम' या 'बिरना' दिया हुआ है।

योगीश्वर बालकराम कृत पुस्तक में नाथपंथ के प्रायः सभी सन्तों का नाम आता है तथा साथ ही राम, कृष्ण इत्यादि अवतारों का भी उदाहरण के रूप में उल्लेख किया गया है। इसकी भाषा उर्दू फ़ारसी मिश्रित हिन्दी है तथा दोहा, चौबोला और दौड़ में लिखी गई है। उदाहरण के लिये गोरखनाथ जी बोलते हैं:—

दोहा—जीम गाफ सनी दाल है, फ काफ़िर की जंजीर।
मिल सात हरफ होत है, जोगी सिद्ध फकीर॥

चौबोला—जोगी सिद्ध फकीर जीम जुगली सत साफ गदाई का,
अज सीन शमाई शर्म करो दिल दाल दिवानी सुनाई का,
बे फाका फ़कर फकीर करे बड़ी खे से खौफ इलाही का,
अजमेर रियासत अबरब की कहू ये रस्ता जोग कमाई का,

दौड़—कुदरत से डरना। हरफ़ सातों सिद्ध करना। दुश्मन भी होय बूरा उसका नहीं करना ॥

लोकगाथा का बङ्गला रूप[1]—बंगाल में गोपीचन्द की लोकगाथा के अनेक रूप मिलते हैं। वास्तव में गोपीचन्द का सम्बन्ध बंगाल से ही था, अतएव वहाँ इस लोकगाथा का व्यापक होना स्वाभाविक है। बंगाल में गोपीचन्द विषयक तीन गाथाएँ (प्रकाशित) प्राप्त होती हैं। प्रथम विशेश्वर भट्टाचार्य द्वारा संपादित 'गोपीचन्द्रेर गान' है। इसमें गोपीचन्द की कथा विस्तार के साथ दी हुई है। इसमें विशेष रूप से गोपीचन्द (गोविन्द चन्द्र) का किसी दाक्षिणात्य राजा से युद्ध वर्णित है। वह दाक्षिणात्य राजा, राजेन्द्र चोल था जो कि १०६३ ई० तथा १११२ ई० के बीच में सिंहासनारूढ़ था। गोविन्दचन्द्र ने राजेन्द्र चोल को हरा कर उनकी दो कन्याओं से विवाह किया था।

द्वितीय गाथा दुर्लभचन्द्र का 'गोविन्द चंद्रेर गीत' मिलता है। इसमें जालन्धरपाद तथा मयनामती की कथा, मयनामती के पति मानिकचंद्र की मृत्यु की कथा तथा गोविन्द्रचन्द्र और जालन्धपाद का संघर्ष तथा गोरखनाथ द्वारा गोविन्दचंद्र की रक्षा करना वर्णित है।

तृतीय गाथा श्री दिनेशचन्द्र सेन द्वारा संपादित 'मयनामती गान' है। इसमें मयनामती का विवाह; मयनामती के पति मानिकचन्द्र की मृत्यु; मयनामती के गर्भ से राजा गोपीचन्द्र का उत्पन्न होना; गोपीचन्द का विवाह और उसका अंत में योगी होना वर्णित है।

उपर्युक्त तीनों गाथाएँ भोजपुरी से सर्वथा भिन्न हैं। परन्तु गोपीचन्द का वैराग्य ग्रहण करना सबमें वर्णित है। भोजपुरी रूप में गोपीचन्द के वैराग्य ग्रहण की कथा ही केवल सविस्तार वर्णित है।

गोपीचन्द विषयक कथाएँ—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'सिद्धान्त चंद्रिका' में वर्णित गोपीचन्द के कथा को अपने ग्रन्थ में दिया है। कथा इस प्रकार है—

१—विशेष विवरण के लिए देखिए :—
विशेश्वर भट्टाचार्य द्वारा संपादित 'गोपीचंद्रेर गान'
डा० दिनेश चन्द्र सेन 'बंग भाषा ओ साहित्य'
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय पृ० ५२; १६८ से १७२

"गोपीचन्द बंगाल के राजा थे। भर्तृहरि की बहन मैनावती इनकी माता थीं। गोरखनाथ ने जिस समय भर्तृहरि को ज्ञानोपदेश दिया था, उसी समय मैनावती ने भी गोरखनाथ से दीक्षा ली थी। वह बंगाले के राजे से ब्याही गई थी। इसके एक पुत्र गोपीचन्द और एक कन्या चन्द्रावली ; दो संतानें थीं। चंद्रावली का विवाह सिंहलद्वीप के राजा उग्रसेन से हुआ था। पिता की मृत्यु के बाद जब गोपीचन्द बंगाले का राजा हुआ तो उसके सुन्दर कमनीय रूप को देखकर मैनावती के मन में आया कि विषय सुख में फँसने पर इसका यह यह शरीर नष्ट हो जायगा। इसलिये उसने पुत्र को उपदेश दिया कि "बेटा जो शाश्वत-सुख चाहता है तो जालंधरनाथ का शिष्य होकर योगी हो जा।" जालंधरनाथ संयोगवश वहाँ आये हुये थे। गोपीचन्द राजपाट छोड़ योगी हो कदली वन में चले गये। पीछे से बहिन चंद्रावली के अत्यन्त अनुरोध पर उसे भी योगी बनाया।"[१]

डा० रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' नामक ग्रंथ में गोपीचन्द की कथा का वर्णन किया है। कथा इस प्रकार है——

"गोपीचन्द के गुरु ज्वालेन्द्रनाथ थे। गोपीचन्द की माता मैनावती भी ज्वालेन्द्र नाथ से प्रभावित थीं। मैनावती आध्यात्मिक दृष्टि से अपने पुत्र गोपीचन्द को चाहती थी किन्तु गोपीचन्द ने इसका सांसारिक दृष्टि से दूसरा ही अर्थ लगाया। मैनावती के मनोभावों में ज्वालेन्द्रनाथ का हाथ देखकर गोपीचन्द ने ज्वालेन्द्रनाथ को कुएँ में डाल दिया। किन्तु वे मरे नहीं। अपने योगबल से कुएँ में समाधि लगा कर बैठ गए। गोरखनाथ ने कुएँ पर आकर ज्वालेन्द्रनाथ से निकलने की प्रार्थना की। ज्वालेन्द्रनाथ मौन रहे। तब गोरखनाथ ने गोपीचन्द की प्रतिमा कुएँ पर रखकर उनसे बाहर आने का आग्रह किया। गोरखनाथ जानते थे कि यदि स्वयं गोपीचन्द कुएँ पर खड़ा किया जायगा तो गोपीचन्द भस्म हो जायेंगें। हुआ भी यही। श्री ज्वालेन्द्रनाथ के योगबल से गोपीचन्द की प्रतिमा जलकर भस्म हो गई। दुबारा प्रतिमा रखने पर भी ऐसा ही हुआ। अन्त में गोपीचन्द को अत्यन्त विनय और प्रार्थना से खड़े करते हुए गोरखनाथ न ज्वालेन्द्रनाथ को कुएँ से बाहर निकलने का अनुरोध किया और गोपीचन्द को अमरत्व का आशीर्वाद देते ज्वलेन्द्रनाथ कुएँ से बाहर निकले। इसके पश्चात् माता मैनावती की आज्ञा से गोपीचन्द ने वैराग्य धारण कर लिया।"[२]

१——आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय पृ० १६८-१६९

२——डा० रामकुमार वर्मा——हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १७२-७३

'सिद्धान्त चंद्रिका' में वर्णित कथा गोपीचन्द के भोजपुरी मौखिक रूप से कुछ समानता रखती है। गोपीचन्द का वैराग्य ग्रहण करना; बहन से भेंट करना तथा तप करने के लिये बन चला जाना; दोनों रूपों में समान है। बहन के नाम का अन्तर मिलता है। प्रस्तुत कथा में भी चंद्रावली नाम दिया हुआ है और भोजपुरी रूप में 'बीरम'।

वस्तुतः उपर्युक्त उद्धृत दोनों कथाएँ योगीश्वर बालकराम कृत 'गोपीचन्द भरथरी से पूर्णतया साम्यता रखती हैं। कथानक, चरित्रों के नाम तथा स्थानों के नाम इत्यादि सभी उसमें समान हैं।

गोपीचन्द की ऐतिहासिकता

लोकगाथा के अन्यान्य रूपों और कथाओं में गोपीचन्द को बंगाले (बंगाल) का राजा कहा गया है। अनेक विद्वानों ने भी गोपीचन्द को बंगाल का ही राजा माना है तथा उनका संबंध पालवंश से बतलाया है। परंतु ऐतिहासिक ग्रंथों के अनुशीलन से गोपीचन्द का बंगाल का राजा होना, नहीं प्राप्त होता है। पालवंश के परवर्ती राजाओं का उल्लेख करते हुए श्री मजूमदार ने राजा मदनपाल का उल्लेख किया है। उनके कथनानुसार मदनपाल, पालवंश का अंतिम राजा था।[1]

बिहार में कुछ पालवंश से संबंधित राजाओं का नाम मिलता है। इनके नामों के अन्त में 'पाल' शब्द जुड़ा हुआ है। इन्हीं में से 'गोविन्दपाल' नामक राजा का नाम मिलता है। गोविन्दपाल को आधुनिक गया जिले का राजा बतलाया गया है। कुछ हस्तलिखित प्रतियों एवं शिला लेखों में इसे 'गौड़ाधिपति' कहा गया है तथा यह भी उल्लखित है कि इनका राज्य ११६२ ई० में समाप्त हो गया। श्री मजूमदार का कहना है कि पालवंश के अंतिम राजा मदनपाल का संबंध गोविन्दपाल से अभी तक स्थापित नहीं हो सका है। यदि उपर्युक्त प्राप्त तथ्य सत्य है तो मदनपाल के पश्चात् ही गोविन्दपाल सिंहासनारूढ़ हुए होंगे और इनके राज्य का विस्तार गया जिले तक रहा होगा।[2]

अतएव इतिहासकारों के मन में अभी संदेह है कि 'गोविन्दपाल' बंगाल के अधिपति थे। परंतु यदि यह सत्य है कि गोविन्दपाल गौड़ाधिपति थे तो निश्चित

१—आर० सी० मजूमदार—हिस्ट्री आफ बेंगाल, पृ०, १७१—१७२
२—वही

रूप से यही हमारे लोकगाथाओं एवं कथाओं के नायक गोपीचन्द हैं। इनके राज्य का अंत ११६२ ई० में बतलाया गया है, अतएव गोपीचन्द का समय बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध अथवा मध्यभाग ठहरता है। नाथ सम्प्रदाय का उन्नतिकाल नवीं से बारहवीं शताब्दी तक बतलाया जाता है। इसलिये यह निश्चित है कि गौड़ाधिपति गोपीचन्द का संबंध नाथ सम्प्रदाय से था।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि गोपीचन्द बंगाल के राजा मानिकचंद्र के पुत्र थे। मनिकचंद्र का संबंध पालवंश से बताया जाता है जो सन् १०९५ ई० तक बंगाल में शासनारूढ़ था। इसके बाद ये लोग पूर्व की ओर हटने को बाध्य हुये थे। कुछ पंडितों ने इस पर से अनुमान किया है कि ये ग्यारहवी शताब्दी के आरम्भ में हुए होंगे। गोपीचन्द का ही दूसरा नाम गोविन्दचंद्र है। हमने मत्स्येन्द्रनाथ का समय निर्धारित करने के प्रसंग में तिरूमलय से प्राप्त शैललिपि से इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी के आस पास होना पहले भी अनुमान किया है।'[1]

तिरुमलय की शैललिपि तथा 'गोपीचंद्रेर गान' नामक ग्रंथ में गोपीचन्द का दाक्षिणात्य राजा राजेन्द्रचोल से युद्ध वर्णित है। राजेन्द्रचोल का समय १०६३ से १११२ ई० तक था। अतएव इन दोनों तथ्यों के अनुसार गोपीचन्द का समय ग्यारहवीं शताब्दी ठहरता है।[2]

तुफतुल किरान में पीरपटाव (सम्भावित गोपीचन्द) की मृत्यु १२०९ ई० में दी हुई है। इस अनुसार गोपीचन्द बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वर्तमान थे।[3]

उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि गोपीचन्द, निश्चित रूप से ऐतिहासिक व्यक्ति थे। उनका संबंध पालवंश से था तथा वे ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच में सिंहासनारूढ़ थे।

लोकगाथा में गोपीचन्द का संबंध भरथरी से बतलाया जाता है। गोपीचन्द, राजा भरथरी के भाँजे थे। जैसा कि हमने भरथरी की ऐतिहासिकता पर

१—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ सम्प्रदाय—पृ० १६८

२—वही पृ० ५२

३—वही पृ० १६८

विचार किया है, उसके अनुसार यदि भरथरी शकारि विक्रमादित्य के भाई थे, तब तो गोपीचन्द से वे बहुत पहले हो चुके थे। यदि भरथरी उज्जैन के प्रतिहारों से संबंध रखते हैं, तब उनका संबंध गोपीचन्द से सम्भव हो सकता है। वस्तुत: इस संबंध की ऐतिहासिकता पूर्णतया संदिग्ध है।

भरथरी और गोपीचन्द का चरित्र—योगकथात्मक लोकगाथाओं के नायकों का चरित्र वर्णन अधिकांश रूप में समान है। अतएव यहाँ पर गोपीचन्द और भरथरी के चरित्र पर एक साथ ही विचार किया गया है। दोनों के चरित्र में प्रमुख अन्तर यही है कि राजा भरथरी के वैराग्य की कथा उनकी पत्नी सामदेई से प्रारम्भ होती है और राजा गोपीचन्द के त्याग की कथा माता मैनावती और बहन बीरम से सम्बन्ध रखती है।

योगकथात्मक लोकगाथाओं के नायक एक मत विशेष से सम्बन्ध रखते हुए भी सर्वसाधारण में अपनी लोकप्रियता रखते है। इसका प्रमुख कारण है उनके जीवन का त्याग और तप। भारतीय संस्कृति की मूल भावना त्याग एवं तप में ही निहित है। अतएव भारतीय जीवन में इनके चरित्र का लोकप्रिय होना एक स्वाभाविक बात है।

भरथरी का चरित्र एक प्रतापी एवं अनुभूतिशील राजा के समान चित्रित हुआ है। अपने समय का महान् प्रतापी शासक, जीवन के विलास वैभव में रत रहने वाला, क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति, राजा भरथरी घटनाक्रम में पड़कर जीवन से अनासक्त हो जाता है। भारतीय इतिहास में इस प्रकार की अनेक घटनायें मिलती है जब कि महाप्रतापी व्यक्तियों ने स्त्री प्रेम के कारण अथवा प्रमिका के वियोग के कारण वैरागी हो गये हैं। राजा भरथरी भी इस प्रकार का एक व्यक्ति है जिसे मिलन की प्रथम रात्रि में ही भविष्य का संदेश मिलता है। उसकी स्त्री सामदेई पूर्व जन्म की मां सिद्ध होती है। भरथरी के हृदय को ठेस लगता है। घटनाक्रम आगे बढ़ता है। गुरु गोरखनाथ द्वारा कालामृग पुन: जीवित हो जाता है तो मृगिणियाँ भरथरी को धिक्कारती हैं—

"एक त पापी हवे राजा भरथरी जे कइलें सत्तरसौ
मिरगिन के रांड।
आउर एक त हवें बाबा गोरखनाथ जे रखलें सबकर
अहिवात"।

भरथरी अपने गौरवपूर्ण जीवन की इस लाचारी को देखता है। उसका हृदय आन्दोलित हो उठता है। जीवन की निस्सारता पर तथा ऐश्वर्य के मिथ्याभिमान पर उसकी सम्यक् दृष्टि जाती है। उसे अनुभव हो जाता है कि बिगाड़ने वाले से बनाने वाला अधिक महत्त्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ होता है। इस प्रकार उसके जीवन की दिशा निश्चित हो जाती है और वह गुरु गोरखनाथ के चरणों में गिर पड़ता है।

परन्तु अभी तो शिष्यत्व की प्रथम परीक्षा उसे देनी ही थी। वह अपनी रानी के सम्मुख जाता है और उसको 'मां' कहता है। स्त्री-प्रेम तथा जीवन के वैभव विलास से उन्मुख होकर वह परीक्षा में उत्तीर्ण होता है तथा महान् संत के रूप में अपना नाम अमर कर जाता है।

गोपीचन्द के कमनीय यौवन में भी भरथरी के समान विषम परिस्थिति उपस्थित होती है। माता का मोह भरा वात्सल्य, रनिवास की सिसकियां, प्रजाजनों की अटूट श्रद्धा और फिर उनके ऊपर एकमात्र प्रिय अनुजा बीरम का भ्रातृप्रेम, गोपीचन्द के वैराग्य मार्ग में उपस्थित होता है। परन्तु दृढ़ निश्चयी गोपीचन्द इस माया जाल से तनिक भी विचलित नहीं होता है। वह बंधनमुक्त होकर चल देता है। चलते समय माता उससे अपने दूध का मूल्य माँगती है तो वह कहता है—

'कौनों बिधवा माता तू देतू छुरिया कटारी,
काटि के करेजवा माता आगे धै देतीं,
सिरवा कलफ के माता देतीं दुधवा के दाम
तौनों पर नाई होवें माई तोरे दुधवा से उरिन।'

माता मैनावती कितना भी कहती है—

'बड़ बड़ जतनियाँ से बेटा गोपीचंद पालीं
कहलीं अइब गाढ़े दिन कामें'

परन्तु गोपीचन्द को अपनी माता की सेवा से बढ़कर ब्रह्मोपासना की धुन है। वह सब को बिलखता छोड़कर गुरू के पास चला जाता है।

योगकथात्मक लोकगाथाओं में मोह एवं त्याग का जितना खरा चित्रण मिलता है, उतना अन्य किसी भी लोकगाथा में नहीं वर्णित है।

नाथ संप्रदाय के 'इन्द्रियनिग्रह' के सिद्धान्त को अति रोचक एवं सुगम ढंग से इन लोकगाथाओं में व्यक्त किया गया ह। नाथधर्म में 'इन्द्रियनिग्रह' को सबसे प्रमुख स्थान दिया गया है। इन्द्रियनिग्रह में बाधा डालने वाली 'स्त्री होती है। इसीलिये नाथ संप्रदाय में 'स्त्री' को कहीं भी स्थान नहीं दिया गया ह। प्रस्तुत लोकगाथाओं में इस सिद्धान्त का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया गया है। मोह एवं माया की प्रतिमूर्ति स्त्री को भरथरी एवं गोपीचन्द अपने दृढ़ संकल्पों से त्याग देते हैं। इसी पुनीत त्याग की गाथा को जोगियों ने अपनी सारंगी की धुन पर चढ़ाकर समस्त देश को वैराग्य एवं तप का संदेश दिया है।

अध्याय ७

लोकगाथाओं में संस्कृति एवं सभ्यता

भोजपुरी संस्कृति एवं सभ्यता के मूल में प्रधान रूप से वीर प्रवृत्ति निहित है। श्री ग्रियर्सन तथा अन्यान्य विद्वानों ने इसी तथ्य को स्वीकार किया है। ग्रियर्सन ने भोजपुरी भाषा पर विचार करते हुये लिखा है कि, 'भोजपुरी उस शक्तिशाली, स्फूर्तिपूर्ण और उत्साही जाति की व्यावहारिक भाषा है जो परिस्थिति और समय के अनुकूल अपने को बनाने के लिये सदा प्रस्तुत रहती है और जिसका प्रभाव हिन्दुस्तान के प्रत्येक भाग पर पड़ा है।"१

अतएव भोजपुरी लोकगाथाओं में भी प्रमुखरूप से वीरत्व की भावना पाई जाती है। भोजपुरी वीरकथात्मक लोकगाथाओं के अतिरिक्त प्रेमकथात्मक, रोमांचकथात्मक तथा योगकथात्मक लोकगाथाओं के अन्तर्गत भी यही वीरप्रवृति दिखलाई पड़ती है। वीरता का अर्थ युद्धवीरता ही नहीं है, अपितु जीवन की प्रत्येक जटिल परिस्थितियों का साहस के साथ सामना करना ही वीरता है। भोजपुरी लोकगाथाओं के प्रत्येक वर्ग के नायक अथवा नायिकाएँ इस कथन का समर्थन करती हैं।

भोजपुरी लोकगाथाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्रायः समस्त लोकगाथाएं देश की मध्ययुगीन संस्कृति एवं सभ्यता से सम्बन्ध रखती हैं। मध्ययुग, क्या राजनीतिक क्षेत्र में अथवा क्या धार्मिक क्षेत्र में, एक महान् उथल-पुथल का समय था। उस समय देश में विदेशियों का वेग के साथ आगमन हुआ। अनेक महान् राज्यों की स्थापना हुई तथा अनेक बड़े राज्य उजड़ गये। जीवन की रक्षा का माध्यम खड्ग ही था। परन्तु इस राजनीतिक अराजकता में भी ग्रामीण जीवन में शान्ति और तारतम्य था। राजा, राजा से लड़ते थे, तथा सेना, सेना से लड़ती थी, प्रदेशों एवं प्रान्तों का निपटारा होता जाता था, परन्तु गांवों का जीवन पुरातन काल से शांति एवं समान रूप से चला आ रहा था। वे राजनीतिक अधीनता चुपचाप स्वीकार कर लेते थे, परन्तु अन्य सभी क्षेत्रों म स्वतंत्र थे। उनकी आन्तरिक चिन्ताधारा में कोई

१—ग्रियर्सन—लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इन्डिया—भाग ५

विशेष अन्तर नहीं आया था। धर्म के प्रति, देवी देवताओं के प्रति, वीरपुरुषों के प्रति उनकी आस्था अटूट थी।

राजनीतिक दृष्टि से शांत रहते हुये भी गांव के जीवन में, धार्मिक विश्वासों में अनेक हेर फेर हुये, परन्तु गांव का धार्मिक जीवन अन्ततः हिन्दू ही था। इस्लाम धर्म ने चाहे कितने वेग से क्यों न पदार्पण किया, परन्तु ग्रामीण जीवन के विश्वासों के सम्मुख वह अकर्मण्य सिद्ध हुआ। वे ग्रामीण हिन्दू, चाहे वैष्णव थे, चाहे शैव या शक्त अथवा वे नाथधर्म से भी क्यों न प्रभावित रहे हों, परन्तु सभी सिमट कर हिन्दू धर्म में ही सुरक्षित थे। एक अद्भुत समन्वय उनके जीवन में था जो आज भी गांवों में परिलक्षित होता है। इसी समन्वयी जीवन ने ही कबीर एवं तुलसीदास जैसे महात्माओं को उत्पन्न किया।

भोजपुरी लोकगाथाओं में इसी समन्वयकारी जीवन का मनोरम चित्र उपस्थिति किया गया है। लोकगाथाओं में युद्ध है, जीवन का संघर्ष है, मत मतान्तरों का अन्तर्द्वंद्व है, परन्तु सभी में एक निहित एकात्मता है, सभी में सत्यं, शिवं एवं सुन्दरं का सन्देश है। खल प्रवृत्तियों का कितना भी प्राबल्य उनमें चित्रित किया गया हो, परन्तु अन्त में विजय उसी की होती है जो मानवता के चिरन्तन सत्य और आदर्शों को लिए हुए है। उस सत्य और उस आदर्श का आधार भारतीय संस्कृति ही है। भारतीय संस्कृति की मूल भावना में आध्यात्मिक जीवन को श्रेष्ठता मिली है। यही आध्यात्मिक जीवन इस देश में अनेकानेक धार्मिक रूपों में परिलक्षित हुआ है। धर्म के अनेकानेक रूप होते हुए भी 'ईश्वर' अथवा 'ब्रह्म' के विषय में मतभेद नहीं है। भोजपुरी लोकगाथाओं में इसी एक मूल भावना को लेकर धर्म में प्रगाढ़ आस्था प्रदर्शित की गई है। इसी धर्मध्वजा को लेकर लोकगाथाओं के नायक एवं नायिकायें आगे चलते हैं। वे प्रेमी याचक हैं, परन्तु उनमें मर्यादा की सीमा लांघ जाने की प्रवृत्ति नहीं है। वे दैवी कृपा से युक्त हैं परन्तु मानवता के सरल जीवन से दूर नहीं हैं। लोकगाथाओं के चरित्र पाश्चात्य विचारकों के अनुसार 'प्रिमिटिव कल्चर' से सम्बन्ध नहीं रखते हैं अपितु उनका जीवन सुसंस्कृत है। वे एक महान संस्कृति से सम्बन्ध रखते हैं जिसे पुनः गतिशील बनाने के लिए भगवान को भी मनुष्य रूप में जन्म लेना पड़ता है। इसीलिए तो लोकगाथाओं के नायक एवं नायिकायें अवतार के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं और 'परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्' का कर्त्तव्य संपन्न करके पुनः ब्रह्म में विलीन हो

जाते हैं। लोकगाथाओं के नायक समाज में सुव्यवस्था एवं सामंजस्य निर्माण करते हैं। सभी धर्मों को मान्यता देते हैं, सभी देवी देवताओं की पूजा करते हैं और इस प्रकार समन्वयकारी जीवन का अनुपम चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं।

भोजपुरी लोकगाथाओं में जिस सामाजिक अवस्था का वर्णन किया गया है, वह एक अत्यन्त सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज है। चातुर्वर्ण्य अवस्था अपनी चरम सीमा पर है। ब्राह्मण अपने महत्व को रखता है, क्षत्रिय राजकारण एवं युद्ध में कुशल है, वैश्य व्यापार में लगा हुआ है और शूद्रों का जीवन सेवारत है। इसके अतिरिक्त लोकगाथाओं में मानव की स्वाभाविक चित्त प्रवृत्तियाँ, उनका धर्माचरण, उनका सदाचार, उनकी ईर्ष्या एवं कलह के जीवन का स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

भोजपुरी लोकगाथाओं में ब्राह्मण जाति का स्थान अनिवार्य है। इनमें ब्राह्मण जाति का चित्रण कुलपुरोहित के रूप में ही किया है गया। पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा तथा संस्कारों का संचालन करना ही उनका मुख्य कार्य है। वे कहीं शिक्षक अथवा उपदेशक के रूप में नहीं चित्रित किये गये हैं अपितु उनका कार्य है बालक के जन्म पर उसका लक्षण देखना, यात्रा के लिए शुभ साइत देखना, ग्रहदशा का विचार करना, वर-वधू खोजने जाना तथा उनका विवाह कराना इत्यादि। भोजपुरी की दो लोकगाथाओं में ब्राह्मणों की ईर्ष्या प्रवृत्ति भी प्रमुख रूप से चित्रित की गई है। सोरठी की लोकगाथा में व्यास पण्डित ईर्ष्या वश सोरठी को मार डालना चाहते हैं। इसी प्रकार बिहुला की लोकगाथा में विषहरी ब्राह्मण, खलनायक है जो कि आदर्श पात्रों को अनेकानेक कष्ट देता है। इसके अतिरिक्त शेष सभी लोकगाथाओं में ब्राह्मण पुरोहित के रूप में ही चित्रित हुए हैं।

यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि भोजपुरी संस्कृति में वीरत्व की भावना प्रमुख रूप से वर्त्तमान है। इस दृष्टि से लोकगाथाओं में क्षत्रियों का जीवन अत्यन्त उदात्त रूप से चित्रित हुआ है। क्षत्रिय का धर्म है राज्य करना, तथा प्रजा की रक्षा करना। अतएव भोजपुरी लोकगाथाओं में क्षत्रिय जाति अत्यन्त प्रतापी एवं लोकरंजनकारी के रूप में वर्णित है। अधिकाँश लोक-गाथाओं के नायक क्षत्रिय हैं जैसे बाबू कुँवर सिंह, विजयमल, आल्हा ऊदल, गोपीचन्द तथा भरथरी। इन सभी नायकों का जीवन क्षत्रिय आदर्श से ओत-प्रोत है। उनका राज-पाट, सुखवैभव, युद्ध और त्याग, तपस्या, उदारता सभी क्षत्रियत्व के योग्य हुआ है। उन्होंने कभी भी कोई निकृष्ट कर्म नहीं किया

है। वे लोकरंजनकारी, प्रजाहितकारी तथा दुष्टों का मानमर्दन करने वाले हैं। 'लोरिकी' की लोकगाथा जो अहीर जाति से सम्बन्ध रखती है, उसमें भी क्षत्रिय आदर्श का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। इस लोकगाथा का नायक 'लोरिक' स्वयं को क्षत्रिय ही कहता है। उसके जीवन के समस्त कार्यकलाप क्षत्रिय वीर की भाँति हैं, अतएव उसका क्षत्रिय कहना उपयुक्त है। वस्तुतः भोजपुरी प्रदेश में राजपूत क्षत्रियों की एक बहुत बड़ी आबादी है। मध्यकाल में तथा इसके पूर्व भी इनके वंशधर बड़े प्रतापी व्यक्तियों में थे। इसी कारण भोजपुरी समाज, क्षत्रिय जाति का बहुत आदर करता है। बाबू कुँवरसिंह इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

वैश्यों के जीवन का चित्रण 'शोभानयका बनजारा' की लोकगाथा में मिलता है। इसमें भोजपुरी समाज के व्यापार-वाणिज्य का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया गया है। शोभानयका इस लोकगाथा का नायक है जो कि सोलह सौ बैलों पर जीरा मिर्च लाद कर मोरंग देश व्यापार के लिए जाता है। व्यापार की उसे इतनी चिन्ता है कि वह प्रथम रात्रि में ही अपनी प्रिय पत्नी को छोड़ कर चल देता है। वैश्यों का धर्म है व्यापार वाणिज्य करना, यह कथन अक्षरशः इस लोकगाथा में लागू हुआ है। परन्तु इसके साथ-साथ भारतीय जीवन का आदर्श भी उसमें उपस्थित है। नायिका दसवन्ती अपने सतीत्व की रक्षा किस प्रकार करती है, यह श्रवण करने योग्य है।

प्रायः समस्त भोजपुरी लोकगाथाएँ समाज के निम्नवर्ग में प्रचलित हैं। अतएव शूद्रों और अन्त्यज (हरिजन, चमार, दुसाध) के जीवन का व्यापक चित्रण इनमें मिलता है। सर्व साधारण रूप से प्रत्येक लोकगाथा में शूद्रों के जीवन का चित्र है। अधिकाँश रूप में तो वे सेवा कार्य में ही निरत हैं, परन्तु दो एक लोकगाथाओं में खलनायक के रूप में भी वर्णित हुये हैं। लोकगाथाओं में शूद्रों की अनेक जातियों का वर्णन मिलता है जैसे, नाई, कहार, चमार, मल्लाह, धोबी, दुसाध तथा अहीर इत्यादि। यह सभी जातियाँ अपने परंपरागत कर्मों को उचित रूप से करती हैं। परन्तु सबसे उल्लेखनीय बात तो यह है कि लोकगाथाओं का उच्च समाज उन्हें घृणा की दृष्टि से देखता है। यहाँ तक कि लोकगाथाओं के आदर्श नायक एवं नायिका भी उनसे घृणा करती हैं। उदाहरण के लिये लोरिक अपने जन्म के समय में कहता है—

"सुनबे त सुनब माता कहल रे हमार,
घरवा में धगड़िन (चमारिन) माता लेबू जो बुलाय

हमरो धरमवा ये माता जाई हो नसाय
घर के बहरवे धगड़िन के राखहु बिलमाय''

इसी प्रकार सोरठी भी अपने जन्म के समय कहती है---

'एक तो चुकवा हमरा से भइल नुरे की
तेही कारण इन्द्र राजा दिहले सरपवा हो
नर जोइनी होई अवतार नुरे की
जब छुइ दीहें चमइन हमरी शरिरिया हो
हमरो धरमवा चलि जाइ नुरे की,

इस प्रकार से लोकगाथाओं में शूद्रों एवं अंत्यजों के प्रति घृणा एवं हीनता प्रदर्शित करने की परम्परा दिखलाई पड़ती है।

भोजपुरी लोकगाथाओं में सामाजिक संस्कारों का मनोरम चित्रण मिलता है, विशेष करके जन्म एवं विवाह संस्कार का तो विधिवत् वर्णन मिलता है। भारतीय समाज में यह दो संस्कार अत्यन्त महत्व का स्थान रखते हैं। प्रत्येक गृह में बालक जन्म लेता है तो उसे राम, कृष्ण का अवतार ही समझा जाता है। विवाह होता है तो घर की स्त्रियाँ यही गाती हैं कि भगवान राम, सीता से विवाह करने जनकपुर ही जा रहे हैं। भोजपुरी लोकगाथाओं में बाबू कुंवर-सिंह की लोकगाथा को छोड़कर सभी में जन्म और विवाह संस्कार अनिवार्य रूप से वर्णित है। अधिकांश लोकगाथाएं तो नायक नायिकाओं के विवाह के पश्चात् समाप्त हो जाती हैं। नायक और नायिकाओं का जन्म खलप्रवृत्तियों के नाश के लिए होता है। वे अपने उद्देश्य को पूर्ण कर वैवाहिक बंधन में आते हैं और इस प्रकार सुखी जीवन का संदेश देते हैं। इसीलिये भोजपुरी लोक-गाथाएं अधिकाँश रूप में मंगलात्मक हैं।

वीर कथात्मक लोकगाथाओं में प्रत्येक नायक वीरता का अवतार है। उसके जन्म लेते ही चारों ओर आशा और विश्वास का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। लोक जीवन में आनन्द की लहर उमड़ पड़ती है। उदाहरण के लिए लोरिक के जन्म का वर्णन इस प्रकार है---

''दिन दिन बढ़त गरभवा सवइया होत ये जाय,
छव मास बितले महिनवाँ आठो भइले आए,
नउवां महिनवा रामा चढ़ल अब रे आय,
''आधी रात होखते छत्री जनमवां लिहलस हो आए

जब तो जनमवा रे लिहले लोरिकवा मनि ए आर
सवा हाथ धरतिया ए रामा उहवां उठल हो बाय
महाबली भइल पैदवा गउरवा गुजरात
दीपक समान लोरिकवा महलवा बरत हो बाय"

कुंवर विजयमल की लोकगाथा में और भी उत्साहपूर्ण वर्णन मिलता है—

"रामा कुंवर बिजई लिहले जनमवां रे ना
रामा गढ़वा बाजेला नगरवा रे ना
रामा दुअरा पर झरे नौबतिया रे ना
रामा लागि गइले दुअरा झमेलवा रे ना
रामा मांगे लगले नेगी आपन नेगवा रे ना
रामा आइ गइले भांट पवरिया रे ना
रामा गावे लगले मंगल गीतिया रे ना
रामा देवे लगले राजा बहुदनवा रे ना
रामा अन्नधन लुटावे लगले सोनवा रे ना
रामा खुशी होइ गइले सब घरवा रे ना"

राजा उदयभान को बड़े तप के पश्चात् एक कन्या उत्पन्न हुई। सोरठी के जन्म का वर्णन कितना सुन्दर है—

"आठ तो महिनवां राजा नउआं चढ़ि गइले हो
तब भइले सोरठी के जनम नुरे की।
सवा पहर रामा सोना हीरा बरिसे हो
सोनवा के ढेरिया अंगना में लागल नुरे की"

इस प्रकार लोकगाथाओं के नायिकाओं के जन्म के साथ धन-संपदा से सभी लोग भरपूर हो जाते हैं।

भोजपुरी लोकगाथाओं में विवाह का विशद् वर्णन मिलता है। भोजपुरी प्रदेश अथवा यों कहा जाय कि जिस प्रकार उत्तरी भारत में विवाह की प्रथा प्रचलित है, उसी का ब्यौरेवार वर्णन इन लोकगाथाओं में मिलता है। इन लोकगाथाओं में वर देखना, फल्दान चढ़ना, तिलक चढ़ना, और इसके उपरान्त बारात की धूम-धाम से तैयारी करना; कन्यापक्ष की ओर बारात के लिये तथा दहेज का भरपूर प्रबन्ध करना वर्णित है। इसके पश्चात् बारात की अगुवानी, द्वारपूजा, तथा लग्न मंडप में विवाह का विधिवत् वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए शोभानयका बनजारा की लोकगाथा में विवाह का सांगोपांग वर्णन इस प्रकार है—

"राम सजे लगले सुघर बरतिया रे ना,
रामा हाथी घोड़ा साजे ले पलकिया रे ना,
रामा रथ बग्घी साजि लिहले गड़िया रे ना,
रामा रहवा के खेवा से खरचवा रे ना,
रामा लादी लिहले गाड़ी पर समनवा रे ना,
रामा दल फल भइल नगरवा रे ना,
रामा हाथी घोड़ा होई असवारवा रे ना,
रामा पहुँचल बरीयात धूम धामवा रे ना,
रामा नगर में भइल भारी शोरवा रे ना,
रामा बाजे लागल जोर से बजनवा रे ना,
रामा जुटी गइले नगर के लोगवा रे ना,
रामा मिली जुली लेई बरिअतिया रे ना,
रामा जाइके लगले दुअरिया रे ना,
रामा दुअरा पर हो लागल पुजवा रे ना,
रामा भने लगले बेद बभनवा रे ना,
रामा दुअरा के करिके रसमवा रे ना,
रामा टीकल बरियात जनवासवा रे ना,
रामा होखे लागल खातिर समानवा रे ना,
रामा सदिया के भईल जब बेरवा रे ना,
रामा मंडप में गइले दुलहवा रे ना,
रामा हो लागल विधि से विधानवां रे ना,
रामा भने लगले बेदवा बभनवा रे ना,
रामा होइ गइले कुशल बिअहवा रे ना,
रामा बर कन्या गइले कोहबरवा रे ना,
रामा कोहबर में सखिया सहेलिया रे ना,
रामा करे लगली हंसिया दिलगिया रे ना"

आल्हा के विवाह में बारात की तैयारी ऐसी हो रही है जैसे रणक्षेत्र में सब जा रहे हों।

"चलल परबतिया परबत केलाकर बांध चले तरवार
चलल बंगाली बंगला के लोहन में बड़ चंडाल
चलल मरहट्टा दक्खिन के पक्का नौ नौ मन के गोला खाय
नौ सौ तोप चलल सरकारी मंगनी जोते तेरह हजार

बावन गाड़ी पथरी लादल तिरपन गाड़ी बरूद
बत्तिस गाड़ी सीसा लद गैल जिन्ह के लगे लदल तरवार
एक रुदेला एक डेबा पर नब्बे लाख असवार''

वीर कथात्मक लोकगाथाओं में बारात की सजधज इसी प्रकार की है। विवाह मंडप में तो युद्ध होना अनिवार्य ही है। शेष सभी लोकगाथाओं में विवाह का शान्ति एवं सौजन्य पूर्ण वर्णन मिलता है।

लोकगाथाओं में दहेज की प्रथा आज से भी बढ़ चढ़ कर चित्रित की गई है। क्या गरीब क्या धनवान सभी भरपूर दहेज देते हैं। परन्तु आज की तरह उस समय किसी वस्तु की किल्लत न थी। लोकगाथाओं में समाज का प्रत्येक वर्ग सुसंपन्न है, अतएव वह अपनी शक्ति भर धन न्योछावर करता है। लोकगाथाओं में देश के दारिद्र्य का वर्णन कहीं भी नहीं मिलता है। किसी भी वस्तु की कमी किसी के जीवन में नही है। चारो ओर राम राज्य है। गोपीचन्द की लोकगाथा में दहेज का वर्णन कितना भव्य है—

'तीन सौ नवासी गऊँवा तिलक के चढ़ाई,
बारह सौ घोड़वा देईं बहिनी के दहेज,
पाँच सौ हथिया दिहलीं हँकवाई,
कहलीं आज बहिनियाँ के दिहले कुनफ़े नाहीं जाई।

. . . .

सबका बदसहिया बहिनीं कपड़ा पहिराईं
अमीर आ दुखिया के बहिनी एक्के किसमवा कइली
सोने के पिनसिया बहिनी हम त बैठाईं
चाँदी के डोलिया बहिनी तोहरे लौंड़िन के भेजवाईं।

इन लोकगाथाओं में विवाह के अतिरिक्त कहीं कहीं स्वयंवर प्रथा का भी उल्लेख किया गया है। उदाहरण के लिये सोरठी की लोकगाथा में नायक बृजाभार अनेक राजाओं द्वारा आयोजित स्वयंबर में जाता है और विजय प्राप्त करता है। परन्तु इसमें भी विवाह आदि की प्रथा उपर्युक्त वर्णन के समान है।

भोजपुरी लोकगाथाओं में जीवन के भौतिक स्तर का पूर्ण वर्णन मिलता है। लोगों का रहन सहन, श्रृंगार सज्जा एवं भोजन इत्यदि बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग का है। लोकगाथाओं के प्रमुख चरित्र अधिकांश रूप में विशाल महलों, अट्टालिकाओं में निवास करते हैं; सहस्त्रों दास दासियों से घिरे रहते हैं, सुन्दर से सुन्दर वस्त्र पहनते हैं तथा छप्पन प्रकार के व्यंजनों का भोजन करते हैं। वस्तुतः हमारे देश का लोकजीवन पुरातन काल से समृद्ध रहा है। उत्कृष्ट

वस्त्राभूषण तथा उत्कृष्ट भोज्य पदार्थों का वर्णन प्रायः सभी ग्रन्थों में मिलता है। अतएव इन लोकगाथाओं में इनका वर्णन अत्यन्त स्वभाविक है।

सोरठी की लोकगाथा में बृजाभार की स्त्री हेवन्ती के श्रृंगार का वर्णन कितना रोचक है—

"एकिया हो रामा हेवन्ती सिंगार करतौ बाड़ी रे नुकी
एकिया हो रामा पहिने पायल पाव जेबवा रेनु की
एकिया हो रामा डंड जोरे दखिन के चीर रेनु की
एकिया हो रामा चोली बंका के पहिनऽ तारी रेनु की
एकिया हो रामा कान में कुंडल नाक में बेसर रेनु की
एकिया हो रामा सोनन के बन्हनिया पेन्हऽ तारी रेनु की
एकिया हो रामा बांह में बाजूबन्द बांधऽ तारी रेनु की
एकिया हो रामा नग के जड़वल अंगूठी पेन्हऽ तारी रेनु की
एकिया हो रामा सोरहो सिंगार बत्तीसो अभरनकइली रेनु की।

'आल्हा' की लोकगाथा में सोनवां का श्रृंगार कितना भव्य है—

खुलल पेटारा कपड़ा के जिन्ह के रासदेल लगवाय,
पेन्हल घांघरा पच्छिम के मखमल गोट चढ़ाय,
चोलिया पेन्हे मुसरुफ के जेहमें बावन बंद लगाय,
पोरे पोरे अंगुठी पड़ि गैल और सारे चुनरिया के झंझकार,
सोभे नगीना कनगुरिया में जिन्ह के हीरा चमके दाँत,
सात लाख के मंगटीका है लिलार में लेली लगाय,
जूड़ा खुल गइल पीठन पर जैसे लोटे करियवा नाग,
काढ़ दरपनी मुँह देखे सोनवाँ मने मन करे गुमान"

इस प्रकार भोजपुरी नायिकायें दक्षिण की चीर और मुसरुफ की चोली ही पहनती हैं। प्रत्येक स्थान पर सोलहो श्रृंगार तथा बत्तीसो आभरण का उल्लेख मिलता है। नायिकाओं के प्रमुख आभूषणों, में चंद्रहार, माँगटीका, बाजूबन्द पायजेब, नाक में कील (नकबेसर) अंगूठी इत्यादि का वर्णन मिलता है। नायिकाओं के अतिरिक्त नायकों के वेष मे पगड़ी, चौबन्दी, धोती, कटार और मस्तक पर तिलक देने का वर्णन मिलता है।

भोजपुरी लोकगाथाओं में छत्तीस अथवा छप्पन प्रकार के व्यंजनों से कम का वर्णन नहीं मिलता है। नैमित्तिक भोजन में किसी प्रकार की कमी नहीं है।

घी, दूध, दही, मिठाई इत्यादि का तो बाहुल्य है। उदाहरण के लिये शोभानयका बनजारा की लोकगाथा में भोजन का दृश्य कितना रोचक है—

"रामा उठि गइले सब बरिअतिया रे ना
रामा भोजन के भईल बिजइया रे ना
रामा चलि गइले करन भोजनिया रे ना
रामा जाइ बइठे अंगना भितरिया रे ना
रामा बनल रहे सुन्दर भोजनवा रे ना
रामा छतीस रकम के चटनियाँ रे ना
रामा दही चीनी रबड़ी मलइया रे ना
रामा कहाँ तक करीं हम बड़इया रे ना
रामा करे लगले भोजन बरतिया रे ना"

इसी प्रकार प्रत्येक लोकगाथा में भोजन के वर्णन में छत्तीस या छप्पन व्यंजन का ही वर्णन है। इसके साथ साथ पान तम्बाकू, फ़रशी इत्यादि का भी उल्लेख है—

"रामा रचि रचि सजइहें पान बिरवा रे ना
रामा भरि डिब्बा धरिहें सिरहनवा रे ना
रामा मुश्की भरिहें चिलम तमकुआ रे ना"

लोकगाथाओं में अधिकांश रूप में निरामिष भोजन का ही उल्लेख है। मदिरा और मांस का केवल दो एक स्थान पर ही उल्लेख हुआ जो कि नगण्य है।

जीवन का यथार्थ चित्रण :—भोजपुरी लोकगाथाओं में जीवन का सरल एवं स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया गया है। इस कारण इसमें स्थान स्थान पर अश्लीलता का भी समावेश हो गया है। लोकगाथाओं में समाज के अच्छे बुरे सभी लोगों का वर्णन किया गया है, अतएव इनमें अश्लील शब्दों एवं संबोधनों का प्रयोग हो जाना स्वाभाविक है। लोकगाथाओं का गायक समाज के गुण दोष को स्पष्ट रूप में सम्मुख रखता है।

भोजपुरी लोकगाथाओं में कहीं कहीं तो गायक भी गालीगलौज करते हैं। शृंगार-रस के वर्णनों ने कहीं कहीं पर अति यथार्थवादी रूप धारण कर लिया है। शोभानयका बनजारा की गाथा में शोभा नायक मनिहारी का वेष बनाकर नायिका दसवन्ती से भेंट करता है और सौदे के मूल्य में चुंबन माँगता है।

"रामा कहे तब शोभा बनिजरवा रेना
रामा काहे भइ गइल् अनरजवा रेना
रामा सुन ठिक सउदा के दामवाँ रेना
रामा चुम्मा पर हमरे सउदवा रेना
रामा बिकेला त शहर बजरवा रेना
रामा दिहें मोहीं जिन्ही एक चुम्बवा रेना
रामा मनमाना लिहे उ सउदवा रेना
रामा इहे मोरे सउदा के दामवा रेना"

लोकगाथाओं में भोग विलास का भी चित्रण मिलता है। विजयमल की लोकगाथा में पुत्र प्राप्ति के हेतु, शुभ साइत देखकर विलास किया गया है—

"रामा तब गइली रानी राजमहलिया रेना
रामा राजा रानी सुते संगे सेजरिया रेना
रामा आधी रात बीते जब समइया रेना
रामा राजा डाले रानी गइले बहियां रेना
रामा बाएं हथवा फेरेले अंचवरिया रेना
रामा हंसि रनियाँ बोलेली बचनियाँ रेना
रामा करे लगले प्रम से पियरवा रेना
रामा पूरा भइले मौज बहरवा रेना"

पुत्र प्राति के हेतु इस प्रकार के कम ही चित्र मिलते हैं। लोकगाथाओं में नीच स्त्रियों तथा जादूगरनियों का भी विलास चित्रण मिलता है। ये नायक को देखकर मोहित हो जाती हैं और येनकेनप्रकारेण उसे चंगुल में फंसाकर रतिदान मांगती हैं।

लोकगाथाओं में गालियों में 'सरवा' 'छिनरो' शब्द का अधिक प्रयोग है। इस प्रकार की गालियाँ आदर्श से आदर्शवादी पात्र को परिस्थिति में पड़कर सुनना पड़ता है।

उपर्युक्त प्रकार के अति यथार्थवादी जीवन का वर्णन होते हुए भी हम यह कदापि नहीं कह सकते हैं कि लोकगाथाओं में असभ्य जीवन का चित्र उपस्थित किया गया हैं। भोजपुरी लोकगाथाओं में आदर्श इतना महान् है कि सभी बुराइयाँ उस आदर्श से ढँक जाती हैं। इन लोकगाथाओं का श्रवण करने से हृदय में कभी भी अपवित्र भाव नहीं उठने पाता।

प्रस्तुत अध्याय में लोकगाथाओं में भोजपुरी संस्कृति एवं सभ्यता की अभिव्यक्ति किस सीमा तक हुई है, हमने विचार किया है। स्काटलैंड के प्रसिद्ध

देशभक्त फ्लैचर का कथन है कि किसी भी देश का लोक साहित्य उसके विधान से भी बढ़कर होता है। वास्तव में यह कथन अक्षरशः सत्य है। किसी भी देश को यदि मूल रूप में समझना हो तो वहाँ के लोकजीवन से बिना परिचय पाए हुए, उस देश की सांस्कृतिक चेतना को हम नहीं समझ सकते। किसी भी देश के साहित्य और विज्ञान की उन्नति को देखकर हम वहाँ के तत्कालीन समाज की उन्नत अवस्था का अनुमान लगा सकते हैं। परन्तु अपनी कमजोरियों और मजबूतियों के साथ वह देश किन विशेष आधारों पर अवस्थित है, उसके जीवन का मूल क्या है तथा समाज की आकांक्षाएँ क्या हैं, इत्यादि जानने के लिए वहाँ के लोक साहित्य का पूर्ण परिचय प्राप्त करना होगा।

इस दृष्टि से देखने से हमें भोजपुरी लोकगाथाओं में भोजपुरी जीवन का आदर्श एवं भव्य चित्र मिलता है।

—: ० :—

अध्याय ८

भोजपुरी लोकगाथा में भाषा एवं साहित्य

भाषा—भोजपुरी लोकगाथाओं में भाषा एवं साहित्य का स्वाभाविक प्रवाह है। लोकगाथाओं में भोजपुरी ग्रामीण समाज की दैनन्दिन भाषा का प्रयोग किया गया है। लोकगाथाओं का एकत्रीकरण भोजपुरी प्रदेश के तीन जिलों से किया गया है, प्रथम छपरा जिले से द्वितीय बलिया जिले से तथा तृतीय गोरखपुर जिले से। अतएव हमारे सम्मुख भोजपुरी के अनेक रूपों में केवल आदर्श भोजपुरी रूप उपस्थित होता है। आदर्श भोजपुरी का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। आदर्श भोजपुरी प्रधानतया शाहाबाद, बलिया, गाजीपुर जिले से पूर्वी भाग और सरयू एवं गंडक के दोआब में बोली जाती है। इसमें गोरखपुर तथा सारन जिले का भी समावेश हो जाता है।

आदर्श भोजपुरी में दो प्रधान भेद हैं। एक है दक्षिणी आदर्श भोजपुरी जो कि शाहाबाद, बलिया और गाजीपुर के पूर्वी भाग में बोली जाती है तथा दूसरी उत्तरी आदर्श भोजपुरी रूप जो कि गोरखपुर और उससे पूर्व की ओर बोली जाती है। इसके भेद स्पष्ट हैं। शाहाबाद, बलिया और गाजीपुर आदि दक्षिणी जिलों में सहायक क्रिया में जहाँ 'ड़' का प्रयोग किया जाता है, वहाँ उत्तरी जिलों में 'ट' का प्रयोग होता है। इस प्रकार उत्तरी आदर्श भोजपुरी में जहाँ 'बाटे' का प्रयोग किया जाता है वहाँ दक्षिणी आदर्श भोजपुरी में 'बाड़े' का प्रयोग होता है। बलिया और सारन, दोनों जिलों में आदर्श भोजपुरी बोली जाती है, परन्तु दोनों में कुछ शब्दों के उच्चारण में अन्तर है। बलिया या शाहाबाद के लोग 'ड़' उच्चारण करते हैं परन्तु छपरा वाले 'र' उच्चारण करते हैं। उदाहरणार्थ जहाँ बलिया निवासी 'घोड़ा गाड़ी आवत बा' कहता है वहाँ छपरा निवासी 'घोरा गारी आवत बा' बोलता है।

लोकगाथाओं में भी उपर्युक्त अन्तर स्पष्ट है—

उत्तरी आदर्श भोजपुरी (गोरखपुर)

"तब तो डपटी बचनिया बोलीं सत्तर सौ मिरगिन
कि राजा सुन मोरी बात
जो राजा खेलने के सौक बाटे सिकार
तो मिरगिन मार लेंई दुइ चार"

दक्षिणी आदर्श भोजपुरी का उदाहरण—

राजा जनम लेले बाड़े लड़िकवा रेना
रामा जलदी बोलाव धगड़िन के रेना
रामा लड़िका रोवे लागे त गिरे मोतिया रेना
रामा हँसे लागे त गिरे हीरवा रेना

इन दोनों रूपों में हम 'ट' और 'ड़' का स्पष्ट अन्तर देख सकते हैं। इसी प्रकार से दोनों रूपों में किंचित अंतर मिलता है, वस्तुतः दोनों रूप अधिकांश में समान ही हैं।

साहित्य—लोकगाथाओं की प्रमुख विशेषता है उसकी वर्णनात्मकता। भोजपुरी भाषा के माध्यम से गायकों ने लोकगाथाओं को अति रोचक एवं प्रवहमान बना दिया है। विस्तृत वर्णन के लिये भोजपुरी भाषा बड़ी उपयुक्त है। हम सभी जानते हैं कि भोजपुरिये खड़ी बोली हिन्दी को भी बिलम्बित उच्चारण (रेघाकर) से बोलते हैं। इससे उनके स्वर में गेयता आ जाती है। इसलिये भोजपुरी लोकगाथाओं में वर्णनात्मकता के साथ साथ स्वाभाविक गेयता भी रहती है।

वास्तव में लोकसाहित्य के प्रत्येक अंग में साहित्य का अभाव रहता है। इसका सब से प्रमुख कारण है कि यह साहित्य ग्रामीण जनता में निवास करता है तथा साथ ही जो मौखिक परम्परा का अनुगामी है। ग्रामीण जनता 'साहित्य' शब्द से परिचित नहीं रहती। वे काव्य-कला, रस अलंकार एवं छन्द से अनभिज्ञ रहते हैं। अतएव लोकसाहित्य में साहित्यिकता का अभाव, एक प्रमुख विशेषता है।

लोकगाथाओं के गायक, घटनाओं का वर्णन करते हैं। उनके वर्णन में नायक अथवा नायिकाओं का साँगोपाँग जीवन रहता है। इसलिये वे द्रुतगति से तथा अत्यन्त विस्तार के साथ घटनाओं का वर्णन करते हैं। लोकगाथाओं में जीवन की समस्त घटना वर्णित रहती है तथा क्रमबद्ध कथानक का सिलसिला रहता है। गायक को यही चिन्ता रहती है कि कहीं भी कोई घटना अथवा कथानक छूटने न पाये। अतएव वह धाराप्रवाह रूप में वर्णन करता चलता है। इसी प्रवाह में कथानक के अनुसार गायक के स्वर में परिवर्तन होता रहता है। लोकगाथा के चरित्र को यदि दुख मिल रहा है तो गायक का स्वर करुणा से परिपूर्ण हो जायगा, यदि वह युद्ध स्थल में है तो उसके स्वर में वीरत्व का ओज

आ जाता है। इन्हीं मार्मिक एवं सुखद् अनुभूतियों के फलस्वरूप लोकगाथाओं मे अनायास ही 'अलंकारों' एवं 'रस' का परिपाक् देखने को मिल जाता है।

यह विशेषता भोजपुरी लोकगाथाओं की ही नहीं है अपितु संसार के सभी देशों की लोकगाथाओं में है। इसलिये तो पंडित रामनरेश त्रिपाठी ग्राम गीतों को अलंकृत कविता से पार्थक्य बतलाते हुये लिखते हैं कि "ग्राम गीत हृदय का धन है और महाकाव्य मतिष्क का। ग्राम गीत में रस है, महाकाव्य में अलंकार, रस रचनात्मक हैं और अलंकार मनुष्य निर्मित।.......... ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं, इनमें अलंकार नहीं केवल रस है छन्द नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।"

भोजपुरी लोकगाथाओं में प्रधान रूप से तीन रसों का परिपाक हुआ है। वह है वीर रस, शृंगार रस तथा करूण रस। अतएव हम यहाँ पर इनके उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

वीर रस :—आल्हा की लोकगाथा में युद्धों का रंग पूर्ण वर्णन है। ऊदल की वीरता का एक चित्र इस प्रकार है—

"फांद बछेड़ा पर चढ़ि गइल गंगा तीर पहुँचल बाय
पड़ल लड़ाई है छोटक से
तड़तड़ तेगा बोले उन्ह के खटर खटर तरवार
जैसे छेरियन में हुँड़ड़ा पड़ि गइल वैसे पलटन में पड़ल
रूदलबबुआन
जिन्हके टंगरी धैंके बीगे से त चूर चूर होइ जाय
मस्तक झारे हाथी के जिन्हके डोंगा चलल बहाय
थापड़ ऊँटन के चार टाँग चित हो जाय
सवा लाख पलटन कटि गइल छोटक के
जौ तक मारे छोटक के सिरवा दुइ खण्ड होय जाय
भागत तिलंग छोटक के राजा इन्दरमन के दरबार
कठिन लंका बा बघ ऊदल के काटि कइल मयदान।"

इसी प्रकार लोरिक की वीरता का वर्णन कितना भव्य है—

'एक बेरी छरकल उहवाँ लोरिकवा खिसिये आय'
छरकी के उहवाँ लोरिकवा तेगवा दिहलस घुमाय

नौ सौ फउदिया मुंड़वा काटी दिहलस गिराय
जैसे त काटे य दादा खेनी लोग किसान
तैसे त कटत फउदिया लोरिकवा मनि यें यार
पुरूब से पैठे लोरिकवा पछिम चलि रे जाय
दखिन से पैठे लोरिकवा उतर निकलि रे जाय
घुमि घुमि पलटन के दादा काटत रे बाय'

विजयमल की बीरता का चित्र कितना यथार्थ है—

रामा हिंछल धुरिया उड़वलस सरगवा रेना
रामा घेरे जैसे सावन बदरवा रेना

श्रृङ्गार रस :—वीर रस के पश्चात भोजपुरी लोकगाथाओं में श्रृङ्गार रस का अनुपम चित्र मिलता है। इसमें विप्रलंभ एवं संयोग श्रृंगार का मनोरम वर्णन मिलता है।

सोरठी की लोकगाथा में विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन—

एकिया हो रामा लीला पुर में तड़पत बाड़ी फुलिया फुल कुंवरी हो
देखतारी बटिया तोहार रेनुकी
एकिया हो रामा सुरुज मनावतारी करिके अरिजिया हो
कहिया ले अइहें बृजाभार रेनुकी
एकिया हो रामा अब कुंवर अइहें मनसा पुरइहें हो
लागल बाड़े असरा बहुत दिनवा से रेनुकी"

बृजाभार की रानी हेवन्ती का उपालम्भ वर्णन—

एकिया हो रामा गवना करवलऽ घरे लेई अइलऽ हो
ना कइलऽ कोहबर हमार रेनुकी,
एकिया हो रामा जोगवा रमवलऽ गइलऽ सोरठपुर नगरवा हो
हमरा के सामी छछनाई के रेनुकी
एकिया हो रामा पछवां लागल गइली नदी के किनरवा हो
तबहूँना कइलऽ मोर खयेलवा रेनुकी
एकिया हो रामा हमरा से गइलऽ सामी करके दगवा हो
बारह बरिस के दिनवा देई के रेनुकी
एकिया हो रामा तोहरे बचनवा पर धइलीं तिहवा हो
मनवा में करिके सबुरवा रेनुकी।

संयोग श्रृंगार—

"एकिया हो रामा बगिया में सोरठी जब पहुँचलि रेनुकी
"एकिया हो रामा देखि के फुलवरिया खुशिया भइल रेनुकी
"एकिया हो रामा जोगिया के लगवां सोरठी गइल रेनुकी
"एकिया हो रामा चारू नजरिया जब मिलल रेनुकी
"एकिया हो रामा प्रेमवा के मारे निरवा ढरेला रेनुकी

सोरठी के सौन्दर्य का वर्णन—

रामा जब सोरठा भइली जवनिया रेना
'सुरती बरेला सुरज जोतियां रेना'

आल्हा की वीरकथात्मक लोकगाथा में भी सोनवा के सौन्दर्य का नर्णन कितना रोचक है—

"फाढ़ दरपनी मुंह देखे सोनवा मने मन करे गुमान
मरजा भइया राजा इन्दरमन घरे बहिनी राखे कुंवार
बैस हमार बीत गैल नैनागढ़ में रहलीं बार कुंआर
आग लगाइब एह सूरत में नैसौवली नार कुंआर।"

'विजयमल' की लोकगाथा में मुग्धा नायिका का वर्णन कितना सुन्दर है—

'रामा पहिले लांघे तिलकी जब देवढ़िया रेना
रामा कड़के लगली चोली अनमोलिया रेना
रामा दूजे देवढ़ी लांघे तिलकी देइया रेना
रामा चोली बन्दवा टूटल ओहि समइया रेना
रामा तिसरी देवढ़ी लांघे तिलकी रनियाँ रेना
रामा खसकि गइल कमर के सरिया रेना
रामा हँसे लगली सखिया सहेलिया रेना
रामा पीटे लगली सब मिली तलिया रेना
रामा सुन सुन चलहकी भउजिया हमरी बचनिया रेना
रामा केहिरे करनवें चोली बन्दवा टूटल एराम
रामा केहिरे करनवें असगुन भइल ए राम
रामा नान्हीं से पेन्हली भउजी हम सारी चोलिया रे ना
रामा कबहीं ना अइसन अचरज भइल ए राम
रामा रहि रहि आवे भउजी हमरा रोअइया ए राम
रामा नयना टपकि नवरंग भीजेला ए राम

तिलकी के इस अज्ञान पर उसकी भाभी चल्हकी कहती है—

"रामा बोले लगली चल्हकी भउजिया रेना
ननदी असगुनवा नाहवे इ सगुनवा हवे रेना
ननदी सुनि लेहू हमरो बतनवा रेना
तोरा कन्ता अब अइहें रेना"

वह कहती है कि तेरे कन्त आ रहे हैं इसलिये यह सगुन हो रहें हैं।

करुण रस—भोजपुरी लोकगाथाओं में वीर एवं श्रृङ्गार रस के पश्चात् करुण रस का प्रमुख स्थान है। गायक जब करुण स्वर में कोई दुखदायी प्रसंग को गाते हैं तो श्रोताओं पर उसका गहरा असर पड़ता है। कभी कभी तो लोगों के आंखों से आँसू निकल पड़ते हैं और भाव विहृल हो जाते हैं। भरथरी एवं गोपीचन्द की गाथा तो करुण रस की प्रतिनिधि लोकगाथा हैं। जोगियों की सारंगी पर जब इसका गान होता है तो करुणा का वातावरण छा जाता है।

भरथरी जब योगी रूप धारण करके चलने लगते हैं तो रानी सामदेई का का विलाप कितना करुणाजनक है—

"जग में अम्मर राजा भरथरी, कर में लिया वैराग
मेरी मेरी करके जग में अइलें
मेरी माया की जंजाल
पहिन के गुदड़ी राजा राम के चलवें
तो रानी गुदड़ी धय ठाढ़
गुदड़ी ठोंगवा रानी सामदेई धइलीं
स्वामी सुनो मेरी बात
ओही दिन सामी ख्याल करीं
जेही दिन गवना ले अइलीं हमार
हथवा समिया बंधल कंगन
मथवा मौरवा चढ़ाइ स्वामी
गले में डललीं जयमाल
अम्मर सेन्दुरा देइ माँग
देके सन्दुरवा स्वामी प्राण के बेधल
कि दिनवा के लगैहें पार—
गवने की धोती सामी धुमिल न भइले
नाईं छूटल पियरी दाग

इसी प्रकार राजा भरथरी जब काले मृग का शिकार करते हैं, तो काला मृग मरते समय कहता है—

'गिरत के बखत राजा से मिरगा कइले नयना से जवाब,
बिना कसुरवा राजा हम्में मरलीं सीधे जइबें सुरधाम,
अंखिया काढ़ि राजा अपने रानी के दीहऽ बैठल करिहें सिंगार,
सिंधिया काढ़ि कौनो राजा के दीहऽ कि दरवाजा के सोभा बन जाय,
खलवा खिचाय कौनो साधू के दीहऽ कि बैठें आसन लगाय,
मसुआ तलहरि राजा रउरे खाइब कि जोगवा अम्मर होइ जाय,
अतना कह मिरगा परान छोड़े तो मिरगी करती हैं जवाब,
कि जैसे सत्तर सै मिरगिन कलपैं वैसे कलपैं रनियां तोहार,

राजा गोपीचन्द की लोकगाथा भी करुण रस से व्याप्त है। गोपीचन्द जब योगी होकर चलने लगता है तो उसकी माता के हृदय में पुत्र के प्रति मोह उमड़ पड़ता है और वह कहती है—

"बड़ बड़ जतनियाँ से बेटा गोपीचन्द पालीं
कहलीं अइब गाढ़े दिनवा गोपीचन्द कामें
नौ नौ और महिनवा बेटा कोखिया में सेईं
तोहरे करनवां बेटा प्राग नहइलीं
तोहरे अस करनवा बबुआ तिरथवा कइलीं"

इसी प्रकार जब गोपीचन्द की भेंट बहिन बीरम से हुई तो बहन के दुख का वारापार न रहा—

'तब जैसे लेवरुआ टूटे गइया पर वैसे बहिनियां
बीरम टूटे भइया पर,
तब पकड़ के गोड़वा बहिनी बिरम लगे भेंटें
भेंटत भेंटत बहिनी प्राण छोड़ दिहलीं,"

योगकथात्मक लोकगाथाओं के अतिरिक्त अन्य लोकगाथाओं में भी करुण रस का वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए बिहुला की लोकगाथा में बाला लखन्दर के मृत्यु के पश्चात बिहुला विलाप करती है—

'स्वामी सुरपुरवा गइले ए रामा
रामा धरती में पिटी कर सिर रे दइबा
डहंकी के बिहुला रोये ए राम
रामा बहु विधि रोई के कहे रे दइबा

ए राम हमरा के लागी भारी कलंकवा रे दइबा
सब लोगवा दोसवा दिहें ए रामा
ए राम एक मोर जरले करमवा रे दइबा
दूजे बदनमवां होइ ए राम
ए राम, सब लोग मिलि मोहें कहिहें रे दइबा
बिहुला आपन पुरसुवा मरली ए राम
ए राम इहे सब सोची बिहुला रोवे रे दइबा
नयना से निरवा ढारी ए राम"

इन उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भोजपुरी लोकगाथाओं में रस का परिपाक अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से हुआ है। उसमें प्रयत्न-पूर्वक रस निर्माण की चेष्टा नहीं की गई है। उपर्युक्त पद्यांशों को पढ़ने से भी संभवतः हृदय में रस की अनुभूति न हो परन्तु श्रवण करने से तो अवश्य ही रसानुभूति होती है। इस रसानुभूति को उत्पन्न करने का श्रेय कथानक एवं गायक को है। कथानक के अनुरूप ही गायक विभिन्न स्वरों से रसोद्रेक करता है।

छंद-शैली—भोजपुरी लोकगाथाओं में छन्द विधान नहीं पाया जाता है। वास्तव में यदि इसे छन्द नाम अभिहित भी किया जाय तो उसे हम 'द्रुतगति-छन्द' कह सकते हैं। जिस प्रकार ग्रीस के आदि-कवि ने 'रन-आन-वर्सेस के द्वारा गाथाओं की रचना की थी, ठीक उसी प्रकार भोजपुरी गायक इसी छन्द के द्वारा लोकगाथा को गाते हैं। योगकथात्मक लोकगाथाओं में संगीत शास्त्र के अनुसार थोड़ा सा क्रम रहता है, परन्तु इसमें भी लय प्रमुख है, मात्रा नहीं। वस्तुतः यह कथोपकथन में गाया जाता है अतएव इसमें भी छन्द का अभाव रहता है।

अलंकार—यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि लोकगाथाओं में साहित्यिकता का पूर्ण अभाव रहता है। अतएव स्वाभाविक रूप से भोजपुरी लोकगाथाओं में छन्द, अलंकार इत्यादि का समावेश नहीं रहता। स्वाभाविक प्रवाह म हमें कहीं कहीं अलंकार का प्रयोग दिखलाई पड़ जाता है। भोजपुरी लोकगाथाओं में विशेष रूप से 'उपमा अलंकार' का ही उदाहरण प्राप्त होता है। 'शोभानायका बनजारा' की लोकगाथा में शोभानायक के सुन्दर रूप की उपमा की गई है—

'रामा नयका के सुरतिया जैसे उगल सुरुजवा रेना'

सोरठी की सुन्दरता का एक वर्णन इस प्रकार है—

"एकिया हो रामा सुरज के जोतिया सम बरेली सुरतिया हो,
केसवा नागिनिवाँ लहरावे रेनुकी"

वस्तुतः लोकगाथाओं में अलंकार का विधान बहुत कम पाया जाता है। उनमें तो प्रत्येक पंक्ति के साथ कथा आगे बढ़ती रहती है। घटनाओं का समावेश इतना अधिक रहता है कि गायक को भाषा सजाने का अवसर ही नहीं मिलता।

कुछ ठेठ भोजपुरी शब्द—भोजपुरी लोकगाथाओं में गायक वृन्द कथानक एवं चरित्रों के मनोभावों को स्पष्ट करने के हेतु कुछ ठेठ शब्दों का प्रयोग करते हैं। इन शब्दों का भावार्थ बड़ा ही सटीक रहता है। अध्ययन की दृष्टि से निम्नलिखित कुछ चुने हुए शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं।

खुखसान—पीट पीट कर मृत्यु की अवस्था तक पहुँचा देना।
लजकोंकड़—अतिशय लज्जा करने वाला (झेंपू)।
निकसुआ—घर से निकाला हुआ।
अम्मल—अवधि।
फर—यह अंग्रेजी शब्द 'फायर' का भोजपुरी रूप है।
सोगनो—हरजाई।
भकसी—भट्ठी।
हनरहनर—एक विशेष ध्वनि।
लेवरुआ—गाय का बछड़ा।
छछनाइ—चिढ़ना।
तिहवा—संतोष रखना।
खिखिआइ—क्रोधित होना।
बुड़बक—बुद्धिहीन।
तिवई—स्त्री।

अध्याय ६

भोजपुरी लोकगाथा में धर्म का स्वरूप

भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है। यहाँ राजनैतिक एवं आर्थिक समस्यायों से अधिक धर्म पर विचार किया गया है। आज के आधुनिकतम् जीवन का प्रभाव नगरों पर तो अवश्य पड़ा है परन्तु गांवों में धर्म की परम्परा पर अभी प्रभाव नहीं पड़ सका है। गांवों में अभी भी धार्मिक जीवन एवं पूजा-पाठ का प्राधान्य है। इसी धार्मिक जीवन की अभिव्यक्ति भोजपुरी लोकगाथाओं में हुई है। यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि अधिकांश भोजपुरी लोकगाथाएं देश की मध्ययुगीन संस्कृति से सम्बन्ध रखती हैं, अतएव इन लोकगाथाओं में उस समय के प्रचलित मत मतान्तरों का समावेश हुआ है।

भोजपुरी लोकगाथाओं में मत विशेषों का तात्विक समावेश नहीं हुआ है, अपितु कथानक को आदर्शवादी बनाने के हेतु अनेक देवी देवताओं के नाम का ही उल्लेख हुआ है। भोजपुरी जीवन में राम, कृष्ण, विष्णु, हनुमान तथा शिव इत्यादि का स्थान सर्वोपरि है। परन्तु लोकगाथाओं में शिव के अतिरिक्त उपर्युक्त नामों का उल्लेख नहीं है। लोकगाथाओं एवं लोकगीतों में अवश्य ही इन नामों की भरमार है। समस्त भोजपुरी लोकगाथाओं में प्रधान रूप से शिव, दुर्गा, इन्द्र, लालदेव (हनुमान) तथा गोरखनाथ का उल्लेख होता है। इस दृष्टि से उस समय के प्रचलित तीन धर्मों के पूज्य व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है। वे धर्म हैं, शैव धर्म, शाक्त धर्म तथा नाथ धर्म।

शैव धर्म—भोजपुरी लोकगाथाओं में शिव के नाम का भी कम ही उल्लेख है। केवल एक लोकगाथा में शिव पूजा चित्रित की गई है। वह है 'बिहुला' की लोकगाथा, यद्यपि इसमें भी अन्त में शक्ति धर्म का ही विजय दिखाया गया है। यह लोकगाथा मनसा (सर्प) पूजा से सम्बन्ध रखती है, वैसे लोकगाथा शिव पूजा से ही प्रारम्भ होती है। लोकगाथा में बाला लखन्दर का पिता 'चाँद सौदागर' शिव का महान भक्त है। शिवजी मनसा से कहते हैं 'यदि वणिकराज चाँद सौदागर तुम्हारी पूजा करेगा तो संसार में तुम्हारी पूजा प्रारंभ हो जायगी।' इस प्रकार प्रस्तुत लोकगाथा में शैव एवं शाक्त धर्म का अन्तर्द्वन्द्व दिखलाया गया है। 'बिहुला' के प्रकरण में ही हम विचार कर

चुके हैं कि सर्प पूजा एक अनार्य पूजा थी जिसे कि आर्यों ने धीरे-धीरे अपना लिया। इस प्रकार यह लोकगाथा शिवपूजा से प्रारंभ होकर शाक्त धर्म में अन्तर्हित हो जाती है।

'आल्हा' की लोकगाथा में देवी दुर्गा का शिव से सहायता मांगना वर्णित है। उसमें एक स्थान पर शिवजी भागते भी हैं—

'बसहा चढ़ि शिवजी भगले देवी रोए मोती के लोरा'

वस्तुतः उपर्युक्त लोकगाथाओं में शिव के बमभोले चरित्र का ही वर्णन है। कहीं वे अति साधारण व्यक्ति हैं और कहीं समस्त ब्रह्मांड को अपनी अंगुली पर नचाने वाले हैं। शिव का रूप हमारे देश में इसी प्रकार का माना गया है। इसीलिए लोग उन्हें 'भोले बाबा' कहते हैं।

शाक्त धर्म—भोजपुरी लोकगाथाओं में शैव उपासना के पश्चात शाक्तोपासना का प्राधान्य है। वस्तुतः समस्त भोजपुरी लोकगाथाएं शक्ति पूजा से सम्बन्ध रखती हैं। सभी में देवी दुर्गा का अनिवार्यतः नाम आता है। इनके कुछ अन्य रूप भी हैं जैसे काली, शीतला, मनसा तथा बनसप्ती इत्यादि। इन सभी देवियों को जगन्माता का रूप दिया गया है। लोकगाथाओं में सबसे प्रमुख देवी, दुर्गा हैं। नायक एवं नायिकाओं की वे सदैव सहायता करती हैं। देवी दुर्गा, आदर्श मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों के दुख-सुख में, युद्ध स्थल में, तथा अन्यान्य संकटों में उपस्थित होकर सभी बाधाओं को दूर करती हैं। लोकगाथाओं के नायक तथा नायिकाओं का दुर्गा देवी पर पूर्ण अधिकार है। वे जब इच्छा करते हैं तभी देवी उपस्थित हो जाती हैं। यहाँ तक कि 'आल्हा' की लोकगाथा में ऊदल देवी को धमकी भी दिखाता है तथा पीटता भी है।

"एतना बोली ऊदल सुनगइल तरवा से लहरल आग
पकड़ल झोंटा है देवी के धरती पर देल गिराय
आँखि सनीचर है ऊदल के बाबू देखत काल समान
दूचार थप्पर मुक्का देवी के देल लगाय
लैके दाबल ठेहुना तर देवी राम राम चिचियाय
रोए देवी फुलवारी में ऊदल जियरा छोड़ हमार
भेंट कराइब हम सोनवा से।"

उपर्युक्त उद्धरण में देवी के प्रति निहित ममत्व दिखाया गया है। जिस प्रकार एक उद्धत बालक अपनी माता को तंग करता है, उसी प्रकार यहाँ ऊदल देवी को कष्ट दे रहा है।

लोरिक पर जब विपत्ति पडती है तो वह भी देवी की पुकार लगाता है ।

देवी के उपुकारवा उहवाँ लोरिकवा करत रेबाय
देई बरदनवां ये देबिया छलब कइले आज
नाहीं आपन त सिरवा काटि के देब चढ़ाय
अतना तो कहिके लोरिकवा खड़गवा लिहले रेबाय
तले उहवाँ त बोलतिया देवी दुरुगुवा
सुनब त सुनब लोरिक कहलि रे हमार
थोरहीं बतिया में चेलवा गइले घबयेड़ाय

कुँवर विजयमल जब बावन-गढ़ के लिए प्रस्थान करता है तो उसकी भाभी सोनवामतिया देवी से सहायता माँगती है तथा पूजा पकवान देने का भी बचन देती है—

"रामा सुनि लेहु देवी मोर अरजिया रे ना
रामा देविया आज मोर होखहु सहइया रे ना
रामा देविया दुधवे पोतइबों तोर चउरवा रे ना
रामा देविया गुलगुले करइबों तोर हवनवा रे ना
रामा देविया बावन जोड़ि देबि तोहि करहवा रे ना
रामा देविया सोरह लाख खिअइबें बभनवा रे ना"

इस प्रकार देवी प्रसन्न होती है और विजयमल को विजयी कराती हैं ।

शोभानायक बनजारा की लोकगाथा में देवी दुर्गा, नायिका दसवन्ती को डाँटती है कि तेरा पति परदेस जा रहा है और तू यहीं पड़ी है—

"रामा जहाँ सूतल रहली दसवन्तिया रेना
रामा घिंच के मारे देवी चटकनवा रेना
रामा जेकर कन्ता जैहें परदेसवा रेना
रामा काहे तू सूतेलू निरभेदेवा रेना"

इसी प्रकार से सोरठी, बिहुला इत्यादि लोकगाथाओं में दुर्गा का उल्लेख है । दुर्गा, प्रेमियों का मिलाप कराती हैं, दूती कर्म करती है, तथा युद्ध में सहायता देती है । दुर्गा के पश्चात् प्रधान रूप से 'मनसा' का नाम आता है । 'मनसा देवी' का सम्बन्ध बिहुला की लोकगाथा से ह । बिहुला के भोजपुरी रूप म मनसा की प्रतिमूर्ति 'विषहर ब्राह्मण' है जो कि खल नायक के रूप में चित्रित किया गया है । इस कारण इसमें मनसा के महात्म्य का वर्णन नहीं

है। परन्तु बिहुला के मैथिली एवं बंगला रूप में मनसा का सांगोपांग वर्णन है। मनसा सर्पों की देवी है तथा अत्यन्त शक्तिशालिनी है। वह बालालखन्दर को काटती है तथा अन्त में बिहुला की बिनती एवं इन्द्र की प्रार्थना से बाला को पुनः जीवित कराती है। इस प्रकार उसकी पूजा संसार में प्रारंभ होती है। बिहुला के उद्भव के पूर्व मनसा को लोग कष्ट देने वाली देवी ही समझते थे, परन्तु बालालखन्दर को जीवित करने के पश्चात्, जन समाज उसे कल्याणमयी देवी के रूप में भी देखना प्रारंभ करता है।

भोजपुरी लोकगाथाओं में शक्ति की उपासना अत्यधिक चित्रित की गई है। अतएव हम यह सकते हैं भोजपुरी प्रदेश ही नहीं अपितु समस्त पूर्वी-भारत शाक्त धर्म से विशेष रूप से प्रभावित है।

नाथ धर्म—भोजपुरी लोकगाथाओं में शैव एवं शाक्त धर्म के पश्चात् नाथ धर्म का प्रभाव पड़ा है। भोजपुरी की तीन लोकगाथाएँ इस धर्म से संबंध रखती हैं। वे हैं, सोरठी, भरथरी तथा गोपीचन्द। वस्तुतः ये मध्य युगीन लोक-गाथाएँ हैं। नाथ धर्म का भी उद्भव एवं विकास इसी युग में हुआ था, अतएव इसका प्रभाव लोकगाथाओं पर पड़ना स्वाभाविक ही था। इन लोक-गाथाओं में नाथ धर्म की सैद्धान्तिक विवेचना नहीं है, अपितु इनमें गुरु गोरख-नाथ, मछिन्द्रनाथ तथा जालन्धरनाथ आदि नाथ संप्रदाय के महान सन्तों के नाम का उल्लेख मिलता है। इसके साथ योगीरूप और तप साधना का भी वर्णन मिलता है। इन लोकगाथाओं में नाथ संप्रदाय के सन्त, जिसमें विशेष रूप से गोरखनाथ, एक सहायक के रूप में चित्रित किये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लोकगाथाओं में महान धर्मप्रणेता गुरु गोरखनाथ के नाम का भी समावेश गायकों ने कर लिया है। मध्ययुग में नाथधर्म अपनी चरम सीमा पर था। बड़े बड़े राजे महाराजे इस धर्म से प्रभावित हो रहे थे। अतएव साधारण जन समाज में उसका प्रभाव पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक था। इसी कारण लोकगाथाओं में अन्य देवी देवताओं के साथ गोरखनाथ इत्यादि के नामों का मिश्रण हो गया हैं। इसका स्पष्ट उदाहरण 'सोरठी' की लोकगाथा है।

सोरठी की लोकगाथा में नायक वृजाभार गुरु गोरखनाथ का शिष्य कहा गया है। उसका जन्म भी गोरखनाथ की कृपा से हुआ था। गोरखनाथ उसे स्वयंबर में ले जाते हैं, उसका विवाह करते हैं, अनेक सती स्त्रियों का उद्धार करवाते हैं तथा वृजाभार जब अनेक विपत्तियों में पड़ता है, तो उसे बचाते हैं। इस लोकगाथा में वृजाभार योगीरूप धारण करता है, साध-नायें एवं तप करता है, परन्तु ब्रह्म की प्राप्ति के लिये नहीं अपितु सोरठी

को प्राप्त करने के लिये। सोरठी ही उसकी आराध्य देवी थी। यदि इस कथानक पर आध्यात्मिक धरातल से विचार करें, तो भी यह नाथ धर्म के सिद्धान्त के अनुकूल नहीं पड़ता है। क्योंकि नाथ धर्म में ईश्वर अथवा ब्रह्म का रूप 'स्त्री' नहीं मानी गई है। इसलिए हमें यही कहना पड़ता है कि यह केवल गायकों का मनमौज था जिन्होंने उस समय के प्रभाव पूर्ण नाथ धर्म के सन्तों को भी अपनी लोकगाथा में स्थान दिया।

सोरठी की लोकगाथा में गोरखनाथ, बृजाभार को जब शिष्य बनाते हैं, तो गायकों ने वहाँ समस्त देवताओं को भी गवाही के रूप में ला खड़ा किया है—

"एकियाहोरामा गुरू गोरखनाथ के सुमिरन कइले हो बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा गुरू गोरखनाथ अइले फुलवारी में रेनुकी
एकियाहोरामा सगरे देवतवा अइलेफुलवारी में रेनुकी
एकियाहोरामा चेलवा ना अब जोगी के बनवले रेनुकी
एकियाहोरामा पिठिया त ठोकले सगरे देवतवा रेनुकी"

इसी प्रकार बृजाभार को शिष्य बनाकर योगी के लिये आवश्यक वस्तु भी देते हैं।

"एकियाहोरामा अतना सुनत गुरू आइ के पहुँचले हो
सकल सरजमवा देई देले रेनु की
एकियाहोरामा झोरी गुदरिया गुरू दिहले बसुरिया हो
झुनुकी खड़उवां देई देले रेनु की
एकियाहोरामा डुगी खजड़िया गुरू चेलवा के दिहले हो
देई के असथनवा चलि जाले रेनु की।
एकियाहोरामा पेन्हे लगले रामा कुंवर बृजाभरवा हो
जोगिया के रुपवा बनवले रेनु की।
एकियाहोरामा गुदड़ी पहिनी झोरी बगल झुलवले हो
झुनुकी खड़उवां पगवा पेन्हले रेनु की।
एकियाहोरामा डुगी खजरिया रामा मोहिनी बंसुरिया हो
लेइ चले जोगी बृजाभार रेनु की।"

इसमें 'मोहनी बंसरी' का उल्लेख है जो कि जोगियों की वेशभूषा का आवश्यक अंग नहीं है। साथ ही जोगियों के लिये अनिवार्य वस्तु 'सांरंगी' का उल्लेख लोकगाथा में नहीं है।

'सोरठी' के पश्चात् भरथरी एवं गोपीचन्द की लोकगाथा शुद्ध रूप से नाथ संप्रदाय से संबंध रखती है। ये दोनों महापुरुष नाथ संप्रदाय के महान सन्त परंपरा में आते हैं। इनका उल्लेख नवनाथों में भी हुआ है। इन दोनों लोकगाथाओं में नाथ धर्म के व्यवहारिक पक्ष का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। माया, मोह, माता, स्त्री, पुरजन का त्याग, वैभव विलास की तिलाँजलि, इन्द्रिय निग्रह तथा गुरु भक्ति का अन्यतम उदाहरण इन लोकगाथाओं में प्रस्तुत किया गया है।

योग साधना के कष्ट को गोरख नाथ कितने सरल ढंग से भरथरी को बतलाते हैं—

"अरे तू त हव राजा के लड़िका जोगवा नाईं
लागी तोह से पार,
काँटा कुसा में सुत नाही पइबऽ
कौनो गरभी दिहें बोल बच्चा सह न जैहें
कौनो सुन्दर घरवा तिरियवा देखबऽ
त जोगवा तोहार होजइहें खराब"

इस पर भरथरी उन्हें आश्वासन देते हैं—

"कौनो गरभी दुअरिया बाबा भिक्षा मंगबें
कान के बहिरे बन जाब
कौनो जो काँटा कुसा के आसन पइबें
उहवाँ सोइब आसन लगाय
कौनो जो सुन्दर घरवा तिरियवा देखबें
त आँखे के होइ जाइब सूर।"

इसके पश्चात गोरखनाथ उसकी कठिन परीक्षा लेते हैं। भरथरी अपनी स्त्री को 'माँ' कहते हैं और परीक्षा में उत्तीर्ण होकर योगी हो जाते हैं। इसी प्रकार से 'गोपीचन्द' की लोकगाथा में नाथ धर्म के व्यवहारिक पक्ष क सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। माता, बहन, स्त्री तथा प्रजा का मोह संसार में भला किसको नहीं होता है। उस पर से गोपीचन्द तो एक युवक सम्राट था। परन्तु उसे इस संसार की असारता का ज्ञान हो गया था। माता उसे रोकती है, अपने दूध का मूल्य माँगती है, परन्तु वह कहता है—

'सिरवा कलफ़ के माता देती दुधवा के दाम
तौमों पर नाईं होबें माई तोरे दुधवा से उत्तिरिन

इस प्रकार सब को रोता कलपता छोड़कर बहिन के पास जाता है—

"तब पकड़ि के गोड़वा बहिनी बीरम लागे भेंटे
भेंटत भेंटत बहिनी प्राण छोड़ दिहली।"

परंतु गुरू की कृपा से उसे भी पुनः जीवित करके वह गुरू की सेवा में पहुँच जाता है।

इन्द्र एवं अप्सराएँ—शैव, शाक्त तथा नाथ धर्म के पश्चात भोजपुरी लोकगाथाओं में इन्द्र तथा अप्सराओं का स्थान आता है। योककथात्मक लोकगाथाओं को छोड़ कर शेष सभी में इन्द्र तथा स्वर्ग की अप्सराएँ वर्णित हैं। इन्द्र, अप्सराओं एवं गंधर्वों को उनके त्रुटियों के दंड स्वरूप मृत्युलोक में जन्म लेने की आज्ञा देते हैं। इस प्रकार लोरिक, विजयमल, सोरठी, बिहुला इत्यादि नायक नायिकाएं स्वर्ग से पदच्युत होकर कुछ काल के लिये पृथ्वी पर आ जाते हैं और पुनः अपनी लीलाएं समाप्त कर के चले जाते हैं। इन्द्र की इन्द्रपुरी आनन्द की भूमि है, वहाँ पर सदैव बसन्त अठखेलियाँ खेलती है, सदैव नृत्य रास रंग होता रहता है। स्वर्ग की यही कल्पना लोकगाथाओं में की गई है।

भोजपुरी लोकगाथाओं में इन्द्र के साथ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश इत्यादि के नाम का भी उल्लेख किया गया है। परन्तु ये नाम स्वाभाविक वर्णन में आ गए हैं। इनका लोकगाथा के कथानक में प्रमुख स्थान नहीं है।

गंगा—गंगा नदी का नाम सभी लोकगाथाओं में आता है। कहीं कहीं पर तो भौगोलिक दृष्टि से गलत नाम आता है। वस्तुतः हमारे देश में प्रायः प्रत्येक नदी को यहाँ तक की कठौती के पानी को भी गंगा कह दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार गंगा के नाम उल्लेख किया गया है। गंगा जी भी सहायक के रूप में आदर्श चरित्रों को सहायता देती है। सोरठी जब गंगा में बहा दी जाती है तो वह डूबती नहीं है। गंगा उसे किनारे लगा देती है। इसी प्रकार बिहुला भी गंगा में नहीं डूबने पाती है। गंगा उसके लिये वर भी ढूढ़ती है।

वनस्पति देवी—गंगा के पश्चात वनसप्ती (वनस्पति) देवी का भी नाम आता है। वनस्पति देवी अंधकारमय वन में नायक नायिका की सहायता करती है। वनस्पति देवी, वन की रानी है। अगम, दुर्गम, विशाल तथा भयप्रद स्थानों को देवी देवता का रूप दे देना हमारे धार्मिक विश्वासों मे सदैव मिलता है। अतएव दुर्गम जंगलों में वन देवी के रूप में कल्याणमयी वनस्पति देवी की स्थापना कर देना स्वाभाविक ही है।

मंत्र, जादू टोना—भोजपुरी लोकगाथाओं में मंत्र, जादू टोना इत्यादि का भी वर्णन है। लोकगाथाओं के खलनायक एवं खलनायिकाएँ मंत्र, जादू तथा टोना इत्यादि अनार्य शक्तियों के कारण प्रबल दिखाए गए हैं। प्रत्येक लोकगाथा में जादूगरनिओं द्वारा नायकों को कष्ट मिलना, तांत्रिकों द्वारा बाधा पहुँचना तथा नायक नायिकाओं का भेड़ा बन जाना, तोता बन जाना इत्यादि वर्णित है। 'लोरकी' की लोकगाथा में 'फुलिया डाइन' समस्त सेना को पत्थर बना देती है। सोरठी की लोकगाथा में 'हेवली केवली' जादू की लड़ाई करती हैं। शोभानयका बनजारा की लोकगाथा में एक कलावारिन (शराब बेचने वाली) शोभानायक को भेड़ा बना देती है। बिहुला की लोकगाथा में विषहर ब्राह्मण मंत्र शक्ति से सर्पों को वश में रखता है।

लोकगाथाओं में इन शक्तियों का प्राबल्य होते हुए भी अन्त में इनका पराभव ही दिखलाया गया है। सत्य एवं आदर्श मार्ग पर चलने वाले नायक एवं नायिकायें इन शक्तियों पर विजय प्राप्त करते हैं।

कुछ विश्वास—भोजपुरी लोकगाथाओं के प्रचलन के साथ साथ कुछ विश्वासों का भी प्रचार हो गया है। गायकों का विश्वास है कि जब से लोकगाथाओं का अथवा उनमें वर्णित चरित्रों का उद्भव हुआ तभी से कुछ विश्वास प्रचलित हुए हैं।

(१) 'लोरिकी' की लोकगाथा में नायक लोरिक को गायक लोग 'कनौजिया' अहीर, तथा लोकगाथा के खलनायक राजा शाहदेव को 'किसनौर' अहीर बतलाते हैं। 'लोरिक' का चरित्र आदर्श नायक की भांति है, इसलिये 'कनौजिया' अहीर आज भी श्रेष्ठ माना जाता है तथा ये लोग 'किसनौर' में विवाह दान नहीं करते हैं।

(२) 'सोरठी' की लोकगाथा में जब सोरठी को सन्दूक में बन्द करके गंगा में बहा दिया गया, तो काठ का सन्दूक सोने में परिवर्तित हो गया। घाट के किनारे एक धोबी ने सोने की सन्दूक को बहते देखा और लालच में पड़कर सन्दूक पकड़ना चाहा। परन्तु वह पकड़ न सका। उसने केका नामक कुम्हार को बुलाया। वह धर्मात्मा व्यक्ति था, उसके हाथ सन्दूक लग गया। धोबी के लालच को देखकर उसने सोने का सन्दूक उसे दे दिया और सोरठी को घर ले गया। धोबी जब सन्दूक को घर लाया तो वह पुनः काठ का हो एया। इसी समय वह 'हाय हाय' कर उठा।

गायकों का विश्वास है कि धोबी लोग, कपड़ा धोते समय 'हायछियो' जो करते हैं, इसका प्रारम्भ वहीं से हैं।

(३) 'बिहुला' की लोकगाथा के विषय म गायकों का विश्वास है कि सर्प भी आकर सुनते हैं।

(४) बिहुला की लोक गाथा में विषहरी ब्राह्मण (खलनायक) पनिहा (डोड़वा) साँप को विष का गट्ठर लाने के लिए भेजा। पनिहा साँप जब विष की मोटरी ला रहा था तो मार्ग में उसे स्नान करने की इच्छा हुई, और तालाब के किनारे मोटरी रखकर स्नान करने लगा। तालाब की मछलियों तथा बिच्छुओं ने आकर विष लूट लिया। सर्प खाली हाथ पहुँचा। विषहर ने क्रोध में आकर श्राप दिया कि तेरे काटने से किसी पर विष नहीं चढ़ेगा।

ऐसा विश्वास है कि इसी समय से पनिहा साँप विषरहित हो गया तथा बिच्छुओं में विष आ गया, क्योंकि उन्होंने मोटरी में से विष खा लिया था।

अनेक धर्मों, देवी देवताओं तथा विश्वासों पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि भोजपुरी लोकगाथाओं में धर्म का स्वरूप अत्यन्त व्यापक एवं समन्वयकारी है। वस्तुतः लोकगाथाएं धर्म नहीं अपितु चरित्र प्रधान हैं। आदर्श चरित्रों के विकास के लिये ही उनमें धर्मों का तथा विश्वासों का समावेश हुआ है। इन लोकगाथाओं में सभी धर्मों के देवी देवता एवं सन्त लोग सहायक के रूप में ही चित्रित किये हैं। इनका स्वतंत्र अस्तित्व कहीं नहीं है। लोकगाथाओं के नायक नायिकाओं के साथ साथ ये चलते हैं तथा आदर्श मार्ग को प्रशस्त करते रहते हैं। इन्हीं भिन्न भिन्न देवी देवताओं एवं सन्तों के नाम के उल्लेख के कारण ही लोकगाथाओं में उनके धर्म विशेष की प्रतिछाया पड़ गई है। इसीलिये लोकगाथाओं के धार्मिक स्वरूप पर विचार किया गया है। यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं इनमें सिद्धान्त का अथवा कर्मकांड का प्रतिपादन नहीं हुआ है। केवल लोकगाथा में देवी देवताओं के नाम तथा उनके कार्यों का ही वर्णन है। अतएव भोजपुरी लोकगाथाओं में धर्म का स्वरूप अति विशाल एवं सामंजस्यकारी है। वस्तुतः उसमें मानव धर्म चित्रित किया गया है जिसमें वीरता, उदारता, सदाचार, त्याग, परोपकार तथा ईश्वर में विश्वास का प्रमुख स्थान रहता है।

अध्याय १०

(१) भोजपुरी लोकगाथाओं में अवतारवाद

भारतवर्ष में अवतारवाद की भावना अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय मनीषियों ने सृष्टि के क्रमिक विकास को अवतारवाद के द्वारा ही स्पष्ट किया है। मत्स्यावतार से लेकर बुद्धावतार तक हम सृष्टि के निरन्तर विकास को भलीभांति समझ सकते हैं। यह भारतीय चिंतन है कि समस्त ब्रम्हांड में ईश्वर व्याप्त है, उसी के निर्देश से समस्त सचराचर परिचालित होता है, तथा वही अनेक रूपों में इस पृथ्वी पर अवतार लेता है। इस प्रकार से सृष्टि का विकास होता है, और उसमें संस्कृति एवं सभ्यता पनपती है। इसी को पुनः पुनः गतिमान बनाने के लिये भगवान मानव रूप में जन्म लिया करते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने लोकसाहित्य में निहित देववाद (डिविनिटी) को केवल मनुष्य के आदिम अवस्था का ही द्योतक माना है।१ यह सिद्धान्त भारतीय लोकसाहित्य के लिए उपयुक्त नहीं है। यहाँ की परिस्थिति दूसरी है। यहाँ की लोकभावना आदिम अवस्था से संबंध नहीं रखती अपितु देश की चिरंतन सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक साधना से सामीप्य रखती है।

अवतार का होना अर्थात् मंगल भावना का उदय होना है। अवतरित व्यक्ति सत्कर्म करने के लिये ही आता है। वह संसार में सुख शांति का संदेश देने आता है। भोजपुरी लोकगाथाओं में अवतारवाद की यही प्राचीन कल्पना निहित है। लोकगाथाओं के प्रायः सभी नायक-नायिका अवतार के रूप में हैं।

भोजपुरी लोकगाथाओं में अवतारों के तीन रूप मिलते हैं। प्रथम भगवान लालदेव (हनुमान) वीर रूप में जन्म लेते हैं, जैसे कि लोरिक, विजयमल, शोभानायक इत्यादि।

द्वितीय, इन्द्रपुरी से च्युत अप्सराए एवं गंधर्व पृथ्वी पर आकर जन्म लेते हैं, जैसे सोरठी, बिहुला तथा हेवन्ती इत्यादि।

तृतीय देवी दुर्गा एवं गोरखनाथ की कृपा से नायकों का जन्म होता है, जैसे बूजाभार तथा विजयमल।

१—सी० एस० बर्न—दी हैंड बुक आफ फोकलोर पृ० ७४

भोजपुरी वीरकथात्मक लोकगाथाओं में अधिकांश रूप में भगवान लालदेव के अवतार लेने का वर्णन है। भोजपुरी क्षेत्र में हनुमान जी को लालदेव, कहा जाता है। हनुमान वीरता एवं सेवा भक्ति के प्रतीक माने जाते हैं। वीरकथात्मक लोकगाथाओं के नायक भी वीर वृत्ति एवं सेवा वृत्ति रखते हैं। अतएव इनकी समानता लालदेव से करना उपयुक्त हैं। प्रायः सभी लोकगाथाओं में वर्णित है—

"रामा आधी रात गइले लिहले लालदेव अवतारवा होना"

वीरकथात्मक लोकगाथाओं के अतिरिक्त भी शेष लोकगाथाओं में लालदेव के अवतार का वर्णन है। 'बिहुला' में बालालखन्दर जन्म का वर्णन इसी प्रकार है—

"ए राम रहल महेसरा के गरभ रे दइबा
पुरे दिन बलकवा भइले ए राम
ए राम लालदेव लिहले जनमवाँ रे दइया
सासुनी महेसरा कोखी ए राम"

इन्द्रपुरी में त्रुटि हो जाने के कारण लोकगाथाओं के कई नायक-नायिकाओं का जन्म होता है। सोरठी अपने जन्म के समय कहती है—

"एकिया हो रामा इन्द्रपुरी में रहलीं रामा इन्द्र परिया हो
एक त चुकवा हमसे भइल रेनुकी।
एकिया हो रामा तेही कारण इन्द्र राजा दिहले सरपवा हो
नर जोइनी होई अवतरवा रेनुकी।"

इसी प्रकार बिहुला का भी जन्म होता है—

"ए राम एक दिन इन्द्र महराज रे दइबा
श्याम परी के बुलाइ कहे ए राम
ए राम जाहूँ श्याम परी मृत्यु लोकवा रे दइबा
जाई मानुष जनमवाँ लेहूँ ए राम"

'सोरठी' का नायक बृजाभार भी मेघदूत के यक्ष की भांति इन्द्रपुरी से निकाला गया है। परन्तु मृत्यु लोक में उसका जन्म गुरु गोरखनाथ की कृपा से ही है। इसी प्रकार दुर्गा देवी की कृपा से विजयमल का भी जन्म होता है। वह वरदान देती है—

'रामा पुत्र जनमी दसवें महिनवा रेना ।
रामा छत्रबली लीहीं अवतरवा रेना ।'

भोजपुरी लोकगाथाओं में एक ही व्यक्ति का समय समय पर अवतार लेने का वर्णन है । लोरिक अपने पिता से कहता है—

"सुनब त सुनब ए बाबिल कहलि रे हमार
अतने में तूहूँ गइलऽ घब ये ड़ाय
तीन अवतरवा ये बाबिल भइल हो हमार
पहिला अवतरवा हो भईल मोहबा में हमार
नइयाँ त रहे ये बाबिल ऊदल हो हमार
नैनागढ़ में कइले हो रहलीं आल्हा के बियाह
तेकर त हलिया जाने सब संव ये सार
दोसर जनमवाँ के हलिया सुन बाबिल हमार
तिलकी से कइलीं बिअहवा बावनगढ़ में जाय
बावनगढ़ के किलवा बाबिल दिहलीं हो गिराय
तिसरे जनमवाँ बाबिल गउरवा में भइल हमार
तोहरा ही घरवा नइयाँ लोरिकवा परल हमार
चौथे जनमवाँ ए बाबिल बाकी अबहीं हो बाय
सेकरो त हलिया तुहें कहीं समुझाय
दक्षिणी शहरवा ए बाबिल लेबी अवतार
नउवाँ पड़ी बृजाभार हो हमार"

इस प्रकार से भगवान के विभिन्न अवतारों के समान लोरिक भी अपने अवतार लेने का क्रम बतला रहा है । उपर्युक्त उद्धरण से ऐसा प्रतीत होता है कि गायकों ने समस्त भोजपुरी लोकगाथाओं के नायकों को एक में समेट लिया है और इस प्रकार उनमें एकरूपता लाने की चेष्टा की है । उपर्युक्त पद्यांश से एक बात और स्पष्ट होती है । इससे हम लोकगाथाओं के प्रारम्भ का क्रम भी जान सकते हैं । इस उद्धरण के अनुसार 'आल्हा' की लोकगाथा पहले व्यापक हुई । इसके पश्चात् विजयमल का समय आता है, तत्पश्चात 'लोरिकी' और 'सोरठी' का ।

भोजपुरी लोकगाथाओं में अवतारवाद एवं पुनर्जन्म का विश्वास अति रोचक ढँग से व्यक्त हुआ है । लोकगाथाएँ समाज की निम्नश्रेणी में प्रचलित हैं परन्तु इनमें देश की प्राचीन परम्परा और मंगल आदर्श का जितना भव्य एवं उदात्त चित्रण हुआ है उतना लिखित साहित्य में नहीं मिलता है ।

(२) भोजपुरी लोकगाथाओं में अमानव तत्व

भोजपुरी लोकगाथाओं में अमानव तत्व का समावेश विस्तृत रूप से हुआ है। उसमें नदी, तालाब, पहाड़, वन, पशु पक्षी प्रमुख भाग लेते हुए वर्णित किए गये हैं। लोकगाथाओं में समस्त चराचर की कोई भी वस्तु जड़ नहीं चित्रित की गई है, अपितु सभी गतिमान है और कथानक में प्रमुख स्थान रखते हैं। वस्तुतः लोकगाथाओं में अमानव तत्व का समावेश, कोई नवीन परंपरा नहीं है। संसार के सभी प्राचीन महाकाव्यों में अमानव तत्व का प्रधान स्थान दिखलाया गया है। भारतवर्ष में तो यह परंपरा अति प्राचीन और व्यापक है। संस्कृत वाङ्मय में स्थान स्थान पर पशु, पक्षी, यक्ष, किन्नर, वृक्ष, लता सभी यथोचित्त सहयोग लेते हुए चित्रित किये गये हैं। इसी परंपरा का पालन लोकगाथाओं के गायकों ने भी किया है।

लोकगाथाओं का प्रथम गायक सचमुच में एक कवि रहा होगा। उसने अपनी रचना में सच्चे कवि की भाँति समस्त विश्व को आत्म सात कर लिया। उसने प्राकृतिक जगत में मानव और अमानव में, अन्तर नहीं देखा। समुद्र जैसे सब नदियों को अपने उदर में स्थान देता है, उसी प्रकार लोकगाथाओं के गायक ने समस्त ब्राह्मांड को उसमें ला रखा है। वह पृथ्वी, आकाश और पताल में अन्तर नहीं मानता है। उसकी कल्पना तो दिग् दिगन्त में उड़ती है। उसकी रचना में अश्व भूमि पर ही नहीं अपितु आकाश में भी उड़ता है; मत्स्य पानी में रहते हैं परन्तु बाहर निकल कर नायक की रक्षा करते हैं। वन के वृक्ष स्थावर नहीं हैं अपितु नायक को सहायता देते हैं। लोकगाथाओं के गायक का दृष्टिकोण अत्यन्त विशाल है। वह समस्त सृष्टि से प्रेम करता है। उसकी प्रेम की व्यापकता में ही सभी अमानव, मानवोचित व्यवहार करते हैं। आचार्य विनोबा भावे ने भी एक स्थान पर लिखा है "कवि में व्यापक प्रेम की आवश्यकता है। ज्ञानेश्वर महाराज भैंसे की आवाज में भी वेद श्रवण कर सके, इसलिये वह कवि हैं। वर्षा शुरू होते ही मेढकों का टर्राना देख वसिष्ठ को जान पड़ा कि परमात्मा की कृपा की वर्षा से कृत् कृत्य हुये सत्पुरुष ही इन मेढकों के रूप में अपने आनन्दोद्गार प्रकट कर रहे हैं और उन्होंने भक्तिभाव से उन मेढकों की स्तुति की।"[1]

१—आचार्य विनोबा भावे—विनोबा के विचार भाग १ पृ० १०-११

लोकगाथाओं का गायक भी इसी अमल वृत्ति से सकल चराचर को देखता है। सृष्टि के प्रति उसकी उदार बुद्धि है इसी कारण वह सबको क्रियावान देखता है।

भोजपुरी लोकगाथाओं में अमानव तत्व अधिकांश रूप में सत्य एवं आदर्श का ही पक्ष लेते हैं। वे शेक्सपियर के अमानव तत्व नहीं हैं जो नायकों को द्विविधाजनक परिस्थिति में डाल देते हैं। भोजपुरी लोकगाथाओं म अमानव तत्त्व सशरीर उपस्थित होकर नायक के आदर्शों की रक्षा करते हैं।

भोजपुरी लोकगाथाओं में अमानव तत्त्व के अन्तर्गत प्रमख रूप, से गंगा यमुना, वनदेवी एवं वनदेवता, हंस हंसिनी, घोड़ा, केकड़ा और मछली का वर्णन आता है।

प्रायः सभी भोजपुरी लोकगाथाओं में गंगा और यमुना नदी का नाम आता है। गंगा नदी तो सक्रिय रूप में नायक नायिकाओं की रक्षा करती हैं। 'सोरठी' की लोकगाथा में 'सोरठी' को डूबने से बचाती हैं। 'बिहुला' की लोकगाथा में बिहुला गंगा में डूबना चाहती है परन्तु गंगा उसे डबने नहीं देती हैं तथा उसके सम्मुख प्रगट होकर उसके दुख का निवारण करती हैं।

'भरथरी' की लोकगाथा में वनदेवी उसकी सहायता करती हैं। उसे हिंस्र पशुओं से बचाती हैं तथा हंस का रूप धर कर भरथरी को पीठ पर बिठला कर उसे पिंगला के यहाँ पहुँचाती हैं। सोरठी की लोकगाथा में वनदेवता नायक बृजाभार की हिंस्र-पशुओं से रक्षा करते हैं। वे रात भर खड़ा होकर पहरा देते हैं।

शोभानायका बनजारा की लोकगाथा म हंस हंसिनी शोभा नायक की सहायता करते हैं। हंस अपनी पीठ पर बिठा कर शोभानायक को उसकी प्रिय पत्नी दसवन्ती के पास पहुँचा देता है।

'आल्हा' की लोकगाथा में 'बेंदुला घोड़ा' का सुन्दर वर्णन है। ऊदल उसी की सवारी करता है। बेंदुला घोड़ा आकाश मार्ग से भी उड़ता है और युद्ध में ऊदल को विपत्तियों से बचाता है। इसी प्रकार 'विजयमल' की लोकगाथा में 'हिछल बछेड़ा' (घोड़ा) विजयमल का अभिन्न सहचर और गुरू है। हिछल बछड़ा उसे आकाश मार्ग से ले जाता है। युद्ध में जब विजयमल बुरी तरह घायल हो जाता है तो उसे उठाकर दुर्गादेवी के पास ले जाता है और उसे स्वस्थ कराता है। हिछल, विजयमल की प्रेमिका तिलकी से मिलन कराता है तथा उसकी गलतियों पर उसे डांटता भी है।

सोरठी की लोकगाथा में 'गंगाराम केकड़ा' का वर्णन है। 'गंगाराम केकड़ा' वृजाभार के साथ चलने की प्रार्थना करता है। वृजाभार उसे अपनी झोली में डाल कर चल देता है। गंगाराम केकड़ा वृजाभार को मृत्यु के मुख में से बचाता है। वृजाभार को जब सर्प ने डस लिया तो गंगाराम केकड़ा ने ही झोली से बाहर निकल कर कौवे और सर्प को दंड दिया और वृजाभार के पुनः जीवित कराया।

'सोरठी' और 'बिहुला' की लोकगाथा में 'रेघवा' मछली का वर्णन आता है। वृजाभार जब सोरठपुर के मार्ग में जादूगरनियों द्वारा मारा जाता है, तो रेघवा मछली उसके मस्तक की मणि को निगल जाती है और पाताल लोक चली जाती है। वृजाभार की स्त्री हेवन्ती रेघवा मछली से भेंट करती है और उसी मणि की सहायता से वृजाभार को पुनः जीवित कराती है।

'बिहुला' की लोकगाथा में रेघवा मछली बिहुला को इन्द्रपुरी जाने का मार्ग बतलाती है। बिहुला अपने मृत पति बालालखन्दर के शरीर को रेघवा मछली के संरक्षकत्व में छोड़ जाती है।

संसार की सभी भाषाओं की दन्तकथाओं में अमानवतत्व का समावेश है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्राचीन युग में विज्ञान की इतनी उन्नति नहीं हो पाई थी जिसके द्वारा संसार की विभिन्न घटनाओं की व्याख्या की जाय। इस प्रकार के अमानवतत्वपूर्ण कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन टानी ने अपने कथासरित्सागर के अनुदित ग्रंथ में किया है।[1] भोजपुरी लोकगाथाओं में भी अमानवतत्व इसी रूप में मिलता है, जिसका ऊपर वर्णन किया गया है।

उपर्युक्त उदाहरणों से हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि भोजपुरी लोकगाथाओं के गायकों ने उसमें अमानव चरित्रों की सफल एवं भावपूर्ण योजना की है। वास्तव में प्रकृति के प्रत्येक अवयव का मानवीकरण संस्कृति के उन्चतम अवस्था का द्योतक है। कुछ विद्वानों का यह कथन कि लोकसाहित्य में अबुद्धिवाद रहता है, इसे हम कदापि नहीं मान सकते। यदि हम सम्यक् एवं भावपूर्ण दृष्टि से इन लोकगाथाओं पर विचार करें तो हमें स्पष्ट होगा कि इनमें देश की संस्कृति, देश की आकांक्षाएँ एवं ललित भावनाओं का अनुपम

१—सी० एच० टानी—'दी ओशन आफ स्टोरी-वाल'[1] पृ० २५
'नोट्स आन दी 'मैजिकल आर्टिकिल्स, मोटिफ इन फोकलोर' तथा देखिए।
सी० एस० बर्न—दी हैन्डबुक आफ फोकलोर पृ० ७५-९०

एवं आदर्शचित्र उपस्थित किया गया है। सृष्टि के गूढ़ रहस्य एवं समाजहृदय की सूक्ष्म भावनाओं को सीधी एवं सरल वाणी में निश्छल गायकों ने हमारे सम्मुख उपस्थित किया है, इसकी अवहेलना हम कदापि नहीं कर सकते।

---

(३) भोजपुरी लोकगाथाओं में कुछ समानता

प्रथम अध्याय में लोकगाथाओं की विशेषताओं पर विचार करते हुए 'पुनरुक्ति' की विशेषता पर भी प्रकाश डाला गया है। लोकगाथाओं में पुनरुक्ति वर्णन अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। इस पुनरुक्ति वर्णन के साथ-साथ भोजपुरी लोकगाथाओं में व्यक्तियों तथा स्थानों इत्यादि में भी समानता मिलती है। इनका यहाँ क्रम से स्पष्टीकरण कर देना अनुपयुक्त न होगा।

(१) 'आल्हा' की लोकगाथा में माहिल का चरित्र खलनायक के रूप में चित्रित किया है। माहिल, राजा परमर्दिदेव की रानी मल्हना का भाई था। माहिल के उकसाने के कारण ही आल्हा ऊदल को अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं।

'लोरिकी' की लोकगाथा में भी 'माहिल' का नाम आता है। इसमें भी माहिल खलनायक की भाँति चित्रित किया गया है। वह सुरवलि के राजा बामदेव का पुत्र है। माहिल के बहन का विवाह उसी के कारण नहीं हो रहा था, क्योंकि उसका प्रण था कि जो उसे हरायेगा वही विवाह करेगा। लोरिक ने अपनें बड़े भाई संवरू का विवाह वहीं पर किया। उसने माहिल को युद्ध में हरा कर उसका गर्व चूर किया।

(२) आल्हा की लोकगाथा में बावन सूबा तथा बावन गढ़ किले का नाम आता है।

'विजयमल' की लोकगाथा में भी बावन सूबा तथा बावन गढ़ का नाम आता है। विजयमल ने बावन सूबा को मार कर अपने पिता का बदला लिया। बावन गढ़ को भी उसने ध्वंस कर दिया।

'लोरिकी' की लोकगाथा में भी राजा बामदेव का नाम आता है जो कि 'बावन सूबा' से साम्यता रखता है। राजा बामदेव सुरवलि का राजा था तथा अहंकारी था। लोरिक ने अपने बड़े भाई संवरू का विवाह उसी की कन्या से किया तथा उसके अहंकार को नष्ट किया। 'लोरिकी' के अन्य रूपों में 'बावन बीर' अथवा 'बीर बावन' का नाम आता है, जो संभवतः 'बावन सूबा' का ही रुपान्तर है।

(३) प्रायः सभी भोजपुरी लोकगाथाओं में नायिकाओं की प्रमुख दासियों का नाम 'हिमा' अथवा 'मुंगिया दासी' वर्णित है। विजयमल, सोरठी, भरथरी, गोपीचन्द मे तो निश्चित रूप से यह दोनों नाम प्रयुक्त हुए हैं।

(४) गंगानदी का स्थान तो प्रत्येक लोकगाथा में रहना अनिवार्य सा है। गंगा के बिना कोई भी लोकगाथा पवित्र नहीं हो सकती, अतएव गायकों ने प्रत्येक लोकगाथा में––चाहे वह भौगोलिक दृष्टि से गलत क्यों न हो––गंगा का वर्णन किया है।

(५) 'भौंरानन पोखरा' का नाम आल्हा और विजयमल की लोकगाथा में वर्णित है। आल्हा की बरात 'भौंरानन पोखरे' के समीप ही ठहरती है। 'विजयमल' की लोकगाथा में कुंवर विजयमल 'भौंरानन पोखरे' के समीप ही तिलकी से मिलन करता है।

(६) 'सोरठी' और 'बिहुला' की लोकगाथा में 'रेघवा' मछली का नाम आता है। भोजपुरी लोकगाथाओं में अमानव तत्व पर विचार करते हुए 'रेघवा मछली' के कार्यों का वर्णन हो चुका है।

(७) 'केदलीवन' का उल्लेख आल्हा, सोरठी तथा भरथरी की लोकगाथाओं में किया गया है। लोकगाथाओं में केदलीवन को बड़ा भयानक एवं अंधकार-मय वन बतलाया गया है। उपर्युक्त लोकगाथाओं के प्रत्येक नायक को उस वन में जाना पड़ा है। किवदंती है कि 'आल्हा' केदलीवन में आज तक बैठा हुआ है।

आल्ह-खंड पर विचार करते हुए डा० श्यामसुन्दर दास ने केदलीवन (अथवा कजलीबन) को निर्जनता और अंधकार की व्यंजना मात्र माना है।[1]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने केदलीवन को भौगोलिक सत्य माना है। 'मत्स्येन्द्र नाथ विषयक कथाएँ और उनके निष्कर्ष' पर विचार करते हुए केदलीवन (केदली देश) के विषय में अनेक तथ्य उपस्थित करते हुए वे लिखते हैं, "...कदलीवन या स्त्री देश से वस्तुतः कामरूप ही उद्दिष्ट है। कुलूत, सुवर्ण गोत्र, भूत स्थान, कामरूप में भिन्न-भिन्न ग्रंथकारों के स्त्री राज्य का पता बताना, यह साबित करता है कि किसी समय हिमालय के पार्वत्य अंचल में पश्चिम से पूर्व तक एक विशाल प्रदेश ऐसा था जहाँ स्त्रियों की प्रधानता थी। अब भी यह बात उत्तर भारत की तुलना में बहुत दूर तक ठीक है"[2]

१––डा० श्याम सुन्दर दास––हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० २९२

२––आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी––नाथ संप्रदाय, पृ० ५५

द्विवेदी जी का मत यथार्थ प्रतीत होता है। हिमालय की तराई के घने जंगलों को अवश्य ही प्राचीन काल में 'केदलीवन' कहा जाता होगा। इस वन की भयानकता एवं दुर्गमता के कारण ही गायकों ने लोकगाथाओं में केदलीवन का वर्णन किया है।

भोजपुरी लोकगाथाओं में उपर्युक्त समानताओं का प्राप्त होना, इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि लोकगाथाओं के गायकों ने उस समय के प्रचलित अनेक चरित्रों, तथा स्थानों को प्रत्येक लोकगाथाओं में सम्मिलित कर दिया है। हमें नायक-नायिकाओं के चरित्रों तक में भी समानता मिलती है। विशेष रूप से भोजपुरी वीरकथात्मक लोकगाथाओं के नायक (बाबू कुँवरसिंह के अतिरिक्त) एक समान ही चित्रित किए गए हैं। लोरिक, विजयमल तथा आल्हा ऊदल के चरित्र एवं कार्य कलापों में अधिकांश समानता मिलती है।

वस्तुतः मौखिक परंपरा में निवास करने के कारण ही उपर्युक्त अनेक समानताएँ हमें भोजपुरी लोकगाथाओं में मिलती हैं।

भोजपुरी लोकगाथाओं में मिलने वाली उपर्युक्त समानता कोई एकांगी विशेषता नहीं है। अन्य देशों की लोकगाथाओं एवं लोककथाओं में इस प्रकार की समानताएँ मिलती हैं। सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् श्री टानी ने इस प्रकार की समानताओं (मोटिफ) का तुलनात्मक विवरण अपने 'कथा सरित्सागर' के अनूदित ग्रंथ में दिया है।१

वास्तव में लोकसाहित्य में समानता एक विशेष महत्व रखता हैं। विद्वानों ने इसे 'अभिप्राय' अथवा 'कथात्मक रुढ़ि' की संज्ञा दी है। भोजपुरी लोकगाथाओं में अमानव तत्व तथा समानताओं का आकलन करने के पश्चात इन्हीं द्वारा कथानक रूढ़ियों का निष्कर्ष निकलता है। वस्तुतः अमानव तत्व और समानता का सम्बन्ध किसी विशिष्ट अभिप्राय अथवा कथानक रूढ़ि से होता है। कथानक रूढ़ियाँ प्रत्येक देश की लोकगाथाओं, कथाओं तथा महाकाव्यों में मिलती हैं। ये कथानक रूढ़ियाँ वस्तु कथा को रोचक एवं भावपूर्ण बनाती हैं तथा कथा का परिवहन सुगम रीति से करती हैं। कथानक रूढ़ियों की परिकल्पना सबसे पहले लोकसाहित्य में ही प्राप्त होती हैं। महाकाव्य रचयिताओं ने कथानकरूढ़ियों की महत्ता को समझ कर अपनी कल्पना और

विशेष विवरण के लिए देखिए।

१—सी० एच० टानी—दी ओशन आफ स्टोरी—नोट्स आन दी मोटिफ इन स्टोरीज़—वाल १ से १०

विवेक के अनुसार लोकगाथाओं से ही ग्रहण किया है। महाकाव्यों में निम्न-लिखित रूढ़ियाँ अधिकांश रूप में मिलती हैं—१

१—कहानी कहने वाला सुग्गा
२—स्वप्न में प्रिय का दर्शन
३—चित्र देख कर मोहित हो जाना
४—मुनि का शाप
५—रूप परिवर्तन
६—लिंग परिवर्तन
७—परकाय प्रवेश
८—आकाश वाणी
९—नायक का औदार्य
१०—हंस, कपोत द्वारा संदेस भेजना
११—वन में मार्ग भूलना
१२—विजनवन में सुन्दरियों से साक्षात्कार
१३—उजाड़ शहर का मिलना
१४—किसी वस्तु के संकेत से अभिज्ञान
१५—समुद्र में तूफ़ान, जहाज डूबना

भोजपुरी लोकगाथाओं के अध्ययन से हमें स्पष्ट ज्ञात होता है कि महाकाव्यों में प्रयुक्त उपर्युक्त रूढ़ियाँ लोकगाथाओं के लिए नवीन नहीं हैं। भोजपुरी लोकगाथाओं में निम्नलिखित कथानक रूढ़ियाँ प्राप्त होती हैं:—

१—गंगा यमुना का मानव रूप में प्रगट होना।
२—वन में नायक नायिका की सहायता के लिए बनसप्ती देवी का प्रगट होना।
३—जन्म लेते ही बालिका को अशुभ समझ कर नदी में बहा देना।
४—घोड़े का आकाश में उड़ना।
५—हंस हंसिनी द्वारा संदेश भेजना।
६—जादूगरनियों से लड़ाई।
७—केकड़ा द्वारा प्राण रक्षा।

१—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदि-काल पृ० ७४

८—मछली का मणि निगल जाना और बाद में प्रगट करना ।

९—नायक का अवतार के रूप में जन्म लेना ।

१०—रूप परिवर्तन हो जाना—बकरा, मैना, अथवा पत्थर के रूप में ।

११—पुरोहित की दुष्टता, राजा के कान भरना, बाप बेटी में ही विवाह कराना इत्यादि ।

१२—तोते द्वारा रूप वर्णन सुनकर मोहित हो जाना ।

१३—ऐसा नगर जिस पर राक्षस अथवा डाइन का राज्य हो ।

१४—दुर्गा इत्यादि देवियों का प्रगट होना ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगाथाओं में, लोककथाओं में तथा भारतीय एवं विदेशी साहित्य के निजन्धरी कथाओं (legends) तथा महाकाव्यों में कथानक रूढ़ियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है । हमारा विश्वास है कि इन कथानक रूढ़ियों का प्रादुर्भाव लोक साहित्य के द्वारा ही हुआ है। इन कथानक रूढ़ियों को देखकर प्रतीत होता है कि लोकगाथाओं तथा लोककथाओं के प्रणेता कितना उर्वर और कल्पनाशील मस्तिष्क रखते थे। पाश्चात्य विद्वानों का कथन कि लोक साहित्य में विकसित बुद्धि का अभाव है, भ्रामक है। इस कथन के विपरीत हमें उनकी संवेदनशील मस्तिष्क की सराहना करनी चाहिए। लोकगाथाओं के प्रणेताओं ने जिन कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया वे कालान्तर में चलकर और भी व्यापक हुईं तथा लिखित सहित्य, महाकाव्य आदि में, इनका धड़ल्ले से प्रयोग किया गया । भोजपरी लोकगाथाओं में निहित अवतारवाद, अमानवतत्व तथा समानताओं की उपयोगिता देखकर हमें कथानक रढ़ियों के महत्व का आभास मिलता है ।

---

(४) भोजपुरी लोकगाथा—एक जातीय साहित्य

भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु के फलस्वरूप प्रत्येक देश अथवा जाति के अन्तर्गत सभ्यता एवं संस्कृति का विकास होता है। वहाँ के प्राकृतिक जीवन के अनुरूप ही लोगों की स्वतन्त्र प्रतिभा प्रस्फुटित होती है तथा इतिहास एवं साहित्य का निर्माण होता है। इसलिए हमें प्रत्येक देश अथवा जाति के साहित्य में कुछ न कुछ अन्तर मिलता है। जब हमारे सम्मुख अंग्रेजी साहित्य तथा भारतीय साहित्य का परस्पर उल्लेख होता है तो निश्चित रूप से हमारे मस्तिष्क में दोनों साहित्यों में निहित अन्तर एवं विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं। किसी देश के साहित्य के आधार में वहाँ का आधिभौतिक जीवन प्रकाश में आता है तथा किसी देश के साहित्य में आध्यात्मिक जीवन की छाप दिखलाई पड़ती है।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के आधार में आध्यत्मिक जीवन को महत्त्व मिला है। अतएव स्वाभाविक रूप से यहाँ के साहित्य में आदर्शवाद एवं आध्यात्मिकता का गहरा पुट है। भारतवर्ष में भौतिक सुख को जीवन की चरम स्थिति नहीं मानी गई है अपितु यहाँ के जनसमूह की दृष्टि भविष्य के पूर्ण आनन्दमय अमर जीवन पर ही लगी रही है। यही सामूहिक भावना हमारे यहाँ की अनेकानेक साहित्यिक रचनाओं में परिलक्षित हुई है। अमरत्व प्राप्त करने की सामूहिक भावना ही हमारी जातिगत विशेषता है। यही जातिगत विशेषता हमारे साहित्य में प्रत्येक स्थान पर मिलती है। इसी विशेषता के फलस्वरूप 'जातीय साहित्य' की संज्ञा साहित्य को मिलती है।

यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि किसी भी देश की संस्कृति एवं सभ्यता को सहज रूप में व्यक्त करने वाला साहित्य 'लोक साहित्य' ही होता है अतएव भोजपुरी लोकगाथाओं में देश की सामूहिक अन्तश्चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। अतः हम भोजपुरी लोकगाथाओं को 'जातीय साहित्य' के अन्तर्गत रखेगें।

प्रथम अध्याय में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि लोकगाथाएं किसी एक व्यक्ति की संपति न होकर समस्त समाज अथवा जाति की संपति होती हैं। अतएव स्वाभाविक रूप से उसमें समाज का मन मुखरित होता है। भोजपुरी लोकगाथाएं भी युग युग के जनजीवन को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती हैं।

भोजपुरी लोकगाथाओं में भारतीय जीवन के आध्यात्मिक पक्ष का पूर्ण रूपेण समावेश हुआ है। भोजपुरी लोकगाथाओं के नायक 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' के कथन का पालन करते हैं। उनके जीवन में असीम कर्मवाद भरा पड़ा है। भारतीय जीवन में कर्म से विमुख होना घोर पाप माना गया है। क्योंकि हमारा विश्वास है कि प्रत्येक सत् कार्य का करना अर्थात् ईश्वर की सृष्टि में सौन्दर्य निर्माण करना है। इसीलिये भारतीय जीवन में अध्यात्म के साथ साथ कर्मवाद का महान सन्देश दिया गया है। फल की चिन्ता न करते हुए कर्म करना ही परमधर्म है। इस भावना का सुन्दर चित्र लोकगाथाओं में उपस्थित किया गया है। लोकगाथाओं के आदर्श चरित्र सत्कर्म में निरत हैं। वे समस्त संसार को आदर्शवान बनाना चाहते हैं। ईश्वर की सृष्टि को सजाकर वे पुनः उसी में लीन हो जाना चाहते हैं। वे जीवन के क्षणिक आनन्द एवं वैभव को भली भाँति समझते हैं। उन्हें यह जीवन प्यारा नहीं है अपितु वे तो अक्षय आनन्द की खोज में हैं।

इस प्रकार भोजपुरी लोकगाथाओं में सांसारिक जीवन के भारतीय दृष्टिकोण को स्पष्ट एवं सहज रूप में उपस्थित किया गया है।

जीवन के आध्यात्मिक पक्ष का अतीव चित्रण होते हुये भी भोजपुरी लोकगाथाओं में समाज के जीवन स्तर की उपेक्षा नहीं हुई है। भोजपुरी लोकगाथाओं में जीवन का स्तर अत्यन्त वैभव पूर्ण है। सभी ओर रामराज्य है, सभी अन्न-वस्त्र से सुखी हैं। सुन्दर नगरों एवं विशाल भवनों में लोग निवास करते हैं। समाज का निम्न से निम्न व्यक्ति भी किसी अभाव में नहीं है। यह हम ऊपर ही विचार कर चुके हैं कि भारतीय जीवन में कर्म को प्रधानता दी गई है, अतः लोकगाथाओं में सभी जातियां, सभी वर्ण अपने अपने कर्म में निरत हैं। अतएव इस दृष्टि से भी भोजपुरी लोकगाथाओं में समाज के जीवन का सच्चा रूप चित्रित हुआ है।

भोजपुरी लोकगाथाएं एक जातीय साहित्य के रूप में ही नहीं उपस्थित होती हैं, अपितु इसका स्थान विश्वसाहित्य में भी आता है। किसी भी देश, अथवा जाति के मनुष्यों के हृदय में प्रेम, उत्साह, करुणा, क्रोध आदि नाना भावों का उद्‌भव सदा एक सा ही होता है। उन भावों के व्यक्त करने के प्रकार अर्थात् भाषा शैली और परिस्थिति की भिन्नता के कारण उनकी अनुभूति के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। अनुभूति की इस व्यापक एकरूपता में यदि हम चाहें तो विश्व भर के साहित्य को एक कोटि कर सकते हैं।

इस दृष्टि से भोजपुरी लोकगाथाएं मानवमात्र की अभिव्यक्ति करती हैं। लोकगाथाओं के चरित्रों में आदर्श है, ईश्वर में विश्वास है, वीरता है, करुणा है तथा त्याग और उदरता है। इसके विपरीत उनमें दुष्टता, ईर्ष्या और क्रोध के भाव भी वर्तमान हैं। सदाचार और दुराचार दोनों का यथार्थ चित्र है। संसार में प्रत्येक समय में दोनों प्रकार के लोग रहते थे और रहते हैं। उनके साधन चाहे भिन्न हों परन्तु भावभूमि समान ही है। अतएव भोजपुरी लोकगाथा आदर्श के साथ साथ मानवता के यथार्थ चित्र को भी प्रस्तुत करती हैं।

---

(५) उपसंहार

गतपृष्ठों में भोजपुरी लोकगाथाओं पर विचार करने से हमें स्पष्ट-रूप से ज्ञात होता है कि लोकगाथाएँ देश की संस्कृति एवं सभ्यता की अग्रदूत हैं। इनसे हम देश की विगत ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, भौगोलिक एवं राजनीतिक अवस्था का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि इनकी कथा पुरानी है, परन्तु इनमें इतनी नवचेतना भरी है कि ये वर्त्तमान युग को भी कर्मशीलता और आनंदमय आदर्श जीवन का संदेश देती हैं।

हिन्दी लोक साहित्य में खोज का कार्य कुछ अवश्य हुआ है। इनमें प्रमुख हैं डा० सत्येन्द्र तथा डा० कृष्णदेव उपाध्याय। दोनों महानुभावों ने अपने ग्रंथ में 'लोकगाथा' के विषय पर विचार किया है, परन्तु उसे हम संकेत मात्र ही कह सकते हैं। भोजपुरी लोकगाथाओं पर प्रस्तुत विचारविमर्श लोकगाथा संबंधी अध्ययन की दिशा में पहला कदम है। प्रबंध को प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण बनाने का भरसक प्रयत्न लेखक ने किया है, परन्तु कुछ कमियाँ तो होंगी हीं। वास्तव में लोकगाथाओं का अध्ययन एक अत्यन्त जटिल विषय है। लोकगाथाओं में इतनी विपुल सामग्री भरी पड़ी है कि प्रत्येक लोकगाथा को अध्ययन का अलग ही विषय बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिये आल्हा, लोरिकी, विजयमल तथा सोरठी इत्यादि लोकगाथाओं को हम ले सकते हैं। इन लोकगाथाओं का आकार और प्रकार इतना विशाल और विविध है, कि इन्हीं पर एक एक ग्रंथ तैयार किया जा सकता है।

लोकगाथाओं का सांगोपांग अध्ययन, उनके विविध रूपों का संग्रह तथा संरक्षण का कार्य शीघ्रातिशीघ्र प्रारंभ होना चाहिए। क्योंकि आज के संक्रमण काल में लोकगाथाएं विस्मृत होती जा रही हैं। गांवों में अब कठिनाई से गाथा गाने वाले मिलते है। जो मिलते हैं उन्हें भी आधा-तीहा याद रहता है। इस परिस्थिति का लेखक को प्रत्यक्ष अनुभव है। विशेष रूप से 'आल्हा' के भोजपुरी रूप तथा 'बाबू कुंवरसिंह' के मौखिक रूप को खोजने में अति कठिनाई का

१—डा० सत्येन्द्र एम० ए० पी० एच० डी०—'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन'।

२—डा० कृष्णदेव उपाध्याय एम० ए० डी० फिल०—'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन'।

अनुभव हुआ। आजकल भोजपुरी प्रदेश में 'आल्हा' का प्रकाशित बैसवारी रूप ही अधिक प्रचार में है। इसी कारण प्रस्तुत अध्ययन में लेखक ने श्री ग्रियर्सन द्वारा एकत्रित भोजपुरी रूप से सहायता ली है। यही परिस्थिति 'बाबू कुंवरसिंह' की लोकगाथा की है। भोजपुरी प्रदेश में 'बाबू कुंवरसिंह' विषयक लोकगीत, लोकगाथा से अधिक लोकप्रिय हैं। इसके गानेवाले भी बहुत कम मिलते हैं। जो मिलते हैं वे भी प्रकाशित पुस्तकों की सहायता से ही गाते हैं। इसी लिए लेखक ने भी प्रकाशित पुस्तक से सहायता ली है।

वास्तव में लोकगाथाओं का संग्रह एक विद्यार्थी के लिए असंभव नहीं तो अति कठिन अवश्य है। एक एक लोकगाथा के विविध रूपों को एकत्र करने के लिए कई मास का समय चाहिए। इस कार्य से लिए आर्थिक सहायता अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुतः इस जटिल कार्य को एक संस्था ही कर सकती है। उत्साही कार्यकर्त्ताओं का समूह आर्थिक सहायता से परिपूर्ण होकर जब इस कार्य में लगेगा तभी लोकगाथाओं का वैज्ञानिक संग्रह संभव है।

देश के कुछ प्रमुख विद्वानों ने लोकसाहित्य विषयक अध्ययन की ओर ध्यान देना प्रारंभ कर दिया है। उत्तरप्रदेश में 'हिन्दी जनपदीय परिषद' की स्थापना हमारे हृदयों में आशा और उत्साह का संचार कर रही है। हिन्दी के अन्य प्रादेशिक क्षेत्रों समितियों और परिषदों की स्थापना एक नए युग की सूचना दे रही हैं। लखनऊ में स्थापित 'लोक संस्कृति परिषद्' गत् कई वर्षों से लोक साहित्य संबंधी कार्य कर रही है। बुन्देलखंड में 'लोकवार्त्ता परिषद्'; मालवा में 'मालवा लोक साहित्य परिषद'; राजस्थान में 'भारतीय लोककला मंडल'; पंजाब में 'लोकसाहित्य परिषद' तथा भोजपुरी और व्रज जनपद में कई छोटी मोटी संस्थाएं लोकसाहित्य संबंधी कार्य को आगे बढ़ा रही हैं।

उपर्युक्त संस्थाओं के होते हुए भी आज भारतीय लोकसाहित्य के अध्ययन के निमित्त राज्य से मनोनीत एक केन्द्रीय संस्था की परम आवश्यकता है। इस संस्था में विद्वानों एवं कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति होनी चाहिए। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में लोकसाहित्य की सामग्री एकत्र कर उनका तुलनात्मक अध्ययन ऐसी ही संस्था कर सकती है।

अन्त में आकाशवाणी (आल इंडिया रेडिओ) के विषय में कुछ निवेदन करना अनावश्यक न होगा। पटना, लखनऊ तथा इलाहाबाद केन्द्रों से भोजपुरी

लोकगीतों तथा प्रहसनों का तो अवश्य प्रचार हो रहा है, परन्तु जहां तक अनुमान है, अभी तक भोजपुरी लोकगाथाओं की ओर अधिकारियों का ध्यान नहीं गया है। संभवतः इसलिए कि ये अत्यन्त वृहद् आकार के हैं। इसलिए उचित यह है कि लोकगाथाओं के प्रमुख अंश, परिचय के साथ प्रसारित हों।

परिशिष्ट :क:

(१) आल्हा का ब्याह

अरे रामा लागल कचहरी जब आल्हा के बंगला बड़ बड़ बबुआन,
लागल कचहरी उजैनन के दरबार
नौ सौ नागा नागपूर के नगफैनी बाँध कमर तरवार
बइठल बाड़े काकन डिल्ली के लोहतमियाँ तीन हजार
मढ़वर तिरौता करमावर हवै जिन्हके बइठे कुम्ह चंडाल
झड़ल उभनियाँ गुजहनियाँ हैं बाबू बइठल गदहियावाल
नाच करावे बंगला में मुरलीधर बैन बजाव
मुर मुर बाजे सारंगी जिन्हके रुन रुन बाजे सितार
तबला चटकै रसबेनन के मुख चन्द सितारा लाय
नाचें पतुरिया संघल दीप में लौंडा नाचे ग्वालियरवाल
तोफा नाचे बंगाला के बंगला होय परी के नाच
सात मन का कुंडी दस मन का घुटना लाग
ओहि समन्तर रुदल पहुँचल बंगला में पहुँचल जाय
देखि के सूरत रुदल के आल्हा मन में करे गुमान
देहियाँ देखो तोर धूमिल मुहवाँ देखों उदास
कौन सकेला तोर पड़ गइल बाबू कौन अइसन गाढ़
भेद बतावा तू जियरा के कइसे बूझे प्रान हमार
अरे त हाथजोड़ के रुदल बोलल भइया सुन धरम के बात
पड़ि सकेला है देहन पर बड़का भाइ बात बनाव
पूरब मरलों पुर पाटन में जे दिन सात खंड नैपाल
पच्छिम मरलों बदम लहोर दक्खिन बिरिन पहाड़
चारि मुलकवा खोजि अइलीं कतहीं न जोड़ी मिले कुंआर
कनिया जामल नैनागढ़ में राजा इन्दरमन के दरबार
बेटी रूप सयानी समदेवा के बर माँगल बाँध जुआर
बड़ लालसा हवे जियरा में जो भइया करों बियाह सोनवा से

× × × ×

लागल लड़ाई नैनागढ़ में घोड़ा चल हमारे साथ

एतना बोली घोड़ा सुन गइल घोड़ा जरि के भइल अंगार
बोलल घोड़ा डेबा से बाबू डेबा के बलि जाओ
बज्जर पड़ि गइल आल्हा पर ओपर गिरे गजब के धार
जब से अइलों इंद्रासन से तब से बिपत भइल हमार
पिल्लू बियाइल वा खूरन में ढालन में झान्ना लाग
मुरचा लागि गइल तरवारन में जग में डूब गइल तलवार
आल्हा लड़इया कबहों न देखल जग में जीवन है दिनचार
अतना बोली डेबा सुन गइल डेबा खुशी मगन होइ जाय
खोले अगाड़ी खोले पिछाड़ी खोले सोनन के लगाम
पीठ ठोक के जब घोड़ा के घोड़ा सदा रहौ कलियान
चलल जे राजा ब्रह्मन घुड़बेनुल चलल बनाय
घड़ी अढ़ाई का अंतर में रूदल कन पहुँचल जाय
देखिके सुरतिया बेंदुल के रूदल हुंगके कहल जवाब
हाथ जोड़ के रूदल बोलल घोड़ा सुनेले बात हमार

× × ×

भूजे डंड पर तिलक बिराजे परतापी रूदल बीर
फाँद बछेड़ा पर चढ़ गइल घोड़ा पर भइल असवार
घोड़ा बेंनुलिया पर बव रूदल घोड़ा हंसा पर डेबा बीर
दुइए घोड़ा दुइए राजा नैनागढ़ चलल बनाय
मारल चाबुक है घोड़ा के घोड़ा जिमीन डारे पांव
उड़ि गइल घोड़ा सरगे चलि गइल घोड़ा चला बराबर जाय
रिमझिम रिमझिम घोड़ा नाचे जैसे नाचे जंगल मोर
रात दिन का चलला में नैनागढ़ लेल तकाय
देखि फुलवारी सोनवाँ के रूदल बड़ मगन होय जाय

× × ×

बेर बेर बरजो बघ रूदल के लरिका कहलऽ न माने मोर
बरिया राजा नैनागढ़ के नइया पड़े इंदरमन बीर
बावन गुरगुज के किल्ला है जिन्ह के रकबा सरग पताल
बावन थाना नैनागढ़ में जिन्ह के रकबा सरग पताल

बावन दुलहा के सिरमौरी कहवौलक गुरैंया घाट
मारत ल जइब बाबू रुदल नाहक जइहे प्रान तोहार
पिंडा पानी के ना बचबे हो जइब बन्स उजार
एतना बोली रुदल सुन गइल तरवा से लहरल आग
पकड़ल झोंटा है देबी के धरती पर देल गिराय
आँखि सनीचर है रूदल के बाबू देखत काल समान
दूचर थप्पर दूचर मुक्का देबी के देले लगाय
लेके दाबल ठेहुना तर देबी राम राम चिचियाय
रोए देवी फुलवारी में रुदल जियरा छोड़ हमार
भेंट कराइब हम सोनवा से . .

× × ×

नाम रुदल के सुन के सोनवाँ बड़ मंगन होय जाय
लौंड़ी लौंडी के ललकार मुंगिया लौड़ी बात मनाव
रात सपनवा में सिव बाबा के सिव पूजन चली बनाय
जौने झंपोला है गहना के कपड़ा कइले आव उठाय
खुलल पेटारा कपड़ा के जिन्हके रास देल लगवाय
पेन्हल घांघरा पच्छिम के मखमल के गोट चढ़ाव
चोलिया मुसरुफ़ के जेह में बावन बन्द लगाय
पोरे पोरे अंगुठी पड़ि गइल सारे चुनरियन के झंझकार
सोभे नगीना कनगुरिया में जिन्हके हीरा चमके दाँत
सात लाख के मंग टीका है लिलार में लेली लगाय
जूड़ा खुल गइल पीठन पर जइसे लोटे करियवा नाग
काढ़ दरपनी मूँह देखे सोनवाँ मने मन करे गुमान
मरजा भइया राजा इंदरमन धरे बहिनी राखे कुंआर
बइस हमार बित गइले नैनागढ़ में रहीं बार कुंआर
आग लगाइबि एह सूरत में नैना सँवली नार कुंआर
अरे त लागल कचहरी इन्दरमन के बंगला बड़ बड़े बबुआन
ओहि समन्तर लौंड़ी पहुँचल इन्दरमन कन गइल बनाय
आइल राजा बघरूदल सोनवाँ के डोला घिरावलबाय
माँगे बिअहवा सोनवाँ के बरियारी से माँगे वियाह
हवे किछु बूता जाँघन में सोनवाँ के लाव छोड़ाय

मनें मन झाँके राजा इन्दरमन बाबू मनेंमन करे गुमान
बेर बेर बरजों सोनवा के बहिनी कहलन मनलS मोर
पड़ि गइल बीड़ा जाजिम पर बीड़ा पड़ल नौ लाख
है केउ राजा लड़वइया रूदल पर बीड़ा खाय
चाहड़ कांपे लड़वइया के जिन्हके हिले बतीसों दाँत
केकरा जियरा है भारी रूदल से जान दियावे जाय
बीड़ा उठावल जब लहरासिंघ कल्ला तरदैल दबाय
मारू डंका बजवाये लकड़ी बोलै जुझान जुझान
एकी एका दल बटुरल जिन्हके दल बावन नबे हजार
बूढ़ मकुना बियाउर के गिनती नाहीं जब हाथ के गनती नाहि
बावन मकुना के खोलवाई राजा सोरह सै दन्तार
नब्बै सौ हाथी के दल में मँड़ल उपरे नाग डम्बर मँडराय
चलल परबतिया परबत के लाकर बाँध चलै तलवार
चलल बंगाली बंगला के लोहन में बड़ चंडाल
चलल मरहट्ठा दक्खिन के पक्का नौ नौ मन के गोला खाय
नौ सौ तोप चलल सरकारी मंगनी जोते तेरह हजार
बावन गाड़ी पथरी लादल तिरपन गाड़ी बरूद
बत्तिस गाड़ी सीसा लद गइल जिन्हके संगे लदल तरवार
एक रुदेला एक डबा पर नब्बे लाख असवार

× × × ×

तड़ तड़ तड़ तेगा बोले उन्हके खटर खटर तरवार
जैसे छेरियन में हुँड़ड़ा परे वइसे पलटन में पड़ल रुदल बबुआन
जिन्हके टंगरी धैके बीगे से त चूर चूर होइ जाय
मस्तक मारे हाथी के जिन्हके डोंग चलल बहाय
थापड़ मारे ऊँटन के चारु टाँग चित होय जाय
सवालाख पलटन कटि गइल छोटक के
जौ तक मारे छोटक के सिरवा दुइखंड होइ जाय
माँगल तिलका छोटक के राजा इन्दरमन के दरबार
कठिन लंका बा बघ रूदल सभ के काटि देल मैदान
एतो बारता इन्दरमन के रूदल के देखे छाती मारै बजर के हाथ
लै चढ़ावल पालकी परदर डोली में महल बनाय

बीड़ा पड़ि गइल इन्दरमन के राजा इन्दरमन बीड़ा लेल उठाय
एकी एका दल बटुरे दल बावन नब्बे हजार
बावन मकुना खोलवाइन एकदंता तीन हजार
नौ सौ तोप चले सरकारी मँगनी जोते तीन हजार
बारह फेर के तोप मंगाइल छुरी से देल भराय
किरिया पड़ि गइल रजवाड़न में बाबू जीअल के धिक्कार
उन्हके काटि करो खरिहान
चलल जे पलटन इन्दरमन के शिव मंदिर पर पहुँचल जाय
तोप सलामी दगवावल मारू डङ्का देत बजवाय
खबर पहुँचल बा ऊदल कन भइया आल्हा सुनो मोरी बात
कर तैयारी पलटन के शिव मंदिर पर चली बनाय
निकलल पलटन ऊदल के शिव मंदिर पर पहुँचल जाय
बोलल राजा इंदरमन बाबू ऊदल सुनो मोर बात
डेरा फेर एजनी से तोहार महाकाल कट जाय
तब ललकारे ऊदल बोलल रजा इंदरमन के बलि जाओ
कर द बियहवा सोनवाँ के काहे बढ़इब रार
पड़ल लड़ाई हैं पलटन में झार चले लागल तलवार
ऐदल उपर पैदल गिर गइल असवार उपर असवार
भुइयं पैदल के मारे नाहीं घोड़ा असवार
जेती महावत हाथी पर सबके सिर देल दुखराय
छवे महीना लड़ते बीतल अबना हटे इन्दरमन बीर
चलल जे राजा बघ रूदल सोनवाँ कन गइल बनाय
हाथ जोड़ के रूदल बोलल भौजी सोनवाँ के बल जाओं
केहू के मरला से भुइहें अप्पन करल बीर कटाय
जबहीं तू कटब भइया इनदरमन के तब सोनवा के होइ बियाह
अतना बोली सोनवाँ सुनके रानी बड़ मँगन होय जाय

× × × ×

काँचे महुहवा कटवाये छये हरीअरी बाँस
तेगा के माड़ो छववाल बा
नौ सौ पंडित के बोलावल मँड़वा में देत बिठाय
सोना के कलसा बइठले बा मँड़वा में
पीठ काठ के पीढ़ा बनावे मँड़वा बीच मँझार
जाँघ काटि के हरिस बनावे मँड़वा के बीच मँझार

मूड़ी काट के दिया धरावे मँड़वा के बीच मँझार
पलटन चल गइल ऊदल के मँड़वा में गइल समाय
बइठल दादा है सोनवाँ के मँड़वा में बइठल बाय
बूढ़ा मदनसिंघ नाम धराय
एक बेर गरजे मँड़वा में जिन्हके दल के दस दुआर
बोलल राजा बूढ़ा मदनसिंह सारे रूदल सुन बात हमार
कतबड़ सेखी है बघ रूदल के मोर नतिनी से करे बियाह
पड़ल लड़ाई ह मँड़वा में ऊदल मन में करै गुमान
आधा पलटन कट गइल बघ रूदल के सोने के कलसा बूड़लबा
बीचें दोहाई जब देबी के देबी माता लागू सहाय
घींचल तेगा है बघ रूदल बूढ़ा मदनसिंघ के मारल बनाय
सिरवा कटि गइल बूढ़ा मदनसिंघ के
हाथ जोड़ के समदेवा बोलल बबुआ रूदल के बलि जाओं
कर बिऊहवा तू सोनवा के नौसे पंडित बोलाय
आधी रात के अम्मल में दुलहा के ले ले बोलाय
ले बइठावल जब सोनवा के आल्हा के करै बियाह
कैल बियहवा अऊर सोनवा के बरिआरिया सादी कैल बनाय
नौ से कैदी बाँधल ओहि माड़ो में सबके बेड़ी देल करवाय
जुग जुग जीअ बाबू ऊदल तोहार अमर बजे तरवार
डोला निकलल जब सोनवाँ के मोहबा के लेलतकाय
राति क दिनवाँ का चलला में मोहबा में पहुँचल बाय

—:o:—

(२) लोरिकी

लोरिक और चनवा का विवाह, (चनवा का ओढ़ार)

हे राम जी के नइयाँ जपे संझियाँ चाहे बिहान
जेकर जपले बनी मुकुतिया आ सुरधाम
एहवर भइया दुरुगा होई अपई बिहान
छुटल त दुरुगा हमार अछरिया हमार कंठ
गावे मनवा करता लोरिकायन मनियार

× × × ×

अरे जब लड़त लड़त माई पर नजरिया लोरिक के परिजाय
लोरिक देखेले के मइया इहंवा आइलिबाय
तब दूनो बीर हटी के फरकवा होले ठाढ़
छोड़ी दिहले लड़ल दूनों अखाड़ा से बहिराय
लोरिक कहेले कहु ए माई गऊरवा के हाल
अतना सुनके माई खुलइन साजेली जवाब
काहेली जे सुन ए बबुआ का कहीं गउरा के हाल
गउरवा में आइल बाटे बाठवा हो चमार
राजा साहदेव के बेटी चानवा ह जेकर नाम
सीलहट में भइल रहल जेकर बियाह
भागत आवतिया गउरवा गुजरात
बिचवे जंगलवा बाठवा के लिहलसि पिछियाय
इजती बचाके चानवा गउरवा में अइली पराय
ओकरे के बाठवा गउरवा में ले आइल पिठिआइ
आइ कर सऊंसे गउरा में कहलसि चिचिआय
सउसे गउवाँ मिलि के कदऽ चना से हमार बियाह
डर का मांरे काहे केहू ना बाठवा के दिहल जवाब
बाठवा के डरे साहदेव के तरवा चटकल बाय
नाहीं केहू दिहल बाठवा के जवाब
हाड़ ले आइ के फेंकलसिहा दुनरवा में लगाय

पानी भरे गइलि हा बेटी मंजरिया हो हमार
छोरी के पटको दिहलसि घरोआ बाठवा चमार
अतना सुनेला जब लोरिकवा बीर माल
खिसिया के मारे देही लहरवा चटकल बाय

× × × ×

होई के तैयार दूनों मरद करेले उहां भिड़ान
गँसवा में गंसावा दुनो बीर के मिली जाय
छाती में छाती सिरवा से सिर सटी जाय
दाँव त काटी के लोरिक बाठवा के बिगे उठाय
जाके बाठा गिरल करका धरती पर भहराय
तब लोरिक फानिके छाती पर हो गइले असवार
नाक हाथ काटि के बाठवा के भगवान
भागल बाठवा उहवाँ से जंगलवा के धरे राह
इहाँ संउसे गउरा डंका पिटी जाय
अरे सुनेले गढ़वा में चनवा डंकवा हो पिटाय
मने मने अपना चनवा करेले बिचार
कहेले जे लोरिक अइसन ना जगत में केहू बाय
केहीं भाँति होई मोरा लोरिक से मुलाकात
कवना जुगती से करीं लोरिक से मुलाकात
बइठ के चनवा लिखेले पतिया बताय
एबाबिल छत्तीसों बरन गउरा के कराव जेवनार

× × × ×

हो गइल बिजइया लोग राजा के पहुँचे दुआर
करे लगले भोजन लोगवा भितरा से बहरा मकान
नाना बिधि के बनलवा जेवनार
मार्‌हा का बने से माँड़ के नदिया बहि जाय
लोरिक के सरतिया चनवा देखति रे बाय
हाथवा के लेले बारे चानवा पान के खिल्लो लगाय
सोचतिया उहाँ कइसे गिराईं खिल्ली लोरिक के पतलवा
बीरा जब गिरवलस गिरे लोरिक के पातल जाय

जइसे खिल्ली गिरल लिहले लोरिक उठाय
परल नजरिया लोरिक के चानवा के ऊपर जाय

× × × ×

खापीले सउसे गउरवा के लोगवा सुती जाय
जब उहाँ हो गइल रतिया आके निसुआर
घमेलागल राजा डेवढ़ी पर चौकीदार
बरहा उठावे लोरिक गइले महला के पिछुआर
उहवे त बिगेला बरहा लोरिक ना सरिहाय
भईले सबदवा चनवा उठे चिह्लाय
उठी के चनवा खिड़िकिया पर पहुँचल जाय
देखतिया चनवाँ लोरिक भइल बाडे ठाढ़
जइसे जोर कइले लोरिक बढ़े के परवान
तइसे चाना बारहा छोड़िके हटी जाय
देबे लगले लोरिक उहवाँ चनवा के गारी सुनाय
कहेले जे रउआ जामल छिनरी नान्हे के बदमास
अतना कही के लोरिक बरहा बीगे घुमाय
धइकर बारहा चनवा खिरकी में देले बान्ह
लोरिक ओही बारहा से चढ़ि जात
चढ़ी कर गइले लोरिक चनवा के महलान।

× × × ×

दस पाँच दिनवा एही बिध करत बीति जाय
एक पख बीतल एक दिनवाँ चनवा चदरिया गइल लोरिक से बदलाय
चदरी त बान्ही के मुड़िया पर लोरिक चलि जाय
लोरिकवा पहुँचल अपना अंगनवा
भइल रहे भिनुसाहरा मुँहवा लउकत रहे उजियार
ओही बैठल आँगना बहोरेले मंजरिया मनियार
मंजरी के नजरिया परिले लोरिक पर जाय
देखी के सतिया उहवाँ हँसली ठठाय
कहेले जे सुन ए मइया खुलइनी कहल हमार

देखऽ आके आँगना म बाड़े ठाढ़ बरैठा के दमाद
अतना त सुनिके लोरिक चादर देखे उतार
देखी के चदरिया लोरिक चलि भइले मिता के दुआर
कहेले बड़ी त बेजतिया राती हमरा भइल बाय
चानवा के चादर से चादर मोर गइल बदलाय
अइसन करऽ जे केहूना जाने पावे एकर हाल
अतना सुनिके बिरिजा चदरी के चपति के लेले साथ
चलि त भइली बिरीजा राजा के महलान
एते रतिया जगली चनवा सूतल बा अलसाय
सुतल सुतल दिन चढ़ल अधिकाय
तब उहाँ मुँगिया लऊँड़ी चाना के देले जगाय
लोरिक के चदरिया मंचिया चाना के देखे पास
मुँहवा सुखलवा चाना के बिखरल बाटे सिंगार
ओठवा के ऊपर चाना का पपरिया परल बाय
देखी के हलिया चाना के मुँगिया कहे सुनाय
कहेले सुन ए बहिनी चाना कहल हमार
तू आजु कहऽ अपना दिलउवा कर हाल
बड़ा अचरजवा आजु बहिनी बारे बुझात
अतना त कही के चेरिया रानी के जाले पास
झटकल गइली माता गंगवा कर पास
जाई के कहेले चेरिया रानी से समुझाय
कहेले जे सुनिए रानी गंगवा मोरे बात
चानवाँ का महल बा कवनो मरद से मुलाकात
तले चादर लेके बिरिजा पहुँची उहाँ जाय
जाइकर बोले बिरजा उहाँ सुनात
चदरी त बदला गइले बहिनी हमार
अतना कही के बिरिजा चदर देले धराय
आपन चदर लेके चाना लोरिक के देले आय
अब उहाँ के बतिया के परदा चाना का परि जाय
भेद नाहीं खुलल गइल एतने से हो ओराय

× × × ×

चानवाँ के लेके लोरिक हरदिया से जाले बजार

दिन राती रहिया धइले मंजीलिया तुरतजाय
आइके पहुँचले बगसर हेल गइले दरिआव
धइले सड़किया सदर हरदिया के चली जात
एही त सड़किया सबर बसत बा सारंगपुर गांव
जवना सारंगपुर में बाटे महीपतिया हो जुआर
सुघरी चाना के उ हां मएदनवा में बइठाय
अपने त जुआ खेले महिपत के संग जाय
दांवा पर धइले लोरिक सोनवा के जाइ पेटार
धरेला महिपतिया दाँव पर सारंगपुर गांव
थपरी बजा के जुआड़ी दिहले लोरिक के उलू बनाय
सब धन हरके बांचल चनवा रहली हाय
सेकरो के धरे दिहले दाँव पर चानवा के लगाय
तब फेरु धरे महीपति सारंगपुर हो गाँव
बड़े त खुशी से महीपति पासा लेला उठाय
मारेला घिरनी नचा के परिच से लगी लगाय
तब उहाँ गइल अकिल लोरिक के हेराय
मने मने चनवां अपना करेले हो विचार
करिके चानवां मन ही में कहती बाय
अबहीं त एक दाँव हमारा बाचल असबाब
एक दांव के बांचल बाटे गहनवा हमार
एक हाथ महीपती खेलऽ जुआ हमारा साथ
पासा लेके हाथ में महिपति सुमिरेला पुजमान
दांव पर बइठी के जाना सारदा के धरे ध्यान
अबही निहारतारे चनवा के सुरतिया
पासा त फेंके जहाँ महीपतिया बनाय
नाचल पासा गिरे तेरहवें पर जाय
दांव त बटोरी के चानवां थपरी देले बजाय
सब कुछ जीति के जितलसि सारँगपुर गाँव
हाथ जोरि के चनवा लोरिक से कहती बाय
कहेले जे सुनए सइयां कहनवा मानऽ हमार
डरा अब कबार इहाँ से हरदिया के घरऽ राह
तब उहां महीपतिया जुआड़िन से कहे सुनाय

कहेला जे सुनें ए जुआड़ी कहल हमार
जीतल तिवई ले अब मोरा पास
तिवई के सूरत भइया तेजली नाहीं जाय
हमरा नजरी से नाहीं सूरती बिसरत बाय
जैसे हारे तइसे ले आव मोरा पास
होखे लागल मारपीट उहंवा लोरिक संगे साथ
सवापहर उहवां लोरिक बजवले हथियार
सब त जुआड़ी के मारी के गरदा दिहले मिलाय

× × × ×

चलत चलत लोरिक पहुंचल हरदिया के बजार
चनवा के लेके रहे लागल लोरिक मनियार
एने पहुंचल खबरिया राजा महीचनवा के पास
पहुँचल मांगे लगले लोरिक महीचन राजा बिचवा
भइल लड़इया लोरिक महीचन राजा
लाख फौजी काटि दिहलेसि लोरिक मनियार
तब त लगले जोड़े राजा महीचन हाथ
राजा पहुंचलि अपना मंत्रि के लिहल बुलाय
तब उहां राजा से रचेले मंतीरी हाथ
कहेले जे सुन ए राजा से बतवा तू हमार
अहिर के बाटे सहजे जुगुति हो उपाय
हरसाल राजा हरेवा हरदी के आवे बजार
साल भरे एक बेर आवेला तोहरे गांव
छव महीना पहिले चिठी देला भेजाय
एक दिन राती राजा हरदी में करे मौकाम
तबहूं ना जुटेला राजा हरेवा के बुतान
लुटी ले खाइ जाला राजा हरदी के बाजार
राजा त हरेवा के आवे के होता जब मोकाम
सऊंसे त हरदी में तबहीं सेपरी जाला हथकार
जहंवा जे बत्तीसासई बहत्तर सूबा सहतारे बनीसार
आन नाहीं देला राजा ना बोले मियाद
बन्हुआ के मांस काटी बन्हुआ खाइ जाय

ओही जे त अहीर के राजा भेजेला एह बार
अहीर के बोला के कहऽ अहीर के समुझाय
कहऽ जे बेटा मोर राजा हरेवा बन्हले बाय
नेउरपुर जाके लेआव बेटा के मोटा छुड़ाय
बड़ा हम नेकिया मानब जनम जनम भरी तोहार
लिखी हम देवी तोहरा के हरदी के ठकुराय

:लोरिक इस षड्यन्त्र को समझता है : परन्तु अपनी वीरता को प्रगट करने के लिए वह नेउर पुर जाकर हरेवा को मार डालता है और विजयी होकर हरदी लौटता है, तथा राजा से आधा राज्य ले लेता है।:

गउरा का हाल :—

अरे रोये त मंजरिया अपना अंगना
जियत माई खोलइन रहली घरवा
भसुर त रहले संवरू बिरवा
सवा लाख गइया रहली बोहवा
बहंगी पर दुधुवा आवे गउरा
दुधवा के कुलवा हम कइलीं गउरा
हे लागल हमार सेजिया फुलवा
दादा एहबर परिगइल बिपतिया गउरा
सवालाख गइया बेर केले गइल बा दुसाध
गउरा के राजा बाड़े साहदेव
ओकरे बेटी रहे चनवा हो राम
जेकरा ना जुरल मोगल आ पठान
अरे मंजरी का रोवे धरती डोले
लागल डोले इन्दरपुर कैलाश
डगमग होखे लागे इन्दर के दरबार
जेतना रहले आपुस में करे लगे बिचार
देख मृत्युभुवनवा केकरा परल बा बिपतिया
साती मइया इनार के गइल सहाय
बहिन हमार दुरुगा सेवक पर बिपतिया परलबाय
हो जाय दुरुगा तू सहाय

अरे त दुरुगा पहुंचल गउरा हो ठाढ़
दाहिने बोलले मंजरी सती
रोइ रोइ कहे दुरुगा से आपन हाल
ए दुरुगा जब तक बनल रहें गउरा
तब त देत रहनी दोहरा पूजा तोहार
बिपत के पड़ल केहू ना देता साथ ।

:इसके पश्चात् दुरुगा हरदी पहुंचती हैं और गउरा का सब हाल लोरिक से कहती हैं। लोरिक यह सुनकर चनवा को साथ लेकर गउरा चल पड़ता है। गउरा पहुंचकर अपने गांव की दशा को सुधारता है, तथा मंजरी और चनवा के साथ सुख से रहने लगता है ।

---

३ विजयमल

हम त सुमिरी ढेर के मिनतिया रे ना
हाइ हाइ रे बिधाता करतरवा रे ना
अब सुनीं पंचे आगें के हवलवा रे ना
रामा सपना देले देबी माई दुरगुवा रे ना
बबुआ तोहरा पुतर होइहें तेजमनवा रे ना
रामा चलि जइहें रंगरे महलिया रे ना
रामा पसवा में रानी मनवतिया रे ना
रामा चलि गइले घुरुमल सिंघवा रे ना
रामा चलि गइले रंगवा महलिया में ना
रामा तब कइले भोगवा बिलसवा रे ना
रामा रहि गइले तब दुनिया दरवा रे ना
रामा नउवां मंसवा भइले लरिकवा रे ना
रामा महल में भइल खुसहलिया रे ना
रामा बेटा भइले राजा घुरमुलसिंघवा रे ना
रामा अनधन सोनवा लुटवले रे ना
रामा भइल बाटे खुसी कचहरिया रे ना
रामा एजा केतऽ रहल एजा बतिया रे ना
रामा आगे सुनीं आगे वे बयनवा रे ना
रामा सुनीं आगे के बचनवा रे ना
रामा बेटी भइलि बावन सुबेदरवा रे ना
रामा नांव परल तिलकी बबुनिया रे ना
रामा एते नांव परल कुवर विजयमलवा रे ना
रामा बाप जी के नाव घुरुमल सिंघवा रे ना
रामा भाई के नाव धिरानन छतिरिया रे ना
रामा माता जी के नांव मनवतिया रे ना
रामा भउजी के नांव सोनवा मतिया रे ना
रामा मोर नांव कुंवर बिजइया रे ना
रामा बावन देस में बावन सूबेदरवा रे ना

रामा बेटा के नांव मानिकचन्दवा रे ना
रामा रनिया के नांव मयनवा रे ना
रामा भउजी के नांव फुलवामतिया रे ना
रामा नांव परल तिलकी बबुनिया रे ना
रामा लागल खोजै बावन सूबेदरवा रे ना
रामा भेजै लागल देस देस धनवा रे ना
रामा बबुनी के खोजी देहु लरिकवा रे ना
रामा बान्हि चलले बावन बरिअतिया रे ना
रामा केहू नाहीं लिहले तिलकवा रे ना
रामा लौटि अइले जाति के धवनवा रे ना
रामा केहू नाहीं लेला तिलकवा रे ना
हाइ हाइ रे बिधाता करतरवा रे ना
मालिक कवना बिधि लिखला लिलरवा रे ना
रामा ब्रह्मा के लिखले लिलरवा रे ना
रामा मारल टांकी नाहीं होई निभेदवा रे ना
रामा बोले लागल बावन सुबदरवा रे ना
बबुआ सुनिलेहु बेटा मानिकचनवा रे ना
बेटा चलि जाहू घुरुमल पुरवा रे ना
बबुआ तिलकी कइब तिलकवा रे ना
बबुआ घुरुमल सिंघ का भइल बा लरिकवा रे ना
रामा तब भेजेले जाति के धवनवा रे ना
रामा जाइ त दगले सलमिया रे ना
रामा सुनि 'लेहु हमरी अरजिया रे ना
बावा बिदा कइले बावन सुबेदरवा रे ना
बाबू बोले लागल जाति के धवनवा रे ना
बाबू देहू देहू आपन लरिकवा रे ना
रामा बोले लगले घुरुमल सिंघवा रे ना
रामा नाहीं करबि सदिया बिअहवा रे ना
रामा डरऽ तारे घुरुमल सिंघवा रे ना
तबले बेटा अइले धिरानन छतिरिया रे ना
बाबू का हवे इहो ना हमलिया रे ना
रामा सादी खातिर मांगता लरिकवा रे ना

रामा लेइ लेबि बावन के तिलकिया रे ना
रामा लेइ लिहले ओजा पतिरिकवा रे ना
रामा रोपि दिहले तिलक के बिनवा रे ना
रामा नाहीं मनले बाप के कहनवा रे ना
रामा जेहिया रोपले तिलकके दिनवा रे ना
रामा तहिया आइल तिलकी के तिलकवा रे ना
रामा तेलवा से गोड़वा धोअयले रे ना
रामा घिव दिहले पानी एवजवा रे ना
रामा तब खिआइल मानिक चनवा रे ना
रामा पानी बेगर मरलसि हु त जनवा रे ना
रामा जहिया चलिहें बावन देश मुलुकवा रे ना
रामा देखिलेबि इनकर गियनवा रे ना
रामा चलि गइले बावन देश मुलुकुवा रे ना
रामा देखिलेबि इनकर नमवा रे ना
रामा चलिगइले बावन देश मुलुकवा रे ना
रामा बइठल बाड़े मितबी देवनवा रे ना
रामा तहाँ बइठल बावन सुबेदरवा रे ना
रामा पूछे लागल ओइजा के कुसलिया रे ना
रामा रोवे लागल बेटा मानिकचनवा रे ना
रामा मारि घललसि पानी बेगर परनवा रे ना
रामा जइसे मरले पानी बेगर जनवा रे ना
रामा तइसे बान्हबि जेहल वरिअतिया रे ना
रामा चललि बाटे आपु बरिअतिया रे ना
रामा चललि बाटे छपनि लाख फउदिया रे ना
रामा रास गिरल भंवरानन पोखरवा रे ना
रामा होखे लागल घोड़ा घोड़दउरिया रे ना
रामा लागल वरिअतिया दुअरिया रे ना
रामा होखे लगइल सादी केर बिअहवा रे ना
रामा सोचै लागल बेटा मानिकचनवा रे ना
रामा कब लेबि तिलक के बदलवा रे ना
रामा बोलत बाड़े मंतिरी देवनवा रे ना
रामा सुनि लेहू बेटा मानिकचनवा रे ना

रामा अइहें माँड़ों बरिअतिया रे ना
रामा तब दीह सब के जेहलिया रे ना
रामा कुले खूँटे बन्हिह बरिअतिया रे ना
रामा बांधल बाटे हिंछल बछेड़वा रे ना
रामा दिहल बाटे अगलीं पछड़िया रे ना
रामा दिहल बाटे आँखि में छोपनिया रे ना
रामा तब उहे दिहलसि हुकुमवा रे ना
रामा तब गइल सब बरिअतिया रे ना
रामा होखे लागल ओइजा मंड़उवा रे ना
रामा बहरी से हनेला केवरिया रे ना
रामा खाली घुरेला हिंछल बछेड़वा रे ना
रामा छुटि गइले भंवरानन पोखरवा रे ना
रामा धोखवा से मंगलसि फउदिया रे ना
रामा दिहलसि धरवाइ हथिअरवा रे ना
रामा अइसहिं त दिहलसि सब के धोखवा रे ना
रामा मारि कइलसि ओइजा सजइया रे ना
रामा बाप बेटे डललसि ओजवाँ रे ना
रामा नीचे मुड़ि ऊपर कइलसि गोड़वा रे ना
रामा तोहवा में दिहलसि खपचरवा रे ना
रामा बान्हि घललसि छपनलाखि पलटनिया रे ना
रामा रोए लगले बाबू धुरमुलसिंघवा रे ना
रामा नाहीं मनले बेटा मोर कहनवा रे ना
रामा सब हाथि घोड़वा के बन्हलसि रे ना
रामा डालि दिहलसि सब के जेहलिया रे ना
तब बोलतारे धीरानन छतिरिया रे ना
बाबू सुनि लेहु हमरो कहनवा रे ना
रामा धोखवे बन्हलसि बरिअतिया रे ना
हाइ हाइ रे बिधाता करतरवा रे ना
रामा आजु रहिले मोर हथिअरवा रे ना
रामा मारि घललीं आल्हर परनवा रे ना
रामा तिलकी के संगी चल्हकी नउनिया रे ना
रामा उहो रहे तिलकी के संगिया रे ना

रामा बान्हि घलेला छपनलाख पलटनिया रे ना
रामा रहि गइले कुँवर बिजयमलवा रे ना
तब बोले लागल बेटा मानिकचनवा रे ना
सुनि लेहु चल्हकी नउनिया रे ना
रामा बान्हि घलली सब पलटनिया रे ना
रामा बान्हि गइले कुँवर बिजयमलवा रे ना
रामा अंगना में साजि अगिन कुड़वा रे ना
रामा कुलवा में रहेला फतिगंवा रे ना
रामा नउवा त बुते घुरूमलसिंघवा रे ना
रामा रोए लागलि चल्हकी नउनिया रे ना
रामा कैसे बिचहैं कुंवर बिजइया रे ना
रामा मनवा में करेले बिचरवा रे ना
रामा मानिकचन से करेले बहानवा रे ना
रामा मधुरे से बोलले बचनिया रे ना
बेटा नथिया छुटलि बा पोखरवा रे ना
रामा गइली भंवरानन पोंखरवा रे ना
रामा हिंछल से ए राम हलवा रे ना
रामा अंखिया के खोलले छोपनिया रे ना
रामा बोले लागल हिंछल बछेड़वा रे ना
रामा खोलि देहु अगली पछड़िया रे ना
रामा हिंछल मारे लगले मेंड़रिया रे ना
रामा हिंछल दउरल अइले खिरकिया रे ना
रामा चल्हकी गइली घर के भितरवा रे ना
रामा कोरवा में लिहलसि बिजय मलवा रे ना
रामा नाहीं जाने पवले बेटा मानिकचनवा रे ना
रामा बइठा दिहलसि पीठि का उपरवा रे ना
रामा घोड़वा उड़ल बा अकासवा रे ना
रामा नीचे छोड़े धरति धरमवा रे ना
रामा जाइले त पहुँचल घुरुमुलपुरवा रे ना

× × × ×

रामा पोसे लगली सोनवा मतिया कुंवरा के रे ना

रामा कुंवर के करेली सिंगरवा रे ना
रामा कुंवर भइले दुइचार बरिसवा रे ना
रामा खेले लगले लछमन के संगवा रे ना
रामा लरिका खेलतु गुली डंडवा रे ना
रामा कुंवर गइले लरिकन के भितरवा रे ना
रामा करे लगले लरिका से जवबिया रे ना
लरिके हमरो के खेलाय गुलीडंडवा रे ना
रामा तब बोलत बा कनवा लरिकवा रे ना
रामा हम न खेलाइब तोर खेलिया रे ना
बबुआ आपन तू ले आव गुली डंडवा रे ना
तब हम खेलाइब तोहार खेलिया रे ना
इरिखा लागल बाबू कुंवरसिंह बिजेमलवा रे ना
बबुआ चलि गइले आपन घरवा रे ना
रामा जा के सुतले पतरि दलनिया रे ना
उपरा तानि दिहले मखमल चदरिया रे ना

× × × ×

हेमिया चलि जाहू डोंडना लोहरवा रे ना
रामा हेमिया गइलि डोंढा का दुअरवा रे ना
डोंढा गोसयां से महल बा हुकुमिया रे ना
रामा लेइल बसुलवा रुखनिया रे ना
रामा चलि चलऽ राज दरबरावा रे ना
रामा हुकुम के रहल दलिनवा रे ना

× × × ×

रामा ओंजा जाइ के करेले सलमवा रे ना
गोसयाँ सुनि लिहली रानी सोनवामतिया रे ना
बबुआ बनि गइले तोहरी गुली डंडवा रे ना
रामा लागल बाटे गाड़ी आ बरधवा रे ना
रामा दर छोड़त नइखे गुलीं डंडवा रे ना
रामा उठिगइले कुंवर मल बिजयना रे ना
रामा चलि गइले कुंवर डोंढा के दुअरिया रे ना

रामा एक हाथ लिहले उ त गुलिया रे ना
रामा दोसर हाथे लिहले अपना डंडवा रे ना
रामा लेके गइली बारी बगइचवा रे ना
रामा उमरि रहलि बारह बीसवा रे ना
रामा उहां रहले सभकेह लरिकवा रे ना
रामा तब मारे एगो चंपवा रे ना
चंपवा जाके गिरल बावन गढ़मुलुकवा रे ना
रामा मुदई त बारे हमार जिनवा रे ना
उहंवा किरिया खाले कुंवर बिजेमलवा रे ना
बाप किरिए हम मरलें बानी चंपवा रे ना
तले गारी देता काना सार लरिकवा रे ना
सरऊ झुठी मूठी खालऽ तु किरिश्रवा रे ना
तोहरे बजवा के नइखे ठेकनवा रे ना
तोहार माई बाप बाड़े जेहलखनवा रे ना
रामा चलि गइले पतरि दंलनिया रे ना
रामा तानि दिहले मखमल चदरिया रे ना
रामा छाती धुने रानी सोनवामतिया रे ना
रामा कवन पापी जनमल मोखलिफवा रे ना
रामा जेहि रें बतावे राम भेदवा रे ना
रामा उठि गइले कुंवर बिजइया रे ना
रामा फेंकि दिहले मखमल चदरिया रे ना
रामा आगा चललि रानी सोनवामतिया रे ना
रामा पाछे चलते कुंवर बिजइया रे ना
रामा जहवां रहले हिंछल बछेड़वा रे ना
रामा राखल रहे आवां के भितरवा रे ना

× × × ×

रामा नाही मनले बिजइ कुंवरवा रे ना
रामा धानि चढ़ले हिंछल असवरवा रे ना
रामा भउजि से कइले परनमवा रे ना
रामा नीचे छोड़े हिंछल धरतिया रे ना
बिचे मारत बाड़े हिंछल मेंड़रिया रे ना

जैसे मारतिया चिल्हिया पखेरिया रे ना
रामा डरे काँपि कुवर बिजैमलवा रे ना
तब गारी देला हिछल बछड़वा रे ना
सरउ डरे कंपलऽ पिठि का उपरवा रे ना
तब कइसे जितबऽ बावनगढ़ किलवा रे ना
बबुवा मति होख तुंह अधीरवा रे ना
रामा चलि गइले एही तरें दुरिया रे ना

× × × ×

रामा हिछल उतरले भंवरानन पोखरवा रे ना
रामा उंहा रहली तिलकी बबुनिया रे ना
ओकरा संगे रहलि सोरह सइ लड़किया रे ना
ओइजा हुकुम देले तिलकी बबुनिया रे ना
चलि जइबू लंउड़ी भवरानन पोखरवा रे ना
रामा लेइ अइबू पोखरवा के जलवा रे ना
रामा पियासल बाड़े जेलवा के लोगवा रे ना
रामा हुकुम पवलीं सोरह सइ लड़किया रे ना
रामा करइ लगलीं सोरह सिंगरवा रे ना
रामा गावैं लागलीं झूमरि सोहरहवा रे ना
रामा पोखरा रहले हिछल बछेड़वा रे ना
रामा कनखी देखेला हिछल बछेड़वा रे ना
तबले तड़पल बाड़े हिछल बछेड़वा रे ना
रामा उठि बबुआ कुंवर बिजयमलवा रे ना
बबुआ आइ गइली सोरह सइ लड़किया रे ना
रामा इहे हअइ तिलकी के लउंड़िया रे ना
रामा उठि के देखे सोरह सइ लउड़िया रे ना
रामा देखि मुरछी खाले कुंवर बिजयमरवा रे ना
रामा जेकर हउई अइसन लउड़िया रे ना
रामा रानी कइसन होइहें तिलिकिया रे ना

× × × ×

रामा तब बोलल कुंवर बिजैमलवा रे ना

रामा मधुरे से बोलेला बचनिया रे ना
रामा भउजी से कइलीं कररवा रे ना
रामा पहिले छोड़ाइब आपन भइया रे ना
तवना बाद छोड़ाइबि बाप घुर्मुलसिंघवा रे ना
तवना बाद छोड़ाइबि पलटनिया रे ना
रामा तबै करबि आपन हम गवनवा रे ना
तबे रोए लागलि चल्हकि नउनिया रे ना
ओकरा रोअला के नइखे ठेकनवा रे ना
रामा मधुरे से कइली बचनिया रे ना
पाहुन नइखे लश्करि पलटनिया रे ना
रामा कइसे जीतबऽ बावनगढ़ सुबवा रे ना
तब बोले लागल कुँवर बिजयमलवा रे ना
हमरा संगे आइल हिछल बछेड़वा रे ना

× × ×

रामा माता जी से लेहलीं हुकुमवा रे ना
रामा चलि गइली तिलकी बुबनिया रे ना
रामा चुपे चुपे करलीं सिंगरवा रे ना
रामा पहिरे लगली गंगा आ जमुनिया रे ना
रामा चलि गइली सोरहसइ लउड़िया रे ना
रामा संगे चलली तिलकी बबुनिया रे ना
उनके पीछे चलली चल्हकी नउनिया रे ना
रामा चलि गइली राह का भितरवा रे ना
रामा होखे लागल ओइजा मुमुरिया रे ना
रामा चलि गइली कुछ दूर रहतिया रे ना
रामा खरके लागल चोली के त बनवा रे ना
रामा कहतिया चल्हकी नउनिया रे ना
चल्हकी जानि गइली वाय मोर भइअवा रे ना
अब त होत बाटे बहुत असगुनवा रे ना
तबले तड़पलि बाटे चल्हकी नउनिया रे ना
रामा नाहीं जनले तोर बाप भइअया रे ना
रामा चले लगलीं सोरहसइ लउड़िया रे ना

संगे जाति बाड़ी तिलकी बबुनिया रे ना
तवना बाद चल्हकी नउनिया रे ना
तले कनखी देखे हिंछल बछेड़वा रे ना
ओइजा तड़पल बाटे हिंछल बछेड़वा रे ना
सरऊ फेंक तुहूँ मखमल चदरिया रे ना
रामा फेंकि दिहले मखमल चदरिया रे ना
रामा देखतारे तिलकी के सुरतिया रे ना
रामगिरि परले पोखरा के उपरवा रे ना
तबले तड़पल हिंछल बछेड़वा रे ना
रामा तब बोलल छितरी बुनेलवा रेना
रामा घर अहवे हमार घुमुंलपुरवा रे ना
रामा माता जी के नाव मयनावतिया रे ना
रामा भउजी के नाव सोनवामतिया रे ना
रामा हमार नइया कुँवरबिजैया रे ना
रामा एतना बतिया सुनलस तिलकी बबुनिया रे ना
रामा हाथ मारि के घूंघट लटकवली रे ना
रामा ओजा बोलल कुँवर बिजइया रे ना
रामा ससुर जी के नाव बावन सुबवा रे ना
रामा सरहज के नाम फुलवामतिया रे ना
रामा सरवा के नाम मोतिचनवा रे ना
राजा तिरिया के नउवा त कइसे धरिहें रे ना
रामा काढ़ि लेली हाथ मारि के घुंघटवा रे ना
रामा रोए लगली जार से बेजरवा रे ना
हाई हाई रे बिधाता करतरवा रे ना
रामा ओइजा कहे मुख से मुख सुबचनिया रे ना
सामी सुनि लेहु हमरा कहनवा रे ना
राम बाप भाई हएउ हतियरवा रे ना
रामा नाहीं गुनहें आपन दमदवा रे ना
रामा मारि घलिहें आल्हर परनवा रे ना
सामी चलि जा तू अपना मुलुकवा रे ना
तब बोलले कुँवर बिजैमलवा रे ना
रामा सुनि लेहु पातरि मोर तिरिअवा रे ना

सामी नाहीं लउटबि हम आपन मुलुकवा रे ना
छोड़ाइब आपन बाप भइयवा रे ना
तब करबि आपन हम गवनवा रे ना

× × × ×

रामा कुँवर भइले हिंछल असवरवा रे ना
रामा उड़ि गइले जेहल भीतरवा रे ना
रामा सबका के छोड़वले हथकड़िया रे ना
रामा जेल के फटकवा गिराय दिहले रे ना
रामा सजी बरिअतिया ले गइले पोखरवा रे ना
रामा करवले सबका हजमतिया रे ना
रामा सबका करवले जलपनिया रे ना
रामा एने हाल मचल बावनगढ़वा रे ना
रामा बेटा मानिकचन साजेले फौजिया रे ना
रामा होखे लागल बिकट लड़इया रे ना
रामा हिंछल मारे लगले मेंड़रिया रे ना
रामा कुँवर काटि घलले सगरे फौजिया रे ना
रामा कइले विधंस बावन गढ़वा रे ना
रामा मुसुकि बँधउले मानिकचनवा रे ना
रामा हथकड़ी पहिनवले बावनसूबवा रे ना

इस प्रकार विजयमल ने सबके सम्मुख अपने गवने का रस्म पूरा किया और पूरी फौज के साथ तिलकी को डोली में बैठाकर घुमुंलपर चल दिया। घुमुंलपुर के किले में मानिकचन्द और बावन सूबा को कैद कर दिया।

४—बाबू कुंवर सिंह

रामा सुनी सब धरि के धयनवा रे ना
रामा बाबू कुंवर सिंह के हवलवा रे ना
रामा जतिया के रहले उजैनवा रे ना
रामा घर रहे जगदीशपुर नगरवा रे ना
रामा आरा जिला हवे शाहाबादवा रे ना
रामा जानतारे दुनियां जहानवा रे ना
रामा कुंवर सिंह के रहले छोटका भइया रे ना
रामा नाम उन्हकर बाबू अमर सिंहवा रे ना
रामा राजा भोज कर रहले बंशवा रे ना
रामा ऊंच कुल ऊंच खनदनवा रे ना
रामा रहले इहो त राजघरानवा रे ना
रामा नगर उजैन के बसिनवा रे ना
रामा आइकर पुरूपा पुरनियाँ रे ना
रामा भोजपुर में कइले राजधनिया रे ना
रामा उहवे से फैली चारू ओरिया रे ना
रामा गाँवाँ गाईं कइले रजधनियाँ रे ना
रामा बढ़ि गइले बंश त उजैनवा रे ना
रामा लिहले बसाईं त नगरवा रे ना
रामा कुंवर सिंह के राज त महलवा रे ना
रामा रहे जगदीशपुर नगरवा रे ना
रामा नगर के चारू ओरिया रे ना
रामा बड़ा भारी रहे बिकट बनवा रे ना
रामा रहत जलवर अजारवा रे ना
रामा बालेपन से बाबू कुंवर सिंहवा रे ना
रामा खेले जात नितही शिकरवा रे ना
रामा रहे उनकर अजब निशानवां रे ना
रामा खाली नाहीं जात एको बारवा रे ना
रामा गोल गोली रोज तो कटरवा रे ना
रामा इहे रहे उनकर खेलनवा रे ना

रामा एही बिधि बीते खुशी दिनवा रे ना
रामा अब सुनीं आगे के हवलवा रे ना
रामा खेल कद में बीते बालेपनवा रे ना
रामा बीतल जवानी राजकजवा रे ना
रामा पहुँची गइले आई चौथे पनवा रे ना
रामा भइले अस्सी बरस के उमरवा रे ना
रामा एही समय आई के तुफनवां रे ना
रामा देशवा में उठल गदरवा रे ना
रामा सुनि लेहू तेकर हवलवा रे ना
रामा देशवा में भइल जो तुफानवा रे ना
रामा सन् सत्तावन के उहे सलवा रे ना
रामा बड़ा भारी भइल गदरवा रे ना
रामा देसक बङ्गाले के मुलुकवा रे ना
रामा बजकपुर बाटे एक नगरवा रे ना
रामा उहमें से उठल बीरो धनवा रे ना
रामा आगी लगल चारु मुलुकवा रे ना
रामा अइसन जे उठल लहरवा रे ना
रामा कोने कोने तक भइल शोरवा रे ना
रामा भइले फिरंगी त फिरन्टवा रे ना
रामा मार काट करत अपारवा रे ना
रामा भइल त भारी हुलड़वा रे ना
रामा दिल्ली मेरठ तक के लोगवा रे ना
रामा काशी लखनऊ परेयागवा रे ना
रामा ग्वालियर तक भइले बालवा रे ना
रामा उठे बलवा ई चारू ओरवा रे ना
रामा सुनि कर जस तो हवालवा रे ना
रामा रानी भइली झाँसी क तेऊरवा रे ना

× × × ×

रामा आगे कर कहीले हवालवा रे ना
रामा पटना के टेलर कमिश्नरवा रे ना
रामा कुँवर सिंह के भेजले परवनवा रे ना

रामा भइल उनका मुँशी के तलशवा रे ना
रामा सोचे तब कुँवर सिंह मनवा रे ना
रामा भइले फिरंगी दगाबजवा रे ना
रामा इनकर नाबा तनी बिशअसवा रे ना
रामा करत रहले कुँवरसिंह बिचरवा रे ना
रामा ताहि समय आई कर लोगवा रे ना
रामा दानापुर से पहुँचे उनके पसवा रे ना
रामा हाथ जोरि करि के अरिजवा रे ना
रामा कहे लगले मधुरे बचनवां रे ना
रामा कहेले जे सुनीं सरकरवा रे ना
रामा आपही के बाड़े अब आसवा रे ना
रामा बड़ा भारी भईल आफतवा रे ना
रामा भइले फिरंगी दुशमनवां रे ना
रामा नाहके फांसी वो जेहलवा रे ना
रामा देत बाड़े कहिके हवालवा रे ना
रामा सुनिकर इतना बचनवा रे ना
रामा गरजी के उठे कुँवर सिंह वा रे ना
रामा तुरते भइले तेअरवा रे ना
रामा जायके लड़ाई मयदनवाँ रे ना
रामा चली भइले कुँवरसिंह संगवा रे ना
रामा जाइ पहुँचे दानापुर मोकमवा रे ना
रामा आधी रात गंगा के किनरवा रे ना
रामा भइल लड़ाई बड़े जोरवा रे ना
रामा ले के महाबीर जी के नमवां रे ना
रामा झुकी परले देशी तो सयनवां रे ना
रामा एकदम गोरा के ऊपरवा रे ना
रामा रतिया रहल निसनदवा रे ना
रामा चारू ओर रहल सनटवां रे ना
रामा सुनल नगर के लोगवा रे ना
रामा सगरे रहल सुन सनवां रे ना
रामा अइसन बेरा के समइया रे ना
रामा होखे लागल कठिन लड़इया रे ना

रामा छूटे लागल बन्दूकवा रे ना
रामा सुनिके बन्दूक अवजिया रें ना
रामा लागल तराही चारू ओरिया रे ना
रामा कांपी उठल सगरे नगरिया रे ना
रामा कहिका वह धरीकर हलिया रे ना
रामा देहियां के सुखि गइलपरनवां रे ना
रामा लेईं कर निजनिज जानवां रे ना
रामा घर छोड़ि भागे सब बहरवा रे ना
रामा करन लगले बालक रोदनवां रेना
रामा भईल भगाहट चारू ओरवा रे ना
रामा जहँवा जे पावे आपन मोकवा रे ना
रामा रहे से छिपाई देखि अड़वा रे ना
रामा अईसन देहात कर हलिया रे ना
रामा गंगा तीर होखत लड़इया रे ना
रामा दानापुर में रहल छपनियां रे ना
रामा बीगड़ गइले सबही सिपहिया रे ना
रामा होखे लागल जोर से लड़इया रे ना
रामा गोरा भागे छोड़ि मयदनवां रे ना

× × × ×

रामा दानापुर से करिके बिजइया रे ना
रामा आरा पर कइले चढ़इया रे ना
रामा आई कचहरी के उपरवा रे ना
रामा कुँवर सिंह कइले अधिकरवा रे ना
रामा तब भइल देशी देशी सोरवा रे ना
रामा कुँवर सिंह के जय जय करवा रे ना
रामा आरा पर से भइले गयबवा रे ना
रामा सब अंगरेजी सरकरवा रे ना
रामा नाहीं होखे पावल अत्याचरवा रे ना
रामा भागे अंगरेज लेके जनवां रेना
रामा भागि गइले किला के भितरवा रे ना
रामा आयर साहव सुनले खबरिया रे ना

रामा आरा कर सकल सबलिया रे ना
रामा बक्सर से होइके तेअरवा रे ना
रामा आयर साहब चलके मयनवाँ रे ना
रामा संग में कठिन तोपखनवाँ रे ना
रामा बहुत रहे फौज लशकरवा रे ना
रामा होइके पूरा तैयरवा रे ना
रामा चढ़ि आइ ये आरा के ऊपरवा रे ना
रामा बक्सर से आयर सहेबवा रे ना
रामा औरी दल रहे उनका संगवा रे ना
रामा सुनि लेहु तेकर हवलवा रे ना
रामा कहिका मैं होला भारी दुखवा रे ना
रामा देशवा के कुछ तो अदमियाँ रे ना
रामा होइ भइले देश के द्रोहिया रे ना
रामा मिली भइले आयर के संगवा रे ना
रामा भारी दल लेके उनके साथवा रे ना
रामा आरा पर कइले चढ़इया रे ना
रामा होखे लागल कठिन लड़इया रे ना
रामा कइसे जीत सकें कुवर सिंह वा रे ना
रामा अपने जो भइले बिरनवां रे ना
रामा आरा से उखड़ गइल पयारवा रे ना
रामा कुँवर सिंह भइले लचरवा रे ना
रामा मसल जे कहल बाटें बतिया रे ना
रामा घर फूटे केकर भलइया रे ना

× × × ×

रामा कुंवर के देखि दुशमनवा रे ना
रामा कइले बन्दूक के निशनवां रे ना
रामा गोली आई लागल दहिना हथवा रे ना
रामा हाथ होइ गईल बेकारवा रे ना
रामा जानिकर हाथ बेकमवा रे ना
रामा काटि दिहले लेके तरवरवा रे ना
रामा कहेले जे लेहु गंगा हाथवा रे ना

रामा देतबानी आज उपहरवा रे ना
रामा कही कर उतना बचनवा रे ना
रामा डाली दिहले गंगा जी में हाथवा रे ना
रामा गंगा जी के रहल नजरानवा रे ना
रामा कुंवर सिंह अइले फिरि घरवा रे ना
रामा कुंवर सिंह के पाई के हालवा रे ना
रामा दुशमन घबड़इले अंगरेजवा रे ना
रामा फौज लेके लीग्रन्ड साथवा रे ना
रामा लड़े अइले करि मन सुबवा रे ना
रामा जोति मह नाहीं पावे संग्रामवा रे ना
रामा बिजई रहले कुंवर सिंहवा रे ना
रामा पाई कौन सके उनसे पेशवा रे ना
रामा कुछ दिन कर फिर बादवा रे ना
रामा चढ़ि कर अइले अंग्रेजवा रे ना
रामा घायल रहले कुंवर सिंह बीरवा रे ना
रामा जीतल नाहीं रहल सहजवा रे ना
रामा इहे रहल कुंवर सिंह के सेसवा रे ना
रामा आखिर इहे त संग्रामवा रे ना
रामा शत्रु के संगे आठ महनिवां रे ना
रामा लड़े कुंवर सिंह मरदनवा रे ना
रामा बिना कुछ कइले बिसरामवां रे ना
रामा रात दिन कइले संगरामवा रे ना
रामा घायल परल रहले महलवा रे ना
रामा सकती सब भइल बेकमवा रे ना
रामा नाहीं ठहरी सके बीर बाबू कुंवरवा रे ना
रामा चलि भइले बीर सुरधामवा रे ना
रामा दुनियाँ में रही गइले नामवाँ रे ना

५—शोभानयका बनजारा

रामा जहाँ लागल रहे लवंगिया रे ना
रामा जहाँ सुतल रहली जसुमतिया रे ना
रामा धिंच के मारें चटकनवा रे ना
रामा जेकर कन्ता जैहें परदेसवा रे ना
रामा रामा उठी ले बारी रे ना
रामा रामा बारी उठेली बहारी ले अँगनया रे ना
रामा भउजी आके ठढ़ा हो गइल रे ना
रामा बारी काहे तू बहारेले अंगना रे ना
रामा भौजी तू कइलू हमरा बियहवा रे ना
रामा सामी हमार जाला मोरंग के लदनिया रे ना
रामा गिरी रे जैहैं चढ़ल हमार जवनिया रे ना
रामा कदऽ हमरो गवनवाँ रे ना
रामा चलल बिया भौजी ओही जगवा रे ना
रामा जहाँ रहली बुढ़नी सहुनी रे ना
रामा सुन सुन मोर सास कहनवा रे ना
रामा देत बा गरिया हजार रे ना
रामा सुन सुन पतोहिया रे ना
रामा दादा बारी के लुटे रे धरमिया रे ना
रामा बारी अबही बाड़ी कम उमरवा रे ना
रामा लूगा पहिने के नाहीं सहुरवा रे ना
रामा झूठा झूठा तू अंदरगवा लगवेल रे ना
रामा तब भौजी किरिया खाले रे ना
रामा जाके बुढ़िया कहे साहू जादुआ रे ना
रामा अपनी बारी माँगत बाड़ी गनववा रे ना
रामा त साहु करे फजिहतिया रे ना
रामा बुजरो हमरा बारी के लगइलू अंदरगवा रे ना
रामा सुनी जा पँचे एक बनिजरवा रे ना
रामा पहुँचल सुघड़ बनिजरवा रे ना
रामा संगें लिहले मघवापगहिया रे ना

रामा लेइ लेले सरब गहनवा रे ना
रामा धइले बाड़े भेसवा मनियरिया रे ना
रामा किनी लेला सरब सौदवा रे ना
रामा चली गइले शोभा के ससुररिया रे ना
रामा शोभा चलि गइले रहल थोड़े दिनवा रे ना
रामा तीन सौ साठि रहली सखिया रे ना
रामा एगो सखी आइल बजरिया रे ना
रामा देखि लिहले सोना के सौदवा रे ना
रामा देखि के होगइल बेहोसवा रे ना
रामा बोले लागल मगही पगहिया रे ना
रामा नातवा में लागल सरहजिया रे ना
रामा जल्दी छोड़ाव उनका लागल दंतिया रेना
रामा पानी भर के शोभा छोड़ावे मुर्छवा रे ना
रामा लौंड़ी गइल किला भीतर रे ना
रामा अइसन आइल बाटे सौदागर रे ना
रामा छनले बा चोली बनकरवा रे ना
रामा लीलार जरे अंगरवा रे ना
रामा सुनी लेले बाटे दसवन्तिया रे ना
रामा बारी घूमे गइली बजरवा रे ना
रामा देखे लगली ओहिजा सौदवा रे ना
रामा ठाढ़ी ठाढ़ी देखे लौंड़िया रे ना
रामा कइली चोलिया के सौदवा रे ना
रामा बोले लहंगा के दमवा रे ना
रामा जे तोहरा में होखे सरदरवा रे ना
रामा उहे करे हमसे खरीदवा रे ना
रामा अतना सुने बारी जसुमतिया रे ना
रामा मगवा पगहिया बोले लागल रे ना
रामा पहिले पहिनी झुलवा रे ना
रामा तब करीं एकर दमवा रे ना
रामा नयका देखले लालसम बदनिया रे ना
रामा बरी हो गइल मनवा जोगवा रे ना
रामा तब बोले बनिजरवा रे ना

रामा अबना झूला के कहीं दमवा रे ना
रामा हम त हईं शोभा के यरवा रे ना
रामा तोहार तिरियवा सखी संगे घूमे बजरिया रे ना
रामा अतना सुन लेली दसवन्तिया रेना
रामा भागल जाली किल्ला भीतरवा रे ना
रामा नव हाथ के काढ़ी लेला घुँघटवा रे ना
रामा हमरे से कइले बाड़े ठिठोलवा रे ना
रामा तब नयका हाँकि देले बरधवा रे ना
रामा बारी चलि गइली अपना महिलिया रे ना
रामा अपना मनवा में करेले विचरवा रे ना
रामा सुनि सुनि बाबू जी कहनिया रे ना
रामा हमरा के दी पलटनिया रे ना
रामा हम चलि जाइब भजवल घरनिया रे ना
रामा करब उहाँ असननिया रे ना
रामा उहाँ पड़ि गइल तम्बुहा रे ना
रामा तब ले गइले बनजरवा रे ना
रामा उहाँ पुलिस रोकेले रसतवा रे ना
रामा बावन लाख कौड़िया रे ना
रामा तब घटवा पार जाये देब रे ना
रामा शोभा कहे लागल बाब हू न देली कोड़िया रे ना
रामा पुलिस बोले लागल ढेर बढ़इब बखेड़वा रे ना
रामा बाँध देब मुसुकवा रे ना
रामा नयका थर थर काँपे लगले रे ना
रामा मुरूगा के खाई तू मसुइया रे ना
रामा तब छोड़ब तोहार कौड़िया रे ना
रामा जाके कहले नयका पुलिसवा रे ना
रामा नयका के संगे कोई रहले रे ना
रामा सभे नौकरवा चल खाइल जा रे ना
रामा सुन सुन नौकरवा खाइल जा रे ना
रामा बाँचि जैहें बावन लाख कौड़िया रे ना
रामा नयका जाके करे भोजिनिया रे ना
रामा लिखी लेले बारी जसुमतिया रे ना

रामा तब छोड़ले घाट के कौड़िया रे ना
रामा तब नयका जाला अपना घरवा रे ना
रामा उहवाँ से जाके भेजे गवन के दिनवा रे ना
रामा आइल बाड़े बारी हजमवा रे ना
रामा दूसर बेर गइले पंडितवा रे ना
रामा गवना के दिनवा धराइल रे ना
रामा भइल बारे कौल करारवा रे ना
रामा सुन सुन बाबू बनिजरवा रे ना
रामा करऽ अब गवना के तेश्ररिया रे ना
रामा लादि देला छकड़वा रे ना
रामा नयका बैठल बारे सोने के पलकिया रे ना
रामा चल दिहले बालापुर सहरिया रे ना
रामा उठे लागल गरदवा रे ना
रामा बारी के होई आज गवनवा रे ना
रामा नयका चलि गइले कोहबरवा रे ना
रामा साजे लगली बारी जवबिया रे ना
रामा दहेज में मंगिह बछेड़वा तिलंगवा रें ना
रामा साहुजी बोलले ओही जगवा रे ना
रामा माँगऽ तू इनामवा रे ना
रामा बोले लागल सुघड़ बनजरवा रे ना
रामा नाहीं बाटे अनधन कामवा होना
रामा बछवा देदऽ हमरा तिलंगवा रे ना
रामा इहे खूटा देव हमारा के रे ना
रामा ढेर तुहूँ मागेलऽ दहेजवा रे ना
रामा उहे त बाड़े हमार लछनिया रे ना
रामा रोके देला सहुआ रे ना
रामा नयका लेके चलेला गाँव के सिवानवा रे ना
रामा हो गइल किलवा कोइला रे ना
राम कुछ आगे बढ़ल बछेड़वा रे ना
रामा गिर गइल गढ़वा रे ना
रामा भारी बिपतिया सहुआ देबउल रे ना
रामा बुढ़ऊ बइठल बाटे किलवा रे ना
रामा नयका गाड़ि देले नदवा अपना दुअरिया रे ना

रामा ओही दिन मोरंग के पैतवा रे ना
रामा चलल बाटे सुघड़ बनिजरवा रे ना
रामा गइले गांव के पुरबवा रे ना
रामा तहंवा लागल डेरवा रे ना
रामा उहाँ रहल हँस हँसीनिया रे ना
रामा बोले लागल हँसिनिया रे ना
रामा सामीसंग कटि जैहै आज के रतिया रे ना
रामा बोले लागल हँसवा रे ना
रामा जौन कइले आज होई गवनवा रे ना
रामा कइले होई आज कोहबरवा रे ना
रामा उनका होई लड़िका मोतीललवा रे ना
रामा हँसिहैं तो गिरिहैं लालवा रे ना
रामा रोइहैं तो गिरिहैं हीरवा रे ना
रामा सुनत बाटे शोभानयका रे ना
रामा करे लगले अरजवा हंसावासे रे ना
रामा हंसी पीठ पर बइठा के ले गइल अंगनवा रे ना
रामा किलिया भिड़ल कोठरिया रे ना
रामा बोले दसवन्तिया केहवऽ घर के देवता रे ना
रामा किया हवे भूत बैतलवा रे ना
रामा बोले लागल बनिजरवा रे ना
रामा कहलस सब हालवा रे ना
रामा खोल बारी जलदी केवरिया रे ना
रामा तब बोले दसवन्तिया रे ना
रामा रामा के जाने राहीगिरवा रे ना
रामा नाहीं मानी इहवाँ के लोगवा रे ना
रामा दादा लागी हमरा पर कलंकवा रे ना
रामा हम नाहीं खोलब केवड़िया रे ना
रामा बोलत शोभनयकवा रे ना
रामा हमार भैया बाटे चतुरगुनवा रे ना
रामा उनहीं से कहब हलिया रे ना
रामा बारी खोले किवरिया रे ना
रामा चलि गइली सूते लाली पलंगिया रे ना
रामा शोभानयका कइले कोहबरवा रेना

रामा लौटे लागल नयका रेना
रामा लपटि के लागल दसवन्तिया रेना
रामा हमरा देबऽ कौनो निसनवा रेना
रामा शोभा दिहले रुमलिया रेना
रामा शोभा कहले चतुरगुन से हलिया रेना
रामा हंसा चढ़ि गइले नयकवा रेना
रामा ले गइल गांव पुरबवा रेना
रामा हो गइले भिनुसारवा रेना
रामा उहवां से नयका कइले बाटे पयतवा रेना
रामा चलल रे नयका मोरंग के देसवा रेना
रामा जहवां रहली हिरियाजिरिया बंगालिनिया रेना
रामा चलि गइले ओहि जावा रेना
रामा कुछ दिन बीतेला मोंरगवा रेना
रामा हिरिया जिरिया देखली नयका के रेना
रामा हो गइले देखके छकितवा रना
रामा जहवां मार कइली भेड़वा रेना
रामा इहाँ के हाल छोड़ऽ अब उहाँ के हाल सुन रेना
रामा बारी के देहिया भइल भारी होना
रामा भौजी नैयहर के ले आइल गरभवा रेना
रामा बारी बोले लागल भइया से रेना
रामा राति में अइले रतिये कइले कोहबरवा रेना
रामा ननदी देतिया गारी ओइजा रेना
रामा सुन सुन भाई चतुरगुनवा रेना
रामा तोहरे बुझाता हवे गुनवा रेना
रामा भइया के घर कइली अलगा रेना
रामा जेने रहे नगनिया रेना
रामा उहें देले रहे के घरवा रेना
रामा खाइयो के ना देले ननदिया रेना
रामा भारी अब पड़ल बिपतिया रेना
रामा दिन भर करे चतुरगुन बनियारी रेना
रामा सांझि के बनावे भोजनिया रेना

रामा एही तरे लागल बीते दिनवा रेना
रामा बारी रोवे जारि बेजारवा रेना
रामा बीति गइले नौमहिनवा रेना
रामा जनम लेले बाड़े लड़िका जनमवा रेना
रामा भाई बोलाव धगड़िन के रेना
रामा लड़का रोवे लगे त गिरे मोतिया रेना
रामा हंसे लागे त गिरे हीरवा रेना
रामा बारी सुपवन देतिया हीरवा रेना
रामा झांकि झांकि देखे फुलवन्तिया रेना
रामा सुति गइली भौजी निर्भेदवा रेना
रामा ननदी उठवली लड़िकवा रेना
रामा ओवा के भीतरा डरली लड़िकवा रेना
रामा भौजी के गोदवा धइली इंटवा रेना
रामा ननदी कहली हल्ला भइल इंटवा रेना
रामा आइल भाई चतुरगुनवा रे ना
रामा सुन सुन धरिकरवा रे ना
रामा लेजा भौजी के जंगलवा रे ना
रामा काढ़ि लेआव जिगरवा रे ना
रामा बुजरो हमरो भुकौली मुड़िया रे ना
रामा चारियो धरिकरवा लेके चलले रे ना
रामा जहाँ रहे भारी जंगलवा रे ना
रामा बोले दसवन्तिया रे ना
रामा हमार जान मरले का होई फयदवा रे ना
रामा हमरा के ले चल बजरिया रे ना
रामा कौन कौन लिहे बनिजरवा रे ना
रामा सुनि के ले चले धरिकरवा रे ना
रामा ठीक त कहतिया बतिया रे ना
रामा ले गइले बारी के लुबदी के बजरिया रे ना
रामा बजरिया में रहले सोभा के पहुनवा रे ना
रामा देखे बारी के दीपचनवा रे ना
रामा धरिकरवा बोली बोले नवलाख रे ना
रामा चलल बाटे साहू दीपचन्दवा रे ना

रामा चल गइल बाटे किला भीतरवा रेना
रामा नव लाख असरफी लेके देला रेना
रामा तिरिया ले के आइल दीपचन्दवा रेना
रामा अब हमहू खरीदली तिरियवा रेना
रामा हमहूँ करब सदिया रेना
रामा ओइजा बोले दसवन्तिया रेना
रामा हम अबहीना करब बिअहवा रेना
रामा तेरह बरिस के होइ जाइ पैतवा रेना
रामा तब हम करब बिअहवा रेना
रामा सोचे लागल दीपचन्दवा रेना
रामा एकर कौन मतलबवा रेना
रामा बरस बिरस बीत जैहें असहीना रेना
रामा बने लागल रवटी महलिया रेना
रामा एने धरिकरवा कुकुर के कलजेवा काढ़ि रेना
रामा ले गइले ननदिया के लगेला रेना
रामा अरे रामा ओने त होइ गहले अइलवा सोना के रेना
रामा जी आंवा त रहले लड़िकवा रेना
रामा लड़िका के ले गइल कोंहरा घरवा रैंना
रामा सहर में मचल हलचलवा रेना
रामा केंका कोहरा के धरे महल लड़िकवा रेना
रामा नयका चलि गइले मोरंग देसवा रेना
रामा करे लगली जयजय करवा रेना
रामा सुनी सुनी पंडित जी बतिया रेना
रामा हिरियाजिरिया बोलइली अपना दुअरिया रेना
रामा देबिया गइली उनकर दुअरिया रेना
रामा बैठल बाटे देवी दुरुगवा रेना
रामा सोचे लागल दांव पेंचवा रेना
रामा जेतना मारे दांव पेंचवा रेना
रामा खेलत खेलत सात दिन सात रतिया रेना
रामा देबी जीत गइली हिरया जिरिया के किलवा रेना
रामा रामा सुनसुन तू हिरिया जिरिया रेना
रामा जै दिन तू बन: लू बाड़े भेड़वा रेना
रामा बना द ओकरा के अदमिया रे ना

रामा हिरिया जिरिया गइली फुलवरिया रे ना
रामा होगइल शोभा भेंड़ा से अदमिया रे ना
रामा शोभा गइल अपने डेरवा रे ना
रामा बोले लागल भगवापगहिया रे ना
रामा केतना भइल फयदवा रे ना
रामा चलियँ लेके नफये लहनिया रे ना
रामा अपने हेल गइले जङ्गलवा रे ना
रामा आगे चलले बरहज बजरिया रे ना
रामा पोखरा में लगले नहाय रे ना
रामा उहाँ से फेरल देले बरधिया रे ना
रामा हेल गइले लघी सहरिया रे ना
रामा जहाँ लगली लुबदी के बजरिया रे ना
रामा जहाँ बाड़े भाइ दीपचनवा रे ना
रामा जेकरा बाजी से भइल बा नफवा रे ना
रामा उनकर चुकाईं करजवा रे ना
रामा चलि गइले लिलंग बछेड़वा रे ना
रामा जेकर घुंघटी बाजे अस्सी कोसवा रे ना
रामा लौटल बारे सामी बहुत दिनवा रे ना
रामा जाकर इनारवा संग गिरावे बरधी रे ना
रामा सोभा जाला रसोइया रे ना
रामा बारी बनावे रसोइया रे ना
रामा देखि लेली सुघड़ बनिजरवा रे ना
रामा काढ़ के बिगेले रुमलिया रे ना
रामा काढ़ि के बिगेले अगुंठिया रे ना
रामा बनिजरवा करेला बिचरवा रे ना
रामा सुन सुन पहुंना कहनवा हमार रे ना
रामा कहवाँ से ले आइल बाड़ऽ तिरिया हमार रे ना
रामा दीपचन्द कइले इन्करवा रे ना
रामा कह गइले जरिये से सब ए हलवा रे ना
रामा खोलि देला सोरह सो सहनिया रे ना
रामा दादा दूनों ओर से होला बड़इया रे ना
रामा जीत लेला शोभादीपचन्दवा रे ना

दशवन्ती का सब हाल कहना, कि तुमको लड़का है जो कोंहार के यहाँ पल रह है :

रामा नयका चलि गइल आपन दुआरवा रे ना
रामा उहवें गिरावे ले बरधिया रे ना
रामा भेज देला केका के घरे पुलिसवा रे ना
रामा केका जवाब देला कि हम ना जाइब रे ना
रामा नयका खीसि भइल की धन के घमंडवा रे ना
रामा कोहरे के दुआर पर लागल कचहरिया रे ता
रामा लगले बोलावे लड़िकवा रे ना
रामा कहाँ से पवले बाड़े लरिकवा रे ना
रामा लगले कहे पहली लड़िका आंवा के भितरवा रे ना
रामा दादा हमनी के कइनी पाल पोसवा रे ना
रामा दादा हम ना देब लड़िकवा रे ना
रामा केका बोलावे आपन जनानवा रे ना
रामा बोले लागल हमरे कोखि जनमवा रे ना
रामा हम चौथ के कइनी बड़ हवानवा रे ना
रामा सात गो तावा बांधे छतिया दशवन्ती रे ना
रामा रामा सातवाँ तो तावा बांधे कोंहइनिया रे ना
रामा दसवन्ती के मारे दुधवा जोरवा रे ना
रामा हो गइले फँसलवा रे ना
रामा लड़िका के ले गइले घरवा रे ना
रामा घरे जा के बोलाये बहिना फुलझरिया रे ना
रामा बोलावे त भाई चतुरगुनवा रे ना
रामा तोहार तिरिया के मरवइली इहै रे ना
रामा अंगन मे खोदवाले बाड़खढ़वा रे ना
रामा जल्दी से ले अइबू सूपवा भर चउरा रे ना
रामा पहिनलस पियरी बहिना रे ना
रामा गइली बहिनी खदवा के भितरवा रे ना
रामा ऊपर से भरइलस खदरवा रे ना
राम उनकर छुटल संतसरगवा रे ना
रामा सोभा बोलावे भाई चतुरगुनवा रे ना
रामा जे खीचत रहल नो मन के डलवा रेना

रामा उनकर बढ़ल रहल हजमतिया रे ना
रामा हजमतिया बनवले कपड़ पेन्हवले रे ना
रामा उनकर के घरवा के मलिक बनवले रेना
रामा लगले करें राज शोभा नयकवा रे ना
रामा जैसे दसवन्ती के लौटल दिनवा रे ना
वैसे सब कर लौटे दिनवा रे ना

---

(६) सोरठी

एकियाहोरामा बृजभार बीरा उठवले रेनुकी
एकियाहोरामा बीरा उठा के चलले शहर गुजरात रेनुकी
एकियाहोरामा चलते चलते सातो सांवरी के पास रेनुकी
एकियाहोरामा सातो बहियाँ पकड़ि ले गइली महलिया रेनुकी
एकियाहोरामा सेजवा पर ले गइली रेनुकी
एकियाहोरामा अतर गुलाब छिटकाबेली रेनुकी
एकियाहोरामा लगली चरन दबावे लगले रेनुकी
एकियाहोरामा हाल चाल भगिना से पूछेली रेनुकी
एकियाहोरामा बोलल कुँवर बृजभार रेनुकी
एकियाहोरामा सुन सुन भाभी रेनुकी
एकियाहोरामा हम गवना करवनी रेनुकी
एकियाहोरामा हम कोहबरवा कइनी रेनुकी
एकियाहोरामा इहवाँ अपनी मामा कचहरी रेनुकी
एकियाहोरामा नाहीं आसीरबदवा दिहेले मामा रेनुकी
एकियाहोरामा महराके कहले सोरठपुर चलि जाहु रेनुकी
एकियाहोरामा भगिना बिरवा उठावे ले रेनुकी
एकियाहोरामा सोरठी के ले आइब रेनुकी
एकियाहोरामा एतना सुन सातो सावंरी बोले लगली रेनुकी
एकियाहोरामा हुकुम त हमके देई देतिन रेनुकी
एकियाहोरामा जहुआ चलाके उनके मुआं देति रेनुकी
एकियाहोरामा एतना सुन कुँवर बृजाभार बोलेले रनुकी
एकियाहोरामा तीन सौ साठि भाभी रंडा होइहैं रेनुकी
एकियाहोरामा एकर खरचवा कवन चलाई रेनुकी
एकियाहोरामा सोरठपुर के तुहूँ भेदवा बताव रेनुकी
एकियाहोरामा कैसे हम जाइब त रस्ता बताव रनुकी
एकियाहोराया एतना वचनिया सातो साँवरी सुनावलेली रेनुको
एकियाहोरामा सुन सुन बबुआ तोहरा मामा बाड़े बड़ा कंजुसवा रेनुकी
एकियाहोरामा तीन त मुलुकुवा के कौड़ी लेआव रेनुकी
एकियाहोरामा रुनकी खड़ाऊँ माँगऽ रेनुकी

एकियाहोरामा भसम के झोरवा तैयारी रेनुकी
एकियाहोरामा मोहनी बाँसुरी उनकर माँगऽ रेनुकी
एकियाहोरामा मिरगा के हलवा उनसे मंगववा रेनुकी
एकियाहोरामा तब त उहो नाहीं दिहे नाहीं रेनुकी
सोरठपुर तोहरो नाहीं जाइब रेनुकी

× × ×

: मामा के पास जाकर वृजाभार ने उपर्युक्त चीजें माँगी। इसपर खेख मल मामा बोले :

एकियाहोरामा एतना बचनिया सुनले रेनुकी
एकियाहोरामा उनहीं के झगड़ा लगावले रहले रेनुकी
एकियाहोरामा बोलले व्यास मुनि पंडत रेनुकी
एकियाहोरामा कि सोरठी से अब दरसन नाहीं रेनुकी
एकियाहोरामा सजी त तेअरिया कइ दिहले मामा रेनुकी
एकियाहोरामा लेइके चलले मामा के फुलवारी में रेनुकी
एकियाहोरामा कइले असननवा फुलवारी में रेनुकी
एकियाहोरामा देवता सुमिर ले रेनुकी
एकियाहोरामा गुरु गोरखनाथ के सुमिरन कइले बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा गुरु गोरखनाथ अइले फुलवारी में रेनुकी
एकियाहोरामा सगरे देवतवा अइले फुलवारी में रेनुकी
एकियाहोरामा चेलवा त अब जोगी के बनावले रेनुकी
एकियाहोरामा पिठिया तो ठोकले सगरे देवतवा रेनुकी
एकियाहोरामा मधुरे से साजेले देवतवा जवाब रेनुकी
एकियाहोरामा सुन सुन चेला अब हमनी के करिह सुमिरनवा रेनुकी
एकियाहोरामा हमनी के तोहरा के लगे आइब रेनुकी
एकियाहोरामा अब त जोगी माता से असिरबदवा लेत रेनुकी
एकियाहोरामा अरे सबके चरन छुअले वृजाभार रेनुकी
एकियाहोरामा उहवाँ से चलले कुंवर वृजाभार रेनुकी
एकियाहोरामा भाभी साँतों साँवरी लगे रेनुकी
एकियाहोरामा झोलवा पहिनले बँसिया में छत्तीसो से रागबजावले रेनुकी
एकियाहोरामा बँसिया के सबदिया सुनली तीन सौ साठ सँवरिया रेनुकी
एकिया हो रामा आइ गइले देवढ़िया पर सभ कोई रेनुकी

एकिया हो रामा ऐसन जोगी कबहू ना देखनी रेनुकी
अरे राम जी के नैया.........
एकिया हो रामा भाभी सात सांवरी नइखे चीन्हत रेनुकी
एकिया हो रामा ऐसन जोगी कबहीना देखले रहली रेनुकी
एकिया हो रामा तले त जोगी सलामवा कइले रेनुकी
एकिया हो रामा तले सातों सांवरी सलमिया कइली रेनुकी
एकिया हो रामा ऊपरी के जोग जोगी के पकड़ले रेनुकी
एकिया हो रामा महला में तैयारी सभ कइले रेनुकी
एकिया हो रामा सब तर फुलवा छितरीले रेनुकी
एकिया हो रामा अतर गुलाब छिटीली रेनुकी
एकिया हो रामा चरन दबावेली बेनिया डुलावले रेनुकी
एकिया हो रामा समाचार जोगी से पूछत बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा मधुरे में बोलले वृजाभार रेनुकी
एकिया हो रामा सोरठपुर के जतरा हम करते बानी रेनूकी
एकिया हो रामा सोरठपुर के हलिया कहे रेनुकी
एकिया हो रामा सोरठपुर में कवन रहतवा जाइ रेनुकी
एकिया हो रामा सुनके सातों सावरी बोलली रेनुकी
एकिया हो रामा बिपत में हमरा के सुमिरऽ तोहरा लगे हम आइब रेनुकी
एकिया हो रामा तोहरो बिपतवा दूर करबइ रेनुकी
एकिया हो रामा इहा के हाल त हम जानत बानी रेनुकी
एकिया हो रामा सगरे त हलवा तोहार बिआहिया जाने रेनुकी
एकिया हो रामा तू त अपना दुअरिया चलि जाहूँ रेनुकी
एकिया हो रामा ओही सुनके जोगी चलि दिहले वृजाभार रेनुकी
एकिया हो रामा चलल चलल कुछ दुरवा गइले रेनुकी
एकिया हो रामा कोसवा पचास जोगी गइले रेनुकी
एकिया हो रामा अपना सहर में चलि गइले रेनुकी
एकिया हो रामा उहा करेला पयकरमा रेनुकी
एकिया हो रामा चारो ओर गाँव के पयकरमा कइले रेनुकी
एकिया हो रामा तब सहर में जोगी घुस गइले रेनुकी
एकिया हो रामा बंसिया बजाव लोगवा घेरेला रेनुकी
एकिया हो रामा देखले त जोगी मेलवा लागलबा रेनुकी
एकिया हो रामा अपना दुअरिया जोगी चलि गइले रेनुकी
एकिया हो रामा आसन लगइले अलख जगवले रेनुकी

एकिया हो रामा बंसिया उचटवा बजावले रेनुकी
एकिया हो रामा लोग अपने घरे सबट गइले रेनुकी
एकिया हो रामा तले जोगी भसम चन्दन चढ़ावेला रेनुकी
एकिया हो हो रामा मन में विचरवा करत बाड़े रेनुकी
एकिया हो रामा महल के तिरियवा कैसे जानी रेनुकी
एकिया हो रामा मोहनी बाँसुरिया ओठ का लगावले रेनुकी
एकिया हो रामा बजवले छत्तिस गढ़ रागनियाँ रेनुकी
एकिया हो रामा महल में बँसिया के गइल अवजवा रेनुकी
एकिया हो रामा महल में रहले बिअहिया हेवन्ती रेनुकी
एकिया होरामा मुँगिया लौंड़ी साजेले जवाब रेनुकी
एकिया हो रामा तोहरा त दुआरे एगो जोगी आइल बाड़े रेनुकी
एकिया हो रामा करे लगली मुँगिया लौंड़ी सभ तैयारी रेनुकी
एकिया हो रामा कंचन के थार में तिल चउरा धइली रेनुकी
एकिया हो रामा मुँगिया लौंडिया लेंइके चलल रेनुकी
एकिया हो रामा चलल सात देवढ़िया हेलल रेनुकी
एकिया हो रामा जहाँ रहले वृजाभार रेनुकी
एकिया हो रामा देखते जोगिया के बेहोसवा भइली रेनुकी
एकिया हो रामा ऐसन जोगी हम ना देखले रहली रेनुकी
एकिया हो रामा चिटुकी बजादेले वृजाभार रेनुकी
एकिया हो रामा होसवा त भइले के रेनुकी
एकिया हो रामा फिनु मधुरे से लौंड़ी साजेले जवाब रेनुकी
एकिया हो रामा कहवां से आइल कहवां जालऽ रनुकी
एकिया सो रामा कवन करनवा जोग सधले बाड़ऽ रेनुकी
एकिया हो रामा किया तोहरे अनधन घरलवा रेनुकी
एकिया हो रामा किया तोहरे चढ़ने घोढ़वा परलवा रेनुकी
एकिया हो रामा कि तोहरे बियहिया करिरवा मारेले रेनुकी
एकिया हो रामा केतनों लौंड़ी पूछेली सवालवा रेनुकी
एकिया हो रामा मुखसे जोगी ना बोलले रेनुकी
एकिया हो रामा लौंड़ी मन में खिसिया गइल रेनुकी
एकिया हो रामा ऐसन जोगी बनल बाड़े रेनु की
एकिया हो रामा कि तनिको बोलत नइखे रेनुकी
एकिया हो रामा तबले साजेले लौंड़ी जबाब रेनुकी

एकिया हो रामा भिछवा त जोगी लेलऽ दूसर घर देखावे रेनुकी
एकिया हो रामा मन में जोगी बिचरवा कइले बाड़े रेनुकी
एकिया हो रामा हमरे ही लौंड़िया कइसन बोलतवा रेनुकी
एकिया हो रामा त बोलतारे जोगी ओही जा रेनुकी
एकिया हो रामा ए लौंड़ी तोरा हाथ जा भिक्षा हम नालेब रेनुकी
एकिया हो रामा महल के भितरवा रानी बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा कालि हे गवना कइके आइल बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा उनहीं के हाथ से भिक्षा लेब रेनुकी
एकिया हो रामा जल्दी से जाहू के खबरिया तू दे रेनुकी
एकिया हो रामा उहाँ से लौंड़िया बोलत बा रेनु की
एकिया हो रामा ऐसन जोगिया बनल बाड़े रेनु की
एकिया हो रामा रानी के हाथ से भिक्षवा मांगऽ तारे रेनुकी
एकिया हो रामा अधिका'ज बहबऽ त कहब रेनुकी
एकिया हो रामाबबुआ वृजभार से रेनुकी
एकिया हो रामा कोड़वा से मार खियादेब रेनुकी
एकिया हो रामा अतना सुनत बाड़े जोगी रेनुकी
एकिया हो रामा चिटुकी बजावले रे रेनुकी
एकिया हो रामा लउड़ी के देहिया में खजुली मचल रे रेनुकी
एकिया हो रामा हाथ जोड़ मिनतिया करतारी रेनुकी
एकिया हो रामा हमरो कसुरवा माफ करए जोगी रेनुकी
एकिया हो रामा अतना बचनिया जोगी सुनतो बाड़े रेनुकी
एकिया हो रामा जोहवा लागल बा रेनुकी
एकिया हो रामा फेर से चिटुकिया जोगी बजावल बाड़े रेनुकी
एकिया हो रामा देह से दुखवा छुटल बा रेनुकी
एकिया हो रामा धावल धूपल लौंडी महल में गइली रेनुकी
एकिया हो रामा रानी जल्दी आवे भेदवा कहतारी रेनुकी
एकिया हो रामा लौंड़ी कहे कि ऐसन जोगी हमना देखली रेनुकी
एकिया हो रामा बारह बरिस आगे पीछे जानत बाड़े रेनुकी
एकिया सो रामा तोहरे त हाथ से भिक्षा माँगतो बाड़े रेनुकी
एकिया हो रामा अतना बचनिया'रानी सुनतो बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा मधुरे से साजेली रे जवाब रेनुकी
एकिया हो रामा तू त लौंड़ी रानी के भेसवा धऽके जा रेनुकी

एकिया हो रामा सिंगरवा करतो बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा उहवाँ त लौंडी करे सिंगार रेनुकी
एकिया हो रामा पहिने पायल पवजेबवा रेनुकी
एकिया हो रामा डंड जोरे दक्खिन के बीर रेनुकी
एकिया हो रामा चोली बंका के पहिनतारी रेनुकी
एकिया हो रामा दुलरी से तिलरी चन्दहार रेनुकी
एकिया हो रामा कान में कुंडल नाक में बेसर रेनुकी
एकिया हो रामा सोनन के बन्हनिया पेन्हतारी रेनुकी
एकिया हो रामा बाँह ले बाजू बंद बाँधतारी रेनुकी
एकिया ही रामा नग के जड़वल अंगूठी रेनुकी
एकिया हो रामा सोरहो सिंगार बतीसो अभरन कइली रेनुकी
एकिया हो रामा भिछ्या सहेजली रानी हेवन्ती रेनुकी
एकिया हो रामा कंचन के थार में हार मउर रेनुकी
एकिया हो रामा पांच हरदी तुलसीतिल चारो धरत बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा सवा हाँथ के घूंघट लौंड़ी काढ़तो बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा हाथ बा ऊपर भिच्छा ले पावे पावे चले रेनुकी
एकियाहो रामा चले मुंगिया चले रेनुकी
एकिया हो रामा सात ड्रेवढ़ी रहे दरवाजा रेनुकी
एकिया हो रामा चलले चलल छहो ड्रेवढ़ी घर करे रेनुकी
एकिया हो रामा सात ड्रेवढ़ी रहे दरवाजा रेनुकी
एकिया हो रामा बृजभार देखले की हमरे लौंड़िया रेनुकी
एकिया हो रामा भिच्छा लेके आवतारी रेनुकी
एकिया हो रामा अरे पलवा पकड़ि मुगिया खड़ा भइल रेनु की
एकिया हो रामा डपटि साजेले जवाब रेनुकी
एकिया हो रामा देब सरपवा जरि जइबू रेनुकी
एकिया हो रामा रानी बनके जवाब देतारू रेनुकी
एकिया हो रामा ऊरे महल में चलल चलल भागेले रेनुकी
रामे रामे रामे भजले बृजाभार रेनुकी
एकिया होरामा करेले बिचार रेनुकी
एकियाहोरामा लौड़ी त भिच्छा देबे आइल रहल रेनुकी
एकियाहोरामा हमरो से धोखा देबे आइल रहल रेनुकी
एकियाहोरामा लौंड़ी पहुंचल महलवा रेनुकी
एकियाहोरामा ऐसन त चंडाल जोगी बाड़े रेनुकी

एकियाहोरामा देहिया तोपले जोगी चिन्हले रेनुकी
एकियाहोरामा तोहरे ही हाथ से भिछवा मांगत बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा मन में बिचारवा हेवन्ती करतो बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा सास जी से अज्ञा लेवे चलली रेनुकी
एकियाहोरामा माता सुनयना से आज्ञा लेवे चलली रेनुकी
एकियाहोरामा देखली माता सुतलबाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा सुतलमाता के कइसे जगाईं रेनुकी
एकियाहोरामा चरनदबावेली कन्या हेवन्ती रेनुकी
एकियाहोरामा चिहुकी उठी माता सुनयना रेनुकी
एकियाहोरामा मधुरे से साजेली जवाब रेनुकी
एकियाहोरामा कौने करनवा हमरे महलवा में अइली रेनुकी
एकियाहोरामा काल्हे त गवनवा भइल बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा कौन दुखवा पड़ल रेनुकी
एकियाहोरामा कन्या हेवन्ती हाथ जोड़ बिनती करेलागल रेनुकी
एकियाहोरामा बारह बरिस हम बरत करली रेनुकी
एकियाहोरामा तीन त अवतार कइनी रेनुकी
एकियाहोरामा जहिया से तोहरा घरवा अइनी रेनुकी
एकियाहोरामा एकहु ना दान कइलीं रेनुकी
एकियाहोरामा हुकुम तू देतू त भिक्षा देअहतीं रेनुकी
एकियाहोरामा एतना बचनिया सुन बोलली रेनुकी
एकियाहोरामा कि कैसन रहनिया तोहरे गाँवके रेनुकी
एकियाहोरामा कालिहे तू अइलू आज त भिछवा देबू रेनुकी
एकियाहोरामा एतना बचनिया कन्या हेवन्ती सुने रेनुकी
एकियाहोरामा नयना से नीर ढरेले रेनुकी
एकियाहोरामा माता सुनयना कहली कि हमरो त कहलका रेनुकी
एकियाहोरामा दुखवा भइल रेनुकी
एकियाहोरामा अरे सुन सुन कन्या बात हमार रेनुकी
एकियाहोरामा तीन सौ साठ लौंड़ी बाड़ी महलवा रें रेनुकी
एकियाहोरामा हमहूं संगवा चलब रेनुकी
एकियाहोरामा तुहूं त होलऽ तैयार रेनुकी
एकियाहोरामा बिचवा में तू रहिह रेनुकी
एकियाहोरामा अतना सुन कन्या हेवन्ती बड़ा खुश भइली रेनुकी

एकियाहोरामा महल मे जाके लउड़ी लगवा गइली रेनुकी
एकियाहोरामा महल में होता री तैयारी रेनुकी
एकियाहोरामा कन्या हेवन्ती सिंगार करतारी रेनुकी
एकियाहोरामा सोलहो सिंगार कइली रेनुकी
एकियाहोरामा चले माता उहाँ पहुंचल बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा कंचन के थार में दुसलवा धरताड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा पाँचगो मोहूरवा धरत बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा उपरा से फुलहार रखतारी रेनुकी
एकियाहोरामा आगें मुंगिया के हाथ के हाथ के भिच्छा दियाइल रेनुकी
एकियाहोरामा मुंगिया लौंड़ी चले रेनुकी
एकियाहोरामा तवना के पाछे माता चलली सुनयना रेनुकी
एकियाहोरामा तवना के पाछे सभ लौंड़ी कुल रेनुकी
एकियाहोरामा तवना के पाछा हेवन्ती कन्या बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा सभे लोटत हेलत बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा कैसन जोगी हवें कहाँ से आइल रेनुकी
एकियाहोरामा कन्या त हेवन्ती एक देवढ़ी हेलीं रेनुकी
एकियाहोरामा माता सतवां देवढ़ी हेलली रेनुकी
एकियाहोरामा देखली जोगी के उहवें से रेनुकी
एकियाहोरामा अरे जइसन बाड़े वृजभार रेनुकी
एकियाहोरामा वैसन तो जोगी बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा दुनों एके सम लागत बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा मधुरे से बोलली काहे जोग सधले बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा हमरा त घरवा चल बबुआ रेनुकी
एकियाहोरामा नयका उमिरिया चढ़ल बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा दुनों एके संगे रहिह रेनुकी
एकियाहोरामा तब वृजमार साजेले जवाब रेनुकी
एकियाहोरामा धन को गरब देखावत बाडू रेनुकी
एकियाहोरामा बहल पानी रमता जोगी रेनुकी
एकियाहोरामा देब सराप तोहरा के रेनुकी
एकियाहोरामा तोहरो त बेटा महल में रेनुकी
एकियाहोरामा देबी सरापथ होइ जैहें जोगी रनुकी
एकियाहोरामा जहेलिया कलपिहें महले में रेनुकी

एकिया हो रामा अतना बचनिया जोगी कहले रेनुकी
एकिया हो रामा अरे तर उहवाँ बोलली माता सुनयना रेनुकी
एकिया हो रामा सुन सुन बबुआ हमार बात रेनुकी
एकिया हो रामा ऐसन बोलिया तु काहे बोलले रेनुकी
एकिया हो रामा अतना बचनिया कन्या हेवन्ती सुनली रेनुकी
एकिया हो रामा उनहीं के विअहिया रहली कन्या हेवन्ती रेनुकी
एकिया हो रामा सुन सुन माता हमरो बचनिया रेनुकी
एकिया हो रामा नौं त महिनवा रखलू पेटवा में रेनुकी
एकिया हो रामा छः त महिनवा तेलवा फुललवा रेनुकी
एकिया हो रामा अपना बेटवना नइखू चीन्हत बाड़ रेनुकी
एकिया हो रामा एक दिन सामी हमरा घरे गइले रेनुकी
एकिया हो रामा कोहबर में झांकि झुकि देखलीं रेनुकी
एकिया हो रामा अतना बचनिया जोगी सुनत बाड़ें रेनुकी
एकिया हो रामा डपटि के साजेंले जवाब रेनुकी
एकिया हो रामा सुन सुन बुढ़िया हमार बात रेनुकी
एकिया हो रामा तोहर पतोहिया बाड़े रेनुकी
एकिया हो रामा आन के खसमवा अपना बनावले रेनुकी
एकिया हो रामा अतना कहके हँसि दिहले रेनुकी
एकिया हो रामा बतीसिय चमकत देखत वा हेवन्ती रेनुकी
एकिया हो रामा हवे हवे सामी हमार सोरठपुर के जतरा करतबाड़
एकिया हो रामा लपटि के कान्हा धरतो बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा माता सुनयना देखत बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा लाजे से मुह फेरत बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा कन्या हेवन्तो जोगी के ले अइली रेनुकी
एकिया हो रामा पलँग के तैयारी करती बाड़ी रनुकी
एकिया हो रामा तोसक तकिया मखमल बिछौना रेनुकी
एकिया हो रामा फुलवा ऊपर से छितरोले रेनुकी
एकिया हो रामा अतर गुलाबवा छिरकावेली रेनुकी
एकिया हो रामा पाँच पंचन के बीरा बनवली रेनुकी
एकिया हो रामा हाल चाल समाचार पुछैली रेतुकी
एकिया हो रामा कौने करनवा जोगी जोग सधले रेनुकी
एकिया ही रामा भेदवा बताद देल हेर होल बाड़े रेनुकी
एकिया हो रामा अतना बचनिया सुनत बाड़े रेतुकी

एकिया हो रामा ओजत बाड़ सुन सुन पतरो हमार रेनुकी
एकिया हो रामा गनना करइली कोहबर नाकहनीं रेनुकी
एकिया हो रामा मामा के इहाँ गइनी रेनुकी
एकिया हो रामा अरे बीड़ा उठवलीं सोरठी के ले आइब रेनुकी
एकिया हो रामा सोरठपुर के जतरा करत बानीं रेनुकी
एकिया हो रामा बारह बरिसवा के कइले बानी पयथान रेनुकी
एकिया हो रामा तेरहे बरिस तोहरे महल आइब रेनुकी
एकिया हो रामा धीरज धर पतरो हमार रेनुकी
एकिया हो रामा हेवन्ती बोलें सुनी सामी बात हमार रेनुकी
एकिया हो रामा सोरठपुर जाइब जीअतो न अइब रेनुकी
एकिया हो रामा हमरा के हुकुम दे दीतऽ एके घंटा में सोरठी ले आइब रनुकी
एकिया हो रामा अतना बचनिया जोगी सुनतो बाड़े रेनुकी
एकिया हो रामा डपटि के साजेले जवाब रेनुकी
एकिया हो रामा मरदा के जामल मरद हुइं रेनुकी
एकिया हो रामा आगे के डेगवा पाछव न धराव रेनुकी
एकिया हो रामा तुहूँ त जोगी मंगइबू सोरठी रेनुकी
एकिया हो रामा मरदा के मुड़िया गड़ जइहें रेनुकी
एकिया हो रामा कलियुग तोहरे नाव चलजाइ रेनुकी
एकिया हो रामा उहवाँ त अतना सुने कन्या हेवन्ती, रेनुकी
एकिया हो रामा अंगना त सोचत बाड़ी हेवन्ती रेनुकी
एकिया हो रामा अब तिरिया चरितर हम करब रेनुकी
एकिया हो रामा इनकर जतरावा बिलवाइब रेनुकी
एकिया हो रामा रातिभर जागब राति भर चौपड़ खेलब रेनुकी
एकिया हो रामा अतना सोचत बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा जोगी त उहँवा भूठी के नकिया बजाउले रेनुकी
एकिया हो रामा हेवन्ती देखली की राहल के मारल सामी रेनुकी
एकिया हो रामा सामी के निदिया लागल रेनुकी
एकिया हो रामा उठके भोजन बनावली रेनुको
एकिया हो रामा बारहों व्यंजना कइले तैयार रेनुकी
एकिया हो रामा कंचन के थार जेवनार परोसत बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा मन में सोचऽतारी कि सुतल खसम कैसे जगाई रेनुकी
एकिया हो रामा वृजाभार सोचले कि बिअहिली के फगनवा पड़े रेनुकी

एकिया हो रामा तले हेवन्ती राजेली जवाब रेनुकी
एकिया हो रामा चलऽ चलऽ जेवनार रेनुकी
एकिया हो रामा जोगी मन में करेले बिचार रेनुकी
एकिया हो रामा एकरा हाथे जो करब जेवनार रेनुकी
एकिया हो रामा त हो जाता सोरठपुर जात्रा भंग रेनुकी
एकिया हो रामा त जोगी करतारे देवता के सुमिरनवा रेनुकी
एकिया हो रामा तैंतीस कोटि देवता आइ गइले रेनुकी
एकिया हो रामा देवता साजेला जवाब रेनुकी
एकिया हो रामा सुन सुन जोगी का बिपत पड़ल रेनुकी
एकिया हो रामा जोगी बोलत बाड़ें जेवना परोसत बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा एकर उपइ बतेलादीं रेनुकी
एकिया हो रामा तबले देवता सजेले जबाब रेनुकी
एकिया हो रामा अतना सिखौनी बुड़बक भइलबाड़ रेनुकी
एकिया हो रामा एक ओर एन्ने एक ओर ओन्ने ओर उठाय रेनुकी
एकिया हो रामा कन्या के नजरिया बँध जइहैं रेनुकी
एकिया हो रामा इहै कहै देवता चलि गइले रेनुकी
एकिया हो रामा चन्ननके पीढ़वा पर बइठल जोगी रेनुकी
एकिया हो रामा हेवन्ती सोचेली कि न जैहैं जोगी रेनुकी
एकिया हो रामा खुशिया दहिया ले आवइ गइली रेनुकी
एकिया हो रामा अरे दहिया ले के अइली रेनुकी
एकिया हो रामा देखिकै जोगी गनना करत बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा बिअही के हाथ नदिया गिर गइले रेनुकी
एकियाहोरामा छटकी जोगी के मथवा पर पड़गैले रेनुकी
एकियाहोरामा इ देख जायी खुस भइले रेनुकी
एकियाहोरामा कि जतरावा शुभ भइले रेनुकी
एकियाहोरामा जोगी अब चलि देहले रेनुकी
एकियाहोरामा पीछे हेवन्ती चलल रेनुकी
एकियाहोरामा कहले फिर सुमिर देवतवा के रेनुकी
एकियाहोरामा गलवा हथवा दिहले बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा हम महल में नाजाइब रेनुकी
एकियाहोरामा अरे अतना बचनिया देवता लोग उगले रेनुकी
एकियाहोरामा चेला के समुझावत बाड़े रेनुकी

एकियाहोरामा जेकरा से मतलब लेवे के रहेला रेनुकी
एकियाहोरामा ओकर बतिया सहेके पड़ेला रेनुकी
सोरठपुर के भेदवा तोहरा बिम्रहिता रेनुकी
एकियाहोरामा अरे जोगवा होइहें अब तोहार रेनुकी
एकियाहोरामा देखले सामी केने जाले रेनुकी
एकियाहोरामा अरे महल में समइले बृजाभार रेनुकी
एकियाहोरामा महल में लै गइले तिरिया रेनुकी
एकियाहोरामा महल में बइठइली जोगी रेनुकी
एकियाहोरामा सोरहो सिंगरवा बतीस अभरनवा रेनुकी
एकियाहोरामा हेवन्ती तइयार करेले रेनुकी
एकियाहोरामा देखिहें त मोहित होइ जइहें रेनुकी
एकियाहोरामा अतना विचार करेले हेवन्ती रेनुकी
एकियाहोरामा एक ओर जोगी बइठले पलंगवा रेनुकी
एकियाहोरामा चौपड़ खेलै लगली रेनुकी
एकियाहोरामा आधी रात बीत गइल रेनुकी
एकियाहोरामा कुंवर सोंचले बियही तिरियाचरितर करतारी रेनुकी
एकियाहोरामा रातभर जगैहें जतरा भंग करैहे रेनुकी
एकियाहोरामा सात भार जोगी मंगले निद्रा रेनुकी
एकियाहोरामा मन में करत बाड़ी विचार रेनुकी
एकियाहोरामा अँचरा से बाँधी जोगी डंडा जोगी रेनुकी
एकियाहोरामा धरेले तिलकवा रेनुकी
एकियाहोरामा जिन खोलिहें गठबंधन हो रेनुकी
एकियाहोरामा खचड़ के जामल खाचड़ होई जइहें रेनुकी
एकियाहोरामा जोगी के अँगुरिया दाँत तर दाबै रेनुकी
एकियाहोरामा हथवा त दहिनवा धैके सुतै निरभेदवा रेनुकी
एकियाहोरामा धइके सुतली कन्या त देवन्ती रेनुकी
एकियाहोरामा अब कैसे सामी सोरठपुर जैहें रेनुकी
एकियाहोरामा तले जोगी महल में बिचारवा कहले रेनुकी
एकियाहोरामा तिऊली तो बड़ा मन्दवा कहली रेनुकी
एकियाहोरामा कैसे सोरठपुर जाइब रेनुकी
एकियाहोरामा तैंतिस कोट देवता के सुमिरले रेनुकी
एकियाहोरामा देवता सभ आ गइले रेनुकी

एकियाहोरामा बोले देवता कि कौन संकटवा परलवा रेनुकी
एकियाहोरामा बोलेले जोगी बृजाभार रेनुकी
एकियाहोरामा हमरा के बाँध के डाँड़ में बन्धन में रेनुकी
एकियाहोरामा बन्धन तो गठबन्धन बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा ओही पर तिलकवा धइले रेनुकी
एकियाहोरामा एकर उपइया बताइब रेनुकी
एकियाहोरामा एतना बचनिया देवता सुनले रेनुकी
एकियाहोरामा अतना सिखइनी बुड़बकवा बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा ताहरा ता हमें सरौता बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा एक हाथ काढ़ सरौता रेनुकी
एकियाहोरामा दुइखंड करऽ सुपारी के रेनुकी
एकियाहोरामा कन्या हेवन्ती के दाँत पर धराइ रेनुकी
एकियाहोरामा आपन अँगुरिया छोड़ल रेनुकी
एकियाहोरामा कटारी निकाल के गठबन्धन करइलन रेनुकी
एकियाहोरामा खोल के तिलकवा उहे क लेबाड़े रेनुकी
एकियाहोरा उहे त उपइया जोगी कइले बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा अंगुरी त छोड़ाइ दिहले रेनुकी
एकियाहोरामा कढ़ल कटारी झोली में से रेनुकी
एकियाहोरामा निकरले पंजर जोगी रेनुकी
एकियाहोरामा उतरले पलंग पर से रेनुकी
एकियाहोरामा झुमुकी खड़उंवा पर भइले असवा रेनुकी
एकियाहोरामा गुदरी उठवले भसम लगावेले रेनुकी
एकियाहोरामा मृगा के छलवा कांखतर दबवले रेनुकी
एकियाहोरामा चौरासी मन के झोरा रहल रेनुकी
एकियाहोरामा तूम से कमंडल उठावेले रनकी
एकियाहोरामा सबरन कमंडल उठावेले रेनुकी
एकियाहोरामा सातो त देवढ़िया किला तुड़वा बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा तब जोगी हो गइले महल के बहार रेनुकी
एकियाहोरामा सोचत बाड़े की सुतल तिरिया छोड़ेल हमें उपरवा रेनको
एकियाहोरामा सातो भार निद्र खींच देले रेनुकी
एकियाहोरामा तिरिया तब जाग गइली रेनुकी
एकियाहोरामा के कोना में खोजत बाड़ी रेनुकी

एकियाहोरामा पलंग तरे खोजन बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा रोइ रोइ कहत बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा गवना कराके बइठा गइलल बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा तबले नजरिया पड़ल बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा चिल्हिया के रूपवा धरत बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा जोगी त भाग चलि जाले रेनुकी
एकियाहोरामा जहाँ त रहत बा पकड़ी के पेड़ रेनुकी
एकियाहोरामा पकड़ी से बोलेले रेनुकी
एकियाहोरामा हमरा के जल्दी से लुकाव रेनुकी
एकियाहोरामा कौनो जो अदमिया पुछिह तू रेनुकी
एकियाहोरामा तू हमरा के जन बतइह रेनुकी
एकियाहोरामा नाहीं त देब सरपवा हो रेनुकी
एकियाहोरामा कुँवर वृजाभार के पकड़ि लुका लिहली रेनुकी
एकियाहोरामा पकड़ि तर जोगी अब लुकाइल बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा तले त पहुँचली जोगी के बिहिया रेनुकी
एकियाहोरामा मधुरे में साजेली जवाब रेनुकी
एकियाहोरामा सुन सुन पकड़ी बहिना हमरो बचनिया रेनुकी
एकियाहोरामा अरे जाहू त रहववा कौना मुसाफिर गइले रनुकी
एकियाहोरामा अतना बचनिया पकड़ि सुनेली रेनुकी
एकियाहोरामा बोलेली पकड़ी सुन बहिना बतिया रेनुकी
एकियाहोरामा अरे हम नाहीं देखेली मुसाफिर रेनुकी
एकियाहोरामा दूसर अब रास्ता देख रेनुकी
एकियाहोरामा चलल चलल अब दूर कुछ लाइली रेनुकी
एकियाहोरामा दूसर रास्ता गइले वृजभार रेनुकी
एकियाहोरामा अब जोगी चलि गइले रेनुकी
एकियाहोरामा जहाँ रहले जमुना के धार रेनुकी
एकिया होरामा अरे बेटवा उहाँ रहले मल्लाह रेनुकी
एकियाहोरामा जल्दी से भइया खोलब हो रेनुकी
एकियाहोरामा आरे पंचा मोहरा गुदरा के टंका रेनुकी
एकियाहोरामा केवटा के आगे मोहरा बिगी दिहले रेनुकी
एकियाहोरामा बड़ सुख भइले मलाहवा हो रेनुकी
एकियाहोरामा पहिले जतरावा बनि गइले रेनुकी
एकियाहोरामा घाट से नइया खोलत बाड़े रेनुकी

एकियाहोरामा बड़ा सुख भइले मलहवा रे रेनुकी
एकियाहोरामा चढ़ते बाड़े कुंवर वृजभार रेनुकी
एकियाहोरामा आधा दरियाव में नइया पहुंचल बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा तले पहुंचल बाडी कन्या हेवन्ती रेनुकी
एकियाहोरामा जहाँ मलहिया भउजी रेनुकी
एकियाहोरामा भउजी के बुखवा भउजी त बुझिहैं रेनुकी
एकियाहोरामा अरे सुन सुन मोरा बहिना बचनिया रेनुकी
एकियाहोरामा अरे नइया त तनी फेरावाव रेनुकी
एकियाहोरामा तोहरा के देबा गहना से गुरियवा रेनुकी
एकियाहोरामा अरे लोहरा पटेहवा हो रेनुकी
एकियाहोरामा लालच में पड़ली मलाहिनी रेनुकी
एकियाहोरामा हथवा उठावले मल्हनिया रेनुकी
एकियाहोरामा उहाँ देखले केवटा त मलाहवा रेनुकी
एकियाहोरामा नइया फेरे लगले अब रेनुकी
एकियाहोरामा देखले जोगी उपरी के त बोलल रेनुकी
एकियाहोरामा अरे तिरिया दुसेरे मे तूहूं पड़ली बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा झूठ मूठ के लालच अब त देखावतारी रेनुकी
एकियाहोरामा उनका त अनधन कहाँ से आइ रेनुकी
एकियाहोरामा अरे दुइ ठो मुहरो जोगी फिर देले रेनुकी
एकियाहोरामा हमरा के पार मोर उपराव रेनुकी
एकियाहोरामा पाछे तनहया लेइ जाइहऽ रेनुकी
एकियाहोरामा नइया उतर के मलाहवा रेनुकी
एकियाहोरामा अरे ओकर गइले रेनुकी
एकियाहोरामा गइले झुनुकी खडाऊं गइले रेनुकी
एकियाहोरामा हेवन्ती सोचतारी अरे सामी सोरठपुर जैहैं
एकियाहोरामा हाल बेहाल होत बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा साजेंली जवाब कन्या हेवन्ती रेनुकी
एकियाहोरामा अरे पार हेलि गइली नगदरि कइलऽ रेनुकी
एकियाहोरामा अरे हमरो बचनिया सुनि गइले रेनुकी
एकियाहोरामा अरे देबों सराप बा सोरठपुर के जतरा मंगहो जाइ रेनुकी
एकियाहोरामा अतना बचनिया जोगी सुनले रेनुकी
एकियाहोरामा आगे के ढंग आगे बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा अरे कन्या त साजेले जवाब रेनुकी

एकियाहोरामा सामी सुन सुन बात हमार तु रेनुकी
एकियाहोरामा जल्दी से देव जवाब तु रेनुकी
एकियाहोरामा एकरा तू भेदवा तू बता देव रेनुकी
एकियाहोरामा अंगना में तुलसी में चउतरा बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा जब तू देखिह महरल पात रेनुकी
एकियाहोरामा जनिह ज कतहूं बानी रेनुकी
एकियाहोरामा तब कन्या हेवन्ती बोलत बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा सोरठपुर जतरा बतावत बाड़ी रेनुकी
एकियाहोरामा करिह सुन्दरबन पोखरा स्नान रेनुकी
एकियाहोरामा दुसरे डुबुकी गंगा राम केकड़ा मिलिहैं रेनुकी
एकियाहोरामा लेके झोरा में केकड़ा के रखिह रेनुकी
एकियाहोरामा उहंवा से चलिह रेत में रेनुकी
एकियाहोरामा उहंवा से चलहि ठूंठी पकड़ि रेनुकी
एकियाहोरामा ठूंठि पकड़ि रावल कागवा बाड़े रेनुकी
एकियाहोरामा ठगपुर सहरिया चलि जैहैं रेनुकी
एकिया हो रामा उहवां बाड़े देव जुआड़िया रेनुकी
एकिया हो रामा बुढ़िया दनुइया बाड़ी उहवां रेनुकी
एकिया हो रामा सुबुकी में ननद भौजी बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा जात के तेलिनिया बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा काठ के ठगवा सिलिया बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा उनही से होई, हमार बिचार रेनुकी
एकिया हो रामा यहवां से जैतपुर जइहै रेनुकी
एकिया हो रामा उहवा रानी जयवन्ती बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा उहवां से जइह जमुनी पुरी रेनुकी
एकिया हो रामा उंहवा बाड़ी जमुनी रेनुकी
एकिया हो रामा उंहवा से जइह केदली रेनुकी
एकिया हो रामा उंहवा बाड़ी अपनी सपती रेनुकी
एकिया हो रामा चौदह तओं कोस में राज करत बाड़ी रेनुकी
एकिया हो रामा उहवां से चलिह सोरठपुर में जइह रेनुकी
एकिया हो रामा चारो कठ बसिया बारे रेनुकी
एकिया हो रामा सहर में तू जइह करिके पकरमा रेनुकी
एकिय हो रामा बारे बरिस के उकरल फुलवरिया रेनुकी

एकिया हो रामा तोहरा गइले हरिहरहोई जइहैं रेनुकी

× × × ×

इस प्रकार वृजाभार हेवन्ती के बतलाए हुए रास्ते पर चल पड़ा और यथा समय सोरठी से मिलन हुआ।

---

(७) बिहुला

रामा रामा रामजी की नइयाँ, राम जी बिहान कइलीं।
दुर्गा आजी हो जइहऽ कंठ दयाल
रामा दिल्ली सहरवा में रहले चंद्र सहवा रे ना
रामा जेकर पंडित बिसहर पंडितवा रे दइबा
रामा भ गइल छ गीत लड़िकवा रे ना
रामा सजी लोक के कइनी बिअहवा रे दइबा
रामा सजी गइले सुरधमवा रे ना
रामा सजी गइले सुरधमवा रे दइबा
रामा सातवा भइले बेरवा रे ना
रामा पंडित जी देखऽ कइसन पोरवा रे दइबा
रामा पंडित खोल देले पतरवा रे ना
रामा अइसन लड़िकवा जनम लिहले बाड़े रे दइबा
रामा कुछहूना पंडित के इनमिया ना दिहले रे ना
रामा हे राम घरवा से पंडित निगधा चलि गइले रे दइबा
रामा ऐसन सेठ सहर हमरा के मिलवले रे ना
रामा रामा इहाँ के बरतवा इहें छोड़तानी रे दइबा
रामा आगे के बचनवा सुनी हो राम
रामा छहों भौजाइया बाला के रांड रहली रे दइबा
रामा ए बबुआ बिसहर चंडलवा बाटे रे ना
रामा रहिहऽ इनसे होशियार रे दइबा
रामा बाला हथवा लिहले तिरिया धनुहिया रे ना
रामा चिड़िया बतक मारे लगले रे दइबा
रामा तिल तिल कोसवा चारु ओर मारे लगले रे ना
रामा बिसहर पंडित महल में बिचार कइले रे दइबा
रामा कवन ऐसन बली भइला रे ना
रामा तिन तिन घेरवा चारो ओर चिरैया मोर दइबा
रामा बिसहर पंडितवा मछरी लगावेला रे ना
रामा चलि गइल गंगा के किनार पर रे ना

रामा बोले त लगले बिसहर पण्डितवा रे दइबा
रामा सुन बाबा सवलिया हमार रे ना
रामा बाला तोहरा न घटिया सिधरी चढ़ै रे दइबा
रामा हमरा घाटे मछरिया बाटे रे ना
रामा हमरा त घाटे ठेहुना गंगा जी बाड़ी रे ना
रामा हमरा त लगे आवे मार मछरिया रे दइबा
रामा पण्डित के कहना में लखन्दर पड़ले रे ना
रामा हेले लगले गंगा जी के धरवा रे दइबा
रामा ठेहुना पनिया भइल हो रामा
रामा बिच धारा गइले बाला लखन्दर रे दइबा
रामा तब बिसह चनिया छोड़ल लागल रे ना
रामा भर मुँहे गइल बाला के पनिया रे दइबा
रामा लपटि के बिसहर धइले बाड़े पहूंचवा रे ना
रामा बालू में धंसाई देत बाड़े रे दइबा
रामा तब त बिसहर चल दिहले अपना घरवा रे ना
रामा आपन फटही मिरजइया पेन्हले रे दइबा
रामा हथवा के ले लिहले बिसहर छड़िया रे ना
रामा रामा चंदू साह के दुअरवा गइले रे दइबा
रामा तब ओइजा बोलै बिसहर पण्डितवा रे ना
रामा ऐसन संतनवा डगवा बाटे तोहार रे दइबा
रामा कहां त बाड़े बाला लखन्दर दइबा रे ना
रामा जल्दी से बोलाय देव देरी होत रे दइबा
रामा तब ओइजा मचल हलचलवा रे ना
रामा नाहीं जेकर पतवा लागल रे दइबा
रामा बिसहर साजे लगले जवाब रे ना
रामा बबुआ बालू रेत में बाड़े रे दइबा
छहो भौजिया बोलाय के गइली रे ना
रामा बालू रेतवे देखता लोग रे दइबा
रामा तनी तनी संसवे चलत रहे बाला के रे ना

× × × ×

होत फजीरवा चीना के दुअरवा रे ना

राम तब चीना साह कइले परनाम रे दइबा
रामा रउवां त हईं पन्डित देस के भंवरवा रे ना
राम बबुआ के जाके कतहीं लड़कवा रे दइबा
रामा त धीरे धीरे लगले बोले बिसहर रे ना
रामा दिहले कौल कररवा रे दइबा
रामा तब बिसहर दइबा लड़िकवा रेना
रामा हे चीना साह जल्दी से होख तू तैयार रे दइबा
रामा हमरा संगे तुहूं चलि चलऽ दिल्ली सहरिया रेना
रामा चन्दू साह उहां बाहे उन्हीं के लड़िकवा रे दइबा
रामा गइले बिसहर चन्दू के दुआरवा रे ना
बाला त खेलेला धनहिया रे दइबा
रामा बिसहर त ओइजा देखले बाटे रे ना
रामा हउवे त लरिकवा हवन हे राम रे दइबा
रामा लरिका त परि गइले पसनवा रे ना
रामा तब त बारी हजामवा बोलता रे दइबा
रामा पंडित के बुलाय आपन दुअरवा रे ना
रामा आपन दुअरवा गननवा करीं ए रामा रे दइबा
रामा तब त ओइजा बोलेले चंदू सहुआ रे ना
रामा हम ना करब बिअहवा रे दइबा
रामा पहिले हम देब जवबवा रे ना
रामा छेकवा फलदनवा ओइजा बरियारी दिहाइल रे दइबा
रामा चन्दू साह काटे ना पइले रे ना
रामा चन्दू साह बड़ा खातिर से बिदइया कइले रे दइबा
रामा तिलकवा के दिनवा पंडित जी लिखीं रे ना
रामा बारी हजाम के चिठिया दिहले रे दइबा
रामा बारी हजाम गइले चीना के मुलुकवा रे ना
रामा ऐसन बड़ा उनकर अकिलवा रे ना
रामा कहाँ ले बखानवा करीं हे राम
रामा बबुआ के जोगे तोहार लड़िकवा रे दइबा
रामा किलावा के जोगे बाड़े किला रे ना
रामा तेरसी के तिलकवा रे दइबा
रामा जल्दी से तइयरिया करऽ रे ना

×   ×   ×

रामा इहाँ के बरता इहाँ छोड़ी रे ना
रामा आगे हवलिया सुनी हे राम
रामा बिसहर के साहू पुछले रे ना
रामा सुनी बिसहर बतिया हमार रे दइबा
रामा बिना हमरा देखले नाहीं त बिअहवा रे ना
रामा कइसन उ तिरिया मिली ए राम रे दइबा
रामा अतना बचनिया बिसहर पंडित सुनले
रामा उड़न खटोलवा इंदरपुर से मँगवल रे दइबा
रामा चन्दू साह के बइठा लिहले रे ना
रामा लिया आके गइले चीना के मुलुकवा रे ना

×   ×   ×

राम तीन सौ साठ बरवा साजेला पलकिया रे ना
रामा ओहमें बाला त लखंदर बइठले रे दइबा
रामा साजि के बरियात गइल चीना के दुआर रे ना
रामा चीना साह के दुआर लागल बरतिया रे दइबा
रामा तीन सौ साठि बिसहर साजेले बरवा रे दइबा
रामा सभे पर साजेले एक से एक से नौसवा रे ना
रामा लिखिके भेजेला चीना के पास पतिया रे दइबा
रामा चीना साह त बाला लखन्दर के दुआर पुजवा रे ना
रामा दुअरा पर लागल रहे बरिअतिया रे दइबा
रामा लड़की जामल हमार त सुघरवा रे ना
रामा एक से एक बाड़े दुलहवा रे दइबा
रामा किलवा भीतर चीना साहुआ रोये रेना
रामा तब बिहुला सतबरता सुनली रे दइबा
रामा तब हे बाबू जी रउवाँ काहे रोईले रेना
रामा हमहीं बताइब दुलहवा रे दइबा
रामा जेकरा पर माछी लागे रे ना
रामा उहे हवन बाला बरवा रे ना

× × × ×

बिषहर ने बाला लखन्दर का विवाह बिहुला से कराया और चन्दूशाह से बदला लेने के लिए बाला को मारने का षड़यन्त्र करने लगा। उसने लोहे के अचलघर में कई प्रकार के साँप भेजे परन्तु कोई काट न सका। अन्त में विषहर नागिन को भेजा।

रामा बिहुला केसिया पर नगिनिया चढ़े रेना
रामा देखि दूनों के सुरतिया रे दइबा
रामा देखिके नागिन बेजारवा होवेली रेना
रामा ओने त होता देरवा रे दइबा
रामा ओतने होता बिसहर बिसमदवा रेना
रामा गोड़वा के तरवा भइले गेडुरवा बालाके रे दइबा
रामा बाला के ले बिहुला सुतावे रेना
रामा बाला लगले गोड़वा चलावे रे दइबा
रामा नागिन के घउवा लागल रेना
रामा उहाँ नागिन करेले जवबिया रे दइबा
रामा हे रामा बिसहर के बिल्कुल दोसवा रे ना
हे रामा चौथी बेरा नागिन घुसली काटै के रे दइबा
रामा कानी त अंगुरिया में होता पिड़वा रे ना
रामा बाला अब त जागि भइले रे दइबा
बाला लखन्दर बिहुला के जगावत बाड़े रे ना
रामा सुन तिरिया गजब होखतबा रे दइबा
रामा हमरा के डसले बा नगिनिया रे ना
रामा अब हमार परनवा जाला रे दइबा
रामा तबो नाहीं उठे बिहुला सतबरना रे ना
रामा रिसिया चढ़े लखन्दर के रे दइबा
रामा पीयर पीयर भइले आँखिया बाला के रे ना
हो रामा गिरि गइले बाला लखन्दर रे दइबा
रामा जुड़वा में बिहुला के नागिन छिप गइली रे ना
रामा भिनुसरवा लोहिया लागल टुटल निदिया रे दइबा
रामा बिहुला जगावत बाड़ी बाला लखन्दर के रे ना
रामा जल्दी से उठऽजल्दी से जाहू किलवा रे दइबा
रामा सभे लोग जगले सभी कुल लउड़िया रे ना

रामा केतना जगावै बिहुला सतबरनों रे दइबा
रामा बाला लखन्दर नइखत उठल रे ना
रामा देखे लोग लागल बाला के मुंहवा रे दइबा
रामा बिहुला देखके लगले रोवे रे ना
रामा हलचल मचल साहु के किलवा रे दइबा
रामा ऐसन चन्दू के पतोहिया अइली राम रे ना
रामा बाला के कोहबर मरलस डइनिया रे दइबा
रामा हथवा के बिसहर लेहले सटुहिया रे ना
रामा फटही मिरजइया पहिन के रे दइबा
रामा ओइजा बोले साहु से कि रे ना
रामा तोहरा तो पतोहिया हइ डइनिया रे दइबा
रामा बाला के परनवा लिहली रे ना
रामा बुजरो त हवे डइनिया रे दइबा
रामा सात बोझा कटइले कइनिया चन्दू रे ना
रामा सोचे लागल बिसहर मन में एक दहवा रे दइबा
रामा दूसर के ना मार लागी बिहुला के रे ना
रामा धीरे धीरे लोग मरिहें बिहुलाके रे दइबा
रामा बुजरो के हमही मारब रे ना
रामा बिहुला के बंधवा के मंगइलस रे दइबा
उहाँ बोलेली बिहुला सतबरता रे ना
हम ना जो मरब कइनी से रे दइबा
रामा हमरा के दीहऽ इनमवा रे ना
सामी के देदीहऽ लशवा रे दइबा
रामा अरे बिहुला के कइन से पीटे लगले रे ना
रामा बिहुला के कूटे लागल चामवा रे दइबा
रामा लगली रोवे जार बेजारवा रे ना
रामा ऐसन चंडलवा बाड़न हो रे दइबा
रामा केहू नाहीं बाड़े भलमानुसवा रे ना
रामा सातो बोझा कइनिया टूटल रे दइबा
रामा तबो नाहीं मरे बिहुला सतबरता रे ना
रामा तब बोलतारी बिहुला सतबरना रे दइबा
रामा हमरो कौल करार पूर भइले रे ना
रामा समिया के लशिया देहिं रे दइबा

रामा बकस में लशिया के बन्द कइली बाड़ो रे ना
रामा कुकुरा के लिहली साथवा रे दइबा
रामा एक तोला दहिया ले लिहली रे ना

× × ×

रामा गंगा जी में बरिया डाल दिहली रे ना
रामा अपने चढ़ि गइली उपरा रे दइबा
रामा ले चलली अपने ममहर के नगरिया रे ना
रामा नाथूपूर सहरिया उनकर मामा रहल रे दइबा
रामा बिहुलाके देखले मामा उनकर सूरता रे ना
रामा मामा ओइजा बोलऽ तारे रे दइबा
रामा हे तिरिया काहे लशिया लेके घुमत रेना
रामा हमरा संगे महलिया में चल ए रामा
रामा चौदह कोस के बा हमार रजवा रे ना
रामा अपने भगिनिया मामा नाहीं चिन्हत बाड़े रे दइबा
रामा उहवाँ से हाँकि दिहली बरियारेना
रामा नाथूपर घटिया पर नेतिया धोबिन रे दइबा
रामा मामी के नतवा लगइली उहवें बिहुला रे ना
रामा तब बिहुला सभे हाल जरिये से कहली
रामा लगली बिहुला धोवे कपड़ा रेना
रामा करे गइली घरवा के कमवा रे दइबा
रामा कपड़ा के तहवा बिहुला सतबरता लगावेली रेना
रामा थोकवा लागे के बिहुला तेयरिया कइली रे दइबा
रामा तबले नेतिया धोबिन आइल रे ना
उड़न खटोलवा मगवले इन्दर पुरवा रे दइबा
रामा इन्दर पुर नेतिया गइली रे दइबा
रामा परलोकवा के कपड़ा घरे घर दिहली रे ना
रामा कपड़ा के तहवा नाहीं मालुम भइले रे दइबा
रामा ऐसन कपड़वा तहवा लगइले रे ना
रामा उन्ह कर सुरतिया हम देखब ए राम
रामा परी लोग बोलावत बाड़ी ए दइबा
रामा उड़न खटोलवा पर चढ़ि दूनो जाला रे ना

रामा पहिले त गउवे लाल परी के दुआरा रे दइबा
रामा लाल परी चीन्हों गइली बिहुला के रे ना
रामा इत हवे हमरे इन्दर के परिया रे दइबा
रामा कैसे कैसे तोहार हलवा रे ना
रामा जरिया से कहै खिलकतिया बिषहर के रे दइबा
रामा बिहुला कहले बिया बिहुला सतबरता रे ना
हाल सुनि गइल लालपरी इंदर के लगवा रे दइबा
हमनी के रखलऽइंनरपुरवा एवजवां रे ना
रामा बिहुला के भेजलऽ परलोकवा रे दइबा
रामा बिसहर के देखीं हाल रे ना
रामा तले जुड़वा से निकलल नगनिया रे दइबा
रामा जरिया से कहे लागल नागिन बखेड़वा रे ना
रामा बरम्हा के बुलवले इन्दर रे दइबा
रामा सुन हमार सुन बतिया रे ना
रामा बिरिया गंगा जी में रखले बिया रे दइबा
रामा बकसए में बा लसिया रे ना
रामा जहँवा त बाड़े चनरामिरतवा रे दइबा
रामा बंसिया त बजाव ओही कीरा से अदमिया से होइ जइहैं रे ना
रामा सजी परी अइली गंगा तीरे रे दइबा
रामा दुरगा सातों बहिन अइली रे ना
रामा लसिया लेके अइली इन्दर के कचहरिया रे दइबा
रामा जहँवा लागल महफिलवा रे ना
रामा वाकस में से निकलल बा बाला के लसिया रे दइबा
रामा देवी के हथवा में खप्पर दिहले रे ना
रामा चरनामित के घरिया छिटाइल रे दइबा
रामा बालालखन्दर उठ गइले रे ना
रामा सातों भाई लेके चलली गंगा के तीर रे दइबा
रामा रथवा लगली हाँके बिहुला रे ना
रामा छवों दयादिन देखे लगली तमसवा रे दइबा
रामा गउवां के पछिमवां रतन फुलवरिया रेना
रामा दिहले बाड़ी अपना घर खबरिया रे दइबा
रामा तीन तौ साठ पहुँचल पटरनिया रेना
रामा बिहुला के डोलिया कहरवा ले जाले रे दइबा

रामा सातों भाई घोड़वा गइले रेना
रामा हलचल मचल बाटे सहरवा में ना
रामा अइसन पतोहिया हमार सतवन्ती रहले रेना
रामा आज मेटाई दिहले दुखवा रे दइबा
रामा त डोलिया घरे पहुंचल बाड़े रेना
रामा बाबू जी के परनमवा रे दइबा
रामा बोले लागल बिहुला सतबरता रेना
रामा सुन कहुनवा ससुर जी हमार रे दइबा
रामा बिसहर के जल्दी बोलाय रेना
रामा ओकर दुनों पहुंचा कटवाइब रे दइबा
रामा पूरा करब बचनिया रेना
रामा बिसहर के बोलाइब पुलिसवा रे दइबा
रामा बिसहर कइले विचार अपनी महुलिया रेना
रामा कौन इनमवा हमरा के मिलि रे दइबा
रामा लालच में पड़ि गइले उहवां रेना
रामा नकिया पहुंचवा कटवइले रे दइबा
रामा निकारि दिहेल गइले रजवा रेना

(८) राजा भरथरी

जग में अम्मर राजा भरथरी, कर में लिखा वैराग
मेरी मेरी करके जग में अइलें ।
मेरी माया की जंजाल, पहिरी गुदड़ी राजा रम के चललें
तो रानी गुदड़ी धय ठाढ़

रानीः—सामी सुनो मेरी बात, ओहदिन सामी ख्याल करीं
जेहि दिन रचे मोर बियाह
कि जेह दिन गवना ले अइलीं हमार
हथवा सामिया बंधल कांगन
मथवा मौरवा चढ़ाई सामी
गले में डललीं जयमाल
अम्मर सेनुरा देई मांग
देके से सेनुरवा सामी प्राण के गोंधल दिनवा के लगैहैं पार
गवने की धोती सामी धुमिल ना भइले
नाइ छुटल पियरी दाग

राजाः—सोरही गैया के राजा गोबर मंगा
आंगन दिया लिपाय
गजमोती चौके पुरा के कंचन कलसे धराय
कासी से पंडित बोला, भेदवा रचाय
पहिला तो भेदवा बाबा पंडित बांचे, निकला ईश्वर का नाम
दूसरा पन्नवा बाबा फिन तो बांचे निकला राजन का नाम
चौथा पन्नवा बाबा फिन तो मिला जोगी भरथरी का नाम
एन्ना बोलिया रानी सामदेव सुने कि धरती पटकेले माथ
आ घोड़ा जोड़ा बाबा तुहें देई, देई पांचों पोसाक
जोगिया के नाम बाबा काट देई
तो एन्ना बचन बाबा पंडित बोले, रानी सुनो मेरी बात
कगदा होते रनिया काट देतों, करमा काटल न जाय
इनके करम रनिया लिखल बा जो बरहे बरस राजा राज कइलें
तेरहें में बनिहें ये जोगी
तो एन्ना बचनिया रानी सामदेव सुने

कि जोगिया बने हमरा देब
जवने दिन राजा गवना ले अइलें
और पैर पालन पर धरें राजा
कि पलंग गइल टूट
ये पंलगे टूटले के भेदिया पूछे राजा भरथरी
पलंगे के टूटले के भेद हम ना जानी,
जाने छोटी बहिनिया पिंगल मोर
तो एतना बचन राजा भरथरी बोले
कि कवने सहरिया तोर बहिनिया पिंगली हैं रान
तो राजा पाती लिखा तो डिल्ली गढ़ में भेजा
पाती लेके दिल्ली गढ़ नाऊ गइलें तो रानी पिंगला
तो वहाँ से पाती पाते राजा को दरबार आइल
तो राजा पूछे लागल कौने कारण पलंग गइले टूट
रानी भेदिया दे बताय
तो फिन बोलत बा राजा भरथरी कि रानी सुन मेरी बात
पलंगे के भेदिया रानी जबले न पइबे पलंग कसम होइ जाय
रानी बोलीं कि सामदेव
हई पुरब जनम के माव।
राजा सुन उदास हो गइलें।
हाय हो सकल राजा भरथरी।

× × × ×

पहिरि के पोसाक राजा चल दिहलें
खेलें गइलें बन में काला मिरगा के सिकार
तो झांकि करती हैं मिरगिन परनाम
कहवां अइलीं राजा दिल का भेदिया देई बताइ
तब तउ डपटि बचनिया बोले राजा भरथरी
कि मिरगी सुनो मेरी बात
इंहवाँ अइलीं सिंघल दिपवा खेलन अइली सिकार
काला मिरगा के परनवां आज में मरबों कि गुरु के चले नाम
तबतो डपटि बचनिया बोलीं सत्तर सौ मिरगिन
कि राजा सुन ले मोरी बात

जो राजा के खेलने के शौक करे सिकार
तो मिरगिन मारि लयीं दुइ चारि
राजा मिरगा के राजा जनवां छोड़ देईं
नाइ त सब मिरिगिन होइ जहिहें रांड
तब बोलत बा राजा भरथरी, कि मिरिगिन सुनो मोरी बात
तिरिया के ऊपर हथवा नाहीं छोड़ल
कि जेहमन कलम नाईं चली नांव
तब सत्तरसौ मिरगिन बोले, आधा गइलिन राजा के पास
आधा जोड़ खोजन गइलीं
तो बीच जंगल में मिरगा चरत रहलें
मिरगन रोईं रोईं करली जवाब
कि आज के दिनवा सामी जंगल देईं छोड़
तोहरे सर पर नाचत बा काल
गिर गइल बाबा भरथरी के झंडा
कि खेलिहें तोंहके सिकार
तब डपटि बचनिया राजा मिरगा बोलल
कि मिरगिन सुनो मोरी बात
तिरिया जतिया तू डेराकुल भइली
तू त गइलू डेराय
नाईं कौनों राजा के कइलीं कसूरा नाईं उनकर कइलीं नुकसान
बिना कसुरवा राजा काहे मरिहें
तो मिरगिन फिर करती हैं जवाब
आज के दिनवा राजा जंगल देईं छोड़
नाईं त हम्मन के हो जइबे रांड़
तो एन्ना बचनिया काला मिरगा सुने
तो उड़ता ही चलता है आकाश
उहवां नाहीं लागल ठेकान
फिन हुवां से से उड़ गइले नेपाल के राजा
उहूं नाहीं लागल ठेकान
तो फिन मिरगा सोचा कि भगले से न बचिहें जान
तो फिन तो आया केदरपुर जंगल में
चला राजा से करने परनाम
झुक के कइले राजा मिरगा परनाम

तब ले त राजा देता है अपने बान के चढ़ाय
पहिला तो बान राजा घींच के मारा ईश्वर लिहले बचाय
दूसर बान राजा फिर तो मारे लेतिया गंगा जी सम्हार
तीसर बनिया राजा फिर त मारे, लेति हैं बनसप्ती संवार
चौथा बनिया फिर तो मारेन लिहले सिंघियन पर ओढ़
तो छठवा बनिया राजा भिन तो मारेल गोरखनाथ लिहले बचाय
तो सतवा बनिया राजा घींच के मरले कि मिरगा धरती गिर जाय
गिरता के बखत राजा से मिरगा कइले नयना से जवाब
बिना कसुरवा राजा हमके मरली सीधे जइबें सुरधाम
अंखिया काढ़ि के राजा दीन्हें रानी के कि बैठल करिहें सिंगार
सिंधिया काढ़ि कौनों राजा के दीहऽ के दरवाजा के शोभा बनि जाय
खलवा खिचाय कौनों साधू के दिहल कि बैठे आसन लगाय
मसुआ तलहरि राजा रउरे खाइब कि जोगवा अम्मर होइ जाइ
एतना कहत मिरगा प्रान के छोड़ें तो मिरिगिन करती है उवाब
कि जैसे सत्तरसौ मिरगिन कलपे, वैसे कलपे रनिया
तब त राजा भरथरी के गोली लगे के समान
कि आज जो दिनवा मिरगा के न जियेहैं
कि सत्तरसौ मिरगिन दिहली सराप
तो अपने त राजा कूद के घोड़ा पर भइलें सवार
और काला मिरगा के लेता है लाद
चलला बाबा गोरखनाथ के पास
लगवें से राजा भरथरी झुक कर करता है परनाम
डपिट बचनिया गोरखनाथ बोले, बच्चा सुनो मेरी बात
भारी बच्चा तुमने पाप किया काला मिरगा के जान लिया मार
तब बोले राजा भरथरी बाबा सुनो मोरी बात
काला मिरगा के बाबा जिन्दा कर देहीं नाहीं त धुइयां में जरि जाब
तब तो बाबा गोरखनाथ मिरगा के कइलें जियाय
तब तो उहां से उड़ले गइले जंगल के पास
तो सत्तर सौ मिरगिन खुसी भइलिन कि राजा सुनों मोरी बात
एकतो पापी रहले राजाभरथरी किसत्तर सौमिरगिनके कइदिहलें रांड़
एक तो धरमी बाबा गोरखनाथ कि सबके कइले एहवात
तब तो बोलल राजा भरथरी कि बाबा सुनो मेरी बात
जइसे हमहूँ का चेलवा बना लेईं बाबा

नाई त धुइयां में भसमें होइ जाब
तब त बाबा गोरखनाथ करते हैं जवाब
ए बच्चा सुनो मेरी बात
अरे तू त हवे राजा के लड़िका, जोगवा नाई लगी तोहसे पार
काँटा कुसा सौव न पइब
आ नीच दुअरिया जो भिच्छा मांगब
कौनों गरभी दिहलें बोल, तब त भिच्छा लेइ न जैबे
कौनों तिरिया सुन्दर घरवा देखब
तो जोगवा तोहरा होइहैं खराब
तब तो एह्ना बचनिया राजा बोल भरथरी
कि सुनो बाबा मोरी बात
कौनों नींच दुअरिया बाबा जो भिच्छा
मंगलें, कान के बहरे बहरे बन जाब
कौन जो काटा कुस बाबा सोने पइबें
उहवां सोउब आसन लगाय
कौनों सोरठी सुन्दर घरवा तिरिया देखब
तो आँख के होइ जाब सूर
तब त बाबा गोरखनाथ लिहलें चेला बनाय
बाबा गोरखनाथ कहलें बच्चा इस तरीके जोग नाहीं पूरा होई
माता के भिच्छा ले आब माँग
पुत्र जान कर भिच्छा देव
तेरा जोगवा होइ जाये अम्मर
तब तो राजा चलता अपने मकान
दुआरे पर दिहले सरंगी बजाय
भिच्छा दे भोली माँ
तबले त महलों से निकरी रानी सामदेव
कि पति सुनों मोरी बात
आज तो दिनवा गइली सिंघल दीपवा खेले सिकार
कौन रुपवा सामी दिन-धइलीं
जोगिया हम बने नाई देब
तीनी पनवामें एकको पनवा नाहीं बीतल
नाहीं बूढ़ नाहीं जवान
नाहीं गोदिया सामी बेटा भइले माई बेटा ले करती राज

तोहरा पछेड़ सामी नाहीं धरलीं
तब एन्ना बचनिया बोले राजा भरथरी
कि तनी सुन मोरी बात
बेटा के ललसा रनिया तोहरे बाटे
बाटे गोपीचन्द भयने लगे तोहार
जाने बेटा मोर, पाली पोसी तू करबू
गाढ़े दिनवा अइहें तोहरे काम
एतना बचन रानी सामदेव सुने
कि कौन बोलिया सामी आज दिन बोलना
मोसे सही न जाय
जंगल भितरा सामी खरहा भइले पंछी सुगवा जो होय
मानों सामी तन में भयने भइले तीनों नमक हराम
इहै तीनों जतिया पांस न माने
जौने दिनवा सामी खुलि जइहें पिजड़ा जंगल सरहा चलि जाय
जाने दिनवा सामी पिजड़ा खुलि जइहें सुगवा बिरछा चढ़ि जांय
मानुख तनवा में सामी भयने बचिहें
अवसर परले पर भयने दगा करिहें,
पिछल करिहें गोबरा के हेत
तब त रानी रोइ रोइ करती है जवाब
जौन सुखवा रानी रउरे सथवा तवन सुखवा नाईं होय
तब बोलत राजा भरथरी रानी सून मेरी बात
डोलवा फनाव रानी नैहर जइहें करिहऽ सोरहौ सिंगार
सोरहो सिंगार बतीसो रंग करिहौ बारवारी लिह मोती गुहाय
चउमुख देना रानी महली बाटे, रहिहऽ माता के गोद
हमरा पछेड़ रनिया छोड़ तू देती
तो रानी करती है जवाब
कौन बोली सामी आ दिन बोलल
हमसे सही नहि जाय
अगिया लगावें सामी नैहर मैंनी जरिजा नैहर मोर
जानै दिनवा सामी नैहर जइबैं करबै सोलहों सिंगार
सिमिसि सिंदूर कौर सामी मंगिया देब
उग जाब दुइजै के चाँद
देखि देखि लोग ताना मरिहैं कि इनके इतना गुमान

आधा गुमान सामी नैहर टूटीं तब जोहब मैं केकर आस
तब बोलिया बोले राजा भरथरी कि रानी सुन मोरी बात
हमरे करम में रानी जोगी लिखलें
तो फिर रानी करती है जवाब
कि घरवा के जोगी सामी घरही रहीं रहीं नयना हजूर
जैसे लोगवा सामी सालिग पूजैं तैसे पूजब दिन रात
भुखिया लागी सामी भोजन देबै, प्यासे गंगा भरि लेबै आय
तोहरे गुरू सामी चेलिन बनबै तोहार
भोगवा बिलसवा सामी मतलब नाहीं
तो राजा भरथरी फिर करता है जवाब
कि घरवा के जोगी फिर घर न रहिहैं
नाहीं नयना हजूर, त्रिया जतिया है सलोनी
हँस के करिहैं खराब
तो बोलिया बोले रानी सामदेवा
कि सामी सुनो मोरी बात
जैसे समिया रउरे जोगी छलीं
जोगिन हमहूँ देल बनाय
तो डपटि बचनिया बोले राजा भरथरी
कि रानी सुनौ मोरी बात
जोगी के संगवा तिरिया ना सोभैं
गरिया दीहै गुरू गँवार
कोई तकिहैं दूनौ माता पिता
कोई त बहिन भाई बनाय
कोई त कहिहैं ह त जोगी ठग ह्वैं
कि तो जात ह्वै बनाय
बिड़ल रनिया कोई ज्ञानी होइहैं दूनौ जोड़ू दिहैं बनाय
तो तीनी गरिया रानी ठावैं पड़िहैं कि गुदड़ी में दाग न लागै जाय
दिहैं सराप बाबा गोरखनाथ, गुदड़ी सांझै जरि जाय
तो एन्ना बचन रानी सामदेव सुने कि रोई
रोई करती है जवाब
सामी सुनो मोरी बात
जोगी बनल सामी भल तू कइलऽ
कहना मानऽ हमार

सरंगी मंगा देई सामी नैहर से जिसमें बत्तीसों है तार
लाखो गुदड़िया सामी नैहर से बनवाइब सोनें के मूरत देइब ढरकाय
चाँदी के शिवाला देइब बनवाय
आ गंगा सामी दरवाजे के लेब बुलाय
लंवगा इलाइची के लखरा देई जोरवाय
बैठल रहिहऽ द्वारे पर तीरथ बरत मैं ही कइ जाय
तो एन्ना बचन राजा भरथरी सुनै रानी से करता है जवाब
एतना जो समरथ ते रनिया, तोहरे बाटै
सवे पहर में गंगा लाव दुआरे पर मँगाय
तो एतना बचन रानी सामदेव सुने
कि सामी सुनो मेरी बात
छ महीना के सामी गंगा बहल सवा पहर में कैसे ले आइ बुलाय
दिन भर के सामी मुहलत मिलते गङ्गा ले अवतीं मँगाय
एतना बचनिया राजा भरथरी बोले
रानी सुनो मेरी बात
सवे पहर में रनिया गङ्गा न अइहैं तो जोगी हम बन जाब
तो अपने मनवा में रानी करती है विचार
भारी हरावन सामी आज दिन डरलें
कि दरवाजे पर राजा भरथरी आसन डरले बा गिराय
छोड़ के घर रानी सामदेव चललिन गङ्गा जी के पास
गङ्गा जी में रनिया डुबकी मारे की हाथ जोड़ के करती है परनाम
तोहर कारन सामी जोगी होलें गंगा सुन मोरी परनाम
आज के दिनवा गंगा तू चलतू कि चलतऽ गंगा हमरे दुआर
तो एतना बचनिया माई बोले तब तो रहले सतयुग के जमनवा
कि गंगा जी जैसे रहलिन सतयुग में बोलत
वैसे गंगा के माई कुछ होइहै मान
केकर केकर पिया जोगी होइहै होइहै हमर पास
केकर केकर रनिया मान हम राखब
कलम नाई चली नाम
हमरो रनिया मंगनी पड़ि जैहै नाम
तो एतना बचन रानी सामदेव बोले
रोय रोय करती हैं जवाब

आज के दिनवा गंगा चलऽ हमरे दुआर
ले चलके हम गंगा तोहार नाहर खुदवाय
छोड़त रानी सामदेव नाहर खोदवाय
बहुत मारे गंगा के धार
सबे पहर में अइली राजा के दरबार
लौंगा इलाची लखराव दिहली जा जोताय
सोने के मूरत रानी देलिन दरवाजे धराय
चांदी के सिवाला रानी कइले बा तैयार
तब जाके राजा से कहती है कि राजा सुनो मोरी बात
जो न सामी कबूल किया कि गंगा ले अइबी दुआर पर बुलाय
उठ सामी कुछ गंगा जी में कर दरसन आज
तब बोलत है राजा भरथरी
रानी सुनो मेरी बात द्वार गङ्गा गङ्गा नाहीं बोलिहैं
बोलें गड़ही पोखरी गङ्गा के बनल
लूल लंगड़ रहे बिना चारो धामवा कइलें रनिया नाई मानब हम आज
तब रानी गुदड़ी धैके दुअरवा रोवैं
स्वामी सुनो मेरी बात
जानत रहली समिया जोगी बनते काहे कइली राउर बियाह
नन्हवे निकर सामी जोगी बनती लगतीं दुसर के डार
हाय हो सकल राजा भरथरी
फिर राजा करता है जवाब कहना मान मेरी रानी
तब फिन रानी गुदड़ी दै ठाढ़
जोगी एतर बने नाई देव राजा सुनो मेरी बात
आज तो राजा लेआईं चौपर तास
जेकर जीत होई राजा कहना मान मोर
जो राउर पास जीती तबतऽ बन जाई जोगी आज
नई तो राजा हम ना जीती तो जोगी न बने न देईं तुहे आज
तो मार रानी करती है जवाब सामी सुनीं हमारी बात
कौने गुरू के सामी चेला भइलीं जाई लेईं बिलमाय
बाकी समीया आज दिन जोगी नाई बने देव
तो राजा फिर करता है जवाब
कि बड़े गुरू की चेली भइलीं तुहई के लिहे जाहु न बिलमाय

तब एतना बचनिया रानी सामदेव बोले
हमार जाइ बिरथे होइ जाय
अब तो राजा रानी खेले जुआ पास
तो पहिला पास जीतें साम देई
तब तो मालूम हुआ गोरखनाथ बाबा को
मक्खी का भेस धैके गइल राजा के पास
जाके राजा भरथरिन कानें विहलें फूंक
अभी राजा तुमको मालूम नाहीं रानी जादू
से लेतिया तुहें बिलमाय
तब त राजा भरथरी कहलें हैं कि रानी पास दो मिलाय
तब तो फिर राजा रानी खेलन लागे तास
तो दूसरा जीत हुआ राजा भरथरी रानी गईं मुरझाय
राजा गए अपने गुरू के पास
बाबा गोरखनाथ लिहले चेलवा बनाय
हाय हो सकल राजा भरथरी

१—राजा गोपीचन्द

मैनावती माता—फारि के पितम्बर मइया गुदरी बनावें
बनल गुदरिया मइया अवर अनमोल
माता है गुदरिया धइल, दुअरिया पर समझाव
बड़ बड़ जतनियां से बेटा गोपीचंद पाली,
कहलीं अइबऽ गाढ़े दिनवा गोपीचन्द कामें
नौ नौ महिनवां बेटा कोखिया में सेईं
तोहरे करनवा बेटा प्राग नहइलीं
तोहरे असकरनवा बेटा तिरथवा नहइलीं
गोपीचन्द— का करबी माई बरह्मा लिखे जोगी।
माता—सात सौतियन के दुलरू दुधवा पियवलीं
ओही दुधवा गोपीचन्द दिहले जइबऽ दाम
तब पछवा निकर के दुलरू बनिहऽ जोगी
गोपी—गैया औ भइंसिया दुधवा जो माता चहतू
तलवा और पोखरिया देती मइया भरवाय
बाकी तोहरे दुधवा मैया रहबे मैं लाचार,
माता—गैया अरु भैंसिया दुधवा दुलरू नाहीं लेबें
गैया दुधवा भैंसिया के बिके सहरै बाजार,
माता जी के दुधवा बबुआ बड़ा अनमोल
ओही हमरै दुधवा गोपीचन्दा देबऽदाम
गोपी—कौनो बिधवा माता तू देतू छुरिया और कटारी
काट के कलेजवा माता आगे धइ देतीं
सिरवा कलफ के माता देतीं दुधवा के दाम
तौनो पर नाई होबें माई तोरे दुधवा से उत्तीरिन
माता—बावन किलवा गोपी चन्दा छोड़ल बादसाही
छप्पन कोसवा ललऊ छोड़ल तू आपन बाजार
त्रिपन कड़ोर छोड़ल तहसील
सोरह सौ कुंवरा रोवैं, दलवा के सिंगार
बारह सौ कुंवरवा बबुआ रोवें दर सिंगारी
बारह सौ नौकरवा ललऊ रोवें बंगले पर

तेरह सै मुगलवा रोवैं, चौदह सौ पठान
और रोवत बाड़े बबुआ रैयत परजा लोग
और पक्की हवेलिवा मैया रोवे तोहार मैना
धरम के बजरिया रोवें लचिया बरई
पाँच बिगहा पनवा जइहें ललऊ भुराइ
हमरे पनवा गोपीचन्द दिहले जा दाम
त पछवा निकर के बनिहऽ तू गोपीचन्द फकीर
गोपी—झोरिया से निकारत बाटे गोपीचंद मसिहानी
पांच गउवां लिखि दिहले बरइन के माफी
नाईं लगी पोत बरइन नाईं लगी मलगुजारी
जब ले तू जीहऽ बरइन तबले बइठ के खाही
बकि हमरे माता जी के पनवा तू खियाये
जियत मोर जिन्दगनिया रहिके जोगी बनके आये
मुअले के मिलनवा बरइन भेंट नाईं होई
एतना कहिके गोपी चन्दा जैसे छोड़े गंगा जी अड़ार
वैसे छोड़े गोपीचन्दा छप्पन कोस राज
तब चलत बा गोपीचन्दा बहिन के मकान
पहिला तो मोकाम नावें गउवाँ के बजार
सवासै महाजन उनके सूरत देखि के रोव
मुन्सी दरोगा थाने जिनकर रोवें
तब बोलत बा गोपीचन्दा बिना आज बहिनिया देखे
घरवा नाहीं दुआर,
तब दूसर मुकमवा नावें राज गोपी चन्दा
जाते जाते बबुआ के कदेरी जंगल में साँझ हो गइले
जौने में केर जंगल बबुआ मानुष के नाहीं निबाह
दिनवा और रतिया बाबू बाघ और भालू घूमें
तौने जंगल में गोपीचन्दा आसन गिरावें
देख के सुरतिया रोवैं मइया बनसत्ती
तब बोलतिया मइया बनसत्ती, इ हमरे जंगल में काहे चलि अइलीं
कौने अव्वे आघे भलुइया के नजर परिहें
अल्ल तोहार जनवा जंगल चलि जैहें
घुम जा गोपी चन्दा अपने तू मकान
तब उपर बचनिया बोले गोपीचन्दा

छत्री के जतिया हुई रन्न के चढ़ाई
आगे मार कदमिया छोड़ के पीछे न जाई
चाहे एक जंगल मोर मृतलोक होइ जाहे
तब बोलतिया मइया बन के बनसप्ती
हमरे त जंगलवा में बबुआ अन्न नहीं पानी
भूख त लगे त बबुआ बन पतई चबाई
तब बोलत बा गोपीचन्दा
तीन दिनवा तीन रतिया बीत गइला अन्न पानी छूट गइल
तब फिर बोलत बा गोपीचन्दा कि बहिन कि देसवा
देबू हम्मे बतलाई
सीधा साधा रहिया बन के जल्दी दऽ बताई
नाहीं देबें सरपवा तोहार जंगल जरि जाई
तब एतना बचनिया सुनले मइया बनसप्ती
त अपने त बनत बाड़िन हंसा चिरैया
गोपीचन्दवा के लिहली अब सुगवा बनाई
अपने अब डैनवा मइया लेहले बैठाई
छवें महिनवा के राह रहल बहिनिया के
छवें पहर में दिहली पहुँचाई
घुमि घुमि गोपीचंदा फेरिया लगावें
नाई पहचानत बाड़े बहिनिया के दुआर
तब बोलत बा गोपी चंदा, सात दिनवा सात रतिया
बीतल बे अन्ने पानी
तवन आज बहिनिया बीरम भाई के नाहीं चीन्हे
एक ठो गोपीचन्दा बहिन के दिहले
चन्नन पेड़ निसानी
तबन बहिनिया चन्नन पकड़ भेंटे
बारह त बरिसिया चन्नन गइली मुरझाई
तब चन्नन के भेदिया पूछे राजागोपीचन्दा
कौन करनवा आज गइले चन्नन झुराई
कि बहिनिया डांड़ ओड़ लिहली
कि बहिनियां कौनो नोकर चाकर के मरलिन
कौने तऽ करनवा गइले चन्नन मुरझाई

तब चन्नने के भेंदिया पूछे राजा गोपीचन्दा
कि सच्चा सच्चा भेदिया रैयत देत बताई
तब गरब के बोलिया बोले रैयत परजा लोग
मांगे क भिखिया बाबा आ पूछी गंवा जमोह
तब बोलत बा गोपीचन्दा
गरब के बोलिया रैयत तिनका न बोले
नाई देबें सरपवा गउवां भसम होइ जाइ
तब एतना बचनिया सुने रैयत परजा लोग
सुधे सुधे रहिया बहिनी के देले बताय
नीचवा रे नाहीं बाबा ऊँचवा अंटारी
हीरा और रतन जड़ल बा बहिन के दुअरवा बाबा निसानी
तब बहिनी के दुअरवा गोपीचन्दा आसन गिराये
तब सोनें के संरगिया दिहले गोपी चन्दा बजाई
सरंगी के शबदिया जब बहिनी बिरमा सुने
तब जाके बहिनी मुंगिया लौंड़िन के बोलवाव
बोलतिया बहिनिया बीरम सुन मुंगिया लौंड़ी
जाके ना तू सेर भर सोना लेलऽ बाबा सेर भर चीनी
सवा सेर तिल लेलऽ सवा सेर चाउर
जांके ना कहिदऽ लौड़ी लेलऽ बांवा मोर गरीबे घर के भीख
तब छोटरहलिन मुँगिया लौंड़ी बनी अक्किलदार
लेके भिखिया जोगी देबे जाली
तब डपटि बचनिया बोले राजा गोपीचन्दा
तोहरे हाथवा के लौंड़ी भिखिया न लेवे
जौने मुँगिया लौंड़ी जुठवन पालीं
तौने मुँगिया लौंड़ी आज भिच्छा देवे आवे
तवन मुंगिया लौंड़ी के आज सुबहा हो गइली
बिचवा मुंगिया लौड़ी जाके मुहवा निरखे
तबतऽ धावल धुपल मुंगिया महल में जालीं
तब बोलतबिया मुंगिया लौंड़ी सुन बहिनी बीरम
जैसे बीरम गोपीचन्दा छोड़ल तू अपने नइहरवाँ
वैसे सुन्दर जोगी दुअरवा पर अइली
तब फिर रात और भीतर में गोपीचन्द कइले चन्नन कचनार
बारहे बरिसवा रहले चन्नन मुरझाइ

फिन बोलल बहिनी बीरम
बड़ बड़ हम जोगी देखलीं, बड़ बड़ देखीं तपसी
ऐसन सुन्दर जोगी दुअरिया हम नाहीं देखीं
तब बोलतबिया बहिनी बीरम सुन मुंगिया लौंड़ी
जल्दी से रसोइयां लौं करके तैयार
आ जाके न तू लौंड़ी जोगी से पूछ आव
कित बाबा भितरा खैहैं मोर जैवनार
कित अपने हथवा बाबा लैके बनइहैं
तब फिर बोलत बा गोपीचन्दा नाईं अपने हथवा
बहिनी हम बनाइब रसोंई—तोहरे आज भितरा
बहिनी खइबे जेवनार
तब बरहों व्यंजनवा बहिनीं कइलिन रसोंई
सब के खिआवे बहिनी जेतना रहले नौकर चाकर
कुतवा और बिलरिया बहिनी सब के देव खियाई
अपने कोखी भइया के बहिनी देहलिन बिसराइ
बड़ियन अगोरे भइया के पहरन अगोरे
तब खोल के मुरलिया गोपीचन्दा देहले बजाई
त मुरली के शबदिया तब बहिनी बिरमा सुने
तब त मुंगिया लौंड़ी के लेहलिन बोलवाइ
सोरह सौ तौलवा बहिनी दिहली चढ़वाइ
तब बोलत बा गोपीचन्दा, कौन अस सरपवा देईं
कि बहिनी के न अखरे
जो बहिनी के लड़िकवा के देईं त भयनवा मरि जाइ
और रजवा में देई त बहिनी गरीब होइ जाई
तब बोलत बा गोपीचन्दा, तोहरे दीदारिया के खातिर जोगी
बन के अइलीं
तब नऽ चिन्हत बाड़ी कोखियन के भाई
पवले बाटू नैहर के धनवा गइल बाटू अंधराई
तब फिन बोलतबिया बहिन बीरम
कि भाई बहिन के जोगी नाता न लागल
नाईं त अब्बे रानी के राजा सुनवाई
त अब्बे तोहरे हाथे हथकड़ी बन्हाई
लाली खंभियवा जोगी तुहें बन्हाई

तब बोलत बा गोपीचन्दा,
चाहे मरवइबू बहिनी चाहे कटिवइबू
बिना भेंटिया कइले बहिनी छोड़ब ना दुआर
तब बोलल बहिनिया बीरम सुन जोगी बाबा
मा बहिनी के नाता जो लगवलऽ
केन्ना तू बिआहे में दिहले केन्ना तिलक में दिहले
केतना तू हाथी दिहले केतना तू घोड़ा दिहले
इहे एतना जोगी हम्में नाहीं द बताइ
तब जानी हमरे तू हवऽ कोखियन के भाई
तब फिर बोलत बा बहिनी गोपीचन्द सुन बहिन बीरम
तीन सौ नवासी गउवां तिलक के चढ़ाई दीहलीं
बारह सै घोड़वा देई बहिनी के दहेज
पांच सौ हथिया दिहलीं हंकवाई
कहलीं आज बहिनिया के दीहा कुनफे नाहीं भाई
तब बोलत बा गोपीचन्दा, और कुछ कह बहिनी देई बतलाई
तवने पर बहिनिया के नाहीं पड़ल एतबार
त फिर बोलत बा गोपीचन्दा, सुन बहिन बीरम
जेतना बरतिया तोहरे बिअहवा में अइले
सबका बदसहिया बहिनी कपड़ा पहिराई
अमीर या दुखिया के बहिनी एक्कै किसिम कइलीं
तवने पर बहिनिया नाहीं चीन्हत बाटू कोखिया के भाई।
सोने के पिनसिया बहिनी हम तोहे बैठाई
चानी के डोलिया बहिनी तोहरे लौंडिन के भेजवाई
तवने पर बहिनिया नाहीं चीन्हत बाटू भाई
तब फिर बोलत बा गोपीचन्दा सुन बहिनी बीरम
कइले बहिनी आके तू भेंटिया मुलाकात
जानी मोतिया ईश्वर कहाँ ले के जाई
तब बोलत बहिनिया सुन जोगी बाबा
हां जो तू बाबा गइल रहलऽ हमरे बिअहवा
इहे कुल लेत देत बाबा देख तू गइलऽ
तब्बे बाबा हम्में दिहले बतलाई
तब बोलल बहिनिया सुन जोगी बाबा
भाई के दिहल एक बौढ़हिया हथिया

उहे हम हथिया बाबा जोगी दिहलीं खोलाई
जो तू हवऽ हमार कोखियन के सग भाई
तब त जोगी बाबा हथिया नाहीं कुछ बोली
बैबी जोगी होबऽ तब अपने हथिया फार नाई
आ जो कोखिया के भाई होबऽ त कुछ नाहीं बोली
तब त बहिनिया दिहले सीकड़ खोलवाई
गोपीचन्द के हाथी नजरिया एक पड़ि गइले
जेतने गोपीचन्द के नैन से गिरे आँसू
ओतने उनकर हथियन रोवत अइली
अपने त सुंड़वा से उठाके गोपीचन्द के ले ले बैठाई
कंचनपुर सहरिया बिरमहिं के दिहले बा घुमाई
तवने पर बहिनिया के नाहीं पड़ल विस्वास
फिर बोलत बा गोपीचन्दा सुन बहिन बीरम
जैसे हथियन देखलीलू वैसे सुन्दर मुन्दर पिलौआ दिखायी
तवने दिन बहिनवा कुवरा के सीकड़ दे खोलवाई
रोवत और कलपते गोपीचन्दा गइले लगवाँ
जैसे देहियां लइ के लोटे औसे सुंन्दर मुंन्द पिलौआ लोटे
तवने पर बहिनिया नाहीं पड़ल विस्वास
फिर बोलत बा गोपीचन्दा, आज बहिनिया के दुअरवा कइलीं उपवास
ऐसन मोर बहिनिया पापी भाई नाहीं चीन्हें
फिर बोलल बहिनिया बीरम, एक ठौ ही रामा
सुगना ले आवें निकार
लिख के चिठिया बहिनी भेजे अपने नइहरवा
कि मैया गोपीचन्द जोग कइले बाटे दुलार
तब तले के सुगवागइले बन्कापुर सहर
देखकर पतिया मैना गिरे मुरझाई
कि बेर बेर दुलरूमिनहा कइलीं नाई मनलस बात
कहलीं बेटातीन नगरिया के फेरिया लगइहऽ
बहिनी के नगरिया बेटा गोपीचन्दा न जाये
बचन गोपीचन्दा नाहीं मनलऽ गइलऽ बहिनी दुआर
तव फिर माता चिठिया लिख सुगवा के गले बांधे
फिन लैके बहिन के दुआर कंचनपुर अइले

तब जैसे लेवरूआ टूटे गइया पर वैसे बहिनिया
बीरम टूटे भइयवा पर
तब पकड़ के गोड़वा बहिनी बीरम लगे भेंटे
भेंटत भेंटत बहिनी प्राण छोड़ दिहली
तब गइल गोपीचन्ना बाबामछिन्द्रा के पास
जाके उहाँ गुरुसे हुकुम देला लगाय
कि बारह आज बरिसवा बाबा अइलीं ना बहिनि के दुआर
तवन आज बाबा बहिनिया प्राण छोड़ दिहली
तब बोलल बाटे बाबा मछिन्द्रनाथ
कि आके ना बाबा आपन कानी अँगुरी चीर के कहि जियाय
तोहार बहिनिया बच्चा जुरते हो जइहँ जिन्दा
तब उहाँ से गोपीचन्दा अइलें बहिन के दुआर
तब कानी अँगुरिया चीर के बहिनी के दिहलें चढ़ाय
तब तो बहिनिया उनके जिन्दा होइ गइली
तब फिर बहिनिया बिरमा गोड़वा पकड़ के लगल रोवे
तब बोलतबा गोपीचन्ना सुन बहिनी बीरम
आज इ भेंटलका बहिनी नाहीं सुधार
अन्न बिना छुटल बाटे बोलत परान
पनिया बिना सुखल कोली करेजा
पनवा बिना ओठवा गइले कुम्हिलाय
तब तो बहिनिया जल्दी रसोइया के दिहली बनवाय
तब आके ना भइया गोपीचन्दा के देलिया उठाय
कि चलऽ भइया भोजन कइलऽ रसोइया भइल तैयार
तब बोलल गोपीचन्दा कि सुन बहिन बीरम
आपन तू सगड़वा (पोखर) बहिनी देतू बताय
बिना असननवा कइले बहिनी भोजन नाहीं होई
तब बहिनिया चारि सिपहिया आगवा चारि
पिछवा देलिन लगाइ
बिचवा में न अपने भइया गोपीचन्द के करे
तबतले के सगड़े पर गइले करावे असनान
एक एक बुड़इया मारे सब कोई देखे
दुसर बुड़किया सब कोई देखे

तीसरे बुड़किया भइया नापता होइगइले
भंवरा के गावा धैके गुरु मछिन्द्रा लगे गइलें
रोवे और कलपे सिपहिया बहिनी के दुअरवा गइले
कि एक बेर बुड़ले बहिनी सब कोइ देखल
दुसर बुड़इया सब कोई देखल
तिसरे बुड़इया में नापता गइले
तब जब बहिनिया बिरमा महजलिया के नवावे
जेतना रहले सूंस घरियार घोंघी सेवार सब बंधिगइले
बकि भइया गोपीचन्द के पता नाहीं लगले
तब त बहिनिया रोवत गावत घरे चलगइली
गउवाँ रैयत सबर धरावें. . . .

परिशिष्ट (ख)

: हिन्दी :

१—भोजपुरी ग्रामगीत, भाग १, संवत् २००० वि०।
भोजपुरी ग्रामगीत, भाग २, सं० २००५ वि०।

सम्पादक—कृष्णदेव उपाध्याय एम० ए० साहित्यरत्न
प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

२—भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन :अप्रकाशित:

लेखक—डा० कृष्णदेव उपाध्याय एम० ए० डी० फिल्

३—भोजपुरी लोकगीत में करुणरस, सं० २००१ वि०।

सम्पादक—श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह
प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग

४—कविता कौमुदी, भाग ५, ग्रामगीत, सं० १९८६ वि०।

सम्पादक—पं० रामनरेश त्रिपाठी
प्रकाशक—हिन्दी मंदिर, प्रयाग

५—मैथिली लोकगीत, सं० १९९९ वि०।

सम्पादक—रामइकबाल सिंह 'राकेश'
प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

६—राजस्थानी लोकगीत, सं० १९९९ वि०।

सम्पादक—श्री सूर्यकरण पारीक
प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

७—ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, १९४९ ई०।

लेखक—डा० सत्येन्द्र एम० ए० पी० एच० डी०
प्रकाशक—साहित्य रत्न भंडार, आगरा

८—ब्रजलोक संस्कृति, सं० २००५ वि०।

सम्पादक—डा० सत्येन्द्र
प्रकाशक—ब्रजसाहित्य मंडल, मथुरा

९—बेला फूले आधी रात, धरती गाती है, चट्टान से पूछ लो, १९४८ ई०

लेखक—श्री देवेन्द्र सत्यार्थी

प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

१०—जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त, १९४२ ई०

लेखक—लक्ष्मीनारायण सुधांशु

प्रकाशक—युगांतर साहित्य मंदिर, भागलपुर सिटी

११—मत्स्यपुराण

संपादक—श्री रामप्रताप त्रिपाठी

प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-द्वितीय संस्करण १९४८

लेखक—डा० रामकुमार वर्मा एम० ए० पी० एच० डी०

प्रकाशक—रामनारायण लाल, प्रयाग

१३—कबीर, १९५० ई०

लेखक—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बंबई

१४—नाथ संप्रदाय–१९५० ई०

लेखक—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग

१५—हिन्दी भाषा और साहित्य–सं० १९८७ वि०

लेखक—डा० श्यामसुन्दरदास

प्रकाशक—इंडियन प्रेस, प्रयाग

१६—हिन्दी साहित्य, १९४४ ई०

लेखक—डा० श्यामसुन्दर दास

प्रकाशक—इंडियन प्रेस, प्रयाग

१७—आल्हा, १९४० ई०

लेखक—चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा

प्रकाशक—इंडियन प्रेस, प्रयाग

१८—साहित्य प्रकाश, १९३१

लेखक—डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

प्रकाशक—इंडियन प्रेस, प्रयाग

१९—हिन्दी साहित्य का इतिहास : छठा संस्करण: सं० २००७ वि०

लेखक—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

प्रकाशक—नागरी प्रचारणी सभा, काशी

२०—भारत में अंग्रेजी राज, भाग तीसरा, १९३८ ई०

लेखक—पं० सुन्दरलाल

प्रकाशक—ओंकार प्रेस, इलाहाबाद

२१—१८५७ का भारतीय स्वतंत्र समर, सं० २००३ वि०

लेखक—बैरिस्टर विनायक दामोदर सावरकर

प्रकाशक—निर्मल साहित्य प्रकाशन, पूना

२२—सिपाही विद्रोह, सं० १९७९ वि०

लेखक—ईश्वरी प्रसाद शर्मा

प्रकाशक—राष्ट्रीय-ग्रंथ रत्नाकर, कलकत्ता

२३—अमरकोष—स० १८९७ वि०

लेखक—पं० श्री मदमरसिंह

प्रकाशक—तुकाराम जावजी, बंबई

२४—विनोबा के विचार, भाग १, पाचवीं बार १९५० ई०

लेखक—आचार्य विनोबा भावे

प्रकाशक—सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

२५—भक्त गोपीचन्द,

लेखक—बालकराम योगीश्वर

प्रकाशक—जवाहर बुक डिपो, गुदरी बाजार, मेरठ

२६—आल्हा, कुँवरसिंह, लोरिकायन, कुँवरविजयी, सोरठी, बिहुला-बिसहरी, शोभानायक बनजारा

प्रकाशक—दूधनाथ प्रेस, हवड़ा

२७—भरथरी चरित्र

लेखक—विधना क्या करतार

प्रकाशक—दूधनाथ प्रेस, हवड़ा

२८—पृथ्वीराज रासो, १९१० ई०

सम्पादक—मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या तथा डा० श्यामसुन्दरदास

प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

२९—हिन्दी साहित्य का आदिकाल १९५२ ई०

लेखक—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

३०—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग १९५४ ई०

लेखक—नामवर सिंह

प्रकाशक—साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

३१—हिन्दी नाटक, उद्भाव और विकास १९५४ ई०

लेखक—डा० दशरथ ओझा

प्रकाशक—राज्यपाल एन्ड सन्स, दिल्ली

३२—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास १९५६ ई०

लेखक—डा० शंभूनाथ सिंह

प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

३३—भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा १९५६ ई०

लेखक—श्री परशुराम चतुर्वेदी

प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

गुजराती

१—लोकसाहित्य १९४९

लेखक—श्री झवेरचन्द मेघाणी

प्रकाशक—गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, राणापुर काठियावाड़

२—लोकसाहित्यनुं समालोचन १९४९

लेखक—श्री झवेरचन्द मेघाणी

प्रकाशक—बंबई विश्वविद्यालय, बम्बई

३—धरतीनु धावण, सौराष्ट्रनी रसधार, सौरठनूं तीरेतीरे १६२८ ई०
लेखक—श्री झवेरचन्द मेघाणी
प्रकाशक—गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, गान्धी रोड, अहमदाबाद

बंगला

१—मनसा मङ्गल १९४९ ई०
संपादक—श्री ज्योतिन्द्र मोहन भट्टाचार्या
प्रकाशक—कलकत्ता विश्वविद्यालय प्रकाशन, कलकत्ता

पत्रिका

१—नागरी प्रचारिणी पत्रिका-भोजपुरी का नामकरण-डा० उदयनारायण तिवारी
काशी वर्ष ५३, अंक ३–४ सं० २००५ वि०
१—जनपद–हिन्दी जनपदीय परिषद का त्रैमासिक मुखपत्र
काशी—अक्टूबर, १९५२ ई०

English Books

1.	Folk Songs of Chhattisgarh ..	Rev. Verrier Elwin, D. Sc. Oxford University Press, 1946.
2.	Folk Literature of Bengal ..	Dr. D. C. Sen, Calcutta University Publication, 1920.
3.	History of Bengal's Language and Literature ..	Dr. D, C. Sen. Calcutta University Publication, 1911.
4.	English and Scottish Popular Ballads ..	F. G. Child—Editted by H. C. Sergent and G. L. Kitredge. Published by George G. Harrp & Co., London, 1914,
5.	Camibrige History of English Literature, Vol. II ..	F. B. Gummare, Cambridge University Press 1908.
6.	Old Ballads ..	Frank Sidgwick, Cambridge University Press, 1908.
7.	The Ballad	The same Author, Published by : Martin Secker, London.
8.	Encyclopedia Americana, ..	Louise Pond, Ph. D., Amricana Corporation, New York, 1946.
9.	Encyclopedia Britanica. Vol. 2—Ballad (Collections) ..	Ency. Brit. Company. London.
10.	The English Ballad—a short critical sarvey ..	Edited by—Robert Graves. Earnest Bern Ltd., London. 1927
11.	Old English Ballad ..	Selected and Edited by F. B. Gurmmare, Ginn and Co. New York.
12.	An Introduction to Mythology ..	Lewis Spence—George G. Harrop and Co. Ltd., London, 1921.
13.	Folk Lore as an Historical Science. ..	G. L. Gomme.

14.	Folk Element in Hindu Culture ..	B. K. Sircar, Longmans Green and Co. Ltd., London, 1917.
15.	A History of Indian Literature, Vol. I ..	M. Wintermitz, Calcutta University Publication,
16.	History of Bengal ..	R. C. Majumdar, M. A., Ph. D. Published by : University of Dacca, 1943.
17.	Tribes and Castes of North-Western Provinces and Oudh ..	W. Crooke, Office of the Supdt. of Govt. Printing, Calcutta, 1886.
18.	The Popular Religion and Folk Lore of Northern India ..	The same. Republished in 1926 (Oxford)
19.	Castes and Tribes of South India, Vol. II ..	Edgar Thirston—Govrenment Press, Madras, 1909
20.	Hindu Tribes and Castes as reprsented in Banaras ..	Rev. M. A. Sherring—Trubner and Co., Bomby, 1872.
21ı	The Lay of Alha ..	W. Waterfleld, Oxford University Press, 1913.
22.	Hindu Folk Songs ..	A. G. Sheriff.
23.	Shakesperean Tragedy ..	A. C. Bradley (Revised), Macmillan and Co., London, 1950.
24.	The Ocean of Story ..	(Translation of *Katha Saritsagara*), J, Sawyer Ltd., Griften House, London, 1924.
25.	The Hand Book of Folk Lore ..	C. S. Burn—Publication of Folk lore Society, 1913 Sidgwick & Jackson Ltd., 1914.
26.	A History of Indian Mntiny ..	T. R. Holmes—Macmillan and Co., Fifth Edition, 1904.
27.	The Origin and development of Bhojpuri (Unpublished) ..	Dr. Udai Narayan Tiwari M. A. D. Lit.

JOURNALS

1. B ılletin of the School of Oriental Studies, Vol. I, Part III (1920), Pp. 87—The Popular Literature of Northern India—*by*—Dr, Grierson, G. A.
2. Indian Antiquary, Vol. XIV (1805), Pp. 209—The Song of Alha's Marriage—by—Dr. Grierson.
3. J. A. S. B., Vol. L III (1884), Pp. 94, The Song of Bijay Mal (Edited and Translated by Dr. Grierson).
4. J. A. S. B., Vol. LIv (1885), Part I, Pp. 35—Two versions of the song of Gopichand—by—Dr. Grierson.
5. Z. D. M. G. Vol. XLIII (1889), Pp. 468—Selected Specimens of the Behari Language, Part II—The Behari Dielect, The *Git Naika Banjarwa*—by—Dr. Grierson.
6. Z. D. M. G., XX1X, Pp. 617—*Git Nebarak*—by—Dr. Grierson.
7. The Eastern Anthropologist, June 1950, Vol. III, No. 4—Bhojpuri Folk Lore and Ballads—by—K. D. Upadhyaya.
8. University of Allahabad Studies, Part I, Pp. 21-24. English Section—Introduction to the Folk Literature of Mithila—by—Dr. Jayakant Misra.
9. Repots of the Archeological Survey. Part VIII, Page 79—by—J. D, Beglar.


Delhi

